गौरपार्षद - 1

प्रस्तावना

अस्मदीय गुरु पादपद्म-श्रीधाम नवद्वीप, मायापुर में स्थित आकर मठराज श्री चैतन्य मठ एवं विश्व-व्यापी गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट जगद्‌गुरु ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर के प्रिय पार्षद एवं अधःस्तनवर भारत-व्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज के स्नेहाभिषिक्त प्रिय शिष्य, प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज की सम्पादकता में 'श्रीगौर पार्षद एवं गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत' नामक एक परमोपादेय ग्रन्थ आत्म-प्रकाश हुआ है। इससे पूर्व श्रीमन्महाराज की सम्पादकता में 'भक्त ध्रुव', 'श्रीब्रजमण्डल-परिक्रमा', 'श्रीभगवद्-अर्चन-विधि' तथा परमपूज्यपाद श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज के पावन चरित्र के प्रथम व द्वितीय खण्ड प्रकाशित हुए हैं। वर्तमान ग्रन्थ-रत्न की वैष्णव चरित्रावलि समूह 'श्रीचैतन्य वाणी' नामक (बांग्ला) मासिक पत्रिका की प्रत्येक संख्या में धारावाहिक लेख के रूप में प्रकाशित हो रही हैं।

सत्तर वर्ष की आयु में भी श्रीमन् महाराज द्वारा भारत के विभिन्न स्थानों में विभिन्न भाषा बोलनेवाले व्यक्तियों के सन्मुख पाठ-कीर्तन व वक्तृता आदि के द्वारा श्रीचैतन्यवाणी का प्रचार-कार्य तथा विशाल प्रतिष्ठान के विभिन्न महत दायित्वपूर्ण कार्य करते हुए भी ग्रन्थ व पत्रिका के सम्पादनादि कार्यों में ध्यान देना साधारण मानवीय शक्ति द्वारा कभी भी सम्भवपर नहीं है। अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीहरि-गुर-वैष्णव की अतिमर्त्य अलौकिकी दुर्घटघटन विधात्री कृपा-शक्ति उनमें निरन्तर संचारित हो रही है। श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों का अशेष स्नेहाशीर्वाद उनके ऊपर निरंतर वर्षित हो रहा है। इसी कारण से इस अग्रिम आयु में भी उनके लिए शरीर, मन, वाक्य व बुद्धि द्वारा उपरोक्त अचिंतनीय कार्यों का, अदम्य उत्साह व अनथक परिश्रम के द्वारा, संचालन सम्भवपर हो रहा है। इस प्रकार के अदम्य उत्साहपूर्ण कार्यों के लिए हम श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों के पादपद्मों में उनके सुदीर्घ जीवन की प्रार्थना करते हैं। हम भक्त-भगवान् के चरणों में सर्वान्तःकरण से यही प्रार्थना करते हैं कि उनके द्वारा संपादित पूर्वोक्त चरितामृत-ग्रन्थ, मधुर से भी मधुरतर भाव से समृद्ध होकर भक्तवृन्द के हृत्कर्ण-रसायन रूप में आत्मप्रकाश करें।

परम करुणामय, भक्त-वत्सल, भक्त-प्रेम के वशीभूत व, चिरकाल से जिस ब्रज-प्रेम रूप सम्पत्ति को नहीं दिया गया था, उस महान् सम्पत्ति के दाता, महावदान्य, भगवान् श्रीगौरसुन्दर के प्राणाधिक प्रियतम पार्षदों की प्रेम-सेवा-माधुर्य से समृद्ध, परममधुर चरितामृत का सर्वप्रयत्न से पुनः-पुनः अध्ययन हम सभी के लिए कर्तव्य है; क्योंकि इसके अतिरिक्त (अर्थात् भगवद्-भक्तों के आचरण के पुनः-पुनः अनुशीलन को छोड़कर) भगवद्-भजन किसे कहते हैं—यह हम कभी भी व किसी प्रकार से समझ नहीं पाएँगे। भक्त-चरितामृत का आस्वादन करते-करते भक्तों की कृपा होने से हमारी भक्त-पदारविन्द में निष्कपट प्रीति उदित हो जाएगी तथा हम भी भक्त-वत्सल भगवान् के प्रीतिभाजन हो पाएँगे। इसीलिए शास्त्रों में भगवत्कृपा को भक्तकृपानुगामिनी कहा गया है। भगवान् ने भी अपने भक्त की पूजा को अपनी पूजा से भी श्रेष्ठ बताया है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकले वाक्य 'मद्भक्त पूजाभ्यधिका' का अर्थ अपने शब्दों में इस प्रकार किया है –

'आमार भक्तेर पूजा आमा-हैते बड़'। सेइ प्रभु वेदे-भागवते कैला दढ़॥ (श्री.चै.भा. 1/8)

भक्त-पूजा का अनादर करके गोविन्द-पूजा में हम जितना भी आदर या आडम्बर क्यों न दिखायें, गोविन्द उस पूजा की ओर ज़रा सा भी ध्यान नहीं देते व इससे विपरीत इस प्रकार की पूजाकर नेवाले को वे घमण्डी समझकर उसकी पूजा को निरादर-पूर्वक अस्वीकार करते हैं। भक्तों के आनुगत्य को छोड़कर किसी भी प्रकार से भगवत्-पूजा सम्पादित नहीं होती, इसलिए शास्त्रों में, सर्व प्रथम, कृष्ण-प्रियतम, भक्त-श्रेष्ठ गुरुपादपद्य की पूजा का विधान दिया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रियतम भक्तराज उद्धव को उपलक्ष्य करके कहते हैं—

"हे उद्धव! मुझको ही 'आचार्य' समझना। आचार्य में कभी भी मनुष्य बुद्धि करके उनकी अवज्ञा या उनका अनादर नहीं करना। गुरुदेव सर्वदेवमय होते हैं। भगवान् की कृपा-शक्ति ही मूर्त रूप में (विग्रह रूप में) गुरु रूप से प्रकाशित होती है। इस प्रकार महिमान्वित जो गुरुदेव हैं, उनकी अवज्ञा करके भगवत्-पूजा की सार्थकता किसी भी प्रकार से स्वीकार्य नहीं है।

ग्रंथकर्ता श्रीमद् तीर्थ महाराज द्वारा विभिन्न ग्रन्थों में लिखे भक्त-चरित्र से सम्बन्धित तथ्य व ज्ञातव्य विषय संग्रह करके इस ग्रन्थ में रखने के कारण इस ग्रन्थ का माधुर्य विशेष रूप से वर्धित हुआ है। महाप्रभु के भक्तों के आविर्भाव व तिरोभाव तिथि पूजा के अवसर पर, उन-उन भक्तों के चरितामृत के आस्वादन का सौभाग्य प्राप्तकर श्रीगुरुपदाश्रित वक्ता व श्रोता दोनों ही परमानन्द लाभ करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। इस ग्रन्थ के विपुल प्रचार-प्रसार की हम अभिलाषा करते हैं।

श्रीमन् महाराज ने इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रील जगन्नाथ मिश्र, श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद, श्रील ईश्वर पुरीपाद, श्रील अद्वैताचार्य, श्रील श्रीवास पण्डित, श्रील चंद्रशेखर आचार्य, श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि, श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी, श्रील वक्रेश्वर पण्डित, श्रील जगदानन्द पण्डित, श्रील नन्दन आचार्य, श्रील मुरारी गुप्त, श्रील गदाधर दास, श्रील शिवानन्द सेन तथा श्रील परमानन्द पुरी आदि प्रमुख महाजनों की परम पावन चरित-सुधा का आस्वादन किया है। इन सभी चरित-कथाओं का प्रत्येक वर्ण भक्तिरस से भरा हुआ है। इन चरित-सुधाओं का यदि पुनः-पुनः आस्वादन न करें, तो हम कभी भी परमार्थ राज्य में प्रवेश-अधिकार प्राप्तकर भजन में अग्रसर नहीं हो सकते। भक्तों की प्रीतियुक्त प्राणमयी सेवा की कथा पुनः-पुनः श्रवण-कीर्तन करने से हमारा वज्र तुल्य कठिन हृदय भी द्रवीभूत हो सकता है; पूर्वकृत भक्तिहीन निरर्थक कार्यों के कारण हमारे हृदय में उदित पश्चाताप से हमारा चित्त, शुद्ध भक्तों की कृपा प्राप्ति के लिए उन्मुख या व्याकुल हो सकता है। भगवद्-भक्त दूसरों का दुःख देखकर दुःखी हो जाते हैं। वे कृपा के समुद्र तथा अति-अद्भुत क्षमा-गुण संपन्न होते हैं। उनका हृदय हिंसा, द्वेष व मात्सर्य से शून्य, परम पवित्र होता है। वे जब मेरे जैसे कृष्ण-बहिर्मुख, अपने स्वरूप को भूले हुए तथा माया में आबद्ध अधम जीवों की दुर्दशा देखकर अत्यन्त कातर हृदय से अश्रु-विसर्जन करते-करते हमारे नित्य मंगल के लिए कृष्ण पादपद्मों में कातर प्रार्थना करेंगे तो श्रीकृष्ण अपने निजजनों की उक्त कातर प्रार्थना से हमारे प्रति कृपा-दृष्टि निक्षेप करेंगे।

वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।

ए हेन पामर प्रति हबेन सदय॥

(श्रीश्रील ठाकुर भक्ति विनोद)

गौर–गत-प्राण गौर-भक्तों के, हृदय को चीरने वाले निष्कपट क्रन्दन को, करुणानिधान भगवान् कभी सहन नहीं कर पाते। इसलिए शरणागत-भक्तों की कातर प्रार्थना से भक्त-वत्सल भगवान् अति शीघ्र ही अपनी प्रकट लीला को

प्रकाशित करते हैं। भक्त-कृपा से ही जीव को भगवद्-कृपा प्राप्त करने का परम दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त होता है। इसलिए शुद्ध भक्तों का चरणाश्रय सर्वप्रथम वरणीय है –

शुद्ध -भक्त चरण-रेणु भजन अनुकूल।

भक्त-सेवा, परम सिद्धि, प्रेमलतिकार मूल॥

(श्रीश्रील ठाकुर भक्ति विनोद)

श्री श्रील ठाकुर भक्ति विनोद ने अपने 'शरणागति' गीति काव्य के प्रारम्भ में ही लिखा है –

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु जीवे दया करि।

स्वपार्षद स्वीय धाम सह अवतरि॥

अत्यन्त दुर्लभ प्रेम करिवारे दान।

शिखाय 'शरणागति' भक्तेर प्राण॥

श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय ने भी कीर्तन में लिखा है –

ब्रजेन्द्रनन्दन येइ, शचीसुत हैल सेइ,

बलराम हइल निताइ।

श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी ने भी अपने श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में लिखा है –

'वैवस्वत'-नाम एइ सप्तम मन्वन्तर।

साताइश चतुर्युग गेले ताहार अन्तर॥

अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे।

ब्रजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे॥

(चै. च. आ. 3/9-10)

श्री श्रील जीव गोस्वामी पाद श्रीमद् भागवत के श्लोक 'कृष्ण वर्ण त्विषाकृष्णं' (भा. 11-5-32) तथा भागवत में ही गर्गाचार्य के कहे वाक्य 'आसन् वर्णास्रयो ह्यस्य' (भा. 10-8-13) इत्यादि श्लोकों पर विचार करते हुए स्वरचित श्रीमद् भागवत के क्रमसन्दर्भ की टीका में लिखते हैं, "तदेवं यद् द्वापरे कृष्णोऽवतरति तदैव कलौ श्रीगौरोऽप्यवतरतीति स्वारस्य लब्धेः श्रीकृष्णाविर्भावविशेषे एवायं गौर इत्यायाति, तदव्यभिचारात्।"

(चै. च. आ. 3/51 अ. प्र. भा. द्रष्टव्य)

अर्थात् श्रीमद् भागवत् के 'कृष्ण वर्ण' व 'आसन वर्णास्त्रयो' इत्यादि श्लोकों को विचार करने से देखा जाता है कि जिस द्वापर में श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए, उसके पश्चात् ही आनेवाले कलि में (कलियुग की प्रथम संन्ध्या में) भगवान् श्रीगौरसुन्दर भी अवतीर्ण हो रहे हैं; इस प्रकार दोनों में एक ही स्वारस्य (तात्पर्य) उपलब्ध हो रहा है। अतः श्रीगौर सुंदर श्रीकृष्ण का ही एक विशेष आविर्भाव हैं ये सुस्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा है, इसमें किसी प्रकार का कोई संसय देखा नहीं जाता। प्रत्येक युग में ही अवतीर्ण होनेवाले श्रीभगवान् की अनन्त ब्रह्माण्डों में अनन्त प्रकट-लीलाएँ इसी प्रकार चलती रहती हैं। इस नित्य लीला में किसी प्रकार का भी व्यतिक्रम नहीं है।

अत: लीला पुरुषोत्तम श्रीभगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की ब्रजलीला के परिकर ही उनके नित्यधाम नवद्वीप में श्रीजगन्नाथ मिश्र सुत श्रीगौरसुन्दर की गौर लीला के परिकर हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रज में माधुर्य प्रधान औदार्य लीला एवं ब्रज से अभिन्न नवद्वीप में श्रीगौर सुंदर रूप से औदार्य प्रधान माधुर्य लीला प्रकट की व कर रहे हैं। कृष्ण-भक्त में जिस प्रकार कृष्ण के सभी गुण संचारित होते हैं, उसी प्रकार गौर भक्त में भी सभी गौर-गुण संचारित होते हैं। क्योंकि महावदान्य परम-उदार श्रीगौरसुन्दर की लीला का औदार्य (उदारता) गुण ही उनकी लीला की प्रधान विशेषता है, गौर भक्तों में वही औदार्य गुण सर्वत्र देखा जाता है। अत: गौर-गत-प्राण, गौर भक्तों के परम-उदार चरितामृत को पुनः-पुनः आस्वादन करके हम भी उनके आनुगत्य में अपने हृदय की सभी ग्लानि, सभी प्रकार की संकीर्णता व सभी प्रकार की विकलता को दूर करते हुए हिंसा, द्वेष व मात्सर्यादी दोषों से शून्य होकर 'आपनि आचरि धर्म जीवेर शिखाय' इस सुनीति को अवलम्बन करते हुए, श्रीमन् महाप्रभु के मुखारविन्द से निकली शुद्धभक्ति सिद्धान्त वाणी पूरे विश्व में परम-उत्साह के साथ आचार-प्रचार करने के कार्य में समर्थ हो सकेंगे। ऐसा होने से जगत् में परम शान्ति संस्थापित होगी तथा चारों ओर हरिनाम-महामन्त्र की विजय-वैजयन्ती हवा में लहराएगी व जगत् का सम्पूर्ण आकाश मण्डल तथा सभी दिशाएँ कृष्ण-नाम-गान से मुखरित हो उठेंगी। प्रेम के ठाकुर श्रीगौरहरि के श्रीमुख-निःसृत प्रेमरस-सिक्त नाम-माधुर्य, सम्पूर्ण जगत् को प्रेम की बाढ़ में प्लावित कर देगा—'कृष्ण नाम धरे कत बल।'

अन्त में मैं उन सभी के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ राज एवं श्रीमठ के अन्यान्य ग्रन्थ व पत्रिकादि के प्रचार-सेवा-कार्य में प्राण अर्थ-बुद्धि व वाक्य के द्वारा सहायता की है व कर रहे हैं। सहृदय पाठक-पाठिकावृन्द! ग्रन्थ के प्रूफ संशोधनादि कार्य में किसी प्रकार की त्रुटि दिखनेपर उसे कृपापूर्वक अपने गुण से संशोधन करलें, ये ही सविनय प्रार्थना है। शुद्ध-भक्त चरण-रेणु-प्रार्थी,

वैष्णव दासानुदास,

श्रीभक्ति प्रमोद पुरी।

23 भाद्र 1399

9 सितम्बर 1992

प्रस्तुत प्रस्तावना इस ग्रंथ के मूल रूप (बांग्ला भाषा) में प्रकाशित होने पर लिखी गयी थी।

****

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

निवेदन

‘श्रीचैतन्य वाणी' नामक एकमात्र-पारमार्थिक मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से 'श्रीगौरपार्षद व श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत' नामक शीर्षक से जो श्रीगौरपार्षदों तथा श्रीगौड़ीय वैष्णवाचार्यों के पावन संक्षिप्त चरितामृत प्रकाशित हुए हैं वे अभी एकत्रित होकर ग्रन्थ के आकार में प्रकटित हुए हैं। त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति वारिधि परिव्राजक महाराज के निष्कपट उद्यम और हार्दिक सेवा-प्रचेष्टा से गौरपार्षद चरितावली एकत्रित होकर ग्रन्थ के आकार में प्रकाश होने से यह भक्तों के भक्ति से ओत-प्रोत हृदय का उल्लास वर्द्धन करेगी। परतत्त्व श्रीगौरांग महाप्रभु और उनके पार्षदगण प्रकृति से अतीत अप्राकृत वस्तु हैं। वे प्राकृत इन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा जाने जानीवाली वस्तु नहीं हैं। अप्राकृत वस्तु स्वरूपतः स्व-प्रकाश होने के कारण उसकी महिमा केवलमात्र अहैतुकी कृपा द्वारा ही उपलब्ध होती है। जैसे भगवान की महिमा अनन्त है, वैसे ही भक्तों की महिमा भी अनन्त है। अशरणागत का उसमें प्रवेश-अधिकार नहीं है। शरणागत जनगण में भी शरणागति के तारतम्यानुसार (क्रमानुसार) कृष्ण व कृष्ण भक्तों की महिमा के प्रकाश का तारतम्य है।

अनर्थयुक्त बद्ध जीव विष्णु-वैष्णव की अप्राकृत महिमा को स्पर्श भी नहीं कर सकता। महिमा-कीर्तन करने की चेष्टा करने पर भी उसके द्वारा अमहिमा ही कीर्त्तित होती है। तथापि अपनी अयोग्यता को अनुभवकर दीन भाव से कृपा-प्रार्थना करते हुए कीर्तन करने से निःश्रेयसार्थी (निश्चित मंगल-प्रार्थी) साधक के दोष-त्रुटि वैष्णवगण क्षमा कर देते हैं। वैष्णवों की प्रसन्न दृष्टि जीव को अनर्थ से उद्धार करके सभी प्रकार के मंगल प्रदान करती है। ये ठीक है कि अनर्थयुक्त साधक, विष्णु-वैष्णव की महिमा भली भाँति कीर्तन करने में असमर्थ होते हैं परन्तु असमर्थ होने पर भी, विष्णु-वैष्णव के महिमा कीर्तन के अतिरिक्त, उनके अनर्थों को दूरीभूत करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। वैष्णवगण अदोषदर्शी व कृपालु होते हैं—यही पतित जीव का एक मात्र भरोषा है। निष्कपटभाव से उनकी सेवा के लिये यत्न करने पर उनकी कृपा एवं आशीर्वाद से सभी विघ्न (अनर्थ) दूरीभूत हो जाते हैं तथा सर्वाभीष्ट लाभ होता है।

जगत में शुद्ध भक्त अति दुर्लभ हैं, बहुत सौभाग्यफल से ही उनका दर्शन और संग प्राप्त होता है –

गुरु, वैष्णव, भगवान्-तिनेर स्मरण।

तिनेर स्मरणे हय विघ्नविनाशन।

अनायासे हय निज वाञ्छितपूरण॥

-श्रीचैतन्यचरितामृत

वैष्णवेर कृपा याहे सर्वसिद्धि।

- श्रीचैतन्यचरितामृत

वैष्णवेर गुणगान, करिले जीवेर त्राण,

शुनियाछि साधुगुरुमुखे।

- श्रीचैतन्यचरितामृत

श्रीगौरपार्षद गोस्वामीगण प्रतिदिन हज़ारों वैष्णवों के उद्देश्य से दण्डवत् प्रणाम करते थे। वैष्णवगण प्रतिदिन ही स्मरणीय हैं। वैष्णवों की आविर्भाव व तिरोभाव तिथि में उनका स्मरण, उनकी कृपा प्रार्थना तथा उनकी गुण-गाथा कीर्तन के लिये यत्न भजन का एक विशेष अंग है। श्रीमठ से प्रकाशित 'व्रतोत्सव निर्णय पंजिका' में वैष्णवों की आविर्भाव व तिरोभाव तिथि जो परिज्ञात हैं, वह दी जाती हैं। वैष्णवों की आविर्भाव व तिरोभाव तिथि में उनकी कृपा प्रार्थना, उनका स्मरण और उनके महिमा-कीर्तन रूप भक्त्यंग साधना की सहायता के उद्देश्य से यह गौरपार्षद चरितावली लिखने का प्रयास है। भगवद्-इतर प्रवृत्ति किंचित् मात्र भी चित्त से दूर होते न देखकर इस ग्रन्थ के द्वारा मैंने कृपासमुद्र गौरपार्षदों के स्मरण एवं उनके पावन चरित्र का कीर्तन करने का यत्न किया है, इस आशा से कि यदि इससे कृष्णेतर प्रवृत्ति से निष्कृति व श्रीकृष्ण में अनुराग वृद्धि प्राप्त हो। किन्तु अयोग्यतावशतः सम्यक प्रकार से वैष्णवों की महिमा कीर्तित हुई नहीं जिस कारण से अभीष्ट फल प्राप्त नहीं हो रहा। तथापि पतित जीवसमूह के किए वैष्णव-पाद-पद्म ही एक मात्र अवलम्बनीय हैं, जिस कारण से उनकी महिमा के कीर्तन का यत्न त्याग भी नहीं किया जा रहा है।

वैष्णवगण के पवित्र चरित्र-वर्णन में मुझे बहुत कुछ अभाव अनुभव हो रहा है। गौरपार्षदों में अनेक का ही आविर्भाव स्थान, आविर्भाव व तिरोभाव सन्-तारीख, पिता-माता का परिचय, वंशपरिचयादिज्ञात सटीक रूप से जाने नहीं जाने पर सभी के चरित्र वर्णन में उनका उल्लेख करना संभव नहीं हो पाया। इसके अतिरिक्त भाषा-विषय में सम्पूर्ण अधिकार और मधुरता न रहने से पाठकों को इन चरितावली के पाठ से आशानुरूप सुख अनुभव नहीं भी हो सकता।

'श्रीचैतन्य वाणी' पत्रिका के सम्पादक-संघपति परमपूज्यपाद श्रीमद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज ने हमें उक्त भक्त्यंग साधन में उत्साह प्रदान करने के लिए प्रचुर आशीर्वाद वर्षण किया है। वे हमारे शिक्षा गुरु हैं। उन्होंने अपनी परिपूर्ण चेष्टा से गौरपार्षद चरितावली के संशोधन का कार्य सम्पादन किया है तथा कहीं-कहीं पर कुछ नये ज्ञातव्य विषय भी संयोजित किये हैं। जिन्होंने इस भक्ति-ग्रन्थ के मुद्रण में अर्थानुकूल्य किया है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं। श्रीहरि-गुरु-वैष्णव का आशीर्वाद उनके ऊपर वर्षित हो ऐसी मैं प्रार्थना कर रहा हूँ।

पतितपावन, परमाराध्य श्रील गुरुदेव के श्रीपादपद्म, परमगुरुदेव श्रील प्रभुपाद के श्रीपादपद्म, परमपूज्यपाद शिक्षागुरु श्रीमद् भक्ति प्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज के श्रीपादपद्म तथा श्रील प्रभुपाद के अन्यान्य पार्षद, शिक्षा गुरुवर्ग के श्रीपादपद्म में इस निवेदन लेख के माध्यम से अनन्त कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करते हुए उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

निवेदक

वैष्णवदासानुदास

भक्ति बल्लभ तीर्थ

श्रीजगन्नाथ मिश्र

श्रीजगन्नाथ मिश्र का आविर्भाव श्रीहट्ट ज़िला के अन्तर्गत ढाका-दक्षिण गाँव में हुआ था। इनके दादा का नाम श्रीमधु मिश्र* एवं पिता का नाम श्रीउपेन्द्र मिश्र था। कृष्ण लीला में इन्हें श्रीकृष्ण के दादा श्रीपर्जन्य गोप के रूप में निर्देशित किया गया है। श्रीउपेन्द्र मिश्र के सात पुत्रों† में से श्रीजगन्नाथ मिश्र पांचवें पुत्र थे। ब्रज लीला के श्रीनन्द महाराज ही गौर लीला में श्रीजगन्नाथ मिश्र हैं।‡ ये ही अलग-अलग लीलाओं में श्रीकश्यप, श्रीदशरथ, श्रीसुतपा और श्रीवासुदेव नामों से परिचित हैं।§

श्रीजगन्नाथ मिश्र की पदवी ' पुरन्दर' थी। इसीलिए श्रीजगन्नाथ मिश्र 'पुरन्दर' नाम से विख्यात थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीशची देवी था। शची देवी के पिता का नाम श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती था।

जगन्नाथ मिश्रवर—पदवी 'पुरन्दर'।

नन्द-वसुदेव पूर्वे—सद्‌गुणसागर॥

ताँर पत्नी—शची नाम, पतिव्रता सती।

याँर पिता—नीलाम्बर नाम चक्रवर्ती॥

(चै. च. आ. 13/59-60)

सेइ ब्रजेश्वर—इँह जगन्नाथ पिता। सेइ ब्रजेश्वरी—इँह शचीदेवी माता॥

सेइ नन्दसुत—इँह चैतन्य गोसाञि। सेइ बलदेव—इँह नित्यानन्द भाई॥

(चै. च. आ. 17/294-95)

श्रीजगन्नाथ मिश्र और शची देवी को अवलम्बन करके पहले आठ कन्याओं का आविर्भाव हुआ। आविर्भाव के साथ-साथ ही उन सबने तिरोधान लीला की। श्रीजगन्नाथ द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए आराधना करने पर पहले श्रीविश्वरूप का आविर्भाव हआ। श्रीविश्वरूप, श्रीबलदेव के प्रकाश, परव्योमस्थ 'संकर्षण' तत्त्व हैं। इन्होंने बारह वर्ष की आयु में संन्यास लेकर शंकरारण्य नाम प्राप्त किया था। श्रीविश्वरूप 1431 शकाब्द में बम्बई प्रदेश के 'शोलापुर' ज़िले के अन्तर्गत

---

* मधु मिश्र के चार पुत्र—(1) उपेन्द्र (2) रंगद (3) कीर्तिद (4) कीर्तिवास

† उपेन्द्र के सात पुत्र—(1) कंसारि (2) परमानन्द (3) पद्मनाभ (4) सर्वेश्वर (5) जगन्नाथ मिश्र (6) जनार्दन (7) त्रैलोक्य नाथ; उपेन्द्र की पत्नी का नाम कलावती था। (प्रेम विलास 24)

‡ पुरा यशोदा-व्रजराजनन्दौ वृन्दावने प्रेमरसारौ यौ। शची-जगन्नाथ पुरन्दराभिधौ बभूवतुस्तौ न च संशयोऽत्र॥ (गौ. ग. दी. 37)

§ अमू आविशतामेव देवावादिति कश्यपौ। श्रीकौशल्या-दशरथौ तथा श्रीपृश्नितत्पती॥ (गौ. ग. दी. 38)

'पण्ढरपुर' में अप्रकट हुए थे। नित्य-सिद्धत्त्व के कारण श्रीजगन्नाथ मिश्र और शची देवी दोनों के हृदय और देह 'शुद्ध सत्त्वमय' हैं। 'विशुद्ध-सत्त्व' का नाम ही 'वसुदेव' है। वसुदेव अर्थात् विशुद्ध सत्त्व में ही चिद्-विलासी 'वासुदेव' प्रकट होते हैं।

1407 शकाब्द में, फाल्गुनी पूर्णिमा की संन्ध्या के शुभ मुहूर्त में, चन्द्रग्रहण के समय उच्च 'हरि-कृष्ण' ध्वनि की आनन्द-मुखरित अवस्था में, नारीगण की हुलु-ध्वनि तथा देवताओं के वाद्य-नृत्यादि के आनन्दमय जयघोष के मध्य में श्रीगौरांग महाप्रभु जी; श्रीजगन्नाथ मिश्र तथा श्रीशची देवी को पिता-माता के रूप में अंगीकार करते हुए श्रीधाम-मायापुर में आविर्भूत हुए। डाकिनी, शाकिनी, प्रेत इत्यादि अप-देवता पवित्र निम्ब (नीम) वृक्ष के नीचे या उसके आसपास के स्थान में नहीं आ सकते हैं, इसलिए पुत्र का किसी प्रकार से भी अमंगल न हो, यह सोचकर वात्सल्य-परायणा शची माता और नारीगण ने उनका नाम रखा 'निमाई'। संन्यास लेने के पश्चात् निमाई ने 'श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु' नाम धारण किया। वे विश्वम्भर, नवदीपचन्द्र, गौरहरि तथा श्रीगौरांग इत्यादि नामों से भी प्रसिद्ध थे। पुत्र का श्रीमुख-दर्शन करके श्रीशची-जगन्नाथ आनन्द से आत्म-विस्मृत हो गए। परम प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती ने श्रीनिमाई का लग्न-विचारकर बताया कि इनमें चक्रवर्ती सम्राट के समस्त लक्षण हैं तथा साक्षात् नारायणत्त्व व तमाम अलौकिक गुण इस बालक में विद्यमान हैं। बालक निमाई के अलौकिक गुण श्रवण करके श्रीजगन्नाथ मिश्र और मिश्र-भवन स्थित समस्त भक्त आनन्द-सागर में निमज्जित हो गए। निमाई अद्‌भुत बाल्य-लीला के छल से शची माता और श्रीजगन्नाथ मिश्र का आनन्द-वर्धन करने लगे। निमाई क्रंदन करने के छल से सबको 'हरिनाम' कराने लगे। 'गौर-गोपाल' (निमाई) जब चार मास के शिशु थे तब घर की सामग्री सब उथल-पाथल कर देते और माता को देखते ही लेटकर रोने लगते। शची माता हरिनाम-कीर्तन द्वारा उनका रोना बंद कराती व घर की इस प्रकार की अवस्था देखकर आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगतीं कि निमाई तो चार मास का शिशु है, इसके द्वारा तो यह सब सामग्री बिखेरना सम्भव नहीं हैं। हो न हो, कोई दानव शिशु का अनिष्ट करने आया होगा किन्तु शिशु तो 'रक्षा-मंत्र' द्वारा रक्षित है इसलिए वह उसका कुछ अनिष्ट नहीं सका किन्तु क्रोधवश उसने घर की सब सामग्री उथल-पाथल कर दी हैं।

नामकरण संस्कार के समय श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती एवं अन्य विशारद-गण ने इनका नाम रखा 'विश्वम्भर' तथा पतिव्रता नारीगण ने इनका नाम रखा 'निमाई'। बालक की दीर्घ आयु की कामना करते हुए सभी नारीगण ने यमराज के मुख में कड़वी लगने वाली निम्ब (नीम) पर ही उनका निमाई नाम रखा। नामकरण के समय बालक की 'रुचि-परीक्षा' करने के लिए जब श्रीजगन्नाथ मिश्र ने बालक के सामने धान, खील, स्वर्ण-चाँदी तथा श्रीमद् भागवत ग्रन्थ आदि लाकर रखे तो बालक निमाई ने सबको छोड़कर 'श्रीमद् भागवत' को ही स्पर्श किया। यह देखकर सम्बन्धी-जनों के हर्ष की सीमा न रही। तत्त्वज्ञ पण्डित कहने लगे कि विश्वम्भर कुछ समय पश्चात् एक प्रधान वैष्णव बनेंगे एवं विष्णु-भक्ति के प्रभाव से सर्व-शास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य लाभ करेंगे। नारीगण कहने लगी कि निमाई एक बड़े भारी विद्वान् बनेंगे। वास्तव में श्रीमद् भागवत् की सर्वप्राधान्य-प्रामाणिकता का प्रदर्शन करना ही महाप्रभु की इस लीला का गूढ़ रहस्य है।

कुछ बड़े होने पर निमाई घुटनों के बल चल कर माता-पिता तथा सबको आनन्द प्रदान करने लगे। एक दिन बालक निमाई ने आंगन में सर्प रूपधारी 'शेषनाग' को देखकर 'गौर-नारायण' रूप में उसके साथ कुछ समय तक खेलते हुए उस कुण्डली-कृत सर्प के ऊपर शयन करके 'शेषशायी' लीला का प्रदर्शन किया। किन्तु श्रीजगन्नाथ मिश्र आदि भक्त सर्प द्वारा बालक पर विपत्ति की आशंका से भयभीत होकर अत्यन्त कातरभाव से रोने लगे। उनके करुण-क्रन्दन को सुनकर सर्प, बालक निमाई को छोड़कर अन्यत्र चला गया । निमाई के अलौकिक रूप का दर्शन करके श्रीशची-जगन्नाथ निमाई को 'महापुरुष' समझने लगे।

यह जान लेने पर कि उच्च स्वर से हरि-कीर्तन करने से निमाई का रोना बन्द हो जाता है और वह आनन्द से नृत्य करने लगता है तथा धुलि में लोट-पोट करने लगता है, नारीगण प्रात:काल से ही निमाई को घेर कर उच्च स्वर से हरि-कीर्तन करती रहती थीं। परिचित अथवा अपरिचित व्यक्ति भी निमाई के अलौकिक रूप से आकृष्ट होकर उनको आदरपूर्वक मिठाई, केला इत्यादि दिया करते थे। निमाई वह केला, मिठाई आदि लाकर हरि-कीर्तन करनेवाली नारीगण को प्रसाद के रूप में बाँट दिया करते थे।

निमाई अब कुछ और बड़े हो गए, चलने-फिरने लगे, पड़ोसियों के घरों में भी जाने लगे तथा उन लोगों से दूध व अन्नादि ग्रहणकरने लगे। जिस घर में उन्हें दूध-अन्नादि नहीं मिलता था, वे वहाँ की सब वस्तुओं को नष्ट करके भाग आते थे। इस प्रकार बाल-चांचल्य करते हुए वे भक्तों को सुख देते थे।

एक दिन निमाई अपने घर के बाहर खेल रहे थे। बालक के श्रीअंगों पर बहुमूल्य आभूषणों को देखकर दो चोरों के मन में बहुत लोभ हुआ। वह उसे भुलावा देकर कन्धे पर उठाकर दूर ले गए। किन्तु विष्णु-माया से मोहित होकर वह घूमते-घूमते पुनः श्रीजगनाथ मिश्र-भवन में आ पहुँचे। जब चोरों ने यह देखा कि जहाँ से उन्होंने बालक को उठाया था घूम-फिर कर वे फिर उसी स्थान पर आ गए हैं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ व वे निमाई को कंधे से निचे रख डरकर भाग गए। इधर श्रीजगन्नाथ मिश्र व्याकुल होकर निमाई को ढूंढ रहे थे, पुनः निमाई को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनके प्राण लौट आए हों तथा दौड़कर उन्होंने निमाई को गोद में उठा लिया।

एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र ने निमाई को घर से कोई पुस्तक ले आने के लिए आज्ञा दी। जब निमाई पुस्तक लाने के लिए दौड़े तब श्रीशची-जगन्नाथ अद्‌भुत नूपुर ध्वनि सुनकर चकित रह गए। ग्रन्थ देकर जब निमाई खेलने चले गए तो माता-पिता ने घर के भीतर ध्वज, अंकुश, वज्र, पताका इत्यादि अन्कित चरण-चिन्हों का दर्शन किया। वात्सल्य प्रेम की अधिकता के कारण वे निमाई के पद चिन्हों को पहचान नहीं सके। वे मन में विचार करने लगे कि यह उनके 'गृह देवता' अर्थात् 'दामोदर शालग्राम' के ही पद चिन्ह हैं, तो उन्होंने घर में दामोदर भगवान की पूजा एवं भोग-राग आदि सम्पन्न किये।

एक दिन एक बाल-गोपाल उपासक तैर्थिक ब्राह्मण (तीर्थ भ्रमण करनेवाला) श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर पधारे। मिश्र ने आगन्तुक ब्राह्मण की सेवा-पूजा की तथा रसोई बनाने का सब सामान भी उन्हें दिया। रसोई तैयार हो जाने पर तैर्थिक ब्राह्मण जब बाल-गोपाल को मन्त्र से भोग निवेदन करने लगे तब उसी समय निमाई आकर उस भोजन को खाने लगे। यह देखकर ब्राह्मण चीत्कार करने लगे। इस पर श्रीजगन्नाथ मिश्र अत्यन्त दुःखी होकर जब बालक को दंड देने के लिए उद्यत हुए तो तैर्थिक विप्र ने उन्हें रोक दिया। तैर्थिक विप्र की पुनः रसोई करने की इच्छा न होने पर भी श्रीजगन्नाथ मिश्र के अनुरोध पर उन्होंने पुनः रसोई तैयार की। उस समय श्रीमिश्र बालक निमाई को एक पड़ोसी के घर छोड़ आए जिससे वह अब कोई उत्पात न कर सके। किन्तु तैर्थिक ब्राह्मण ने 'बाल-गोपाल' मन्त्र से जैसे ही भोग निवेदन किया उसी समय 'गौर-गोपाल' आकर उस भोग को खाने लगे। ब्राह्मण 'नष्ट हो गया' 'नष्ट हो गया' बोलकर पुन: चिल्लाने लगा। श्रीजगन्नाथ मिश्र द्वारा पुन: मर्माहत होकर पुत्र को शासन करने को उद्यत देखकर तैर्थिक विप्र ने उन्हें पुन: निवारण किया। विप्र ने कहा कि शिशु को तो कोई ज्ञान नहीं है, इसलिए इसका तो कुछ दोष नहीं है। मेरे भाग्य में आज भोजन है ही नहीं। किन्तु तृतीय बार निमाई के बड़े भाई श्रीविश्वरूप की विशेष प्रार्थना से उन्होंने पुनः रन्धन (रसोई) किया। बालक निमाई भी उस समय योग निद्रा में सो रहे थे, इसलिए सभी निश्चिन्त थे। सब लोग जब सो रहे थे, उस समय तैर्थिक विप्र ने 'गोपाल' को भोग निवेदन किया। भोग निवेदन करते ही 'गौर-गोपाल' (निमाई) ने आकर उस भोग को ग्रहणकर लिया। इस बार निमाई

ने तैर्थिक ब्राह्मण को अपने अलौकिक अष्ट-भुज रूप के दर्शन कराए। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म के अतिरिक्त उन्होंने एक हाथ में नवनीत (माखन) धारणकर रखा था, एक हाथ से भक्षण कर रहे थे तथा और दो हाथों से मुरली-वादन कर रहे थे। ब्राह्मण उस अलौकिक मूर्ति के दर्शन करके मूर्च्छित हो गए। श्रीमन्महाप्रभु ने ब्राह्मण से इस रहस्यमयी बात को दूसरों के सामने प्रकट करने के लिए मना किया। तब से वह ब्राह्मण नित्यप्रति अन्य स्थानों से भिक्षा कर लेने पर भी श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर अपने इष्टदेव के दर्शन करने आया करते थे। श्रीमन्महाप्रभु ने तैर्थिक ब्राह्मण से कहा कि तुम मेरे अनेक जन्मों के किंकर हो, गोकुल के 'नन्द-गृह' में भी तुम इसी प्रकार अतिथि हुए थे, वहाँ पर भी तुम्हारे साथ ऐसी ही लीला हुई थी।

श्रीजगन्नाथ मिश्र ने श्रीगौर-गोपाल के विद्या प्रारम्भ संस्कार, कर्ण-वेध संस्कार व चूड़ाकरण संस्कार इत्यादि कार्य समापन किए। विद्या-आरम्भ होने पर निमाई केवल तीन दिनों में ही समस्त वर्णमाला आदि को कण्ठस्थ करते हुए 'कृष्ण' नामाक्षर पढ़ने और लिखने लगे। श्रीगौर-गोपाल कभी-कभी माता-पिता से आकाश के पक्षी, तारे एवं चन्द्रमा आदि को लाकर देने के लिए आग्रह किया करते थे। यह वस्तुएँ उन्हें लाकर न देने से वे अत्यन्त क्रन्दन करने लगते थे। माता-पिता उनका क्रन्दन बन्द कराने के लिए हरि-कीर्तन करते क्योंकि हरि-कीर्तन के अतिरिक्त निमाई का क्रन्दन बन्द कराने के लिए और कोई उपाय नहीं था।

एक दिन पुनः-पुनः हरि-कीर्तन करने पर भी जब पुत्र का क्रन्दन बन्द नहीं हुआ तो माता-पिता ने पुत्र को क्रन्दन करने का कारण पूछा। निमाई ने बताया कि जगदीश और हिरण्य पण्डित के घर एकादशी तिथि के उपलक्ष्य में विष्णु के लिए जो नैवेद्य बनाया गया है, उसे ग्रहणकरने पर ही उनका क्रन्दन बन्द होगा। श्रीजगन्नाथ मिश्र इस असम्भव बात को सुनकर चकित रह गए और उन्होंने अपने मित्र जगदीश, हिरण्य पण्डित के घर जाकर यह समस्त वृत्तान्त कहा। यह सब सुनकर उन्होंने सानन्द विष्णु-नैवेद्य श्रीजगन्नाथ मिश्र के हाथ में दे दिया। श्रीमिश्र ने जब वह नैवेद्य लाकर निमाई को दिया, तब ही उसने क्रंदन बन्द किया।

निमाई की बाल-चपलता के कारण पुरुषगण जगन्नाथ मिश्र से व बालिकागण श्रीशची माता से अभियोग करने लगी। श्रीजगन्नाथ मिश्र जब पुत्र को शासन करने लगते तो पुत्र को शान्त एवं निर्दोष की भांति देख चकित हो जाते। श्रीशची-जगन्नाथ मन-मन में विचार करते कि यह बालक कौन है? नन्द-नन्दन कृष्ण ही क्या गुप्त रूप से हमारे यहाँ अवतीर्ण हुए हैं?

विश्वम्भर (निमाई) के बड़े भाई, श्रीविश्वरूप जन्म से ही विरक्त थे। श्रीअद्वैताचार्य जी की 'टोल' (पाठशाला) में अध्ययन करके उन्होंने ' श्रीकृष्ण-भक्ति' को ही सर्वशास्त्रों का तात्पर्य समझ लिया था। जब माता-पिता उनके विवाह की तैयारी करने लगे तो बारह वर्ष की आयु में ही उन्होंने संन्यास ग्रहणकर लिया तथा 'श्रीशंकरारण्य' नाम प्राप्त किया। श्रीविश्वरूप के संन्यास-ग्रहण के कारण श्रीशची-जगन्नाथ अत्यन्त मर्माहत एवं विरह-विह्वल हो उठे। निमाई भी अध्ययन करके विश्वरूप के भांति संसार की अनित्यता समझकर कहीं संसार त्याग न कर दे—इस भय से श्रीजगन्नाथ मिश्र ने पुत्र की पढाई बन्द कर दी। श्रीजगन्नाथ मिश्र ने विचार किया कि निमाई को विद्वान् बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है; पुत्र मूर्ख ही रहे किन्तु घर पर रहे। पढ़ाई बन्द कर देने से निमाई पुनः चापल्य प्रदर्शन करने लगा।

एक दिन निमाई विष्णु भोग रन्धन करने के पश्चात् फेंके हुए पात्रों के ऊपर जा बैठा। (कहने का तात्पर्य यह है कि तब मिट्टी के बर्तनों में भगवान् विष्णु के लिए भोग-सामग्री बनती थी और जब भोग इत्यादि लग जाता था उसके बाद उन मिट्टी के बर्तनों को फैंक दिया जाता। इस प्रकार कई दिनों के फैंके हुए बर्तनों के टुकड़ों के ढेर पर एक दिन निमाई

जा बैठे।) यह देखकर शची माता अस्थिर होकर पुनः-पुनः पुत्र को वह अपवित्र स्थान छोड़कर आने के लिए कहने लगी। निमाई भगवान् दत्तात्रेय के भांति माता से कहने लगे, "मूर्ख को शुद्ध-अशुद्ध ज्ञान किस प्रकार से होगा? जिन पात्रों में विष्णु-नैवेद्य बनाया गया, वह अपवित्र कैसे हो सकते हैं? विशेषकर, जिस स्थान पर मैं विराजमान हूँ, वह स्थान अपवित्र कैसे हो सकता है? भगवद्-भक्ति रहित कर्म-काण्डात्मक शुचि-अशुचि विचार संसारी लोगों की कल्पना एवं मनो-धर्म मात्र है।"

निमाई द्वारा किसी प्रकार से भी वह अपवित्र स्थान त्याग न करने पर शची माता स्वयं जाकर उन्हें ले आईं। तत्पच्यात् उन्होंने स्वयं भी स्नान किया व पुत्र को भी स्नान कराया। शची माता तथा अन्य-अन्य व्यक्तियों द्वारा निमाई की पढाई के लिए पुनः-पुनः कहने पर श्रीजगन्नाथ मिश्र ने पुनः निमाई को पढ़ने की आज्ञा दे दी।

तदोपरान्त श्रीजगन्नाथ मिश्र ने शुभ समय देख श्रीगौरसुन्दर का उपनयन-संस्कार सम्पन्न करवाया। इस अवसर पर उन्होंने वामन लीला का अनुसरण करते हुए भिक्षा-लीला की। श्रीजगन्नाथ मिश्र ने पुत्र की शिक्षा के लिए उन्हें सांदीपनि मुनि से अभिन्न, अध्यापक-शिरोमणि, श्रीगंगादास पण्डित को अर्पण कर दिया। श्रीगंगादास पण्डित भी उपयुक्त व परम सुन्दर शिष्य पाकर परम आनन्दित हुए। निमाई विद्यार्थियों से न्याय-शास्त्र के कूट तर्कों की जिज्ञासाकर एवं उनसे तर्क-वितर्क करते हुए उनको चकित कर देते थे। निमाई द्वारा प्रतिदिन गंगा-स्नान, यथा विधि विष्णु-पूजन, तुलसी सिंचन (तुलसी को जल देना), प्रसाद-सेवन तथा एकांत में अध्ययन लीला इत्यादि क्रियाओं को देखकर श्रीजगन्नाथ मिश्र को बहुत आनन्द होता था। वात्सल्य-वशत: वह 'श्रीकृष्ण' से पुत्र के मंगल के लिए प्रार्थना करते क्योंकि उन्हें यह भय रहता था कि कहीं उनका यह पुत्र भी पढ़-लिखकर संसार को असार समझकर संसार का त्याग न कर दे।

एक दिन श्रीजगन्नाथ मिश्र ने स्वप्न में श्रीमन्महाप्रभु (निमाई) का अपूर्व संन्यास रूप, भक्तों के साथ संकीर्तन, नृत्य-कीर्तन, क्रन्दन, हास्य इत्यादि देखकर निश्चय किया कि निमाई भी अवश्य ही गृह-परित्याग करेगा। इस पर श्रीशची देवी पति को समझाने लगी कि निमाई जिस प्रकार विद्या-रस में निमग्न है, इससे वह कभी भी घर छोड़कर अन्यत्र नहीं जाएगा। तब भी श्रीजगन्नाथ मिश्र को विश्वास नहीं हुआ। वे श्रीनिमाई की संन्यास-लीला प्रदर्शन के पहले ही अप्रकट हो गए। श्रीदशरथ महाराज के वियोग (भक्त-विरह) में जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र ने विलाप किया था, उसी प्रकार भक्त-वत्सल श्रीगौरसुन्दर ने भी निज भक्त श्रीजगन्नाथ मिश्र के वियोग में अत्यन्त विह्वल होकर बहुत विलाप किया तथा विरह-संतप्त माता को सान्त्वना प्रदान की।

****

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद

श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी 14वीं शताब्दी में आविर्भूत हुए थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले उनकी लीला के पार्षद-गुरु-वर्ग रूपी सेवकों का आविर्भाव हुआ था।

"कृष्ण यदि पृथिवीते करेन अवतार।

प्रथमे करेन गुरुवर्गेर संचार॥

पिता माता गुरु आदि यत मान्यगण।

प्रथमे करेन सबार पृथ्वीवीते जनम॥

माधव-ईश्वरपुरी, शची, जगन्नाथ।

अद्वैत आचार्य प्रकट हैला सेइ साथ॥"

(चै. च. आ. 3/92-94)

अन्य-अन्य गुरु वर्गों के साथ श्रीमाधवेन्द्र पुरी, श्रीईश्वर पुरी, श्रीशची, श्रीजगन्नाथ तथा श्रीअद्वैत आचार्य जी प्रकट हुये थे। पुनः श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के तेरहवें परिच्छेद (52–56) में इस प्रकार लिखा हुआ है—

"कोन वाञ्छा पूरण लागी' ब्रजेन्द्रकुमार।

अवतीर्ण हैते मने करिला विचार॥

आगे अवतारिला येये गुरु-परिवार।

संक्षेपे कहिये, कहा ना याय विस्तार॥

श्रीशची-जगन्नाथ, श्रीमाधवपुरी।

केशव भारती, आर श्रीईश्वरपुरी॥

अद्वैत आचार्य, आर पण्डित श्रीवास।

आचार्यरत्न, विद्यानिधि, ठाकुर हरिदास॥

श्रीहट्ट-निवासी, श्रीउपेन्द्रमिश्र नाम।

वैष्णव, पण्डित, धनी, सद्‌गुण-प्रधान॥"

[अर्थात् न जाने अपनी किस इच्छा को पूर्ण करने के लिए श्रीब्रजेन्द्र कुमार ने अवतार लेने के लिए मन में विचार किया और अपने आने से पहले ही जिन-जिन गुरु वर्ग का प्राकट्य कराया उनका मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ, क्योंकि उनका विस्तार में वर्णन नहीं किया जा सकता। यह परिवार इस प्रकार है-श्रीशची माता, श्रीजगन्नाथ मिश्र, श्रीमाधवेन्द्र पुरी, श्रीकेशव भारती, श्रीईश्वरपुरी, श्रीअद्वैताचार्य,श्रीवास पण्डित, श्रीआचार्य रत्न, श्रीविद्यानिधि, ठाकुर हरिदास तथा हट्ट निवासी श्रीउपेन्द्र मिश्र आदि। ये सभी वैष्णव हैं, पण्डित हैं, धनी हैं तथा सभी सदगुणों से सम्पन्न हैं।]

श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी कलिकाल में श्री, ब्रह्म, रूद्र व सनक—इन चारों भुवन-पावन-वैष्णव सम्प्रदायों में से ब्रह्म-सम्प्रदाय या मध्वाचार्य सम्प्रदाय के अंतर्गत गुरु है। श्रीमध्व-परम्परा की गौड़ीय वैष्णव शाखा श्रीगौर गणोद्देश दीपिका, प्रमेय रत्नावली व श्रीगोपाल गुरु गोस्वामी जी के ग्रन्थ में उद्धरित है। श्रीभक्ति रत्नाकर में भी इसका उल्लेख पाया जाता ह। श्रीगौर गणोद्देश दीपिका में श्रीमध्व-शाखा एक प्रकार वर्णित है—

परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मा जगत् पतिः।

तस्य शिष्यो नारदोऽभूत् व्यासस्तस्याप शिष्यताम्।

शुको व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्तो ज्ञानावबोधनात्।

व्यासाल्लब्ध-कृष्णदीक्षोमध्वाचार्य महायशाः।

तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्य-महाशयः।

तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवद्विजः।

अक्षोभ्यस्तस्य शिष्येऽभूत्तच्छिष्यो जयतीर्थकः।

तस्य शिष्यो ज्ञान-सिन्धु: तस्य शिष्यो महानिधिः।

विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः।

जय धर्म मुनिस्तस्य शिष्यो यद्गणमध्यतः।

श्रीमद्विष्णु पुरी यस्तु भक्तिरत्नावलीकृतिः।

जयधर्मस्य शिष्योऽभूत्ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः।

व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णु संहिताम्।

श्रीमाल्लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यों भक्तिरसाश्रय:।

तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मोऽयं प्रवर्त्तितः।

तस्य शिष्योऽभवत् श्रीमानीश्वराख्य पुरी यतिः।

कलयामास श्रृङ्गारं यः शृङ्गार फलात्मकः।

अद्वैतः कलयामास दास्यसख्ये फले उभे।

ईश्वराख्यपुरीं गौर उररीकृत्य गौरवे।

जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम्॥" (गो. ग.)

श्रीलक्ष्मीपति जी के शिष्य श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी, श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी के शिष्य श्रीईश्वर पुरी पाद जी, श्रीअद्वैत आचार्य, श्रीपरमानन्द पुरी (त्रिहुत देशीय विप्र), श्रीब्रह्मानन्द पुरी, श्रीरंग पुरी, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि तथा

श्रीरघुपति उपाध्याय इत्यादि। (श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी के गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी, मतान्तर में श्रीलक्ष्मीपति जी, प्रेमविलास के मतानुसार श्रीईश्वर पुरी हैं) "श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद जी, श्रीमध्वाचार्य सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध संन्यासी थे। इन्हीं के अनुशिष्य श्रीचैतन्य देव जी हैं। श्रीमध्व सम्प्रदाय में इनसे पूर्व प्रेम-भक्ति के कोई लक्षण नहीं थे। इनके द्वारा कृत **'अयि दीनदयार्द्रनाथ'** श्लोक में महाप्रभु जी का शिक्षित तत्त्व बीज रूप में था।"

-श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

"ये ही श्रीमध्व गौड़ीय सम्प्रदाय द्वारा सेवित भक्ति कल्पतरु के प्रथम अंकुर हैं। इनसे पूर्व श्रीमध्व सम्प्रदाय में श्रृंगार रसात्मिका भक्ति का कोई भी लक्षण नहीं देखा जाता था।"

- श्रीभक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

तीर्थ भ्रमण के समय पश्चिम भारत में श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद जी के साथ श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु का मिलन हुआ था। मिलन होने के साथ-साथ ही दोनों प्रेम में मूर्छित हो गए थे। श्रीचैतन्य भागवत के नवम् अध्याय में वर्णित है—

"एइमत नित्यानन्द प्रभुर भ्रमण। दैवे माधवेन्द्र सह हैल दरशन॥

माधवेन्द्रपुरी प्रेममय-कलेवर। प्रेममय यत सब सङ्गे अनुचर॥

कृष्णरस बिनु आर नाहिक आहार। माधवेन्द्रपुरी देहे कृष्णेर विहार।

याँ'र शिष्य प्रभु आचार्यवर गोसाञि। कि कहिव आर ताँ'र प्रेमेर बड़ाइ॥

माधव पुरीरे देखिलेन नित्यानन्द। ततक्षणे प्रेमे मूर्च्छा हइला निष्पन्द।

नित्यानन्दे देखि' मात्र श्रीमाधवपुरी। पड़िला मूर्च्छित हइ' आपना पासरि'॥

भक्तिरसे माधवेन्द्र आदि सूत्रधार। गौरचन्द्र इहा कहियाछेन बारेबार॥"

(चै.भा.आ. 9/154-160)

[अर्थात् इस प्रकार भ्रमण करते-करते श्रीनित्यानन्द को दैवयोग से श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी के दर्शन हुये। माधवेन्द्र पुरी जी का प्रेममय कलेवर था और उनके संगी-साथी भी प्रेम में मत्त थे। कृष्ण रसास्वादन को छोड़कर उनका और कुछ भी आहार नहीं था। ऐसा अनुभव होता था कि जैसे माधवेन्द्र पुरी जी का दिव्य कलेवर कृष्ण की विहार स्थली हो। और बात तो छोड़ो जिनके शिष्य स्वयं अद्वैतआचार्य प्रभु जी हों, उनके प्रेम की बड़ाई इससे अधिक क्या हो सकती है।

जैसे ही नित्यानन्द जी ने माधवेन्द्र पुरी जी को देखा, उसी क्षण वे प्रेम में मूर्छित हो गये। उधर जब माधवेन्द्र जी ने नित्यानन्द जी को देखा तो वह भी अपने आप को भूलकर उसी क्षण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। **श्रीमाधवेन्द्र पुरी भक्तिरस के आदि सूत्रधार हैं-ऐसा श्रीगौरचन्द्र जी ने पुनः-पुनः कहा है।]**

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी कहने लगे वैसे तो मैंने अनेकों तीर्थों का दर्शन किया है परन्तु आज माधवेन्द्र पुरीपाद जी का दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आज ही मुझे तीर्थ दर्शन का सम्पूर्ण फल प्राप्त हुआ है। इस प्रकार का प्रेम विकार मैंने कभी नहीं देखा, ये तो बादलों को देखकर ही अचेतन हो जाते हैं। श्रील माधवेन्द्र पुरी जी ने नित्यानन्द प्रभु को गोद में लेकर प्रेमाश्रुओं से भिगो दिया तथा नित्यानन्द जी की महिमा वर्णन में प्रमत्त हो उठे—

"माधवेन्द्र पुरी नित्यानन्दे करि' कोले।

उत्तर ना स्फुरे कण्ठरुद्ध प्रेमजले॥

हेन प्रीत हइलेन माधवेन्द्र पुरी।

वक्ष हइते नित्यानन्दे बाहिर ना करि॥"

"जानिलुँ कृष्णेर कृपा आछे मोर प्रति।

नित्यानन्द हेन बन्धु पाइनु संहति॥

नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे।

भक्त हइलेओ से कृष्णेर प्रिय नहे॥"

(चै.भा.आ. 9/268-269,283,286)

[अर्थात् माधवेन्द्र पुरी जी ने नित्यानन्द को अपनी छाती से लगा लिया। छाती से लगाकर वे उन्हें कुछ कहना चाहते थे परन्तु प्रेम के कारण गला रुँध गया था। माधवेन्द्र पुरी जी के हृदय में इतना प्रेम उमड़ आया कि वे नित्यानन्द जी को अपनी छाती से अलग न कर सके और कहने लगे कि मैं समझ गया हूँ कि श्रीकृष्ण की मेरे प्रति कृपा है, इसीलिये तो उन्होंने नित्यानन्द जैसे परम बन्धु से मुझे मिला दिया। नित्यानन्द जी के प्रति यदि किसी के हृदय में तिल मात्र भी द्वेष रहेगा, वह भक्त होने पर भी कृष्ण को प्यारा नहीं हो सकता।]

श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी की महिमा एवं नित्यानन्द प्रभु जी, माधवेन्द्र पुरीपाद जी के प्रति जो गुरुबुद्धि करते थे, वह स्पष्ट रूप से श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में वर्णित हुई है—

"माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय।

याँर नामस्मरणे सकल सिद्धि हय॥

श्रीईश्वरपुरी व रंगपुरी आदि यत।

माधवेर शिष्य सबे भक्तिरसे मत्त॥

गौड़ उत्कलादि देशे माधवेर गण।

सबे कृष्णभक्त, प्रेमभक्ति परायण॥"

(भक्ति रत्नाकर 5/2272-74)

[अर्थात् माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति के रसस्वरूप हैं जिनके नाम स्मरण करने मात्र से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। श्रीईश्वर पुरी व रंगपुरी आदि जो माधवेन्द्र पुरी के शिष्य हैं, सभी भक्तिरस में मत्त हैं। गौड़देश तथा उत्कल आदि देशों में जितने भी माधवेन्द्र जी के गण हैं सभी कृष्ण भक्त हैं और प्रेम भक्ति परायण हैं।]

"कथोदिन परे माधवेन्द्र सहिते।

देखा हैल प्रतीची तीर्थेर समीपेते॥

ये प्रेम प्रकाश हइल दोहार मिलने।

ताहा के वर्णिवे? ये देखिल सेइ जाने॥

नित्यानन्दे बन्धु ज्ञान करे माधवेन्द्र।

माधवेन्द्र गुरुबुद्धि करे नित्यानन्द॥

जानिलुँ कृष्णेर प्रेम आछे मोर प्रति।

नित्यानन्द हेन बन्धो पाइलुं सम्प्रति॥

माधवेन्द्र प्रति नित्यानन्द महाशय।

गुरुबुद्धि व्यतिरिक्त आर ना करय॥"

(भक्ति रत्नाकर 5/2330 -34)

[अर्थात् फिर कितने दिनों के पश्चात् प्रतीची तीर्थ के समीप माधवेन्द्र पुरी और नित्यानन्द जी परस्पर मिले, दोनों के मिलने पर जिस प्रेम का प्रकाश हुआ उसे कौन वर्णन कर सकेगा? इसे तो वही जानता है जिसने वह दृश्य देखा है। माधवेन्द्र जी नित्यानन्द जी को अपना बन्धु समझते थे और नित्यानन्द जी माधवेन्द्र जी के प्रति गुरु बुद्धि रखते थे।]

काटोया में संन्यास ग्रहणकरने के बाद श्रीमन् महाप्रभु जी शान्तिपुर में श्रीअद्वैताचार्य के घर पर आए थे। वहाँ से श्रीपुरुषोत्तम धाम की यात्रा के समय जब वे छत्रभोग के रास्ते से गंगा के किनारे- किनारे आटिसार, पानिहाटी, वराहनगर होते हुये उड़ीसा के वृद्धमन्त्रेश्वर की सीमा पर पहुँचे, उस समय उनके साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द और श्रीदामोदर थे। उसके बाद श्रीमन् महाप्रभु जी जब बालेश्वर- रेमुणा में पधारे तो वहाँ क्षीरचोर-गोपीनाथ जी के दर्शन करके प्रेमानन्द में डूब गए तथा उन्होंने श्रीईश्वर पुरीपाद जी से श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के सम्बन्ध में जो सुना था व श्रीगोपीनाथ जी का नाम क्षीरचोरा श्रीगोपीनाथ क्यों हुआ, उसे भक्तों के सामने वर्णन करने लगे—

श्रीमन्महाप्रभु जी कहने लगे-कृष्ण प्रेम में उन्मत्त व विभावित चित्त वाले श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद एक दिन श्रीगिरिराज गोवर्धन जी की परिक्रमा करके व श्रीगोविन्द कुण्ड में स्नान करके कुण्ड के नज़दीक ही एक वृक्ष के नीचे बैठ कर सन्ध्या कर रहे थे कि तभी एक बालक दूध का बर्तन लेकर आया व मुस्कराते हुए श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी को कहने लगा—"तुम क्या चिन्ता कर रहे हो, माँग कर क्यों नहीं खाते, मैं ये दूध लाया हूँ, पी लो।"

बालक का अद्भुत सौन्दर्य दर्शन कर माधवेन्द्र पुरीपाद चमत्कृत हो उठे, बालक के मधुर वाक्यों से वे अपनी भूख-प्यास सब भूल गए तथा बालक को पूछने लगे—

"तुम कौन हो?

कहाँ रहते हो?

मैं भूखा हूँ, ये तुम्हें कैसे पता लगा?"

इसके उत्तर में गोपबालक ने कहा- मैं गोप हूँ, इसी गाँव में ही रहता हूँ, मेरे गाँव में कोई भूखा नहीं रहता, कोई माँग कर खा लेता है, जो माँग कर नहीं खाता उसे '**मैं**' देता हूँ। गाँव की कुछ स्त्रियाँ यहाँ पानी लेने के लिए आयी थीं, उन्होंने तुमको अनाहारी देखकर, ये दूध देकर मुझे भेजा है। मेरा गो-दोहन का समय हो गया है, इसलिए मुझे जल्दी ही जाना होगा। मैं बाद में आकर दूध का बर्तन ले जाऊँगा। इतना कह कर गोप बालक चला गया। उसे अन्तर्ध्यान हुये देख माधवेन्द्र पुरीपाद विस्मित हो गए............... दूध पीकर, दूध के बर्तन को धोकर रख दिया माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने और इन्तज़ार करने लगे उस गोप बालक का, कि कब वह आएगा। .... वृक्ष के नीचे बैठ कर हरिनाम कर रहे थे, रात्रि शेष हुई, तभी ज़रा सी तन्द्रा आयी माधवेन्द्र पुरीपाद जी को, और वे बाह्य- ज्ञान-शून्य हो गए। ठीक इसी समय पर उन्होंने एक स्वप्न देखा कि वही बालक आकर उपस्थित हुआ और माधवेन्द्र पुरीपाद जी का हाथ पकड़ कर उन्हें एक कुंज के अन्दर ले गया और कहने लगा—"इस कुंज में मैं रहता हूँ, शीत, ग्रीष्म व वर्षा में मैं महादुःख पा रहा हूँ। गाँव के लोगों को लाकर मेरा यहाँ से उद्धार करो, पर्वत के ऊपर एक मठ स्थापन करके मुझे वहाँ स्थापित करो तथा बहुत मात्रा में शीतल जल लेकर मेरे अंगों का मार्जन करवाओ। मैं बहुत दिनों से आपका इन्तज़ार कर रहा था कि कब तुम आओगे और मेरी सेवा करोगे।

"बहुदिन तोमार पथ करि निरीक्षण।

कबे आसी' माधव आमा करिबे सेवन॥"

(चै. च. म. 4/39)

मैं तुम्हारी प्रेम सेवा को अंगीकार करूँगा एवं दर्शन देकर सारे संसार का उद्धार करूंगा। मेरा नाम है '**गोवर्धनधारी गोपाल**', श्रीकृष्ण के प्रपोत्र व अनिरुद्ध के पुत्र वज्र ने मुझे स्थापित किया था। मेरे सेवक, म्लेच्छों के भय से मुझे इस कुंज में रख कर भाग गए थे, तभी से मैं यहाँ हूँ। आप आए हैं, बहुत अच्छा हुआ, आप मेरा उद्धार करो।" श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी का स्वप्न भंग हुआ—'**श्रीकृष्ण गोप-बालक के रूप में आए थे, हाय ! मैं उन्हें पहचान न सका**'—ऐसा कह कर प्रेमाविष्ट होकर रोने लगे माधवेन्द्र पुरीपाद जी। थोड़ी देर बाद श्रीगोपाल जी की आज्ञा पालन करने के लिए उन्होंने मन को स्थिर किया और प्रातः स्नान करने के पश्चात् माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने गाँव के सब लोगों को इकट्ठा किया और कहा—"**देखो, आपके गाँव के ठाकुर गोवर्धनधारी गोपाल यहाँ कुंज के बीच में हैं, आप लोग कुल्हाड़ी व फरसा इत्यादि लेकर आओ, कुंज काट कर उन्हें बाहर निकालना होगा।"........**गाँव के लोगों ने परमोल्लास के साथ कुंज को काटा तो देखा घास-मिट्टी से ढका **महाभारी ठाकुर!...** महा-महा बलिष्ठ लोगों ने ठाकुर को उठाया और पर्वत के ऊपर ले जाकर उन्हें पत्थर के सिंहासन के ऊपर स्थापन किया। श्रीमूर्ति के अभिषेक के लिए गाँव के ब्राह्मण गोविन्द कुण्ड के जल को छान कर उसे नए-नए सौ घड़ों में भर कर उपस्थित हुए। श्रीमूर्ति प्रकट हुई है तथा उनकी महाभिषेक पूजा होगी—ये सुनकर चारों ओर से आनन्द-कोलाहल उमड़ पड़ा। विचित्र-विचित्र प्रकार के वाद्यादि बजने लगे, नृत्य-गीत होने लगे। गाँव में जितना भी दही, दूध, घी इत्यादि था, सब लाया गया। मिठाई आदि भोग सामग्री एवं नाना प्रकार के उपहारों व पूजा के उपकरणों से सारा पर्वत भर गया। स्वयं श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने महाभिषेक का कार्य सम्पन्न किया।पहले उन्होंने सम्मार्जन विधि के द्वारा अमंगला दूर किया* तथा बाद में काफी सारे तेल के द्वारा श्रीअंगों को चिकना करके पंचगव्य** व पंचामृत*** के द्वारा स्नान कराया।

"ततः शंख भूतेनैव क्षीरेण स्नापयेत् क्रमात्।

दधा घृतेन मधुना खण्डेन च पृथक्-पृथक्॥" (ह. भ. वि. पष्ठ विभाग)

इसके बाद सौ घोड़ों के द्वारा महास्नान**** कराया गया। महास्नान के बाद तेल के द्वारा श्रीअंगों को चिकना करके पुनः शंख-गन्धोदक***** से स्नान करवाया गया।

महास्न्नान के बाद श्रीअंग मार्जन करते हुए श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने उन्हें वस्त्र पहनाए एवं उनके श्रीअंगों में चन्दन, तुलसी व पुष्पमाला अर्पित की। इसके बाद द्वापर युग में श्रीकृष्ण जी के परामर्शानुसार गोपों ने जिस प्रकार गिरिराज गोवर्धन जी का अन्नकूट उत्सव किया था, उसी प्रकार श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने कलियुग में गोवर्धनधारी गोपाल जी का अन्नकूट उत्सव किया।

उत्सव में 10 ब्राह्मण अन्न बनाने में लगे, पाँच ब्राह्मणों ने व्यंजन तथा 5-7 ब्राह्मणों ने ढेर सारी रोटियाँ बनाई। सभी का परिमाण इतना अधिक था कि सभी सामग्रियों को जब भोग के लिए सजाया गया तो वे पर्वताकार रूप में सुशोभित होने लगी। इसके अतिरिक्त दूध, दही, मट्ठा, शिखरिणी*******, खीर, मक्खन तथा मलाई इत्यादि को बहुत से मिट्टी के बर्तनों में सजाकर रखा गया।

---

* अमंगला के दूरीकरण के लिए इसमें यवचूर्ण, गो-धूमचूर्ण, लोध्रुचूर्ण (श्वेत वर्ण के वृक्ष का चूर्ण) कुमकुम् चूर्ण, कलाई व पिष्ट चूर्णादि व्यवहार होता है। उषीरादि द्वारा या गाय की पूंछ के बालों से बनाई कूंची के द्वारा भी अमंगला दूरीकरण की विधि है।

** पंचगव्य-दूध, दही, घी, गोमूत्र व गोबर।

*** पंचामृत-दूध, दही, घी, मधु व चीनी।

**** महास्थान में घी व स्न्नान जल -- प्रत्येक का परिमाण दो हज़ार पल होता है। चार तोला का पल होने से महास्नान में ढाई मन जल लगता है।

***** शंख गन्धोदक -- शंख में रखा जल, पुष्प चन्दन की सुगन्ध वाला

जल परिमाणे--

"स्न्नाने पलशतं देयं अभ्यंगे पंचविंशतिः।

पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नान प्रकीर्तितम्॥"

(ह. भ. वि. पष्ठ वि.)

****** शिखरिणी: दूध, दही, चीनी, कर्पूर तथा काली मिर्च-इन पाँच द्रव्यों का मिश्र।

इस प्रकार जब अन्नकूट सजा दिया गया तो श्रील माधवेन्द्र पुरी जी ने तमाम भोग सामग्रियाँ गोपाल जी को निवेदन की। तमाम भोग सामग्रियों के साथ उन्होंने पानी से भरे घड़े भी समर्पण किये। बहुत दिनों से भूखे थे गोपाल जी, अत: उन्होंने सारा का सारा ग्रहणकर लिया, परन्तु गोपाल जी के स्पर्श से वह फिर परिपूर्ण हो गया-इसे केवल माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने ही अनुभव किया।

बहु दिनेर क्षुधाय गोपाल खाइल सकल।

यद्यपि गोपाल सब अन्य-व्यञ्जन खाइल।

ताँर हस्त स्पर्शे पुनः तेमनि हइल॥

(चै. च. म. 4/76-77)

[अर्थात बहुत दिनों के भूखे गोपाल जी ने सारा खा लिया। हाँ, यद्यपि गोपाल जी ने सभी अन्न-व्यंजन खा लिये परन्तु फिर उनके श्रीहस्तों के स्पर्श से वे पुनः पूर्ववत् हो गये।]

इसके बाद गोपाल जी को आचमन देकर उन्हें ताम्बूल प्रदान किया गया। उनकी आरती की गयी एवं नयी चारपाई मंगाकर उनके शयन की व्यवस्था की गयी। माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने अन्नकूट महोत्सव में पहले ब्राह्मण – ब्राह्मणियों को और उसके बाद आबाल-वृद्ध वनिता सभी ग्रामवासियों को प्रसाद दिया। गोपाल जी प्रकट हुए हैं-जब इस घटना का चारों ओर प्रचार होने लगा तो एक-एक दिन एक-एक गाँव के लोग वहाँ आकर उत्सव करने लगे।

"व्रजवासी लोकेर कृष्णे सहज-प्रीति।

गोपालेर सहज-प्रीति ब्रजवासी प्रति॥" (चै.च.म.4/95)

[अर्थात व्रजवासियों की सहज प्रीति है कृष्ण के प्रति तथा गोपाल जी की भी सहज प्रीति है ब्रजवासियों के प्रति।]

धीरे-धीरे बड़े-बड़े धनी क्षत्रिय लोगों ने गोपाल जी के लिए एक मन्दिर बनवा दिया तथा गोपाल जी की दस हज़ार गायें हो गयीं।........ दो वर्ष तक इसी प्रकार गोपाल जी की सेवा चलती रही। इसके बाद एक दिन श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी स्वप्न में देखते हैं कि गोपाल जी उन्हें कह रहे हैं कि उनके अंगों की गर्मी अभी भी नहीं गयी, मलयज चन्दन के अंग पर लेपन द्वारा ये गर्मी दूर हो जाएगी। प्रभु की आज्ञा पाकर श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी प्रेमाविष्ट हो गए तथा गोपाल जी की सेवा में उपयुक्त सेवक नियुक्त करके मलयज** चन्दन लेने के लिए पूर्व देश की ओर चल दिये। इसी समय वे श्रीअद्वैत आचार्य जी के घर शान्तिपुर (गौड़देश) में आये थे तथा यहाँ उन्हें दीक्षा देकर रेमुणा पहुँचे।

रेमुणा में गोपीनाथ जी का अपूर्व रूप दर्शन करके वे प्रेम-विह्वल हो उठे। काफी समय तक उन्होंने वहाँ नृत्य-कीर्तन किया। गोपीनाथ जी के भोग की परिपाटी को देखकर वे बड़े सन्तुष्ट हुए। यहाँ पर क्या-क्या भोग लगता है?— जब उन्होंने एक ब्राह्मण से इस प्रकार का प्रश्न किया तो उत्तर में ब्राह्मण ने कहा—

** मलयज-मलय देशोत्पन्न। इसे चन्दन गिरि कहते है। यह मलय देश या मालाबार देश के पश्चिम घाट, गिरिपुंज के दक्षिण में अवस्तिथ है। नीलगिरि को कोई-कोई मलय पर्वत भी कहते हैं। वैसे मलयज शब्द चन्दन को भी इंगित करता है।

"सन्ध्याय भोग लगे क्षीर—'अमृतकेलि' नाम।

द्वादश मृत्पात्रे भरि, 'अमृत समान'।

'गोपीनाथेर क्षीर बलि प्रसिद्ध नाम यार॥

पृथ्वीते एच्छे भोग काँहा नाहि आर॥"

(चै.च.म. 4/117-118)

[अर्थात संन्ध्या के समय क्षीर (खीर) का भोग लगता। खीर का नाम है 'अमृतकेलि'। मिट्टी के 12 बर्तनों में भरकर इस अमृत समान खीर का भोग लगता है। यह खीर गोपीनाथ जी की खीर के नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा भोग पृथ्वी पर और कहीं नहीं मिलता है।]

ठीक उसी समय 'अमृतकेलि' खीर का भोग ठाकुर जी को निवेदन किया गया। तब श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने मन-मन में विचार किया कि बिना माँगे ही यदि इस खीर का प्रसाद मिल जाता तो मैं उसका आस्वादन करता और ठीक उसी प्रकार की खीर का भोग अपने गोपाल जी को लगाता...... किन्तु साथ-साथ उन्होंने अपने आपको धिक्कार दिया कि मेरी खीर खाने की इच्छा हुई?

ठाकुर जी की आरती दर्शन करके और उन्हें प्रणाम करके वे मन्दिर से बाहर चले आए और जन शून्य हाट में बैठ कर हरिनाम करने लगे। माधवेन्द्र पुरीपाद जी अयाचक वृत्ति के थे। उन्हें भूख-प्यास का कोई बोध ही न था। वे हमेशा ही प्रेमामृत पान करके तृप्त रहते थे। इधर पुजारी अपने कृत्य का समापन करके जब सो गया तो स्वप्न में ठाकुर जी उससे कहने लगे—

"उठह पुजारी, कर द्वार विमोचन।

क्षीर एक राखियाछि संन्यासि कारण॥

धड़ार अंचले ढाका क्षीर एक हय।

तोमरा ना जानिला ताहा आमार मायाय।

माधव पुरी संन्यासी आछे हाटेते वसिञा।

ताहाके त, एइ क्षीर शीघ्र देह लैञा॥"

(चै. च. म. 04/127-129)

[अर्थात् पुजारी उठो, मन्दिर के दरवाजे खोलो। मैंने एक संन्यासी के लिये एक पात्र खीर रखी हुई है जो कि मेरे आंचल के कपड़े से ढकी हुई है। मेरी माया के कारण तुम उसे नहीं जान पाये। माधवेन्द्र पुरी संन्यासी हाट में बैठा हुआ है। शीघ्र यह खीर ले जाकर उसको दे दो।]

स्वप्न देखकर पुजारी आश्चर्यान्वित हो उठे। स्वप्न टूटने पर स्नान करने के पश्चात् मन्दिर के दरवाजे खोले तो देखा ठाकुर जी के आंचल के वस्त्र के नीचे एक खीर का पात्र रखा है। उस खीर के पात्र को लेकर पुजारी हाट में घूम-घूम कर माधव पुरी जी को ढूँढते हुए इस प्रकार पुकारने लगा—

"क्षीर लह एइ, यांर नाम 'माधव पुरी'।

तोमा लागि, गोपीनाथ क्षीर कैल चुरी॥

क्षीर लञा सुखे तुमि करह भक्षणे।

तोमा सम भाग्यवान् नाहि त्रिभुवने॥" (चै. च. म. 4/133-134)

[अर्थात जिसका नाम माधवपुरी है, वह यह क्षीर ले ले, आपके लिए ही गोपीनाथ जी ने यह क्षीर चोरी की है। यह क्षीर लेकर आप सुख से इसे खाओ। आपके समान भाग्यवान तो त्रिभुवन में भी कोई नहीं है।]

ऐसा सुनकर माधवेन्द्र पुरी जी ने अपना परिचय दिया, पुजारी ने उन्हें खीर दी तथा दण्डवत् प्रणाम किया। .... पुजारी जी ने अपने स्वप्न में हुए आदेश की बात माधवेन्द्र पुरीपाद जी को कही .... पुजारी की बात सुनकर

माधवेन्द्र पुरी जी प्रेमाविष्ट हो गए। उन्होंने प्रेमोत्फुल्ल हृदय से उस खीर प्रसाद का सम्मान किया और खीर के बर्तन को धोकर व उसके टुकड़े-टुकड़े करके उसे अपने बहिर्वास* में बाँध लिया। वे प्रतिदिन उस मिट्टी के टुकड़े को खाते और प्रेमाविष्ट हो उठते। बैठे-बैठे माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने सोचा कि प्रात:काल होने से ही लोगों की आपस में बातचीत होगी और यहाँ पर लोगों की भीड़ हो जाएगी। प्रतिष्ठा के भय से रात्रि समाप्त होते ही श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने उसी स्थान से गोपीनाथ जी को दण्डवत् प्रणाम करके नीलाचल की ओर प्रस्थान किया।

नीलाचल में पहुँच कर जगन्नाथ जी के दर्शन करके प्रेम में विह्वल हो गये, श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद। श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के पुरी में पहुँचने के पहले ही उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी और अगणित लोग आकर उन पर श्रद्धा भक्ति करने लगे।

प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित।

जे ना वाञ्छे, तार हय विधाता निर्मित।

प्रतिष्ठार भये पुरी रहे पलाइया।

कृष्ण प्रेमे प्रतिष्ठा चले सङ्गे गड़ाइया॥ (चै. च. म. 4/146-147)

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी प्रतिष्ठा के भय से वहाँ से भाग जाना चाहते थे, परन्तु चन्दन लेना होगा-इस सेवा के बन्धन के कारण वे वहीं रुक गये। उन्होंने श्रीजगन्नाथ जी के सेवकों को तथा भक्त-महन्तों को गोपाल जी का सारा वृतान्त सुनाया और मलयज चन्दन इकट्ठा करके देने की प्रार्थना की। उनमें से जिनका राज-पुरुषों के साथ सम्बन्ध था, उनके माध्यम से उन्होंने मलयज चन्दन और कर्पूर इकट्ठा कर लिया। चन्दन को ढोकर ले जाने के लिये भक्तों ने एक ब्राह्मण तथा अन्य एक सेवक को भी माधवेन्द्र पुरीपाद जी के साथ में दे दिया। रास्ते में उनको कोई भी असुविधा न हो, उसके लिये घाटी के शुल्क को छुड़ाने के लिये राज सरकार का अनुमति पत्र भी दे दिया। पुरीपाद जी चन्दन लेकर लौटने वाले मार्ग से दोबारा रेमुणा में आकर पहुँचे। श्रीगोपीनाथ जी के श्रीविग्रह के आगे बहुत समय तक

---

* बहिर्वास-संन्यासियों द्वारा पहना जाने वाला वस्त्र।

नृत्य कीर्तन करते हुए प्रेमाविष्ट रहे एवं पुजारी द्वारा प्रदत्त खीर प्रसाद ग्रहण किया। उस रात उन्होंने वहीं मन्दिर में विश्राम किया। रात में दोबारा गोपाल जी का स्वप्नादेश हुआ –

"गोपाल आसिया कहे-शुनह माधव।

कर्पूर-चन्दन आमि पाइलाम सब॥

कर्पूर सहित घषि, एसब चन्दन।

गोपीनाथेर अङ्गे सब करह लेपन॥

गोपीनाथ आमार से एकइ अङ्ग हय।

इँहाके चन्दन दिले, आमार ताप-क्षय॥

द्विधा ना भाविह, ना करिह किछु मने।

विश्वास करि' चन्दन देह आमार वचने॥"

(चै. च. म. 4/158-161)

श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी ने स्वप्नादेश पाकर गोपीनाथ जी के सभी सेवकों को बुलाया एवं गोपाल जी के स्वप्नादेश की बात बतायी। गर्मी के समय में गोपीनाथ जी चन्दन-लेप करवाएँगे, सुनकर गोपीनाथ जी के सेवकों को बहुत आनन्द हुआ। श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने अपने साथ आये दोनों व्यक्तियों को चन्दन घिसने के लिए लगाया एवं उनके अतिरिक्त और दो सेवकों को भी नियोजित किया।

जब तक चन्दन खत्म नहीं हुआ (गर्मी के समय में) तब तक गोपीनाथ जी के श्रीअंग में प्रतिदिन लेपन होता रहा। ग्रीष्मकाल की समाप्ति पर चातुर्मास्य आने से श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी ने पुरी में जाकर व्रत का पालन किया।

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी का अलौकिक प्रेम-पराकाष्ठा रूप आदर्श यहाँ पर प्रदर्शित हुआ है।

श्रील प्रभुपाद जी ने इस प्रसंग में लिखा है –

"कृष्ण-विरह या चिद्-विप्रलम्भ ही जीव का एकमात्र साधन है। सांसारिक विरह से उत्पन्न वैराग्य संसार में ही आसक्ति कराता है; जबकि कृष्ण-विरह से उत्पन्न होने वाला वैराग्य कृष्णेन्द्रिय प्रीति-वान्छा का श्रेष्ठ निदर्शन है। यहाँ पर मूल महाजन श्रीपाद माधवेन्द्र पुरीपाद जी की अपूर्व कृष्णेन्द्रिय प्रीति-वान्छा, कृष्ण-सेवा की प्राप्ति के इच्छुक जीवों का एकमात्र आदर्श है व विशेष रूप से ग्रहणीय है।-इसी शिक्षा को श्रीमन् महाप्रभु जी ने व उनके अन्तरंग भक्तों ने आचरण करके दिखाया।"

परम विरक्त व सर्वत्र उदासीन श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी का गोपाल जी की सेवा के लिए इस प्रकार का आग्रह कि एक तो वे अनेक कष्ट पूर्ण सैकड़ों मील के रास्ते को पैदल चल कर आए और फिर मलयज चन्दन लेकर इतना लम्बा रास्ता फिर तय करके वापस जाने का आग्रह-इसे देखकर ही गोपाल जी को दया आ गयी।

"एइ तार गाढ़ प्रेमा लोके देखाइते।

गोपाल ताँरे आज्ञा दिल चन्दन आनिते॥

बहु परिश्रमे चन्दन रेमुणा आनिल।

आनन्द बाड़िल मने-दुःख ना गणिल॥

परीक्षा करिते गोपाल कैल आज्ञा दान।

परीक्षा करिया शेष हैल दयावान्॥"

(चै. च. म. 4/187-189)

श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी ने मथुरा के सानोड़िया ब्राह्मण* पर कृपा करके प्रेम-प्रदान की लीला की थी। वैष्णव जानकर उसके हाथ से भिक्षा ग्रहण की। इस के द्वारा वे दैववर्ण-आश्रम की मर्यादा संस्थापन कर गये।

श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी के कृपा प्राप्त जान कर श्रीमन् महाप्रभु जी ने भी काशी से प्रयाग जाते समय मथुरा में पहुँच कर इसी सानोड़िया ब्राह्मण के यहाँ भिक्षा (भोजन) ग्रहण का आदर्श प्रदर्शन किया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने मथुरा के उस सानोड़िया ब्राह्मण के प्रति गुरुबुद्धि की व उसके अनुरूप मर्यादा का भी प्रदर्शन किया। महाप्रभु कहते हैं—"तुम गुरु हो, मैं तो शिष्य की तरह हूँ। ब्राह्मण जब महाप्रभु जी को प्रणाम करने लगे तो महाप्रभु जी ने उक्त ब्राह्मण से कहा गुरु होकर शिष्य को प्रणाम करना उचित नहीं लगता।"

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के पावन जीवन चरित्र में एक और लीला वैशिष्ट्य हम देखते हैं, वह ये कि श्रीरामचन्द्र पुरी और श्रीईश्वर पुरी दोनों ही श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के दीक्षित शिष्य थे। किन्तु गुरु-अवज्ञा के फल से श्रीश्रीरामचन्द्र पुरी गुरु-कृपा से वन्चित रह गये जबकि एकान्तिक शुद्धभक्ति के द्वारा ईश्वर पुरीपाद जी कृष्ण –प्रेम की पराकाष्ठा को प्राप्त करके धन्य हो गये। रामचन्द्र पुरी अपने गुरुदेव जी की विप्रलम्भ रस की सर्वोत्तमता व चमत्कारिता को अपनी लौकिक बुद्धि से न समझ सके और उन्होंने माधवेन्द्र जी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देने की धृष्टता की। माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने गुस्से में उनकी उपेक्षा कर दी। इतने बड़े प्रेमी-भक्त होने पर भी श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने गुरु-अपराधी के प्रति क्रोध प्रकाश किया तथा तीव्र भर्त्सना वाले शब्दों का प्रयोग किया—

शुनि' माधवेन्द्र मने क्रोध, उपजिल।

"दूर- दूर, पापिष्ठ" बलि' भर्त्सना करिल॥

"कृष्ण कृपा ना पाइनु, ना पाइनु 'मथुरा'।

आपन दुःखे मरों-एइ दिते आइल ज्वाला॥

---

* हमारे देश के पश्चिम में रहने वाले वैश्य जाती के लोग कई एक भागों में विभक्त हैं—अग्रवाल, कानोयाड़ तथा सानोयाड़ इत्यादि। इनमें अग्रवाल ही अति शुद्ध हैं। कानोयाड़ और सानोयाड़ आदि श्रेणी अपने-अपने कार्य दोष से पतित हैं। 'सानोयाड़' शब्द से सुनार को समजा जाता है तथा उन लोगों के पुरोहित ब्राह्मणों को ही सानोड़िया ब्राह्मण कहते हैं। याजन दोष से पतित होने के कारण इन ब्राह्मणों के घर संन्यासी भोजन नहीं करते।—ठाकुर श्रील भक्तिविनोद।

मोरे मुख ना देखाबि तुइ, यायो यथी-तथि।

तोरे देखि' मैले, मोर हबे असदगति॥

'कृष्ण ना पाइनु'-मरों आपनार दुःखे।

मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एइ छार मूर्खे॥

एइ ये श्रीमाधवेन्द्रपाद उपेक्षा करिल।

सेइ अपराधे इँहार 'वासना' जन्मिल॥

शुष्क ब्रह्मज्ञानी, नाहि कृष्णेर 'सम्बन्ध'।

सर्वलोकेर निन्दा करे, निन्दाते निर्बन्ध॥"

(चै. च. अ. 8/20-25)

श्रीरामचन्द्र पुरी ने अपने गुरु श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी को कृष्ण विरह कातर अवस्था में देखा, परन्तु चूँकि वे अप्राकृत विप्रलम्भ-स्फूर्ति को समझने में असमर्थ थे; अत: अपने लौकिक विचार से उन्होंने माधवेन्द्र पुरीपाद जी को मनुष्य समझा और प्राकृत अभाव में शोक-कातर समझकर उन्हें निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति कराने के लिए जुट गये। माधवेन्द्र पुरी शिष्य की मूर्खता व गुरु-अवज्ञा देखकर उसकी मंगलाकांक्षा से विरत हो गये तथा उन्होंने उसे त्याग दिया व भगा दिया। —श्रील प्रभुपाद

वासना का तात्पर्य शुष्क ज्ञान-वासना है, जिससे मन में भक्तों की निन्दा करने की वासना उदित होती है।

दूसरी ओर श्रीईश्वर पुरीपाद जी वाणी व शरीर के द्वारा एकान्तिक भाव से सेवा करके गुरु-कृपा को प्राप्त कर गये। उन्होंने गुरुदेव जी के पादपद्मों की सेवा, यहाँ तक कि अपने हाथों से उनका मल-मूत्रादि साफ किया एवं हर समय कृष्ण नाम व कृष्ण लीला श्रवण करवाकर अपने गुरुदेव को प्रसन्न किया—

ईश्वरपुरी करेन श्रीपाद सेवन।

स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन॥

निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण।

कृष्णनाम, कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण॥

तुष्ट हञा पुरी ताँरे कैला आलिङ्गन।

वर दिया—'कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन'॥

सेइ हैते ईश्वरपुरी—'प्रेमेर सागर'।

रामचन्द्र पुरी हैल सर्वनिन्दाकर॥

महदनुग्रह-निग्रहेर 'साक्षी' दुइजने।

एइ दुइद्वारे शिखाइला जगजने॥

जगद्‌गुरु माधवेन्द्र करी' प्रेमदान।

एइ श्लोक पड़ि' तेंहों करिला अन्तर्ध्यान॥

(चै. च. अ 8/26-31)

(अर्थात् ईश्वर पुरीपाद जी प्राणपन से अपने गुरु की सेवा कर रहे थे। यहाँ तक कि वे अपने हाथों से गुरु जी का मल-मूत्र तक साफ करते थे तथा माधवेन्द्र पुरी जी को कृष्ण नाम व कृष्ण लीला सुनाकर निरन्तर कृष्ण स्मरण करवाते थे जिससे संतुष्ट होकर उन्होंने श्रीईश्वर पुरीपाद जी का आलिंगन किया और उन्हें आशीर्वाद दिया कि कृष्ण ही तुम्हारे प्रेमधन हों। तभी से श्रीईश्वर पुरीपाद जी प्रेम के सागर बन गये जबकि रामचन्द्र पुरी सब की निन्दा करने वाले

बन गये। ये दोनों अनुग्रह और निग्रह के उदाहरण हैं। इन दोनों के माध्यम से ही माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने सारे जगत को अनुग्रह और निग्रह की शिक्षा दी है। श्रील माधवेन्द्र पुरी जी जगद्‌गुरु थे, इस प्रकार श्रीईश्वर पुरी जी को प्रेमदान कर निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुये अन्तर्ध्यान हो गये।)

अयि दीनदयार्द्रनाथ।

हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे॥

हृदयं त्वदलोककातरं।

दयितं भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

(पद्यावली-334)

"ओहे दीनदयार्द्र नाथ! ओहे मथुरानाथ! मैं कब आपका दर्शन करूँगा! आपके दर्शन के बिना मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है ! हे दयित, मैं अब क्या करूँ?"

श्रीमन् महाप्रभु जी इस श्लोक को पढ़कर प्रमोन्मत्त हो गये थे तथा नित्यानन्द प्रभु जी ने उन्हें गोद में बिठा लिया था।

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने फाल्गुन मास की शुक्ल द्वादशी तिथि को तिरोधान लीला की थी।

****

"श्रीईश्वर पुरीपाद"

श्रीईश्वर पुरीपाद राढ़ीय ब्राह्मण वंश में कुमार हट्ट नामक स्थान पर ज्येष्ठ पूर्णिमा तिथि को आविर्भूत हुये थे। कुमार हट्ट, ज़िला 24 परगना के अन्तर्गत वर्तमान हालि शहर स्टेशन से एक कोस पश्चिम की ओर है। स्थानीय व्यक्ति उनका आविर्भाव मुखोपाध्याय पाड़ा, कुमार हट्ट,कोलकाता में बताते हैं। श्रीमन् महाप्रभु जी ने जब संन्यास ले लिया तो श्रीवास पण्डित नवद्वीप में सभी जगह उनके स्मृति चिन्हों के दर्शन करके व्याकुल हो उठे और उनका विरह सहन न कर पाने के कारण अपने भाईयों के साथ नवद्वीप को परित्याग करके कुमार हट्ट में आकर बस गये थे। कुमार हट्ट में श्रीईश्वर पुरीपाद जी के स्थान को " श्रीचैतन्य डोबा" कहा जाता है। श्रीचैतन्य डोबा के निकट जो दीवार है, उसे ही श्रीवास का भिटा (पैतृक वस्तु) कह कर निर्देश किया जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने कुमार हट्ट में पहुँच कर श्रीईश्वर पुरीपाद जी के स्थान की मिट्टी अपने बहिर्वास वस्त्र में बाँधी थी। उसे देखकर व सुनकर आगन्तुक भक्त लोग वहाँ से मिट्टी लेते हैं तथा मिट्टी लेते-लेते आज वहाँ एक डोबा (खड्ढा) बन गया है। जिसे 'चैतन्य डोबा' कहा जाता है। इस स्थान की विशेष प्रसिद्धि है।

इनका संन्यास का नाम श्रीईश्वर पुरी है। इससे पहले पूर्वाश्रम में उनका क्या नाम था मालूम न हो सका। इनके पितृदेव थे श्रीश्याम सुन्दर आचार्य। प्रेमभक्ति रसमय श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी से श्रीईश्वर पुरीपाद जी ने दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीईश्वर पुरीपाद की निष्कपट, स्निग्ध व प्रेमपूर्ण सेवा से वशीभूत व सुप्रसन्न होकर श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी ने अपने स्नेहाशीर्वाद के द्वारा अभिषिक्त करते हुए इन्हें कृष्ण-प्रेम-सागर में निमज्जित कर दिया। गुरुदेव के प्रसन्न होने से शिष्य का आन्तरिक मंगल व सर्वार्थ सिद्धि होती है तथा गुरुदेव जी के अप्रसन्न होने से शिष्य का अमंगल होता है—श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी की लीला में हम ये स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।श्रीरामचन्द्र पुरी भी श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के दीक्षित शिष्य थे किन्तु दाम्भिकता के कारण गुरुदेव जी की कृपा से वंचित रह गये। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत (चै.च.अ. 8/16-30) में इसका बड़े सुंदर ढंग से वर्णन किया है: –

"पूर्वे जबे माधवेन्द्रपुरी करेन अन्तर्द्धान।

रामचन्द्रपुरी तबे आइला ताँर स्थान॥

पुरी गोसाञि करेन कृष्णनाम सङ्कीर्तन।

'मधुरा ना पाइनु' बलि' करेन क्रन्दन॥

रामचन्द्रपुरी तबे उपदेशे ताँरे।

शिष्य हञा गुरुके कहे, भय नाहि करे॥

"तुमि-पूर्ण ब्रह्मानन्द, करह स्मरण।

ब्रह्मविद हञा केने करह रोदन??"॥

शुनि' माधवेन्द्र-मने क्रोध उपजिल।

"दूर, दूर पापिष्ठ" बलि' भर्त्सना करिल॥

"कृष्ण-कृपा"ना पाइनु, ना पइनु 'मथुरा'।

आपन दुःखे मरों, एइ दिते आइल ज्वाला॥

मोरे मुख ना देखाबि तुइ, जाउ यथि-तिथि।

तोरे देखि' मैले, मोर हबे असदगति॥

कृष्ण ना पाइनु, मरों आपनार दुःखे।

मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एइ छार मूर्खे॥

एइ ये श्रीमाधवेन्द्रपाद उपेक्षा करिल।

सेइ अपराधे इँहार 'वासना' जन्मिल॥

शुष्क ब्रह्मज्ञानी, नाहि कृष्णेर' सम्बन्ध।

सर्वलोकेर निन्दा करे निन्दाते निर्बन्ध॥

ईश्वरपुरी करेन श्रीपाद सेवन।

स्वहस्ते करेन मल-मूत्रादि मार्जन॥

निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण।

कृष्णनाम, कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण॥

तुष्ट-हञा पुरी ताँरे कैला आलिङ्गन।

वर दिला "कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन॥'

सेइ हैते ईश्वरपुरी—'प्रेमेर सागर'।

रामचन्द्र पुरी हैल सर्वनिन्दाकर॥

महदनुग्रह-निग्रहेर 'साक्षी' दुइजने।

एइ दुइद्वारे शिखाइला जगजने॥*

(चै.च.अ.8/16-30)

इस प्रसंग के अनुभाष्य में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने लिखा है—"रामचन्द्र पुरी ने अपने गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरी जी को श्रीकृष्ण विरह कातर अवस्था में देखा परन्तु वे उनकी अप्राकृत विप्रलम्भ स्फूर्ति को न समझ सके तथा उन्हें लौकिक विचारानुसार किसी प्राकृत अभाव से शोक-कातर समझकर उन्हें निर्विशेष ब्रह्म की अनुभूति कराने लगे। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद शिष्य की मूर्खता व गुरु-अवज्ञा देखकर उसकी मंगलाकांक्षा से विरत हो गये तथा उसका त्याग करके उसे भगा दिया।"

यद्यपि श्रीमन् महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं, तब भी सद्गुरु के चरणाश्रय की अत्यावश्यकता की शिक्षा देने के लिये उन्होंने गया जाकर श्रीईश्वर पुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहणकरने की लीला की। इसके द्वारा श्रीईश्वर पुरीपाद जी का गुरुत्व व श्रेष्ठत्त्व संदेहातीत रूप से प्रदर्शित हुआ है।

तबे त' करिला प्रभु गयाते गमन। ईश्वरपुरीर सङ्गे तथाइ मिलन।

दीक्षा अनन्तरे हैल प्रेमेर प्रकाश। देशे आगमन पुनः प्रेमेर विलास॥** (चै.च.आ.17/8-9)

"दोँहाकार विग्रह दोँहाकार प्रेम-जले।

सिंचित हइला प्रेमानन्द कुतूहले॥

प्रभु बले,-"गया-यात्रा सफल आमार।

यतक्षणे देखिलाङ चरण तोमार॥

तीर्थे पिण्ड दिले से निस्तरे पितृगण।

सेह,-यारे पिण्ड देय, तरे' सेइजन॥

----

*पूर्व काल में जब माधवेन्द्र पूरीपाद जी अन्तर्धान लीला कर रहे थे तभी रामचंद्र पूरी भी वहाँ आ गए। अन्तिम समय में माधवेन्द्र जी कृष्ण-नाम-संकीर्तन कर रहे थे तथा **प्रेम विरह होकर" हा कृष्ण! मुझे मथुरा की प्राप्ति ना हो सकी"—ऐसे पुकार रहे थे और रो रहे थे।** रामचन्द्र पूरी तब उन्हें उपदेश देने लगे (शिष्य होकर गुरु को उपदेश देने में ज़रा सा भी भय का भान नहीं)। रामचन्द्र पूरी कहने लगे-आप पूर्ण ब्रह्मानन्द का स्मरण करो, आप तो चिद् ब्रह्म हो,चिद् ब्रह्म होकर रो क्यों रहे हो?

रामचन्द्र पूरी के वचन सुनकर माधवेन्द्र पुरीपाद जी को क्रोध आ गया। वे उसका तिरस्कार करते हुए कहने लगे—ओ पापिष्ट! दूर हो जा, दूर हो जा यहाँ से, मुझे श्रीकृष्ण की प्राप्ति ना हो सकी, न ही मथुरा मुझे मिला—मैं तो अपने ही दुःख में मर रहा हूँ, इस पर से मुझे और जलाने आया। जहाँ मर्जी चला जा, मुझे मुँह मत दिखाना, तुझे देखकर मरने से मेरी असद्-गति होगी। कृष्ण की प्राप्ति नहीं हुई—अपने इस दुःख से मर रहा हूँ और ये निरा मूर्ख मुझे ब्रह्म का उपदेश देने आया है।

माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने रामचन्द्र पूरीपाद जी का जब से तिरस्कार कर दिया तभी से वे कृष्ण सम्बन्धहीन शुष्क ज्ञानी बन गए तथा उनके अन्दर दुर्वासना उत्पन्न हो उठी और हर समय वे सब की निन्दा करने लगे। जबकि दूसरी ओर ईश्वर पूरीपाद जी अपने गुरु जी की प्राणपन से सेवा कर रहे थे। यहाँ तक कि वे अपने हाथों से गुरुजी का मल-मूत्र तक साफ करते थे तथा माधवेन्द्र पुरीपाद जी को कृष्णनाम व कृष्णलीला सुनाकर निरन्तर कृष्ण स्मरण करवाते थे, जिससे सन्तुष्ट होकर उन्होंने ईश्वर पूरीपाद जी को आलिंगन किया और उन्हें आशीर्वाद दिया कि कृष्ण ही तुम्हारे प्रेमधन है। तभी से ईश्वर पूरीपाद जी प्रेम के सागर बन गए जबकि रामचन्द्र पूरी बने सर्वनिन्दाकर(निन्दक)। अनुग्रह और निग्रह के यह दो उदाहरण है ,इन दोनों के माध्यम से ही माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने अनुग्रह और निग्रह की सारे जगत को शिक्षा दी।

** महाप्रभु जी ने गया के लिये प्रस्थान किया तथा वहीं पर उनकी भेंट श्रीईश्वर पुरीपाद जो से हुई। दीक्षा ग्रहणकरने के पश्चात् श्रीमन् महाप्रभु जी का श्रीकृष्ण प्रेम प्रकाशित हुआ और जब आप नवव्दीप में लौट आये तब आपने प्रेमावेश में अनेक लीलाएँ की।

तोमा' देखिलेइ मात्र कोटि-पितृगण।

सेइक्षणे सर्वबन्ध पाय विमोचन॥

अतएव तीर्थ नहे तोमार समान।

तीर्थेरो परम तुमि मङ्गल प्रधान॥

संसार-समुद्र हैते उद्धारह मोरे।

एइ आमि देह समर्पिलाङ तोमारे॥

'कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान।

आमारे कराओ तुमि'-एइ चाहि दान॥" *

(चै.भ.आ.17/49-55)

श्रीमन् महाप्रभु जी ने लौकिक रीतियों के अनुसार गया के तमाम तीर्थ व श्राद्ध आदि के लीलाभिनय के पश्चात् अपने घर आकर अपने हाथों से रसोई का कार्य किया। श्रीईश्वर पुरीपाद जी ने जब नवद्वीप में शुभ पर्दापण किया तो श्रीमन् महाप्रभु जी ने अपने हाथों से रसोई बना कर व अपने हाथों से ही परिवेषण करके श्रीईश्वर पुरीपाद जी को तृप्ति के साथ भोजन करवा कर गुरु सेवा का सर्वोत्तम आदर्श स्थापन किया।

ये ठीक है कि गया में दशाक्षर मन्त्र लेने से पहले भी महाप्रभु जी ईश्वर पुरीपाद जी से मिल चुके थे। इससे पहले श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी से दीक्षा लेने की लीला का अभिनय करने वाले श्रीअद्वैताचार्य जी के साथ भी श्रीईश्वर पुरीपाद जी की भेट हो चुकी थी। श्रीवृन्दावन दास जी ने श्रीचैतन्य भागवत् में इसका वर्णन किया है। निमाई जब नवद्वीप नगर में विद्या विलास की लीला कर रहे थे, तो उसी समय दैवयोग से श्रीईश्वर पुरीपाद जी का अचानक निमाई के साथ साक्षात्कार हुआ था। निमाई की इस प्रकार अपूर्व कान्ति दर्शन करके श्रीईश्वर पुरीपाद उनकी ओर आकृष्ट हुये थे तथा निमाई ने अपने घर में भिक्षा (भोजन) के लिये श्रीईश्वर पुरीपाद जी को निमन्त्रण दिया था और स्वयं शची माता से श्रीकृष्ण जी के लिए नैवेद्य तैयार करवा कर श्रीईश्वर पुरीपाद जी को भोजन करवाया था। उसी समय निमाई के साथ श्रीईश्वर पुरीपाद जी की कृष्ण सम्बन्धित चर्चा हुई थी। नवद्वीप में गोपीनाथ आचार्य के घर कुछेक महीने श्रीईश्वर पुरीपाद जी रहे थे। परम विरक्त श्रीगदाधर पण्डित जी का सुद्ध प्रेम दर्शन कर व उनके सुद्ध प्रेम से सन्तुष्ट होकर श्रीईश्वर पुरीपाद जी स्वरचित "श्रीकृष्णलीलामृत " ग्रन्थ अत्यन्त प्रीति के साथ उन्हें पढाने लगे। निमाई भी प्रति दिन उन्हें वहाँ प्रणाम करने जाते थे। एक दिन श्रीईश्वर पुरीपाद जी ने निमाई को अपने ग्रन्थ की भूल-चूक देखने की प्रार्थना की तो निमाई ने उसके उत्तर में कहा—

----

* दोनों के शरीर एक-दूसरे के नेत्रों के प्रेमाश्रुओं से अभिषिक्त हो गये और प्रेमानन्द छा गया। महाप्रभु जी ने कहा—"जब आपके चरणों के दर्शन हो गये तो मेरी गया यात्रा सफल हो गयी"तीर्थ में पिण्ड देने से उन पितर का उद्धार होता है जिसका पिण्ड दिया जाता है परन्तु आपके दर्शन मात्र से करोड़ो पितृगण उसी समय तमाम बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।अतएव आपके समान कोइ भी तीर्थ नहीं है। आप तो तीर्थो का भी परम मंगल करने वाले हो। मैं अपने शरीर को आपको समर्पण करता हूँ, संसार समुद्र से आप मेरा उध्दार किजिये।मैं तो आप से सिर्फ यही दान चाहता हूँ कि आप मुझे श्रीकृष्ण के चरण कमलों का मकरन्दी पान कराइये।

"प्रभु बोले,-"भक्त-वाक्य कृष्णेर वर्णन।

इहाते ये दोष देखे, सेइ पापीजन॥

भक्तेर कवित्त्व ये-ते मते केने नय।

सर्वथा कृष्णेर प्रीति ताहाते निश्चिय॥

मूर्ख बोले-'विष्णाय', विष्णवे' बोले धीर।

दुइ वाक्य परिग्रह को कृष्ण वीर॥

इहाते ये दोष देखे, ताहार से दोष।

भक्तेर वर्णनमात्र कृष्णेर सन्तोष॥

अतएव तोमार से प्रेमेर वर्णन।

इहाते दूषिवेक कोन् साहसिक जन?"

(चै.भा. आ. 11/105-110)

भक्ति रत्नाकर में इस प्रकार वर्णन है—

"एइ देख गोपीनाथ आचार्येर घर।

मध्ये-मध्ये एथा आइसेन विश्वाम्भर॥

श्रीईश्वर पुरी किछु दिन एथा छिला।

"कृष्ण लीलामृत ग्रन्थ" एथाइ रचिला॥

गदाधर पण्डिते परम स्नेह करे।

तार प्रेम चेष्टा देखि पढ़ाइल ताँरे॥"

अर्थात् भहाप्रभु जी कहते हैं एक तो भक्त वाक्य फिर उसमें श्रीकृष्ण का वर्णन, इसमें जो दोष देखेगा वह पापी ही होगा।भक्त का कवित्त्व जैसा-तैसा भी क्यों न हो वह निश्चित रूप से कृष्ण का प्रीतिकर होता है। मूर्ख लोग 'विष्णाय' कहते हैं जब कि बुद्धिमान् 'विष्णवे' कहते हैं—श्रीकृष्ण दोनों प्रकार के वाक्यों में शब्दों को नहीं देखते वे तो भाव को देखते हैं। अर्थात् भक्त के लेख में जो दोष देखता है वह दोष स्वयं देखने वाले में होता है। भक्त के वर्णन मात्र से ही कृष्ण का सन्तोष होता है। अतएव आपका जो ये प्रेम-वर्णन है, कौन ऐसा दुःसाहसिक होगा जो इसमें दोष देखेगा|

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु पश्चिम भारत के तीर्थ भ्रमण के समय जब दैवयोग से श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी को मिले तो दोनों एक दूसरे को देखकर मूर्च्छित हो गये।नित्यानन्द प्रभु प्रेमाविष्ट होकर माधवेन्द्र पुरीपाद जी की महिमा वर्णन करने लगे। श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने नित्यानन्द प्रभु को आलिंगन करते हुये उन्हें प्रेमजल से भिगो दिया। नित्यानन्द प्रभु गुरुदेव जी के अत्यन्त प्रिय हैं, ऐसा समझकर श्रीईश्वर पुरीपाद आदि सभी शिष्य वर्ग नित्यानन्द प्रभु के प्रति अनुराग युक्त हो उठे तथा श्रीईश्वर पुरीपाद गाढ़ प्रेमाविष्ट हो उठे—

जय श्रीमाधवपुरी कृष्णप्रेमपुर।

भक्तिकल्पतरु तेंहो प्रथम अंकुर॥

श्रीईश्वरपुरी-रुपे अंकुर पुष्ट हैल।

आपने चैतन्य माली स्कन्ध उपजिल॥

(चै.च.आ. 9/10-11)

श्रील ईश्वर पुरीपाद जी ने अपने अप्रकट से पूर्व अपने दो शिष्यों -काशीश्वर और गोविन्द को श्रीमन् महाप्रभु की सेवा के लिये निर्देश किया। वे दोनों यद्यपि महाप्रभु जी के गुरु भाई थे, "गुरु जी की आज्ञा अवश्य पालनीय है"—इस विचार से श्रीमन् महाप्रभु जी ने उन्हें सेवक के रूप में ग्रहण किया।

****

श्रीमद् अद्वैताचार्य

"व्रजे आवेशरुपत्वाद्व्यूहो योऽपि सदाशिवः।

स एवाद्वैतगोस्वामी चैतन्याभिन्न विग्रहः॥" (गौ. ग. दी. 76)

जो व्रज के आवरण रूप से नियुक्त है तथा जो सदाशिव व्यूह नाम से प्रसिद्ध है-वे ही अद्वैत गोस्वामी जी हैं। आप श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से अभिन्न शरीर हैं।

"यश्च गोपालदेहः सन् व्रजे कृष्णस्य सन्निधौ।

ननर्त्त श्रीशिवातन्त्रे भैरवस्य वचो यथा॥

एकदा कार्तिक मासि दीपयात्रा महोत्सवे।

सरामः सहगोपालः कृष्णोऽनृत्यत् यत्नवान्॥

निरीक्ष्य मद्गुरुदेवो गोपभावाभिलाषवान्।

प्रियेण नर्त्तितुमारब्धश्चक्रभ्रमणलीलया॥

श्रीकृष्णस्य प्रसादेन द्विविधोऽभूत् सदाशिवः।

एकस्तत्र शिवः साक्षादन्यो गोपाल विग्रहः॥" (गौ. ग. दी. 77-80)

अर्थात् इन्होंने ग्वाले का रूप धारणकरके व्रज में श्रीकृष्ण के सामने नृत्य किया था। इस सम्बन्ध में शिवतन्त्र में भैरव जी का वाक्य है कि एक बार कार्तिक मास में दीप-यात्रा महोत्सव के समय बलराम जी तथा सदाशिव जी के ग्वाले के रूप के साथ श्रीकृष्ण जी ने भी खूब नृत्य किया था। यह देखकर मेरे गुरुदेव शंकर जी ने गोप-भावाभिलाषी होकर चक्र की तरह घूमते हुये चक्र-भ्रमण लीला में श्रीकृष्ण के नज़दीक नृत्य करना आरम्भ कर दिया था। श्रीकृष्ण की कृपा से सदाशिव जी ने भी दो प्रकार के रूप ग्रहण किए थे—एक तो साक्षात् शिव था अन्य ग्वाला रूप।

श्रीअद्वैत तत्व के सम्बन्ध में श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ में श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी जी की निजी डायरी से प्रमाण उल्लेख करते हुए इस प्रकार लिखा है—

"महाविष्णुर्जगतकर्त्ता मायया यः सृजत्यदः।

तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरेः॥

अद्वैतं हरिणाद्वैताचार्यं भक्तिशंसनात्।

भक्तावतारमीशं तमद्वैताचार्यमाश्रये॥" (चै.च.आ. 1/12-13)

मैं उन भक्तवर श्रीअद्वैत आचार्य ईश्वर का आश्रय ग्रहणकरता हूँ। जो महाविष्णु, माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं, उन जगत् कर्त्ता के ही अवतार हैं—ईश्वर अद्वैत आचार्य जी। हरि से अभिन्न तत्व होने के कारण ही उनका नाम "अद्वैत" है तथा भक्ति शिक्षक होने के कारण उन्हें "आचार्य" कहा जाता है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है—"महा विष्णु जी, माया की दो वृत्तियों में, अर्थात् दो रूपों में विराजमान हैं। प्रथम तो वह है जहाँ महाविष्णु जी प्रकृतिस्थ होकर जगत् के निमित्त कारण है, वह ही विष्णु रूप है, द्वितीय स्वरूप में प्रधानस्थ होकर वे रुद्र रूप में श्रीअद्वैत हैं।"

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने अद्वैत आचार्य जी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—श्रीअद्वैत आचार्य प्रभु महाविष्णु हैं। ये आचार्य हैं। परिचालन करने में विष्णु जी का आचरण मंगलमय हैं। वे तमाम मंगलों की खान हैं। जगत्-जंजाल में फंसे जीव इन शुद्ध, नित्य, पूर्ण, मुक्त तथा मंगल स्वरूप विष्णु जी (अद्वैताचार्य जी) को न समझ पाने के कारण ही आत्मा की वृत्ति-भक्ति से वन्चित हैं। श्रीअद्वैत आचार्य जी का एक नाम कमलाक्ष भी है।

"जगत्-मंगल अद्वैत, मंगल गुणधाम।

मंगलचरित्र सदा, मंगल यार नाम॥

महाविष्णुर अंश अद्वैत गुणधाम।

ईश्वरेर अभेद तेंह अद्वैत पूर्णनाम॥

वैष्णवेर गुरु तेंह जगतेर आर्य।

दुइ नाम मिलने हैल अद्वैताचार्य॥

कमल नयनेर तेंह याते अंग, अंश।

'कमलाक्ष ' बलि धरे नाम अवतंस॥

(चै.च.आ. षष्ट परिछेद-9, 25, 29, 30)

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने श्रीअद्वैत आचार्य को वैष्णवाग्रगण्य के रूप में व शंकर जी के रूप में वर्णन किया है—

"सेइ नवद्वीपे वैसे वैष्णवाग्रगण्य।

'अद्वैत आचार्य' नाम, सर्वलोके धन्य॥

ज्ञान-भक्ति-वैराग्येर गुरु मुख्यतर।

कृष्णभक्ति बाखनिते येहेन शंकर॥" (चै.भा.आ. 2/78-79)

(अर्थात् उस नवद्वीप में वैष्णवाग्रगण्य श्रीअद्वैताचार्य जी भी निवास करते हैं। वे सभी लोगों में श्रेष्ठ हैं तथा ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की शिक्षा देने वाले अद्वितीय गुरु हैं॥ श्रीकृष्ण-भक्ति का वर्णन करने के लिये तो वे श्रीमहादेव जी के समान हैं।)

श्रीअद्वैत आचार्य जी शुक्ला-सप्तमी तिथि में, वारेन्द्र ब्राह्मण वंश में, श्रीकुबेर पण्डित व श्रीमती नाभा देवी को अवलम्बन करके श्रीहट्ट के निकटवर्ती नवग्राम में आविर्भूत हुए थे।

'बंग देशे श्रीहट्ट निकट नवग्राम।

कुबेरपण्डित * तथा नृसिंह सन्तान॥

कुबेरपण्डित भक्तिपथे महाधन्य।

कृष्णपादपद्म बिना ना जानये अन्य॥

तैछे तार पत्नी नाभादेवी पतिव्रता।

जगतेर पूज्या, येंहो अद्वैतेर माता॥ (भक्ति रत्नाकर 5/2 41-43)

(अर्थात् बंग देश में श्रीहट्ट के निकट नवग्राम है जहाँ कुबेर पण्डित व नृसिंह की सन्तान रहती है। जिनमें श्रीनृसिंह भादुड़ी श्रीअद्वैताचार्य जी के ससुर हैं तथा श्रीकुबेर पण्डित जी अद्वैताचार्य जी के पिता हैं, जो कि भक्ति पथ में काफी अग्रसर हैं। संसार में रहते हुये भी इनका ऐसा भाव है कि ये कृष्णा पादपद्म के अलावा कुछ भी नहीं जानते। जिस प्रकार श्रीकुबेर पण्डित जी श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं उसी प्रकार उनकी पत्नी श्रीनाभा देवी भी परम भक्त हैं तथा जगत पूज्या हैं। ये ही श्रीअद्वैत जी की माता हैं।)

'माघे शुक्ला तिथि, सप्तमीते अति,

उखलाय महा आनन्द सिन्धु।

नाभागर्भ धन्य, करि अवतीर्ण,

हैल शुभक्षणे, अद्वैत-इन्दु॥

कुबेर पण्डित, हैया हरषित,

नाना दान द्विज-दरिद्रे दिया।

सूतिका मन्दिरे, गिया धीरे-धीरे

देखि पुत्र मुख जुड़ाय हिया॥

---

*श्रीकुबेर पण्डित --

महादेवस्य मित्रं यः श्रीकुबेर गह्यकेश्वरः।

कुवेरपण्डितः सोऽद्य जनकोऽस्य दिगम्बरः॥

विद्याम्बर गह्यकेश्वर कुबेर, जो महादेव जी के मित्र थे। वे ही अभी कुबेर पण्डित अर्थात् महादेव जी (अद्वैत जी) के पिता है। (गौ. ग. 81)

नवग्रामवासी, लोक धाया आसि

परस्पर कहे ना देखि हेन।

किवा पुण्यफले, मिश्र वृद्ध काले,

पाइलेन पुत्र रत्न येन॥

पुष्प वरिषण, करे सुरगण

अलक्षित रीति उपमा नहु॥

जय-जय ध्वनि, भरल अवनी,

भने घनश्याम मंगल बहु॥"

(भक्ति रत्नाकर 12 तरंग 1759-1762)

(अर्थात् माघ मास की शुक्ला सप्तमी को उत्ताल तरंगयुक्त महानन्द सागर में नाभागर्भ को धन्य करते हुये शुभ क्षण में श्रीअद्वैताचार्य रूपी चन्द्रमा का अवतरण हुआ। पुत्र हुआ सुनकर कुबेर पण्डित जी के हर्ष का ठिकाना न रहा। उन्होंने ब्राह्मणों और गरीबों को बहुत सा दान किया, वे दबे कदमों से सूतिका घर में गये तथा पुत्र के मुख दर्शन करके उन्होंने अपने दिल को ठंडा किया। नवग्राम वासियों को जब मालूम हुआ तो वे दौड़ते हुये कुबेर जी के घर आये और आपस में चर्चा करने लगे कि देखो न जाने कौन से पुण्य के प्रभाव से इन्होंने वृद्धावस्था में ऐसा सुन्दर पुत्र-रत्न प्राप्त किया। श्रीघनश्याम दास जी कहते हैं कि वहां पर जैसा हो रहा है उसकी तो उपमा ही नहीं है; देवता लोग भी अलक्षित भाव से पुष्प वर्षा कर रहे हैं तथा ऐसा लगता है जैसे सारा भुवन ही जय-ध्वनि से भर गया हो।)

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में श्रीअद्वैत आचार्य जी का आविर्भाव स्थान श्रीहट्ट लाउर ग्राम उल्लिखित हुआ है। वहाँ पर यह भी लिखा है कि श्रीअद्वैत प्रभु लाउर ग्राम से नवहट्ट ग्राम में एवं वहाँ से शान्तिपुर में आकर बसे थे। नवद्वीप में भी उनका घर था। उनका आविर्भाव 1438 (1355 शकाब्द) में हुआ था। अद्वैत आचार्य जी का पूर्व नाम श्रीकमलाक्ष (श्रीकमलाकान्त) वेदपंचानन था। शकाब्द 1480 में इन्होंने प्रकट लीला की अर्थात् ये 125 वर्ष तक प्रकट रहे।

श्रीजाह्नवा माता जी के दीक्षित शिष्य श्रीनित्यानन्द दास जी द्वारा लिखित श्रीप्रेम-विलास ग्रन्थ में श्रीअद्वैत आचार्य जी का आविर्भाव स्थान शान्तिपुर निर्देशित हुआ है। शान्तिपुर में फूलवाटी ग्राम के रहने वाले पण्डित श्रीशान्ताचार्य जी से वेदादिशास्त्र अध्ययन करने के बाद आपको आचार्य की उपाधि दी गयी।

श्रीअद्वैत मंगल, श्रीअद्वैत विलास तथा सीता चरित्र इत्यादि अनेकों बंगला भाषा में लिखे ग्रन्थों में श्रीअद्वैत आचार्य जी का पावन चरित्र वर्णन हुआ है—

"सेओया शत वर्ष प्रभु रहि धराधामे।

अनन्त अर्बुद लीला कैला यथाक्रमे॥"

(अद्वैत विलास)

कुबेर पण्डित एवं नाभा देवी जी द्वारा अन्तर्ध्यान लीला करने के बाद श्रीअद्वैत आचार्य जी माता-पिता के पारलौकिक कृत्य सम्पन्न करने के लिए गया-यात्रा के बहाने घर से निकले और सभी तीर्थों का भ्रमण कर आए। तीर्थ यात्रा के समय जब आप श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे, वहाँ श्रीकृष्ण आराधना में जब आप निमग्न थे तो आपको मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण नवद्वीप में प्रकटित होंगे। तीर्थ-भ्रमण के समय ही मिथिला(बिहार) में विद्यापति जी के साथ अद्वैत अचार्य जी का साक्षात्कार हुआ। विद्यापति जी के साथ अद्वैत आचार्य जी का जो मिलन प्रसंग है वह श्रीअद्वैत विलास नामक ग्रन्थ में बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित हुआ है। वृन्दावन से गौड़ देश में लौटने के पश्चात् आप कुछ दिन नवद्वीप में ठहर कर तब शान्तिपुर गए। बहुत दिनों के बाद श्रीअद्वैत अचार्य जी का दर्शन करके विरह कातर शान्तिपुरवासी कृत-कृतार्थ हो उठे।

सभी विष्णु तत्व श्री, भू तथा नीला या लीला—इन तीन शक्तियों से युक्त होते हैं। श्रीअद्वैत आचार्य जी ने अपने स्वरूप की सम्पूर्णता को प्रकाशित करने के लिए शक्ति ग्रहण की लीला की। विप्रश्रेष्ठ श्रीनृसिंह भादुड़ी की दो कन्याएँ—श्रीसीतादेवी तथा श्रीदेवी श्रीअद्वैत आचार्य की पत्नी हुई।

"आचार्येर भार्या दुइ जगत् पूजिता।

सर्वत्र विदित नाम श्रीआर सीता॥" भक्ति रत्नाकर 12-1785)

"योगमाया भगवती गृहिणी तस्य साम्प्रतम्।

सीतारूपेणावतीर्णा 'श्री' नाम्ना तत्प्रकाशतः॥" (गौ. ग. दी. 86)

अर्थात् भगवती योगमाया श्रीअद्वैत आचार्य की पत्नी सीता देवी के रूप में तथा 'श्री' शक्ति श्रीदेवी के रूप में अवतीर्ण हुई।

श्रीअद्वैत आचार्य जी दो स्थानों पर रहते थे—शान्तिपुर में तथा नवद्वीप-मायापुर में श्रीवास पण्डित जी के घर के पास।

विष्णु भक्ति शुन्य जगत् वासियों की अशेष संसार-यन्त्रणा देखकर जब कि श्रीअद्वैत आचार्य जी का हृदय व्यथित हो उठा तो वे कृपा परवश होकर उन्हें गीता व भागवतादि शास्त्रों के तात्पर्य स्वरूप श्रीकृष्ण- भक्ति की शिक्षा देने लगे। इन्हीं दिनों श्रील माधवेन्द्र पुरी जी को स्वप्न में गोपालजी का आदेश मिला और वे उस आदेशानुसार गोवर्धनधारी गोपाल जी की सेवा हेतु मलयज चन्दन लेने के लिए गौड़ देश जा रहे थे। गौड़ देश से पूरी जाते समय ही वे रास्ते में श्रीअद्वैत आचार्य जी के घर शान्तिपुर आए थे। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी की अलौकिक प्रेम चेष्टायें देखकर श्रीअद्वैत आचार्य जी ने उनसे दीक्षा-ग्रहण की। यद्यपि श्रीअद्वैत आचार्य जी भगवत्-तत्व हैं, उन्हें गुरु ग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं थी परन्तु गुरु-ग्रहण की अत्यावश्यकता की शिक्षा देने के लिए उन्होंने माधवेन्द्र पुरीपाद जी से दीक्षा-ग्रहणकरने का लीलाभिनय किया।

"शान्तिपूरे आइला अद्वैताचार्येर घरे।

पूरीर प्रेम देखी' आचार्य आनन्द अन्तरे॥

ताँर ठाञि मन्त्र लैल यत्न करिञा।

चलिला दक्षिणे पुरी ताँरे दीक्षा दिञा॥" (चै.च.म. 4 /110-111)

विश्वम्भर गौरांग महाप्रभु जी भक्ति रूपी कल्पवृक्ष के माली भी हैं तथा दाता-भोक्ता रूप से मूल वृक्ष भी हैं। श्रीनवद्वीप धाम में ही सर्वप्रथम इस वृक्ष का आरोपण हुआ। रोपित हो जाने के बाद पुरुषोत्तम धाम व श्रीधाम वृन्दावन आदि स्थानों पर इस प्रेम फलोद्यान की वृद्धि हुई। श्रीमाधवेन्द्र पूरीपाद जी इस भक्ति कल्पवृक्ष के प्रथम अंकुर है। उनके शिष्य श्रीईश्वर पुरी के रूप में यह अंकुर पुष्ट हुआ। महाप्रभु जी माली होते हुए भी एक अन्य रूप में अपनी अचिन्तय शक्ति के प्रभाव से वृक्ष के स्कन्ध (तना) बने। महाप्रभु रूपी मूल स्कन्ध से फिर श्रीअद्वैत व श्रीनित्यानन्द रूपी दो स्कन्ध निकले—

"वृक्षेर ऊपरे शाखा हइला दुइ स्कनध।

एक 'अद्वैत' नाम, आर 'नित्यानन्द'॥" (चै.च. आ. 9/21)

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी के अंग श्रीअद्वैत व श्रीनित्यानन्द जी है तथा उपाँग हैं—श्रीवासादि भक्तवृन्द। श्रीमन् महाप्रभु जी ने इन अंग व उपाँग के सहित अवतीर्ण होकर जग में हरि-भक्ति का प्रचार किया। स्वयं भगवान् श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले ही अद्वैत आचार्य जी ने अपने गुरु वर्ग के साथ अवतीर्ण होकर देखा कि कलियुग की प्रथम संध्या में ही भविष्य में होने वाले आनाचारों की प्रबलता है तथा सारा जगत् कृष्ण-भक्ति शून्य है। इस अवस्था में कोई भी अंशावतार इस जगत् में अवतीर्ण होकर इस जगत् का मंगल करने में समर्थ नहीं हो सकता। **"साक्षात् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अवतीर्ण होने से ही जगत् का कल्याण होगा"**—इस प्रकार की चिन्ता करके श्रीअद्वैत आचार्य जी गंगाजल व तुलसी के द्वारा श्रीकृष्ण के पदपद्मों की पूजाकर ते हुए उन्हें ही अवतीर्ण करवाने के लिए हुँकार करने लगे। श्रीअद्वैत आचार्य की प्रेम-हुँकार से ही गोलोकपति श्रीहरि की अवतीर्ण होने की इच्छा हुई—

"गंगाजले तुलसी मंजरी अनूक्षण। कृष्णपादपद्म भावि' करे समर्पण॥

कृष्णेर आह्वान करे करिया हुँकार। एमते कृष्णेर कराइल अवतार॥

चैतन्येर अवतारे एइ मुख्य हेतु। भक्तेर इच्छाय अवतारे धर्म सेतु॥"

(चै.च.आ. 3/107-109)

(अर्थात् अद्वैताचार्य जी हमेशा कृष्ण पादपद्मों का स्मरण करते हुये उनमें गंगा जल व तुलसी मंजरी अर्पण करते हैं तथा हुँकार करते हुये श्रीकृष्ण को पृथ्वी पर आवतीर्ण करवाने के लिये आवाहन करते हैं। इस प्रकार करके ही उन्होंने कृष्ण को इस धराधाम पर अवतीर्ण करवाया। वैसे देखा जाये तो श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के अवतरण का ये ही मुख्य कारण हैं। हमेशा ही धर्म रक्षक भगवान्अपने भक्त की इच्छा को पूरा करने के लिये अवतरित होते हैं)

"अद्वैत आचार्य शान्तिपुरे विलसय।

श्रीचैतन्य अभिन्न देह रसेर आलय॥

ये आनिल श्रीकृष्णचैतन्य अवनीते।

याहार निर्मल यशः व्यापिल जगते॥

श्रीगौर अभिन्न तनु अद्वैत आमार।

जगत जननी सीता घरनी याँहार॥

ये आनिल गोराचाँदे हुँकार करिया।

गाओयाय गौरांगगुण भुवन भरिया॥"

(भक्ति रत्नाकर 12/3753-56)

(अर्थात् श्रीअद्वैत-आचार्य जी शान्तिपुर में रहते हैं। वे श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की अभिन्न देह ही हैं तथा रस के तो घर ही हैं। सारे विश्व में उनका ऐसा यश है कि ये ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी को पृथ्वी पर लेकर आये। हमारे अद्वैताचार्य श्रीगौराभिन्न तनु हैं। जगत् जननी सीता ठाकुरानी इनकी पत्नी हैं। ये ही हुँकार के साथ गौराङ्ग महाप्रभु जी को लाये तथा सारे संसार से श्रीगौराङ्ग गुण गवाया।)

"जय-जय श्रीअद्वैताचार्य दयामय।

याँर हुँकारे गौर अवतार हय॥

ताँहार चरणे येवा लइल शरण।

से जन पाइल गौर-प्रेम महाधन॥"

(भक्ति रत्नाकर 12/ 3761-3764)

"तुलसी-मंजरी-सहित गङ्गाजले।

निरवधि सेवे कृष्णे महा कुतूहले॥

हुंकार करये कृष्ण-आवेशेर तेजे।

ये ध्वनि ब्रह्माण्ड भेदि' वैकुण्ठेते बाजे॥

ये प्रेमेर हुंकार शुनिञा कृष्णनाथ।

भक्तिवशे आपने ये हइला साक्षात्॥"

(चै. भा. आ. 2/81-83)

श्रीमन् महाप्रभु जी के आविर्भाव से पूर्व ही माघी शुक्ला त्रयोदशी में राढ़ देश के एकचक्रा धाम में श्रीहाड़ाई पण्डित व पद्मावती को वात्सल्य रस की सेवा प्रदान करते हुए श्रीबलदेवाभिन्न श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु अवतीर्ण हुए। इधर नवदीप-मायापुर में श्रीशची व जगन्नाथ मिश्र जी की आठ कन्याओं ने जब एक के बाद एक अन्तर्धान की लीला की तो उसके बाद वहाँ नित्यानन्दाभिन्न श्रीविश्वरूप जी का आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् फाल्गुनी पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण के बहाने

नवदीप-मायापुर में श्रीकृष्ण-संकीर्तन के साथ संकीर्तनपिता अवतारी श्रीगौरचन्द्र जी उदित हुए। श्रीगौरचन्द्र जी के आविर्भाव के बाद श्रीअद्वैत आचार्य जी की अनुमति लेकर उनकी स्त्री श्रीसीता देवी बालक-शिरोमणि गौर-गोपाल के दर्शनों के लिए उपहार लेकर नवदीप-मायापुर पहुँची तथा वहाँ जाकर उन्होंने धान व दूर्वा-घास इत्यादि को गौर गोपाल के सिर के ऊपर रख कर बालक को आशीर्वाद दिया—

"अद्वैत-आचार्य-भार्या,

जगत् पूजिता आर्या,

नाम ताँर 'सीता ठाकुराणी'।

आचार्येर आज्ञा पाञा,

गेला उपहार लञा।

देखिते बालक शिरोमणि॥"

(चै. च. आ. 13/112)

नवदीप-मायापुर में संस्कृत विद्यालय की स्थापना करके श्रीअद्वैत आचार्य जी ने शास्त्रानुशीलन की लीला प्रकट की। महाप्रभु जी के बड़े भाई श्रीविश्वरूप जी प्रातः गंगा स्नान करने के बाद प्रतिदिन अद्वैत-सभा में शास्त्र श्रवण करने के लिए जाते थे। अद्वैत आचार्य जी जब अपने इष्टदेव की पूजा में होते तो विश्वरूप जी सभा में उपस्थित भक्तों को **सर्वशास्त्रों का तात्पर्य कृष्ण-भक्ति ही है**—भली-भाँति समझा देते। विश्वरूप जी की शास्त्र व्याख्या सुनकर अद्वैत आचार्य जी को विश्वरूप जी के प्रति ऐसी प्रीति उमड़ती कि वे अपने इष्टदेव को पूजा को छोड़कर उन्हें आलिंगन करने आ जाते।

संसार अनित्य है तथा मनुष्य जीवन का एकमात्र कृत्य कृष्ण-भजन करना है—ऐसा विचार कर विश्वरूप जी ने संसार का परित्याग करने का संकल्प लिया। अपनी माता द्वारा भेजे जाने पर बालक निमाई प्रतिदिन अपने बड़े भाई विश्वरूप को भोजन के लिए बुलाने आते। श्रीअद्वैत आचार्य जी निमाई के अपूर्व रूप का दर्शन करके मोहित हो जाते परन्तु ये नहीं समझ पाते कि ये ही उनके आराध्य परमतत्व इष्टदेव हैं। माता पिता उनके विवाह की तैयारियाँ कर रहे हैं, यह देखकर विश्वरूप जी ने संसार त्याग कर दिया तथा संन्यास ग्रहणकरके श्रीशंकरारण्य नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीशची माता एवं जगनाथ मिश्र तथा भक्त लोग विश्वरूप जी के विरह में क्रन्दन करने लगे। यद्यपि श्रीअद्वैत प्रभु भी विरह-कातर हुए. तब भी सभी को यह कहकर सान्त्वना प्रदान करते कि शीघ्र हो कृष्णचन्द्र प्रकटित होंगे तथा सभी भक्तों के दुःखों को दूर करेंगे।

श्रीविश्वरूप के द्वारा गृह त्याग करके संन्यास लेने से श्रीशची माता व श्रीजगन्नाथ मिश्र जी भयभीत हो गए कि कहीं प ढ़ -लिख कर निमाई भी ऐसा न करे। अतः उन्होंने निमाई की पढ़ाई बन्द करवा दी। बाद में निमाई की दत्तात्रेय भाव से कही वाणी सुनकर व उससे शिक्षा लेकर उन्होंने दोबारा निमाई की पढ़ाई शुरू करवा दी। उपनयन संस्कार के बाद जब निमाई विद्या रस में नीमग्न थे तो उन्हीं दिनों श्रीजगन्नाथ मिश्र अन्तर्धान हो गए। कालान्तर में श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु तीर्थ-भ्रमण के बाद नवद्वीप में आकर श्रीगौरसुन्दर जी से मिले। जिन दिनों विद्याविलासी गौरसुन्दर जी के साथ बल्लभतनया श्रीलक्ष्मी देवी जी के शुभ विवाह की लीला सम्पादित हुई ,उन दिनों श्रीअद्वैत आचार्य नवद्वीप-मायापुर में अपने घर में शास्त्रालोचना व कृष्ण कथा-कीर्तन करते थे। वैष्णवों के प्रिय सुकण्ठ कीर्तनीया श्रीमुकुन्द से कृष्ण-कीर्तन

सुनकर श्रीअद्वैत आचार्य जी तथा सभी वैष्णव परमोल्लसित होते। इसी मध्य एक दिन श्रील ईश्वर पुरीपाद जी नवदीप में आकर अद्वैत-भवन में उपस्थित हुए। श्रीअद्वैत आचार्य ईश्वर पुरी जी के अपुर्व तेज को देखकर समझ गए कि ज़रूर ये वैष्णव संन्यासी होंगे। बाद में श्रीईश्वर पुरीपाद जी के साथ गौरांग महाप्रभु जी का मिलन हुआ—

"हेनकाले नवद्वीपे श्रीईश्वरपुरी। आलेन अति अलक्षित वेश धरि'॥

कृष्णरसे परम विह्वल महाशय। एकान्त कृष्णेर प्रिय अति दयामय।

तानवेशे ता'ने केह चिनिते ना पारे। दैवे गिया उठिलेन अद्वैत मन्दिरे॥"

(चै.भा.आ. 11/70-72)

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी यशोहर ज़िले के बूढ़न ग्राम में आविर्भूत हुए। बाद में गंगा के किनारे रहने की भावना से फुलिया-शान्तिपुर आए तथा अद्वैत आचार्य जी से मिले।

गया से वापस आने के बाद श्रीगौरसुन्दर जी की कृष्ण विरह जनित उत्कण्ठा की व उनके प्रेम विकार की बात सुनकर श्रीअद्वैत आचार्य व श्रीवासादि भक्तों को अति आनन्द हुआ।

श्रीवास भवन में एक दिन महाप्रभु जी ने नित्यानन्द जी को व्यास पूजाकर ने के लिए इशारा किया। नित्यानन्द जी की इच्छा से श्रीव्यास पूजा का आयोजन हुआ। श्रीव्यास पूजा के अधिवास दिवस में महाप्रभु जी ने नित्यानन्द जी का बलदेव स्वरूप दिखाया तथा नाड़ा-नाड़ा कह कर अद्वैत को बुलाने के छल से अपने अवतार –मर्म को प्रकाशित किया—

"अद्वैतेर लागि' मोर एइ अवतार। मोर कर्णे बाजे आसि' नाड़ार हुँकार॥

शयने आछिनु मुञि क्षीरोद-सागरे। जागाई' आनिल मोरे नाड़ार हुँकारे॥"

(चै. भा. अ. 9/297-98)

(अर्थात् अद्वैताचार्य जी की वजह से ही मेरा ये अवतार हुआ है। आज भी मेरे कानों में उसकी हुँकार गूँज रही है। मैं तो बड़े आराम से क्षीरसागर में सो रहा था, इन्हीं अद्वैताचार्य की हुँकारों ने मुझे जगा दिया।)

श्रीवास जी के आंगन में श्रीव्यास पूजा की समाप्ति के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी ने ईश्वरावेश में श्रीवास पण्डित जी के छोटे भाई श्रीरामाई पण्डित (श्रीराम पण्डित) को अपनी प्रकाश वार्ता बताने के लिये अद्वैत आचार्य जी के पास भेजा। महाप्रभु जी ने श्रीराम पण्डित को कहा कि वे उन्हें जाकर कहें—"श्रीअद्वैत आचार्य जी का जिस गोलोकपति श्रीहरि को धराधाम में अवतीर्ण कराने के लिए गंगाजल व तुलसी देकर पुजाकर के कातरता-पूर्वक आवाहन किया था वे गोलोकपति अवतीर्ण हो चुके हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी भी नवद्वीप मे शुभागमन कर चुके हैं। अतः: श्रीअद्वैत आचार्य जी अपनी स्त्री सहित व पूजोपकरणों के साथ तुरन्त श्रीवास आंगन में उपस्थित हों।"

महाप्रभु जी के निर्देशानुसार रामाई पण्डित ने अद्वैत आचार्य जी के पास पहुंच कर सब बातें उन्हें बतायी।......... रामाई पण्डित से महाप्रभुजी की प्रकाशवार्ता सुनकर अद्वैत आचार्य प्रभु जी ने अपनी पत्नी सीता देवी, पुत्र श्रीअच्युतानन्द एवं अन्यान्य अनुचर वर्ग के साथ महाप्रभु जी के पादपद्मों में उपस्थित होने के लिए यात्रा तो की लेकिन महाप्रभु जी की परीक्षा लेने के लिए नन्दन आचार्य के घर में छुप गए तथा रामाई को कहा कि वे उनके छुपने के बारे में महाप्रभु जी से कुछ न बतायें। सर्वान्तर्यामी विश्वम्भर महाप्रभु जी सब जान गए। सभी के सामने वे विष्णु –सिंहासन पर बैठ गये और

अपने ऐश्वर्य रूप को प्रकट करने लगे। उस समय नित्यानन्द जी ने छत्र धारणकर लिया तथा गदाधर आदि भक्त लोग नाना प्रकार की सेवाओं में व्यस्त हो गए। महाप्रभु जी ने शीघ्रातिशीघ्र अद्वैताचार्य को बुलाने के लिए रामाई को नन्दनाचार्य के भवन पर भेजा। महाप्रभु जी सब जान गए हैं—ऐसा समझकर अद्वैत आचार्य जी आनन्द में विभोर हो गए तथा अपनी स्री के साथ महाप्रभु जी के पादपद्मों में उपस्थित हुए। अद्वैत आचार्य जी ने महाप्रभु जी को दण्डवत् प्रणाम किया तथा महाप्रभु जी का महा-ऐश्वर्य दर्शन करके स्तम्भित हो गए। उन्होंने महाप्रभु जी के चरण धोये, पंचोपचार से उनकी पूजा की तथा निम्न मन्त्र द्वारा उन्हें प्रणाम किया—

"नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥"

(चै.च.म. 13/77)

महाप्रभु जी ने अद्वैत आचार्य जी को नृत्य करने का आदेश दिया। महाप्रभु जी का आदेश पाकर अद्वैत आचार्य जी नृत्य करने लगे। उनका उद्दण्ड नृत्य देखकर सभी भक्त चमत्कृत हो उठे।

श्रील कविराज गोस्वामी जी ने लिखा है—

"एक महाप्रभु, आर प्रभु दुइजन।

दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण॥

एइ तिन तत्त्व,-'सर्वाराध्य' करि', मानि।

चतुर्थ ये भक्ततत्त्व-'आराधक' करि' जानि॥

श्रीवासादि यत कोटि-कोटि भक्तगण।

'शुद्धभक्त' तत्त्वमध्ये ताँ सबाय गणन॥

गदाधर-पण्डितादि प्रभुर 'शक्ति' अवतार।

'अंतरंग भक्त' करि' गणन याँहार॥" (चै. च.आ. 7/14 -17)

पंचतत्व के अंतर्गत श्रीगौरांग महाप्रभु जी—भक्त रूप, श्रीनित्यानन्द प्रभु—भक्त स्वरूप तथा श्रीअद्वैत आचार्य जी—भक्त अवतार (प्रभु तत्त्व या विष्णु तत्त्व) हैं। महाविष्णु जी का अवतार होते हुए भी चूँकि उन्होंने भक्त भाव अंगीकार किया इसलिए अद्वैत-आचार्य जी को भक्तावतार कहते हैं। क्योंकि श्रीगौरांग, श्रीनित्यानन्द तथा अद्वैत आचार्य जी ईश्वर तत्त्व हैं इसलिए उनके चरणों में तुलसी अर्पित होती है। अद्वैत आचार्य जी की कृपा के बगैर श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की सेवा प्राप्त नहीं होती—

"दया कर सीतापति अद्वैत गोसाञि।

तब कृपाबले पाइ चैतन्य निताई॥"

(श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय)

श्रीअद्वैत आचार्य जी की महिमा व लीला श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी द्वारा लिखित श्रीचैतन्य चरितामृत में, श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी की श्रीचैतन्य भागवत् में, श्रीनरहरि ठाकुर जी द्वारा रचित श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रंथ में तथा से श्रीअद्वैत विलास आदि विभिन्न ग्रन्थों में विस्तृत रूप से वर्णित हुई है। जो लोग विस्तारित भाव से श्रीअद्वैत आचार्य जी के चरित्र व महिमा को जानना चाहते हैं, उन्हें उपरोक्त ग्रन्थ विशेष भाव से अध्ययन करने होंगे। यहाँ पर उन सभी की आलोचना करना सम्भव नहीं है। यहाँ पर तो हम सिर्फ प्रधान-प्रधान लीला वैशिष्ट्य को स्मरण करने की चेष्टा कर रहे हैं।

नामचार्य हरिदास ठाकुर जी, रघुनाथ दास गोस्वामी जी के पिता गोवर्धन मजूमदार व ताऊ हिरण्य मजूमदार के चन्दापुर में स्थित घर में नाम महिमा कीर्तन के बाद शान्तिपुर के पास ही फुलिया ग्राम में आकर रहने लगे। वे वहाँ एक निर्जन गुफा में रहकर हरिनाम करते थे व श्रीअद्वैत आचार्य जी की इच्छा से उनके घर भिक्षा (भोजन) करते थे। हरिदास ठाकुर जी को श्रीअद्वैताचार्य जी द्वारा प्रदत्त अन्न ग्रहणकरने में संकोच होता था। लोक-शिक्षक अद्वैत आचार्य जी ने यह दिखाने के लिए कि उनका आचरण शास्त्र-सम्मत है तथा इस सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए कि हरिदास ठाकुर जैसे वैष्णव को भोजन करवाना करोड़ ब्राह्मणों को भोजन के बराबर हो जाता है, केवलमात्र वैष्णव तथा ब्राह्मणों का भोज्य श्राद्ध-पात्र* हरिदासठाकुर जी को अर्पण कर दिया। वैष्णव जिस भी कुल में आविर्भूत हों, वे वहीं पर सभी के वन्दनीय व पूज्य हैं, ये बात श्रीअद्वैताचार्य जी की लीला-वैशिष्ट्य से भली-भाँति जानी जाती है—

"अद्वैत आचार्य कहेन,"तुमि ना करिह भय।

सेइ आचरिव, जेइ शास्त्रमत हय॥

तुमि खाइले हय कोटि ब्राह्मण भोजन।

एत बलि' श्राद्धपात्र कराइला भोजन॥"

(चै.च.अ. 3/219-220)

"हरिदास ठाकुर शाखार अभ्दुत चरित।

तिनलक्ष नाम तिँहो लयेन अपतित॥

ताँहार अनन्त गुण, कहि दिग्मात्र।

आचार्य गोसाञि याँरे भुंजाय श्राद्धपात्र॥"

(चै.च.आ. 10/43-44)

---

* श्राद्ध पात्र-श्राद्ध के दिन गृहस्त वैष्णवों के लिए नियम है की वे सभी प्रकार के खाद्य द्रव्य भगवान् को निवेदन करके वैष्णव व ब्राह्मण को भोजन करवाये। अद्वैतप्रभु जी के घर जब ऐसा श्राद्ध दिवस आया तो उन्होंने वह श्राद्ध पात्र (अप्राकृत-ब्राह्मण-गुरु समझकर) हरिदास जी को खिलाया।

महाविष्णु जी के अवतार श्रीअद्वैताचार्य जी को अवलम्बन करके छः पुत्रों का जन्म हुआ। लेकिन उन्होंने अपने पुत्रों को दो प्रकार से निर्देशित किया-सार ग्राही और असार ग्राही। अद्वैताचार्य जी के अनुगत किन्तु श्रीगौर हरि से विमुख पुत्र आसार ग्राही हैं। श्रीगौरांग महाप्रभु जी में आसक्त व उनमें (महाप्रभुजी में) अनन्य प्रीतियुक्त पुत्र सारग्राही हैं। अद्वैतआचार्य जी के सारग्राही पुत्र श्रीअच्युतानन्द, श्रीकृष्णा मिश्र तथा श्रीगोपाल मिश्र हैं जबकि बलराम, स्वरूप और जगदीश असार ग्राही पुत्र है। यहाँ पर सार ग्राही पुत्रों की चावलयुक्त धान से तथा असार ग्राही पुत्रों की चावल रहित धान से तुलना की गई है।

जो श्रीअद्वैत प्रभु को वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ समझकर सेवा करते हैं उन्हें ही वैष्णव कहा जाएगा तथा जो श्रीअद्वैत प्रभु को विषयजातिय कृष्णा बुद्धि करके तथा श्रीगौरसुन्दर जी को आश्रय-जातीय भक्त समझेंगे वे कभी भी कृष्ण पादपद्मों की प्राप्ति नहीं कर सकेंगे।

(चै.भा.म. 10/162 गौड़ीय भाष्य में द्दष्टव्य)

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीअद्वैताचार्य जी को गीता के तात्पर्य की शिक्षा दी थी—

"अद्वैतेरे बलिया गीतार सत्य पाठ।

विश्वम्भर लुकाइल भक्तिर कपाट॥" (चै.भा.म.10/166)

भगवान् से, गुरु-वर्ग व वैष्णवों से शासन लाभ होना अर्थात् उनके द्वारा दण्ड का मिलना या सज़ा का मिलना जीवों के लिए अतिशय मंगल की व सौभाग्य की बात है। इस शिक्षा के लिए एक अभ्दुत लीला की अवतारणा की जाती है जो चैतन्य चरितामृत की आदि लीला के 17वें परिच्छेद में वर्णित है। उक्त चरितामृत के अमृत प्रवाह भाष्य में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है—अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी के गुरु व श्रीईश्वर पुरी के गुरु भाई थे। इस द्दष्टि से महाप्रभु जी अद्वैत आचार्य के प्रति गुरुवत् भक्ति करते थे (यद्यपि मूल में अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी के दास हैं।) अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी के इस प्रकार गौरव प्रदान के कार्य से दुःखीत होकर उनसे दण्ड प्रसाद लेने के लिए शान्तिपुर गए तथा वहाँ जाकर कुछ दुर्भाग्यशाली व्यक्तियों के पास योग-वशिष्ठ की ज्ञान-मार्गीय व्याख्या करने लगे। महाप्रभु जी ने जब सुना कि शान्तिपुर में अद्वैताचार्य जी ज्ञान-मार्गीय व्याख्या सुना रहे हैं तो वे क्रोधाविष्ट होकर शान्तिपुर पहुँचे उन्होंने अद्वैताचार्य जी की जम कर पिटाई की। सजा प्राप्त करके अद्वैताचार्य जी बोले—"देखो! आज मेरी इच्छा पूरी हो गयी और ऐसा कह कर नाचने लगे। महाप्रभुजी कृपणतापूर्वक मुझे गुरु समझते थे परन्तु आज उन्होंने अपना दास व अपना शिष्य जानकर मुझे मायावाद रूप दुर्गति से बचाने के लिए चेष्टा की"—अद्वैताचार्य जी की इस भंगी को देखकर महाप्रभुजी लज्जित होकर उनके ऊपर प्रसन्न हो गए।

"आचार्य गोसाञिरे प्रभु करे गुरुभक्ति।

ताहाते आचार्य बड़ हय दुःखमति॥

भङ्गी करि' ज्ञानमार्ग करिल व्याख्यान।

क्रोधावेशे प्रभु ताँरे कैल अवज्ञान॥

तबे आचार्य गोसाञिर आनन्द हइल।

लज्जित हइया प्रभु प्रसाद करिल॥" (चै.च.आ. 17/66-68)

"पूर्वे महाप्रभु, मोरे करेन सम्मान।

दुःख पाइ' मने आमि कैलुं अनुमान॥

मुक्ति-श्रेष्ठ करि' कैनु वशिष्ठ व्याख्यान।

क्रुद्ध हइया प्रभु मोरे कैल अपमान॥ (चै. च.आ. 12/39-40)

सभी जीवो के प्रति दयार्द्रचित रहने वाले श्रीअद्वैत आचार्य जी के प्रति शची माता के कटाक्ष को भी महाप्रभु जी ने क्षमा न करने की लीला का प्रदर्शन करके सभी को वैष्णव-अपराध से सावधान किया है। वात्सल्य रस की सेविका साक्षात् यशोदा देवी की अभिन्न स्वरूपा, शची माता का अपराध जहाँ माफ नहीं हो रहा है वहाँ औरों की तो बात ही क्या है? इस लीला में यह भी दिखाया गया है कि जिस वैष्णव के चरणों में अपराध हुआ हो; उसी वैष्णव से क्षमा माँगने पर ही उस वैष्णव-अपराध से छुटकारा मिलता है।

विश्वरूप जी ने श्रीअद्वैत आचार्य जी की पाठशाला में शास्त्र-अध्ययन करते हुए यह निश्चय करके संन्यास ले लिया कि संसार अनित्य है तथा मनुष्य जन्म का एकमात्र कृत्य हरिभजन करना है। विश्वरूप के संन्यास ले लेने से शची माता विरह-संतप्त तो अवश्य हुई किन्तु वैष्णव-अपराध की आशंका से श्रीअद्वैत आचार्य को कुछ ना बोलीं तथा "मेरा पास मेरा एक और पुत्र निमाई तो है"—यह कहकर अपने मन को समझाने लगी, परन्तु बाद में जब श्रीमन्महाप्रभु जी निज शक्ति लक्ष्मीप्रिया का परित्याग करके हमेशा श्रीअद्वैत आचार्य जी के पास रहने लगे तो शची माता ने, निमाई भी सन्यास न ले-ले; इस डर से, मन ही मन में यह कहकर कटाक्ष किया था कि ये—

'अद्वैत' 'अद्वैत' नहीं द्वैत है।

"के बले, 'अद्वैत,'-द्वैत ए बड़ गोसाईं॥

चन्द्रसम एक पुत्र करिया बाहिर।

एहो पुत्र ना दिलेन करिवारे स्थिर॥

अनाथिनी मोरे त' काहारो नाहि दया।

जगते 'अद्वैत,' मोहे से 'द्वैत माया'॥ (चै.भा.म. 22/114-116)

शची माता कहती हैं कि कौन कहता है कि ये अद्वैत है। ये गोसाई तो बड़ा ही भेदभावकारी द्वैत है। इसने चन्द्रमा के समान मेरे पुत्र को घर से निकाल दिया और इस दूसरे को भी टिकने नहीं देता। मुझ अनाथिनी पर किसी को भी तो दया नहीं आती। ये भले ही सारे जगत् वासियों के लिए अद्वैत हो परन्तु मेरे लिए यह द्वैत-माया ही है।

शची माता ने श्रीअद्वैत आचार्य के प्रति मन ही मन जो कटाक्ष किया उसे कोई नहीं जान पाया लेकिन सर्वान्तर्यामी श्रीगौरहरि सब समझ गए।श्रीवास आंगन में जिस समय महाप्रभु जी के सात प्रहर तक अपना भगवत् स्वरूप प्रकाशित करके व बिना किसी लुकाछिपी के दर्शन देकर सभी भक्तों को कृतार्थ किया, उसी समय श्रीवास जी ने महाप्रभु जी से प्रार्थना की कि वे अपना यह अपूर्व ऐश्वर्य-स्वरूप शची माता को भी दिखायें।

महाप्रभु जी ने कहा—"माता का श्रीअद्वैत आचार्य जी के चरणों में अपराध है, इसलिए उन्हें मैं ये रुप नहीं दिखायूँगा।" भक्तों से सारी बात जानकर साथ-साथ शची माता ने श्रीअद्वैत आचार्य जी से क्षमा प्रार्थना की। परमेश्वर गौरहरि को जिन्होंने गर्भ में धारण किया, उन शची माता के अपराध की बात सुनकर अद्वैताचार्य जी शची माता का गुणगान करते-करते ब्रह्म-ज्ञान-शून्य हो गए। तभी शची माता ने अद्वैताचार्य की चरण-धूलि अपने मस्तक पर धारणकर ली। ऐसा होने पर श्रीगौरहरि प्रसन्न हो गए और उन्होंने शची माता को अपने ऐश्वर्य रूप का दर्शन करवाया। यहाँ पर एक और शिक्षणीय विषय है, वह ये कि वैष्णव के अन्दर कभी भी अभिमान नहीं होता। स्वयं भगवान् श्रीगौरहरि को गर्भ में धारणकरके भी शची माता को कोई अभिमान न था। निजकृत अपराध की बात सुनने के साथ-साथ उन्होंने बिना किसी हिचक के अद्वैताचार्य जी के पास जाकर क्षमा माँगी।

श्रीवास भवन में तथा भागीरथी के किनारे हुए नगर-संकीर्तन के समय अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी के संगी हुए थे।

"कृष्णा राम मुकुन्द मुरारि वनमाली।"

सबे मिली' गाय हइ' महाकुतूहली॥

नित्यानन्द गदाधर धरिया बेड़ाय।

आनन्दे अद्वैतसिंह चारिदिके धाय॥" (चै.भा.म. 23/29-30)

भागीरथी तीरे प्रभु नृत्य करि' याय।

आगे पीछे 'हरि' बलि' सर्वलोके गाय॥

आचार्य गोसाईं आगे जन कत लैञा।

नृत्य करि' चलिलेन परमानन्द हैञा॥ (चै.भा.म. 23/202-203)

काटोया में केशव भारती जी से संन्यास लेने के बाद जब श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीकृष्णा-प्रेम में विह्वल होकर वृन्दावन की ओर धावित हुए तो श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु जी की वह अपूर्व संन्यास मूर्ति नवद्वीपवासी भक्तों को दिखाने के लिए बहुत चातुरी के साथ बालकों के माध्यम से उन्हें वृन्दावन की बजाय शान्तिपुर की ओर ले आए। यमुना जी के भ्रम में गंगा जी का दर्शन करके महाप्रभुजी उल्लसित हो उठे। इस खबर को सुनकर कि नित्यानन्द जी के माध्यम से महाप्रभु जी गंगा के किनारे आ गए हैं, तुरन्त अद्वैताचार्य जी वस्त्रादि लेकर नाव के द्वारा वहाँ पहुंच गए। अद्वैताचार्य जी को देखकर महाप्रभुजी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे कि वे वृन्दावन में हैं, तुम्हें कैसे मालूम हुआ? आप जहाँ हैं, वहीं वृन्दावन है तथा गंगा जी का ही पश्चिम प्रभाव यमुना जी हैं'—अद्वैताचार्य जी की इस प्रकार की उक्तियों से महाप्रभुजी समझ गए कि उन्हें शान्तिपुर के पश्चिम भाग में, गंगा के दूसरी ओर लाया गया है। महाप्रभु जी को स्नान करवा कर व उन्हें पहनने के वस्त्रादि देकर अद्वैताचार्य जी उन्हें अपने घर शान्तिपुर ले आए।

शान्तिपुर में महाप्रभु जी की आगमन का संवाद सुनकर शची माता व नवद्वीपवासी भक्त अद्वैताचार्य जी के घर पर इकट्ठे हो गए। सभी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अपूर्व संन्यास मूर्ति दर्शन कर विरह-व्यञ्जित सुख का आस्वादन किया अर्थात् सभी-भक्तों ने महाप्रभुजी का सन्यास रूप दर्शन करके ऐसा सुख का आस्वादन किया जिसमें फिर कुछ समय बाद बिछुड़ जाने का दुःख भी मिश्रित था। श्रीअद्वैतशक्ति श्रीसीता ठाकुरानी ने महाप्रभु जी व नित्यानन्द प्रभु जी को बत्तीस गुच्छे वाले केले के पेड़ में लगने वाले केले के पत्तों में अन्न व व्यंजनादि परोस कर दिए। सीता ठाकुरानी द्वारा

परोसे अन्न-व्यंजनादि को दोनों ने ग्रहण किया तथा भोजन करते समय नित्यानन्द प्रभु जी का अद्वैताचार्य जी से बहुत मज़ाक हुआ। यह प्रसंग श्रीचैतन्य- चरितामृत की मध्य लीला के तृतीय परिछेद में विस्तृत भाव से वर्णित हुआ है। पुत्र विरह-दुःख को हटाने के लिए महाप्रभुजी ने माता शची देवी के द्वारा पकायी रसोई का भी भोजन किया। सब भक्तों के एकत्रित हो जाने तथा महोत्सव के कारण,शान्तिपुरस्थ अद्वैत-भवन, वैकुण्ठ पूरी में बदल गया।

"आनन्दे नाचये सबे बलि' 'हरि' 'हरि'।

आचार्य मन्दिर हैल श्रीवैकुण्ठपूरी॥" (चै.च.म. 3/156)

शान्तिपुर में भक्तों से विदाई लेते समय श्रीमन् महाप्रभु जी ने शची माता को प्रबोधन देने के लिए उनकी इच्छा अनुसार नीलाचल में रहने के लिए यात्रा प्रारम्भ की तो अद्वैताचार्य एवं नवद्वीपवासी भक्त लोग महाप्रभु जी के अदर्शन से विरह संतप्त हो उठे। शकाब्द 1431 में महाप्रभु जी ने नीलाचल (उड़ीसा) की ओर यात्रा की। श्रीमन् महाप्रभु जी के दर्शनों की आकांक्षा से लगभग तीन वर्ष बाद भक्त लोग चातुर्मास में रथ-यात्रा के समय सर्वप्रथम गौड़ देश से नीलाचल गए थे—

"प्रथम वत्सरे अद्वैतादि भक्तगण।

प्रभुरे देखिते कैला नीलाद्रि-गमन॥

रथयात्रा देखि' ताँहा रहिला चारिमास।

प्रभु नृत्य-गीत परम उल्लास॥

विदाय समय प्रभु कहिला सबारे।

"प्रत्यब्द आसिबे सबे गुण्डिचा देखिबारे॥"

प्रभु-आज्ञाय भक्तगण प्रत्यब्द आसिया।

गुण्डिचा देखिया जान प्रभुरे मिलिया।"

(चै. च. म. 1/46-49)

अन्त के 24 वर्षों में से प्रथम छः वर्ष तो महाप्रभु जी के पुरुषोत्तम धाम में आने-जाने में लग गए। बाकी 18 वर्ष, वे एकान्त भाव से पुरुषोत्तम धाम में रहे। प्रथम छ: वर्ष के गमनागमन काल में जब भक्त लोगों को ये संवाद मिलता कि इस वर्ष रथ-यात्रा के समय महाप्रभु जी पुरुषोत्तम धाम में ही हैं तो वे उनसे मिलने के लिए गौड़ देश से आ जाते। अन्त के 18 वर्ष महाप्रभु जी एकान्त भाव से नीलाचल में रहे, इसलिए प्रतिवर्ष ही भक्त लोग पुरी आते तथा चार महीने वहीं ठहरते—

"वृन्दावन हैते जदि नीलाचल आइला।

आठार वर्ष ताँहा वास, काँहा नाहि गेला॥

प्रतिवर्ष आइसेन ताँहा गौड़ेर भक्तगण।

चारि मास रहे प्रभुर सङ्गे सम्मिलन॥ (चै.च.म. 1/249-250)

"अद्वैत, नित्यानन्द, मुकुन्द श्रीनिवास।

विद्यानिधि, वासुदेव, मुरारी,-जत दास॥

प्रतिवर्षे आइसे सङ्गे, रहे चारिमास।

ताँ-सबा लञा प्रभुर विविध विलास॥" (चै.च.म. 1/255-56)

"श्रीरथयात्रार आसि' हइल समय।

नीलाचले भक्त-गोष्ठी हइल विजय॥

ईश्वर आज्ञाय प्रति वत्सरे-वत्सरे।

सबे आइसेन रथयात्रा देखिवारे॥

आचार्यगोसाञी अग्रे करि' भक्तगण।

सबे नीलाचल प्रति करिला गमन॥" (चै.भा.अ. 8/4-6)

श्रीरथयात्रा का समय आ पहुँचा, अतः नीलाचल में भक्त मण्डली का आगमन हुआ। क्योंकि स्वयं महाप्रभु जी की भक्तों को आज्ञा थी कि सब प्रत्येक वर्ष रथयात्रा दर्शन करने के लिये आया करें इसलिये आचार्य गोसाईं को आगे कर के सब भक्तों ने नीलाचल की ओर प्रस्थान किया

श्रीअद्वैताचार्य जी प्रतिवर्ष चातुर्मास काल में भक्तों के साथ नीलाचल आकर श्रीनरेन्द्र सरोवर की जलकेलि लीला में, गुण्डिचा मन्दिर के मार्जन की सेवा में तथा श्रीजगन्नाथ देव जी के रथ-यात्रा उत्सव में श्रीमन् महाप्रभु जी के साथ रहते थे। श्रीअद्वैताचार्य जी के साथ उनके सारग्राही पुत्रों में से श्रेष्ठ गौरगत प्राण श्रीअच्युतानन्द भी होते थे—ऐसा कि रथ के आगे कीर्तन कर रहे सात सम्प्रदायों में से छटे सम्प्रदाय (शान्तिपुर के आचार्य की टोली) को उस सम्प्रदाय के प्रधान अच्युतानन्द जी की उपस्थिति से जाना जाता है। रथ के आगे प्रथम सम्प्रदाय के नर्तक होते थे—श्रीअद्वैताचार्य जी तथा मूल कीर्तनिया थे—श्रीस्वरूप दामोदर। श्रीअद्वैताचार्य के सारग्राही पुत्रों में से श्रीगोपाल मिश्र का नाम भी रथ-यात्रा में आने वालों में उल्लिखित हुआ है। तीसरे वर्ष गौड़ देश से जो भक्त लोग आए थे उनके साथ महाप्रभु जी की सेवा के लिए द्रव्यादि लेकर श्रीअद्वैताचार्य जी की पत्नी भी आयी थीं।

"आइ स्थाने भक्ति करि' विदाय हइया।

चलिला अद्वैतसिंह भक्त-गोष्ठी लैया॥

ये ये द्रव्ये जानेन प्रभुर पूर्व प्रीत।

सब लैला सबे प्रभुर पूर्व भिक्षार निमित्त।

सर्वपथे संकीर्तन करिते-करिते।

आइलेन पवित्र करिया सर्वपथे॥

उल्लासे जे हरिध्वनि करे भक्तगण।

शुनिया पवित्र हैल त्रिभुवन-जन॥

पत्नी-पुत्र-दास-दासीगणेर सहिते।

आइलेन परानन्दे चैतन्य देखिते॥" (चै.भा.अ. 8/39-43)

अद्वैताचार्य जी के पुत्र श्रीगोपाल मिश्र का अलौकिक चरित्र श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के बारहवें परिच्छेद में कविराज गोस्वामी जी ने वर्णन किया है। गोपाल मिश्र गुण्डिचा मन्दिर में महाप्रभु जी के सम्मुख नृत्य करते रहे। उनका अद्भुत नृत्य व भाव देखकर महाप्रभु जी और अद्वैताचार्य जी बड़े प्रसन्न हुए। गोपाल नृत्य करते-करते मूर्च्छित होकर गिर पड़े। शरीर में जान नहीं है, देखकर अद्वैताचार्य जी वेदनाकृत हो गए तथा पुत्र को गोद में लेकर नृसिंह मन्त्र जप करने लगे। विभिन्न मन्त्र पाठ करने पर भी जब बालक गोपाल के शरीर में प्राण न आए तो वैष्णव लोग दुःखित होकर क्रन्दन करने लगे। भक्तों का क्रन्दन देखकर भक्तार्तिहर महाप्रभु जी ने—**"उठह गोपाल, बलि हरि-हरि"—**कह कर गोपाल का हृदय स्पर्श किया। महाप्रभु जी का स्पर्श होते ही गोपाल उठ बैठा। गोपाल को जीवित देखकर सभी भक्त हरि ध्वनि के द्वारा आनन्द प्रदर्शित करने लगे।

श्रीअद्वैताचार्य जी के किंकर श्रीकमलाकान्त विश्वास द्वारा आचार्य को ईश्वर रूप में स्थापन करके उनके लिए राजा प्रताप रुद्र से धन माँगने पर महाप्रभु जी ने उसे बहुत डाँटा। डाँट खाने के बाद वह बहुत दु:खी हुआ। उसे दु:खी देख श्रीअद्वैताचार्य जी ने उसे समझाया कि महाप्रभु जी से दण्ड का मिलना बड़े सौभाग्य की बात है। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य-चरितामृत की आदि लीला के बारहवें परिच्छेद में वर्णित इस प्रसंग के अमृत प्रवाह भाष्य में इस प्रकार लिखा है—"कमलाकान्त ने अद्वैत आचार्य को 'ईश्वर' के रूप में स्थापन करते हुए, राजा से धन माँगा। इस प्रकार के कार्य से महाप्रभु जी बहुत असन्तुष्ट हुए। यद्यपि आचार्य ईश्वर हैं परन्तु ईश्वर होने पर भी जगत्-शिक्षक रूप में उनकी मानव-लीला ही प्रसिद्ध है। ऋण-ग्रस्त होकर राजा से धन माँगना आचार्य-आदि के लिए शर्म की बात है। धन की लालसा करना तो पहले ही सर्वतोभाव से त्यजनीय है और फिर उसमें किसी भी विदेशी राजा से उधार उतारने के लिए धन माँगना और भी गलत है-ऐसा करने से धर्म की हानि होती है। राजा स्वभावतः विषयी व्यक्ति होता है। विषयी व्यक्ति का अन्न खाने से चित्त मलिन हो जाता है | चित्त मलिन होने से कृष्ण-स्मृति का अभाव हो जाता है तथा कृष्ण-स्मृति के अभाव में जीवन निष्फल हो जाता है—इसलिए सभी लोगों के लिए यह निषिद्ध है; विशेषतः धर्माचार्यों के लिए तो यह विशेष रूप से निषिद्ध है। नामोपदेश करना-आचार्य का कर्तव्य है, किन्तु धन लेकर जो नामोपदेश करते हैं वे 'नामोपदेष्टा' पद के योग्य नहीं है, बल्कि नामापराधी हैं। ऐसे में तो यह विशेष रूप से निषिद्ध है। आचार्य द्वारा हरिनाम के बदले रुपये लेने से लोक-लज्जा होती है तथा धर्म की कीर्ति का भी बहुत नुकसान होता है।

तृतीय वर्ष में महाप्रभु के भक्तों का गौड़देश से

नीलाचल आगमन:-

महाप्रभु जी शैशवकाल में जो-जो चीजें भोजन करना अच्छा समझते थे, उन-उन द्रव्यों को लेकर जब भक्त लोग पुरी में पहुँचे तो भक्तवत्सल महाप्रभु जी ने उनके द्वारा प्रदत्त सब द्रव्यों का प्रेम के साथ भोजन किया। एक दिन अद्वैताचार्य प्रभु द्वारा विशेष रूप से आमन्त्रित होकर महाप्रभु भोजन करने के लिये उनके घर भी गये। अपनी पत्नी द्वारा रसोई के कार्य के लिये आवश्यक पदार्थ आदि सजा देने से अद्वैताचार्य जी ने स्वयं रसोई की। अद्वैताचार्य जी के

हृदय की आकांक्षा थी कि वे अकेले महाप्रभु जी को अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करवायें। उस दिन हुआ भी ऐसा ही, दैववशतः मौसम खराब होने एवं आँधी-तूफान होने के कारण महाप्रभु जी के साथ जो संन्यासी भोजन करने आते थे, उनमें से कोई भी नहीं आ पाया। अकेले महाप्रभु जी को आया देख अद्वैताचार्य जी ने आनन्द से महाप्रभु जी को बहुत प्रकार के व्यन्जन भोजन करवाये। चूँकि इंद्रदेवता ने वर्षा इत्यादि करके अद्वैताचार्य जी की इच्छा पूरी होने दी इसलिये अद्वैताचार्य जी ने कृष्ण के सेवक के रूप में उनका स्तव किया। श्रीमन्महाप्रभु जी अद्वैताचार्य के मनोभावों को समझ गये और उनकी महिमा कीर्तन करते हुये बोले—जिनकी इच्छा स्वयं कृष्ण पूरी करते हैं, इन्द्र उनकी आज्ञा का पालन करेंगे, इस में आश्चर्य की क्या बात है?

(चै.भा.अ. 9/60-72)

स्वयं श्रीमन्महाप्रभु जी ने अद्वैताचार्य जी की गुण-महिमा कीर्तन करते हुये उनके तत्त्व को प्रकाशित किया है—

'अद्वैताचार्य गोसाञि ‘साक्षात् ईश्वर’।

ताँर सङ्गे आमार मन हइल निर्मल॥

सर्वशास्त्रे कृष्णभक्त्ये नाहि जाँर सम।

अतएव ‘अद्वैत-आचार्य’ ताँर नाम॥

जाँहार कृपाते म्लेछेर हय कृष्ण भक्ति।

के कहिते पारे ताँर वैष्णवता शक्ति॥‘ (चै.च.अ 7/17-19)

(अर्थात् अद्वैताचार्य जी साक्षात् ईश्वर हैं। उनके साथ रहकर मेरा मन भी निर्मल हो गया है। तमाम शास्त्रों को उलटने से मालूम पडता है कि कृष्ण-भक्ति में उनकी बराबरी का कोई नहीं है इसीलिये तो उनका नाम अद्वैताचार्य (ऐसा आचार्य जिसके बराबर और दूसरा न हो) है। औरों की बात छोड़ो, उनकी कृपा से तो मलेच्छ के अन्दर भी कृष्ण-भक्ति उदित हो जाती है। अत: उनकी वैष्णवता की महिमा भला कौन वर्णन कर सकता है?)

श्रीमन्महाप्रभु जी ने पुरी में अद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु से श्रीरूप गोस्वामी और श्रीसनातन गोस्वामी जी का मिलन करवाया और उनसे उन्हें आशीर्वाद भी दिलवाया था।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने अद्वैताचार्य जी की कृपा से ही महाप्रभु जी के उच्छिष्ट प्रसाद को प्राप्त किया था। रघुनाथ दास गोस्वामी जी के पिता श्रीगोवर्धन मजूमदार ने निष्कपटता पूर्ण अद्वैताचार्य जी की सेवा की थी। उनके सम्बन्ध से ही रघुनाथ दास गोस्वामी जी महाप्रभु जी के कृपा पात्र हुये—

ताँर पिता सदा करे आचार्य-सेवन।

अतएव आचार्य ताँरे हैला परसन्न॥

आचार्य-प्रसाद पाइल प्रभुर उच्छिष्ट-पात।

प्रभुर चरण देखे दिन पाँच सात॥ (चै.च.म. 16/225-26)

पुरी से विदाई के समय श्रीअद्वैताचार्य के प्रति महाप्रभु जी ने जो कहा, उससे जाना जाता है कि अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी के कितने प्रिय हैं—

आइलेन आचार्य-गोसाञि मोरे कृपा करि'।

प्रेम-ऋणे बद्ध आमि, शुधिते ना पारि॥

मोर लागि' स्त्री-पुत्र-गृहादि छाड़िया।

नाना दुर्गम पथ लङ्घि" आइसेन धाञा॥

आमि एइ नीलाचले रहि जे बसिया।

परिश्रम नाहि मोर सबार लागिया॥

सन्यासी मानुष मोर, नाहि कोन धन।

कि दिया तोमार ऋण करिमु शोधन??॥

देह मात्र धन तोमाय कैलुँ समर्पण।

ताँहा बिकाई जाँहा बेचिते तोमार मन॥

(चै.च.अ. 12/70 -74)

(अर्थात अद्वैत-आचार्य जी भी मुझ पर कृपा करने के लिये यहाँ आने का कष्ट उठाते हैं। मैं उनके प्रेम का ऋणी हूँ-इस ऋण को मैं कभी नहीं चुका सकता। मेरे लिये ही ये अपनी स्त्री व पुत्रादि को छोड़कर व इतने दुर्गम पथ को तय करके यहाँ दौड़े चले आते हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो यहीं नीलाचल में रहता हूँ, आप सब के लिये मैं कोई परिश्रम नहीं करता। मैं तो सन्यासी हूँ, मेरे पास तो धन इत्यादि भी नहीं है, फिर कैसे आप का ऋण चुकाऊँगा। हाँ, ये शरीर रूपी धन मेरे पास ज़रूर है-इसे मैं आपके समर्पित करता हूँ आप इसे जहाँ चाहे बेच सकते हैं,)

श्रीअद्वैताचार्य जी जब नदिया से शान्तिपुर में वापस आये तो महाप्रभु जी द्वारा पहले भेजे हुये जगदानन्द जी से उनका साक्षात्कार हुआ। जगदानन्द को देखकर अद्वैताचार्य जी परम उल्लसित हुये। जगदानन्द जी नदिया से पुरुषोत्तम धाम वापस जाते समय अनुमति लेने के लिये जब अद्वैताचार्य जी के पास गये तो अद्वैताचार्य जी ने जगदानन्द पण्डित के हाथ एक पहेली लिखकर भेजी। अद्वैताचार्य जी की पहेली का अर्थ महाप्रभु जी को छोड़कर और कोई भी न समझ सका। पहेली इस प्रकार थी—

प्रभुरे कहिह आमार कोटि नमस्कार।

एइ निवेदन ताँर चरणे आमार॥

बाउलके कहिह-लोक हइल बाउल।

बाउलके कहिह-हाटे या विकाय बाउल॥

बाउलके कहिह-काये नाहिक आउल।

बाउलके कहिह-इहा कहियाछे बाउल॥

(चै.च.अ. 19/19-21)

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने इस पहेली का तात्पर्य अमृत प्रवाह भाष्य में लिखा है—"महाप्रभु जी को कहना कि लोग प्रेम में उन्मत हो गये हैं, अब हाट में प्रेम रूपी चावल बेचने का कोई स्थान नहीं है। महाप्रभु जी को कहना कि आउल अर्थात् प्रेमोन्मत्त बाउल संसार के कार्यों में नहीं है। महाप्रभु जी को कहना कि प्रेमोन्मत्त होकर ही अद्वैत ने ये बात कही है। तात्पर्य ये है कि प्रभु के आविर्भाव का जो तात्पर्य था वह सम्पूर्ण हो गया है। अब प्रभु की जो इच्छा, वही हो। श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य ने स्वरचित 'श्रीअद्वैत-द्वादश नामस्रोत्र', 'श्रीअद्वैताष्टकम' और 'श्रीअद्वैताष्टोत्तरशतनाम स्रोत्र' में श्रीअद्वैताचार्य जी की महिमा वर्णन की है। माघ मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को (जो कि श्रीअद्वैत सप्तमी तिथि के रूप में प्रसिद्ध है) अवलम्बन करके महाविष्णु के अवतार श्रीअद्वैताचार्य जी की शुभाविर्भाव लीला हुई।

*****

श्रीवास पण्डित

"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम्।

भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्॥" (गौ.ग.दी.10)

पंचतत्वादत्मक श्रीकृष्ण को अर्थात् श्रीकृष्ण के (1) भक्तरूप, (2) भक्त स्वरूप, (3) भक्तावतार, (4) भक्त और (5) भक्त शक्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

शक्तिमान वस्तु पाँच विभिन्न प्रकार के लीला परिचय से इन पाँच तत्वों में प्रकाशित है। वस्तु में द्वैतभाव होने के कारण एक होते हुए भी इस पाँच प्रकार की वैचित्री है। श्रीगौरंगा, श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीगदाधर, और श्रीवासादि, इन पंचतत्वो में वस्तुतः कोई भेद नहीं है, परन्तु रसास्वादन के उद्देश्य से वह विचित्र लीलामय एक तत्व ही 'भक्तरूप' , 'भक्त-स्वरूप', 'भक्तावतार', 'भक्तशक्ति' तथा शुद्ध भक्त इन पाँच विभिन्न रूपों में बंटा हुआ है। इन पाँच तत्वों में स्वयं भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण भक्त- भाव अङ्गीकार करके श्रीगौराग रूप में 'भक्त रूप', स्वयं-प्रकाश श्रीबलदेव जी 'भक्त-भाव' ग्रहणकरके श्रीनित्यानन्द रूप में 'भक्तस्वरूप' महाविष्णु के अवतार भक्तभाव को अंगीकार करके श्रीअद्वैत आचार्य रूप में 'भक्तावतार' के रूप में प्रकट हुये। यह सारे ही विष्णु तत्त्व है। ' भक्तशक्ति' और ' शुद्ध भक्त' वस्तु तत्त्व के अन्तर्गत तदाश्रित अभिन्न शक्ति तत्त्व हैं। भक्त-शक्ति में श्रीगदाधर, श्रीस्वरूप दामोदर व श्रीरायरामानन्द आदि के नाम आते हैं जबकि शुद्ध भक्त- शान्त व दास्य आदि रसों के श्रीवास आदि भक्त हैं। अतएव श्रीवास पण्डित पंचतत्त्व के अन्तर्गत है।

श्रीवास पण्डित जो पहले श्रीहट्ट जिला में रहते थे, ने बाद में नवद्वीप में आकर गौरपार्षद रूप से गौर-लीला की पुष्टि की। इनके पिता श्रीजलधर पण्डित वैदिक ब्राह्मण थे। श्रीजलधर पण्डित के पाँच पुत्रों में श्रीवास अथवा श्रीनिवास द्वितीय पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम श्रीनलिन पण्डित था तथा छोटे भाइयों के नाम श्रीराम पण्डित, श्रीपति पण्डित और श्रीकान्त पण्डित अथवा श्रीनिधि पण्डित था। इनके बड़े भाई श्रीनलिन पण्डित की पुत्री श्रीमती नारायणी देवी थी। इन्हीं श्रीमती नारायणी देवी के सुपुत्र श्रीवृदावनदास ठाकुर ही 'चैतन्य भागवत् 'के रचयिता थे। श्रीमती नारायणी

देवी के पति का नाम श्रीवैकुणठदास पण्डित था। जब वृदावन दास ठाकुर माता के गर्भ में थे, उसी समय उनके पिता ने परलोक गमन किया। पति की मृत्यु के पश्चात् श्रीमती नारायणी देवी कुमारहट्ट (हालिशहर) स्थित पतिगृह को त्याग कर नवद्वीप स्थित श्रीवास पण्डित के घर में आकर रहने लगी। श्रीनारद मुनि ही गौर लीला में श्रीवास पण्डित रूप से अवतरित हुए। श्रीनारद के सखा पर्वत मुनि श्रीवास के छोटे भाई श्रीराम पण्डित के रूप में अवतरित हुए, तथा श्रीवास-पत्नी श्रीमती मालिनी देवी श्रीकृष्ण को स्तन पान कराने वाली व्रज की एक धात्री थीं।

"श्रीवासपणिडतो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।

पर्वताख्यो मुनिवरो य आसीन्नारदप्रियः।

श्री राम पणिडतः श्रीमांस्तत् कनिष्ठसहोदरः॥

नाम्नाम्बिका व्रजे धात्री स्तन्यदात्री स्थित पुरा।

सैवेऽयं मालिनी नाम्नी श्रीवासगृहिणीमता॥" (गौ.ग.दी. 90, 42)

श्रीमहाप्रभु जी का चार सथानों में नित्य आविर्भाव है—

"शचीर मन्दिरे, आर नित्यानन्द-नर्त्तने।

श्रीवास-कीर्त्तने, आर राघव-भवने॥

एइ चारि ठाञि, प्रभुर सदा 'आविर्भाव'।

प्रेमाकृषट हय-प्रभुर सहज-सवभाव॥"

(चै.च.अ. 2/34-35)

अर्थात शची-माता के भवन में, श्रीनित्यानन्द प्रभु के नृत्य में, श्रीवास पण्डित के कीर्तन में तथा श्रीराघवजी के भवन में—इन चारों स्थानों पर श्रीमहाप्रभु नित्य विराजमान रहते हैं।

श्रीनिमाई विद्या विलास-लीला के समय श्रीमुकुन्द और श्रीगदाधर आदि भक्तों को लेकर तर्क-वितर्क किया करते थे तथा उनके विचारों का खण्डन करके उन्हें पुनः स्थापन किया करते थे। भक्तगण आश्चर्यचकित होकर विचार करते कि निमाई यदि कृष्ण-भक्त होता तो इसकी विद्या सफल हो जाती। निमाई जब श्रीवासादि भक्तों को देखकर प्रणाम करने के लिए लीला करते तो वे लोग निमाई को कृष्ण-भक्ति लाभ होने का आशीर्वाद देते।

एक दिन श्रीवास पण्डित ने श्रीमहाप्रभु को रास्ते में देखते ही कहा—

"लोग कृष्णा-भक्ति प्राप्त करने के लिए पढ़ाई करते हैं। यदि पढ़ लिखकर कृष्ण में भक्ति ही न हुई तो ऐसी विद्या से क्या लाभ? अतएव समय नष्ट न करके तुम शीघ्र ही कृष्ण-भजन करना आरम्भ कर दो। " श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों के मुख से यह बात सुनकर प्रसन्नता पूर्वक बोले-"तुम भक्त हो, तुम्हारी कृपा से मुझे अवश्य ही कृष्ण-भक्ति प्राप्त होगी"। यह एक अद्‌भुत चमत्कारमयी लीला है कि श्रीमन् महाप्रभु जी की लीला शक्ति-योगमाया के प्रभाव से भक्त लोग महाप्रभु जी के प्रति स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होने पर भी उनके परमेश्वर रूप को नहीं समझ पा रहे हैं।

गया से लौटने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रेम-उन्मत्त होकर नाना प्रकार से विकार प्रदर्शन करने पर शची माता मन-मन में यह सोचकर कि उनके पुत्र निमाई को वायुरोग हो गया है—अत्यन्त दुःखित हुईं। श्रीवास पण्डित जब श्रीमन्महाप्रभु के पास गए तो श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें कहा कि मुझे सब लोग वायु-रोग से ग्रसित बता रहे हैं किन्तु आप बताइए कि मुझे क्या हो गया है"। उत्तर में श्रीवास पण्डित हंसते हुए कहने लगे-यह आपने अच्छी कही—

'तोमार ये मत वाइ, ताहा आमि चाइ।

महाभक्ति योग देखि' तोमार शरीरे।

श्रीकृष्णेर अनुग्रह हइल तोमारे॥' (चै.भा.म. 2/113-114)

(अर्थात आप को जैसा वायु-रोग हुआ है वैसा वायु रोग तो मैं भी चाहता हूँ। तुम्हारे शरीर में महाभक्ति योग के लक्षण दिखाई पड़ते हैं और आप पर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है।)

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास पण्डित को आलिंगन करते हुए बोले कि आप भी यदि मुझे वायु रोग से ग्रसित बताते तो मैं निश्चय ही गंगा जी में कूद पड़ता।

श्रीमन्महाप्रभु के घर में तथा श्रीवास पण्डित के गृह में उच्च संकीर्त्तन सुनकर पाखण्डी लोगों की निद्रा भंग हो जाती, जिस कारण वे लोग नाना-युक्तियों द्वारा इन लोगों को डराने लगे कि हरि नाम संकीर्त्तन की उच्च ध्वनि को सुनकर यवन राजा आकर उनको उपयुक्त दण्ड देंगे। सरल स्वभाव श्रीवास पण्डित उन पाखण्डी की बातों का विश्वास करके बहुत भयभीत हुए एवं डरकर श्रीनरसिंह देव की पूजाकर ने लगे। भक्त की पीड़ा हरने वाले श्रीमन् महाप्रभु श्रीवास पण्डित को सशंकित देखकर उन्हें अभय प्रदान करने के लिए उनके घर में गये। दरवाजा बन्द देखकर महाप्रभु जी ने पाँव से आघात किया तथा दरवाजा खोलकर पण्डित से पूछने लगे कि तुम किस की पूजाकर के ध्यान कर रहे हो। जिसकी तुम पूजाकर रहे हो, देखो! वह तो मैं ही हूँ। मैं साधुजनों का उद्धार करके दुष्टों का विनाश करूँगा, तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। "ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु वीरासन पर बैठ गये तथा उन्होंने श्रीवास पण्डित को शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी अपने ईश्वर का दर्शन कराया।

श्रीमन्महाप्रभु के अति सुन्दर रूप का दर्शन करते हुए प्रेम में विभोर होकर श्रीवास उनकी स्तुति करने लगे। श्रीवास पण्डित की स्तुति से सन्तुष्ट होकर श्रीमन् महाप्रभु ने श्रीवास की स्री, पुत्र तथा पण्डित समस्त सम्बन्धियों को अपने ईश्वर रूप का दर्शन कराया। श्रीवास की भतीजी नारायणी को भी अपना अवशिष्ट प्रसाद देकर कृपा पूर्वक उससे कृष्ण नाम का उच्चारण करवाया। भक्त जैसे भगवान् को प्रिय है भगवान् भी उसी प्रकार भक्तों को अति प्रिय हैं।

श्रीधाम मायापुर में जब भी गौर नित्यानन्द की मिलन लीला का समय हुआ तो नन्दनाचार्य भवन में श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु को आया जानकर श्रीमन् महाप्रभु श्री'नित्यानन्द तत्त्व' को प्रकाशित करने के लिए सब भक्तों को लेकर वहाँ पहुँचे एवं श्रीवास को श्रीमद्भागवत का कोई श्लोक उच्चारण करने के लिए कहा। श्रीवास पण्डित ने प्रभु का संकेत समझकर श्रीमद् भागवत् से कृष्णा ध्यान सम्बन्धी एक श्लोक उच्चारण किया—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं।

बिभ्रदवासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।

रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन्गोपवृन्दै –

वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीत कीर्तिः *

(भा. 10/21/5)

श्लोक का श्रवण करने मात्र से ही श्रीनित्यानन्द मूर्च्छित हो गये और उनके अंगों में अष्टसात्त्विक विकार प्रकट होने लगे। तत्पश्चात श्रीविश्वम्बरजी ने नित्यानन्द जी को अपनी गोद में उठा लिया।

----

* उस समय नटवर वपु श्रीकृष्ण ने श्रीमस्तक पर मोर का पंख, दोनों कर्णो में कनेर के पीले पीले पुष्प तथा सुनहरा पीताम्बर वस्त्र एवं गले में वैजयन्ती माला धारणकर के अधरामृत के द्वारा वंशी के छिद्रों को भरते हुए शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि लक्षणों से युक्त अपने पद पद्मों की रति अर्थात् लीला स्थली वृन्दावन में प्रवेश किया, तब गोपियाँ उनकी महिमा का कीर्त्तन कर रही थीं।

एक दिन श्रीमन्महाप्रभुजी नज नित्यानन्द जी को व्यास पूजाकर ने के लिए इशारा किया। श्रीमन् नित्यानन्द जी की व्यवस्था के अनुसार श्रीवास के गृह में ही व्यास पूजा का आयोजन हुआ। व्यास पूजा के आदिवास कीर्त्तन में महाप्रभु जी ने बलदेवावेश में नित्यानन्द जी के बलदेव स्वरूप का प्रदर्शन किया और श्रीअद्वैत आचार्य जी को 'नाड़ा नाड़ा' कह कर पुकारने के छल से अपने अवतार का मर्म प्रकाशित किया।अगले दिन व्यास पूजाकर ते समय जैसे ही नित्यानन्द प्रभु जी ने अर्घ्य व माला महाप्रभु जी के मस्तक पर अर्पण की तो उसी समय महाप्रभु जी ने नित्यानन्द जी को अपना षड़भुज रूप दिखाया। हुआ ऐसा कि व्यास पूजा के आचार्य श्रीवास पण्डित जी ने जब नित्यानन्द जी के हाथों में माला देखकर मन्त्रोच्चारण के साथ व्यासदेव जी को प्रदान करने के लिये कहा तो नित्यानन्द प्रभु जी ने वह माला महाप्रभु जी के गले में डाल दी। श्रीव्यास जी की पूजा समापन करने के पश्चात् महाप्रभु जी ने भक्तों को संकीर्त्तन करने का आदेश दिया। संकीर्त्तन के पश्चात् श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रीवास जी से व्यास जी का नैवेद्य मांग लिया और सबको अपने हाथ से प्रसाद दिया। भक्तों ने परमानन्द से उस प्रसाद का भोजन किया। श्रीवास के दास-दसियों को भी महाप्रभु जी ने प्रसाद दिया।

श्रीवास जी की नित्यानन्द जी में निष्ठा देखकर श्रीमन्महाप्रभुजी ने श्रीवास को वर प्रदान किया कि तुम्हारे घर में लक्ष्मी का कभी भी अभाव नहीं होगा और तुम्हारे घर के कुत्ते-बिल्ली तक की भी श्रीभगवान् में अचला भक्ति होगी।

श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा के अनुसार प्रति रात्रि श्रीवास के घर में संकीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। इसमें श्रीमन् महाप्रभुजी केवल अपने पार्षदों को लेकर ही संकीर्त्तन विलास करते थे। एक बार हरिवासर तिथि को जब श्रीवास आंगन में कीर्त्तन आरम्भ हुआ तो उस दिन महाप्रभुजी के शरीर में प्रेम के विविध विकार प्रकाशित होने लगे—

हरिवासरे हरि-कीर्त्तन विधान।

नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण॥

पुणयवनत श्रीवास-अंगने शुभारम्भ।

उठिल कीर्त्तन धवनि 'गोपाल 'गोविनद'॥

हरि ओ राम-राम॥ ध्रु॥

(चालीस पद कीर्त्तन चै.भा.म 8/138-139)

श्रीमन्महाप्रभु जी की आज्ञा के अनुसार द्वार बन्द करके संकीर्तन होता था। ऐसा होने से अर्थात् अन्दर प्रवेश न कर पाने के कारण पाखण्डी लोग कड़वी-कड़वी बातें कहकर महाप्रभुजी की निन्दा करते परन्तु महाप्रभु जी के भक्त उन सब बातों पर ध्यान ना देते और कीर्तन विलास में मस्त रहते थे। रासक्रीड़ा की लम्बी रात्रि भी गोपियों को जैसे तिलार्द्ध की तरह अनुभव हुई थी उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु के कीर्त्तन विलास में मत होकर भक्तों की रात्रि भी न जाने कैसे गुज़र जाती। एक दिन कीर्तन के पश्चात् महाप्रभुजी सारे शालिग्रामों को गोद में लेकर विष्णु आसन पर आसीन हो ग ये और अपने तत्त्व को प्रकाश करते हुए भक्तों द्वारा प्रदत्त सब उपहार भक्षण करने लगे।

इसी प्रकार एक दिन श्रीवास भवन में श्रीमन्महाप्रभु जी ने 'महाप्रकाश लीला' प्रकट की। इस दिन भक्तभाव और आवेश भाव का संवरण करे बिना किसी माया-आवरण के साथ प्रहर तक अपने अप्राकृत स्वरूप में विष्णु आसन पर विराजमान रहे। उनके इंगित करने पर भक्तों ने श्रीगौरनारायण का राजराजेश्वर विधि से अभिषेक किया तथा पूजा की। श्रीगोरसुन्दर जी ने भी अपने चरण प्रसार कर सबकी अभीष्ट पूजा स्वीकार है और सब भक्तों को उनके अभीषट वर भी प्रदान किये। इस सात-प्रहरिया लीला में श्रीगोरसुन्दर जी ने विष्णु के समस्त अवतारों के रूपों को प्रकाशित किया था।

एक दिन श्रीवास जी की सास प्रभु के चरण को देखने की आशा से एक कोने में छिप कर बैठ गयी परन्तु सर्वभूतान्तर्यामी महाप्रभु जी जान गये और उस दिन नृत्य में आनन्द ना आने की बात पुनः पुनः बतलाने लगे। इससे भक्तों के साथ श्रीवास भी अत्यन्त भयभीत व चिन्तित होकर खोजने लगे कि घर में कोई बाहर का व्यक्ति तो नहीं है। अपनी सास को घर में छिपी हुई देखकर श्रीवास अत्यन्त दुःखी हुये और उन्होंने उसे केशों से पकड़ लिया तथा घसीट कर घर से बाहर कर दिया। (कारण, महाप्रभु जी की कृपा प्राप्त व्यक्ति को छोड़कर और किसी को भी लीला के दर्शन का अधिकार न था।)

श्रीचन्द्रशेखर भवन में जब महाप्रभु जी ने ब्रज लीला का अभिनय किया था तब श्रीवास जी ने नारद जी की भूमिका निभाई थी।श्रीअद्वैत आचार्य ने महाविदूषक, हरिदास जी ने कोतवाल, स्वयं महाप्रभु जी ने पहले रुक्मणी का और बाद में आद्या शक्ति के रूप का और नित्यनन्द जी ने योगमाय का अभिनय किया था। ये ठीक है कि बाद में श्रीमन् महाप्रभु ने लक्ष्मी भाव से सिंहासन पर चढ़कर व स्नेहाविष्ट होकर जगत् जननी रूप से सभी भक्तों को स्तनपान करवाया था।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवासांगन में पूरे एक वर्ष तक सारी- सारी रात संकीर्तन किया था। श्रीवास भवन में जब द्वार बन्द कर संकीर्त्तन होता था तो उस समय अनेक बहिर्मुख ब्राह्मण लोग वैष्णवों का उपहास करने की चेष्टा करते थे। श्रीवास के घर में प्रवेश न कर पाने के कारण दुमूर्ख वाचाल पाखण्डियों में प्रधान गोपाल-चापाल नाम के एक ब्रह्मण (भट्टाचार्य) ने श्रीवास को अपमानित करने के लिए जवाफूल (लाल फूल), लाल चन्दन, मदिरा के पात्र आदि देवी पूजा की सामग्री केले के पत्ते के ऊपर रखकर श्रीवास के घर के बन्द द्वार के सामने रख दी। प्रातः काल जब द्वार खोला गया और सामने यह सब देखा तो श्रीवास पण्डित हँसते हुये बोले—देखो-देखो, मैं प्रतिदिन रात के समय भवानी पूजाकर ता हूँ। अब तो तुम सब समझ गये कि मैं शाक्त हूँ। किन्तु सज्जन लोग ये सब देखकर अत्यन्त दुःखी हुये और सफाई करने वाले को बुला कर उन्होंने उन सब मद्यादी गन्दी वस्तुओं को दूर गिरवाया और गोबर से लिपकर उस स्थान को पवित्र किया। उसी वैष्णव अपराध के कारण गोपाल चापाल को कोढ़ हो गया था। जब महाप्रभुजी गंगाघाट पर आये तो गोपाल चापाल ने उनसे रोग मुक्ति के लिए प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना सुनकर महाप्रभुजी क्रोधित होते हुए बोलेः-

आरे पापी, भक्तद्वेषि, तोरे ना उद्धारिमु।

कोटिजन्म एइ मते कीड़ाय खवाईमु॥

श्रीवासे कराइल तुइ भवानी-पुजन।

कोटि जन्म हबे तोर रौरबे पतन॥

(चै.च.आ. 17/51-52)

(अर्थात् अरे पापी, भक्त द्वेषि! तेरा उद्धार नहीं करूँगा। करोड़ जन्म तक तुझे इसी प्रकार कीड़ों से खिलवाऊँगा। तूने श्रीवास से भवानी पूजन करवाया, तेरा तो करोड़ों जन्म तक रौरव नर्क में पतन होगा) श्रीमन्महाप्रभुजी संन्यास ग्रहणकरने के पश्चात् जब नीलाचल से अपराध भंजनपाट कुलिया (कोलद्वीप-वर्तमान शहर नवद्वीप) में आ ये तो उस समय जब गोपाल-चापाल ने रोग से मुक्ति के लिए प्रार्थना की तो श्रीमहाप्रभुजी को दया आ गई और उन्होंने उसे श्रीवास पण्डित के पास जाकर क्षमा प्रार्थना करने के लिए कहा। जिस वैष्णव के चरणों में अपराध हो जाता है उसी भक्त के पास जाकर क्षमा याचना करनी होती है, तभी अपराध मार्जन होता है। श्रीवास पण्डित के चरणों में क्षमा याचना करके गोपाल चापाल पूर्व कृत अपराध से मुक्त हो गया।

श्रीमद् भागवत् के महाध्यापक होने पर भी देवानन्द पण्डित भाग्यदोष से भक्ति हीन थे। एक समय श्रीवास पण्डित देवानन्द पण्डित की भागवत् व्याख्या श्रवण करने के लिए गये। भक्तराज श्रीवास भागवत् श्रवण करके प्रेम से उन्मत्त हो गए व क्रन्दन करने लगे। उनके क्रन्दन करने पर देवानन्द के पाखण्डी छात्रों ने इनको सभा से बाहर निकाल दिया। देवानन्द पण्डित ने अपने छात्रों को ऐसा करने से मना भी नहीं किया जिससे उनका वैष्णव अपराध हो गया था। बाद में सौभाग्य वशतः कुलिया में श्रीवकरेश्वर पण्डित का संग प्राप्त होने से देवानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभुजी के तत्त्व से अवगत हुये व अपने अपराध के लिए अनुतप्त हुये। इसके बाद उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा प्राप्त की। व्रजलीला में यह नन्दमहाराज के सभा पण्डित-'भागुरी मुनि' थे।

एक दिन एक दुग्धाहारी ब्रह्मचारी ने छिप कर प्रभु का कीर्तन विलास दर्शन करने के लिए श्रीवास जी से अनुरोध किया। ब्रह्मचारी और सात्त्विक आहार जानकर श्रीवास जी उसे अपने घर ले आये। श्रीवास की युक्ति के अनुसार ब्रह्मण घर में छिपकर बैठ गया किन्तु अन्तर्यामी महाप्रभु जान गये और बोले कि आज की कीर्तन में आनन्द नहीं आ रहा है, ऐसा लगता है कि किसी बहिर्मुख व्यक्ति ने घर में प्रवेश किया है। महाप्रभु जी की बात सुनकर भयभीत श्रीवास पण्डित बोले की एक दुग्धाहारी ब्रह्माचारी द्वारा आपके नृत्य के दर्शन करने के लिए विशेष आग्रह प्रकाशित करने पर उसकी तपस्या और आर्ति को देखकर मैंने उसे घर में स्थान दिया है। यह सुन महाप्रभु जी क्रोधित हो गए और बोले कि श्रीकृष्ण में शरणागति के अतिरिक्त दुग्धपान इत्यादि बहिर्मुख तपस्या द्वारा कृष्णभक्ति की प्राप्ति नहीं होती, उसको यहां से बाहर कर दो। ब्राह्मण भय से घर से बाहर हो गया और बाहर से आंशिक दर्शन के सौभाग्य की प्राप्ति के लिये अनुरोध करने लगा। परमकरुण श्रीमन्महाप्रभु जी ने उसको बुला कर अपने पादपद्म उसके मस्तक पर रख दिये और तपस्यादि की दाम्भिकता का प्रदर्शन करने के लिए निषेध किया।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा 'अमानी मानद' होकर सबको आलिंगन करते हुये व आर्ति के साथ हरिनाम संकीर्तन करने के लिये अनुरोध करने पर सभी भक्त मृदंग व शंखादि के साथ उच्च संकीर्त्तन करने लगे। विषयी व्यक्ति इसको मनोरंजन के लिए होने वाला नाचना, गाना-बजाना समझकर अथवा बे-समय महामाया की पूजा समझकर कटुक्ति द्वारा भक्तों की निन्दा करने लगे। दैवक्रम से उसी समय जिले का शासक काज़ी उसी रास्ते में गुजर रहा था। उसने कीर्त्तन के शोर से परेशान व क्रुद्ध होकर श्रीवास आंगन में आकर मृदंग तोड़ दी और किसी-2 व्यक्ति को मारा भी तथा भक्तों को चेतावनी देते हुये कहा कि यदि पुनः कीर्त्तन किया गया तो और अधिक सज़ा दी जायेगी। दुष्टों को लेकर

काज़ी जब चारों तरफ कीर्त्तन के लिये रोक लगाने लगा तो पाखण्डियों को खूब आनन्द हुआ और वे आनन्दित होकर नाना प्रकार से भक्तों का उपहास करने लगे। कीर्त्तन में बाधा उत्पन्न हो गई है, सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने क्रोध लीला का प्रकाश किया और सब भक्तों को निर्भयता पूर्वक माशालें तथा कीर्त्तन के उपकरणों के साथ आने के लिए कहा। अलग-अलग मण्डलियों मे कीर्त्तन की व्यवस्था कर श्रीमन्महाप्रभु नृत्य करते-करते गंगा के किनारे वाले रास्ते पर चलने लगे। लाखों स्रियाँ-वृद्ध-बालक सभी अपने-अपने घरों के कामों का परित्याग कर संकीर्त्तन करते-करते श्रीमन्महाप्रभु जी के पीछे-पीछे चल पड़े। संकीर्त्तन की ध्वनि सुनकर पाखण्डियों के ह्रदय काँप उठे। लाखों-लाखों हिन्दू आ रहे हैं, जानकर सिराज्जुदीन चाँद काज़ी भयभीत होकर घर में घुस गया। श्रीमन्महाप्रभुजी उसके घर गये व बड़े प्यार से सभ्य व्यक्ति की तरह उसे बुलाने लगे। उनके प्रतिपूर्ण बुलावे से आकृष्ट होकर चाँद काज़ी बाहर आया और नीलाम्बर चक्रवर्ती के साथ गाँव के सम्बन्ध के कारण महाप्रभु जी को भान्जा सम्बोधन कर परस्पर स्नेहपूर्ण आलोचना के पश्चात् बोला कि मैं मृदंग तोड़कर कीर्त्तन के लिए निषेध करके जिस दिन घर वापस आया तो उसी दिन रात्रि को मैंने देखा कि एक भयंकर आधा नराकार व आधा सिंहाकार नरहरि रूप मेरे वक्षस्थल पर चढ़ बैठा और कहने लगा—मैं मृदंग के बदले तेरी छाती फाड़ूँगा। परन्तु जब मैं डर गया तो उसने मुझे छोड़ दिया और कहा कि पुनः कीर्त्तन में बाधा ना देने का संकल्प लेने पर मैं तुझे क्षमा कर दूँगा। काज़ी ने अपने वक्षस्थल पर श्रीनरसिंह देव के नाखूनों के स्पष्ट निशान दिखाये। चाँद काज़ी शपथ लेते हुये बोला -अपने वंश में मैंने तलाक दे दिया है कि कोई भी तुम्हारे कीर्त्तन में बाधा नहीं देगा। इस प्रकार चाँद काज़ी महाप्रभु जी के भक्त हो गये। चाँद जी के स्वधाम को प्राप्त हो जाने पर ब्राह्मण पुष्करिणी ग्राम में उनकी समाधि बनी। उस समाधि क्षेत्र में इस प्राचीन गोलोक चम्पा का वृक्ष अभी भी विराजित है। उक्त चाँद काज़ी की समाधि में सभी हिन्दू-मुसलमान समान रूप से श्रद्धा करते हैं।

श्रीवास आंगन में संकीर्त्तन के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी अपने गणों के साथ गंगा स्नान करते थे। कभी-कभी भक्त प्रभु को श्रीवास आंगन में ही स्नान करवा देते थे।श्रीवास के घर की एक दासी जिसका नाम ' दुःखी' था, बड़े भाव के साथ सजल नेत्रों से महाप्रभु जी का नृत्य कीर्तन देखती थी और महाप्रभु जी के स्नान के लिए सभी धड़े गंगाजल से भर कर रखती थी। उक्त प्रकार की सेवा प्रचेष्टा देखकर व परम सन्तुष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने उसका नाम दुःखी के बदले सुखी रख दिया।

एक दिन श्रीवास के घर में रात्रि कीर्तन के समय उनका इकलौता पुत्र गुज़र गया। पुत्र के वियोग में घर की स्रियाँ रोने लगीं। स्रियों का क्रन्दन सुनकर श्रीवास जी तुरन्त अन्दर गये और क्रन्दन रोकने के लिए महिलाओं को प्रबोधन देने लगे। फिर भी शोकावेग के कारण क्रन्दन होता देख श्रीवास पण्डित द्वारा गंगा में प्राण विसर्जन करने का भय दिखाने पर ही उन्होंने क्रन्दन बन्द किया।

काफी रात तक कीर्त्तन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी कहने लगे—"आज मेरा चित्त कैसे-कैसे करता है। पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है क्या?"

पण्डित बोले –

"प्रभु मोर कोन् दुःख।

यार घरे सुप्रसन्ने तुम्हारा श्रीमुख॥"

अर्थात श्रीवास जी कहते हैं—हे प्रभु जिसके घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख हो उसे भला क्या दुःख हो सकता है।

बाद में भक्तों ने कहा—प्रभो! श्रीवास का एकमात्र पुत्र आधी रात को गुज़र गया है।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा—"इतने समय से मुझे क्यों नहीं बताया?" प्रभु आपके कीर्त्तन में बाधा होगी इसलिए श्रीवास पण्डित जी ने बताने के लिये मना किया था।

इस प्रकार के प्रेमिक भक्तों को मैं कैसे छोड़कर जाऊँगा—ऐसा कह कर श्रीमन्महाप्रभु आँसु बहाने लगे। इसके पश्चात् मृत शिशु के पास आकर उन्होंने उससे पूछा "ओहे बालक, तुम ने श्रीवास जैसे भक्त के घर को छोड़कर अन्यत्र जाने की इच्छा क्यों की?"

इस पर मृत शिशु बोला—जितने दिन मेरा श्रीवास जी के घर में रहने का समय था उतने दिन यहाँ गुज़ारे, अब आपकी इच्छा के अनुसार मैं अन्यत्र जा रहा हूँ। मैं आपका नित्य अनुगत अस्वतन्त्र जीव हूँ। आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं कर सकता। आप मुझ पर कृपा कीजिये, जिससे मुझे कभी भी व किसी भी अवस्था में आपके पदपद्मों की विस्मृति न हो।

मृत शिशु के मुख से इस प्रकार के ज्ञानगर्भित वाक्य सुनकर श्रीवास के परिवार वर्ग को दिव्य ज्ञान हुआ व उनका शौक दूर हो गया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवास से कहा—"अब से मैं और नित्यानन्द तुम्हारे दो पुत्र हैं। हम कभी भी तुम को छोड़कर नहीं जाएंगे।"

श्रीमन्महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहण के पश्चात् नीलाचल रहते समय प्रतिवर्ष श्रीवास पण्डित गोडी़य वैष्णवों के साथ चातुर्मास्य के समय पूरी धाम में आते थे।

श्रीवास पण्डित गुण्डिचा मन्दिर मार्जन लीला में व रथयात्रा में श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ रहते थे। रथ के आगे सात मण्डलियों के बीच में द्वितीय मण्डलीके मूल गायक थे श्रीवास पण्डित और इस मण्डली के नर्त्तक थे—श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु।

प्रथम मण्डली के मूलगायक श्रीस्वरूप दामोदर, नर्त्तक श्रीअद्वैत आचार्य; तृतीय सम्प्रदाय (मण्डली) के मुकुन्द मूलगायक, नर्त्तक श्रीहरिदास जी; चतुर्थ मण्डली के मूलगायक थे गोविन्द घोष और नर्त्तक थे वक्रेश्वर पण्डित; पंचम मण्डली के गायक थे कुलीन ग्राम का कीर्त्तनीय समाज और नर्त्तक थे रामानन्द और सत्यराज; षष्ट मण्डली में गायक थे शान्तिपुर का भक्त समाज और नर्त्तक श्रीअच्युतानन्द; सप्तम मण्डली में गायक थे खण्डवासी भक्त; नर्त्तक थे श्रीनरहरि और श्रीरघुननन्दन। जब श्रीमन्महाप्रभु की नृत्य करने की इच्छा हुई तो सातों मण्डलियों को एकत्रित कर लिया गया।

एक बार राजा प्रताप रूद्र अपने सेवक हरिचन्दन के कन्धे पर हाथ रखकर श्रीमन्महाप्रभु जी का अलौकिक उदण्ड नृत्य कीर्त्तन देखने लगे। उसी समय श्रीवास पण्डित प्रेमाविष्ट होकर राजा के सामने आ गये और वहीं से श्रीमन्महाप्रभु के नृत्य का दर्शन करने लगे। राजा के आगे श्रीवास को देखकर राजा के दर्शन में असुविधा होता देख हरिचन्दन ने श्रीवास के अंगों को स्पर्श करके उन्हें एक तरफ होने के लिए इशारा किया। हरिचन्दन के द्वारा बार –बार ऐसा करने पर श्रीवास जी के नृत्य दर्शन का भाव भंग होने लगा और उन्होंने हरिचन्दन को एक थप्पड़ मार दिया।

हरिचन्दन क्रोध में कुछ बोलना ही चाहता था कि राजा ने उसको रोक दिया और कहा कि बहुत भाग्य से तुम्हें श्रीवास जैसे भक्त के हाथों के स्पर्श की प्राप्ति हुई है।

श्रीमन्महाप्रभु जी के काटोया में संन्यास ग्रहणकरने पर श्रीमन्महाप्रभु का विरह न सह पा सकने के कारण श्रीवास पण्डित नवद्वीप का परित्याग कर कुमार हट्ट में रहने लगे थे। श्रीईश्वरापुरी का आविर्भाव स्थान भी कुमार हट्ट में ही था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने यहाँ पर आकर श्रीईश्वर पूरीपाद के जन्मस्थान की मिट्टी लेकर अपने बहिर्वास में बाँध ली थी। उसी समय से आगन्तुक यात्री भक्ति भाव से यहाँ की मिट्टी लेते हैं। लगातार वहाँ से मिट्टी लेते रहने से, वह सथान एक खड्डे में परिवर्तित हो गया है और अब वह ही 'चैतन्य डोबा' के नाम से प्रसिद्ध है। 'चैतन्या डूबा' के पास ही श्रीवास पण्डित जी का श्रीपाट है। श्रीमन्महाप्रभु के सपार्षद श्रीवास पण्डित के गृह में आगमन करने पर श्रीवास तथा उनके परिवार के सभी लोग श्रीमन्महाप्रभु और वैष्णवों की सेवा में निमग्न हो जाते थे।

श्रीवास जी को हमेशा सेवा में लगा देख एक दिन श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीवास से बोले कि तुम गृहस्त हो तुम्हारा अर्थ उपार्जन करने की चेष्टा करना उचित है। नहीं तो तुम्हारे कुटुम्ब का भरण- पोषण किस प्रकार होगा? श्रीवास ने कहा कि मेरी अर्थ उपार्जन की इच्छा नहीं है और साथ-साथ ही उन्होंने तीन तालियां भी बजायीं। श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा इसका अर्थ पूछने पर श्रीवास बोले एक उपवास, दो उपवास, तीन उपवास, उसके पश्चात् गले में घड़ा बाँध कर गंगा में प्रवेश कर जाऊँगा। श्रीवास का वाक्य सुनकर श्रीमन्महाप्रभु हुँकार करते हुये बोले—हो सकता है कि कभी लक्ष्मी को भी भिक्षा करनी पड़े किन्तु तुम्हारे घर में कभी भी अभाव नहीं होगा। जो अनन्य चित्त से भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करते हैं उनका योगक्षेम श्रीकृष्णा स्वयं ही वाहन करते हैं।

श्रीवास पण्डित अपने भाइयों के साथ प्रत्येक वर्ष कुमारहट्ट से नीलाचल जाते थे और शची माता के दर्शन करने के लिए मायापुर भी आते थे।

एक दिन नीलाचल में श्रीअद्वैताचार्य के नेतृत्त्व में श्रीवासादि भक्तों द्वारा परमोल्लास से श्रीमन्महाप्रभु जी के नाम-रूप-गुण लीला का कीर्तन करने पर श्रीमन्महाप्रभु जी ने क्रोध की लीला कर उस स्थान का त्याग कर दिया। परन्तु बाद में वे ही भक्तों के सामने झुक गये और उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार की।

चैत्र कृष्णाष्टमी तिथि में श्रीवास पण्डित का आविर्भाव तथा आषाढ़ कृष्णदशमी तिथि में तिरोभाव तिथि मनाई जाती है।

****

श्रीचन्द्रशेखर आचार्य

चन्द्रशेखर आचार्यश्चन्द्रो ज्ञेयो विचक्षणैः।

श्रीमानुद्धवदासोऽपि चन्द्रावेशावतारकः॥ (गौ.ग.दी. 112)

विद्वान् लोग चन्द्रशेखर आचार्य जी को चन्द्र एवं उद्धव दास जी को चन्द्रावेशावतार रूप से जानते हैं—

'आचार्यरत्न' नाम धरे बड़ एक शाखा।

ताँर परिकर, ताँर शाखा-उपशाखा॥

आचार्यरत्न नाम 'श्रीचन्द्रशेखर'।

याँर घरे देवी-भावे नाचिला ईश्वर॥ (चै.च.अ. 10/12-13)

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती ठाकुर जी ने लिखा है। कि श्रीमान् श्रीचन्द्रशेखर जी नवनिधियों में से एक हैं अथवा चन्द्र हैं। इन चन्द्रशेखर जी का घर ही आजकल 'व्रज-पत्तन'* नाम से प्रसिद्ध है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित अमृतप्रवाह भाष्य में लिखा है—श्रीचन्द्रशेखर आचार्यरत्न को किसी-किसी ग्रन्थ में श्रीमन् महाप्रभु जी के मौसा के रूप में उल्लेखित किया गया है।

श्रीगौड़ीय अभिधान में और भी स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि-"ये महाप्रभु जी के मौसा जी हैं अर्थात् शचीदेवी की बहन श्रीमति सर्वजयादेवी देवी, श्रीचन्द्रशेखर जी की धर्मपत्नी थीं।"

शाखानिर्णयामृत में श्रीश्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी का स्वरूप परिचय इस प्रकार दिया गया है:-

"पौर्णमासी पृथुप्रेमपात्रं श्रीचन्द्रशेखरम्।

अपार करुणापूर पौर्णमासीति संज्ञकम्॥"

(श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी जी के शिष्य श्रीयदुनाथ दास कृत)

श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी का आधिभाव स्थान श्रीहट्ट है—

"श्रीवास-पण्डित, आर श्रीराम-पण्डित।

श्रीचन्द्रशेखर-देव-त्रैलोक्य-पूजित॥

भवरोग-वैद्य श्रीमुरारी-नाम याँर।

'श्रीहट्टे' ए-सब वैष्णवेर 'अवतार'॥" (चै.भा.आ 2/34-35)

---

* व्रज पतन-महाप्रभु जी का देवीभाव में व्रज लीला नाटक का अभिनय स्थान, अन्य भाषा में इसे वरजपोता कहा जाता है।

श्रीमन् महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले उनके नित्यसिद्ध पार्षदों का आविर्भाव हो चुका था, यथा—

"निगूढ़े अनेक आर वैसे नदीयाय।

पूर्वे सबे जन्मिलेन ईश्वर-आज्ञाय॥

श्रीचन्द्रशेखर, जगदीश, गोपीनाथ।

श्रीमान्, मुरारी, श्रीगरुड़, गङ्गादास॥"

(चै.भा.आ. 2/98-99)

श्रीमायापुर में श्रीजगन्नाथ मिश्र जी के घर के निकट ही श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी का निवास था। (जिस स्थान पर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य मठ की स्थापना की है।) श्रीमन् महाप्रभु जी के आविर्भाव के बाद श्रीचन्द्रशेखर आचार्य तथा उनकी पत्नी हमेशा श्रीजगन्नाथ मिश्र जी के घर आकर श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के दर्शन करने आते थे तथा जगन्नाथ मिश्र जी की देखरेख में सेवा-कार्य करते थे। श्रीजगन्नाथ मिश्र जी ने जब नित्यलीला में प्रवेश कर लिया तो उसके बाद शचीमाता जी के घर की देखभाल का सम्पूर्ण दायित्व चन्द्रशेखर आचार्य जी पर आ गया था।

गया धाम से नवद्वीप में लौटने के बाद श्रीमन् महाप्रभु जी जब भक्तों के साथ कीर्त्तन-विलास में प्रमत्त होते तो प्रति रात्रि कीर्त्तन या तो श्रीवास जी के मन्दिर में होता या चन्द्रशेखर जी के भवन में।

"सर्व-वैष्णवेर हइल शुनिया उल्लास।

आरम्भिला महाप्रभु कीर्तन-विलास॥

श्रीवास-मन्दिरे प्रति निशाय कीर्तन।

कोनदिन हय चन्द्रशेखरे भवन॥"

(चै.भा.म. 8/110-111)

जगाई-मधाई पवित्र ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहणकरते हुए भी डाकूगीरी करते थे। महाप्रभु जी ने अहैतुकी कृपा परवश होकर उनके तमाम पापों को मर्जन करके उन्हें वैष्णवों के साथ संकीर्त्तन का अधिकार प्रदान किया था। महाप्रभु जी के अलौकिक कार्यों का जिन-जिन पार्षदों ने दर्शन किया था, उनमें से श्रीचन्द्रशेखर आचार्य भी एक है–

"वक्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य।

ए सब जानेन चैतन्येर सब कार्य॥"

(चै.भा.म. 13/240)

श्रीचन्द्रशेखर जी के भवन में श्रीमन् महाप्रभु जी ने ब्रज लीला का अभिनय किया था। इस प्रसंग को श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने स्वरचित श्रीचैतन्य भागवत् ग्रन्थ के मध्यखण्ड के अट्ठारहवें अध्याय में विस्तृत रूप से वर्णन किया है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने भी श्रीचैतन्य चरितामृत में इस विषय को संक्षेप में लिखा है।

"तबे आचार्येर घरे कैल कृष्णलीला।

रूक्मिण्यादि-रूप प्रभू आपने हइला॥

कभु दुर्गा, लक्ष्मी हय, कभु वा चिच्छक्ति।

खाटे बसि' भक्तगणे दिला प्रेम-भक्ति॥"

(चै.च.आ. 17/241-42)

श्रीचैतन्य भागवत् में जो लिखा है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार से है—एक दिन महाप्रभु जी ने भक्तों से व्रज -लीला का अभिनय करने के अभिप्राय को कहा तथा लीलाभिनय में कौन-सा पार्षद कौन-सा वेश ग्रहण करेगा, यह भी श्रीसदाशिव बुद्धिमन्त खान* को बता दिया। प्रभु के आदेशानुयायी बुद्धिमन्त खान द्वारा यथायथ रूप से सभी को सजा देने पर (संवार देने या तैयार कर देने पर) महाप्रभु बहुत प्रसन्न हुये। श्रीमन्महाप्रभुजी स्वयं लक्ष्मीवेश में नृत्य करेंगे, ऐसी इच्छा व्यक्त करते हुये महाप्रभु जी कहने लगे कि, देखो जो जितेन्द्रिय हैं वे ही इस लीला को देख सकेंगे। महाप्रभु जी ने जब इस प्रकार कहा तो श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीवास पण्डित आदि सब भक्त दु:खित होकर कहने लगे कि हम तो अजितेन्द्रिय हैं इसलिए नृत्य दर्शन करने के अधिकारी नहीं है।

भक्तों की बात सुनकर महाप्रभु जी ने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कहा कि आप सभी महायोगेश्वरत्व प्राप्त कर लेंगे, किसी को भी मोह नहीं होगा। महाप्रभु जी के लक्ष्मी वेश में नृत्य को देखने की आकांक्षा से शचीमाता विष्णुप्रिया जी को लेकर तथा सभी वैष्णव अपने-अपने परिवार को साथ लेकर वहाँ उपस्थित हो गये। श्रीअद्वैताचार्य महाविदूषक के वेश में,हरिदास ठाकुर जी चौकीदार के वेश में तथा श्रीवास जी नारद जी के रूप में सज्जित हुये। श्रीमुकुन्द ने कृष्णा-कीर्तन आरम्भ किया। हरिदास जी डण्डे को घुमा-घुमा कर सभी नृत्य दर्शन करने वालों को सावधान करने लगे। श्रीवास जो नारद जी के भाव में कहने लगे की, श्रीकृष्ण जी के दर्शनों की आकांक्षा से अनन्त ब्रह्माण्डों में घूमते-घूमते वे वैकुण्ठ गये, परन्तु वहाँ उन्हें सभी घर-द्वार जनशून्य अवस्था में दिखाई दिये। बाद में उन्होंने सुना कि 'कृष्ण' का तो नदिया में आगमन हो चुका है। अतः, यह सुनकर ही वे नवद्वीप में आये है।श्रीवास जी के अपूर्व भाव को देखकर जब शचीमाता मूर्च्छित होकर गिर पड़ी तो अन्यान्य स्रियों ने कृष्ण नाम सुनाकर शचीमाता की मूर्च्छा भंग की।

"संकीर्तनावेशे एथा शचीर तनय।

सदाशिव बुद्धिमन्त खाने डाकि कय॥

आजि चन्द्रशेखर आचार्येर गृहे गिया।

लक्ष्मी आदि वेशेते नाचिव सबे लैया॥

शंख, शाड़ी, काँचुली, स्वर्णादि अलंकार।

योग्य-योग्य वेशे सज्ज करह सवार॥

---

*सदाशिव बुद्धिमन्त खान एक ही व्यक्ति का नाम है।

एत कहि गौरचन्द्र प्रियगण सने।

एइ पथे गेला चन्द्रशेखर-भवने॥"

(भक्ति रत्नाकर 12/1949-52)

बाद की लीला में विश्वम्भर जी ने रुक्मिणी जी का वेश धारण किया। रुक्मिणी जी के भाव में विभाजित होकर वे स्वयं को "विदर्भसुता" समझकर-रुक्मिणी के द्वारा कृष्ण को भेजे पत्र विषयक श्लोकों का उच्चारण करने लगे। श्लोक उच्चारण करते हुए उनके नेत्रों से अश्रु धारायें बहने लगीं। इस लीला का दर्शन करके सभी वैष्णव प्रेमानन्द में विभोर हो गये।

द्वितीय प्रहर में श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी व्रजगोपी का वेश धारणकरके प्रेम विह्वल चित्त से लक्ष्मी जी के आवेश में नृत्य करने लगे। महाप्रभु जी आद्याशक्ति तथा श्रीनित्यानन्द जी राधाजी की नानी का वेश धारणकरके रंग-स्थल में उपस्थित हुये। उस समय महाप्रभु जी को सभी भक्त अपने-अपने भावों के अनुरूप कोई कमला, कोई लक्ष्मी, कोई सीता तथा कोई-कोई महामाया के रूप में दर्शन करने लगे। जिन्होंने जन्म से महाप्रभु जी को देखा था वे भी उन्हें पहचान न सके। यहाँ तक की शचीमाता भी महाप्रभु जी को न पहचान पायी। महाप्रभु जी ने लीला का अभिनय करने के बहाने अपनी तमाम शक्तियों को प्रकट किया तथा सभी शक्तियों को यथायोग्य मर्यादा प्रदान करनी चाहिए, ऐसी भी शिक्षा दी। आद्यशक्ति के वेश में महाप्रभु जी का नृत्य देखकर नित्यानन्द प्रभु मूर्च्छित हो गये तथा भक्त लोग उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे।

महाप्रभु जी ने एक और अलौकिक लीला की, वह ये कि वे गोपीनाथ जी के विग्रह को गोद में लेकर महालक्ष्मी के भाव में सिंहासन के ऊपर बैठ गये। ऐसा देखकर भक्त लोग उनका स्तव करने लगे, तभी अचानक रात्रि समाप्त हो गयी और प्रभात हो आयी-ऐसा देखकर व महानन्दमयी लीला के दर्शनों से वन्चित हो जाने के कारण सभी भक्तगण विषादग्रस्त हो गये। भक्तों को अत्यन्त विषादग्रस्त अवस्था में देखकर महाप्रभु जी ने अत्यन्त वात्सल्यभाव से युक्त होकर जगत-जननी के भाव में सभी को गोद में लेकर स्तन-पान कराया जिससे भक्तों के सभी दुःख दूर हो गये।

श्रीमहाप्रभुजी की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से चन्द्रशेखर आचार्य जी के घर में सात दिन तक अद्भुत ज्योती विद्यमान रही, लोगों का सामर्थ्य नहीं था की आँख खोल कर उक्त ज्योती का दर्शन भी कर लें। वैष्णवों द्वारा इसका कारण पूछने पर महाप्रभु जी कुछ भी जवाब नहीं देते, सिर्फ मुस्कुरा देते।

चाँद काजी के उद्धार की लीला के समय महाप्रभु जी ने भक्तों को साथ लेकर जो नगर-संकीर्त्तन शोभा-यात्रा निकाली थी, उस समय चन्द्रशेखर आचार्य भी महाप्रभु जी के साथ थे। काटोया में श्रीमन्महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहण के समय भी श्रीचन्द्रशेखर आचार्य वहाँ उपस्थित थे तथा महाप्रभुजी के निर्देशानुसार उनके संन्यास के तमाम कर्मांग आप ही ने सम्पन्न किये थे—

एत बलि' भारती गोसाञि काटोयाते गेला।

महाप्रभु ताहा याइ' संन्यास करिला।।

संङ्गे नित्यानन्द, चन्द्रशेखर आचार्य।

मुकुन्ददत्त-एइ तिन कैल सर्व कार्य॥ (चै.च.आ.17/272-273)

संन्यास के बाद जब श्रीमन्महाप्रभु जी उन्मत्त हो उठे तथा वृन्दावन की ओर दौड़ पड़े तो नित्यानन्द जी की चातुरी से वे शान्तिपुर में गंगा के किनारे लाए गये। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के संन्यास लेने की बात श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी ने ही शान्तिपुर व नवद्वीप वासियों को बतायी थी—

शिशु सब गङ्गातीरपथ देखाइल,

सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल॥

आचार्यरत्नेरे कहे नित्यानन्द-गोसाञि,

शीघ्र जाइ तुमि अद्वैत आचार्येर ठाञि॥

प्रभु लये जाब आमि ताँहार मन्दिरे।

सावधाने रहेन जेन नौका लैञा तीरे।।

तबे नवद्वीपे तुमि करिह गमन,

शची-माता लैञा आइस, आर भक्तगण॥

(चै. च. म. 3/19-22)

श्रीनित्यानन्द जी के निर्देशानुसार श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी शचीमाता को पालकी पर बैठाकर नवद्वीप से अद्वैत भवन में लाये थे।*

(चै.च.म. 3/137)

श्रीमन् महाप्रभु जी के दक्षिण भारत से वापस पुरी पहुँचने के सम्वाद को गौड़देश में भेजने के लिये महाप्रभु जी ने काला कृष्णदास को श्रीनित्यानन्द आदि पार्षदों के साथ भेजा तो उसी समय श्रीचन्द्रशेखर आचार्य के साथ काला कृष्णदास का मिलन हुआ था। चन्द्रशेखर आचार्य जी गौड़ीय भक्तों के साथ चातुर्मास्य के समय पुरुषोत्तम धाम में आते थे व वहाँ ठहरते थे। पुरुषोत्तम धाम में श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जन की लीला व नरेन्द्र सरोवर में हुई जलकेलि आदि लीलाओं के समय भी चन्द्रशेखर आचार्य जी महाप्रभु जी के साथ थे।

****

---

* प्रभातो आचार्यरत्न दोलाय चढ़ाइया। भक्तगण-संगे आइला शचीमाता लैया।

श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि

वृषभानुतनया ख्यातः पुरा यो व्रजमण्डले।

अधुना पुण्डरीकाक्षो विद्यानिधि महाशयः॥

स्वकीय भावमास्वाद्य- राधा विरह कातरः।

चैतन्यः पुण्डरीकाक्षमये तातावदत् स्वयम्॥

प्रेमनिधितया ख्यातिं गौरो यस्मै ददौ सुखी।

माधवेन्द्रस्य शिष्यत्वात् गौरवञ्च सदाकरोत्॥

तत्प्रकाशविशेषोऽपिमिश्रः श्रीमाधवो मतः।

रत्नावतीतु तत्पत्नी कीर्त्तिदा कीर्त्तिता बुधैः॥ (गौ. ग. दी. 54-57)

अर्थात् पहले जो व्रजमण्डल में वृषभानु रूप से विख्यात थे, वही महाशय इस समय श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की लीला में पुण्डरीक विद्यानिधि के नाम से विख्यात हुये। स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने स्वकीय भाव को अवलम्बन करते हुये राधा जी के विरह में कातर होकर पुण्डरीक जी को पिता कह कर सम्बोधित किया था। गौरचन्द्र जी ने ही प्रसन्न होकर इन्हें प्रेमनिधि की उपाधि दी थी और माधवेन्द्र जी का शिष्य होने के कारण श्रीमन् महाप्रभु जी इनका सम्मान करते थे। श्रीमाधव मिश्र इनका ही प्रकाश माने जाते हैं। इनकी पत्नी का नाम रत्नावती था। पण्डित व्यक्ति इनकी पत्नी को वृषभानु पत्नी कीर्तिदा कहते थे।

पिता वाणेश्वर और माता गंगादेवी को अवलम्बन कर पण्डरीक प्रभु चट्टग्राम चक्रशाला में माघ मास की बसन्त पन्चमी (शुक्ला पन्चमी) तिथि को आविर्भूत हुये थे। चट्टग्राम के छः कोस उत्तर की तरफ हाटहाजारि थाना है। उक्त थाने से एक कोस पूर्व में मेखला नामक ग्राम में पुण्डरीक विद्यानिधि का जन्म स्थान है।

विद्यानिधि जी के पिता बाघिया ग्राम, जिला ढाका के निवासी वारेन्द्र श्रेणी के विप्र थे तथा पुण्डरीक विद्यानिधि चट्टग्राम चक्रशाला ग्राम के प्रसिद्ध धनाढ्य जमींदार थे।

"चट्टग्रामेर चक्रशाला ग्रामे जमिदार।

अति धनी हय –अतिशुद्धाचार॥

वारेन्द्र ब्राह्मण हय कुलांशे उत्त्म।

पुण्डरीक विद्यानिधि हय तार नाम॥

कखन चाटिग्रामे करये वसति।

नवद्वीपे आसि कखन करेन स्थिति॥

x x x x x

माधवेन्द्र पुरीर शिष्य एइ महाशय।" (प्रेम विलास-22)

श्रील विद्यानिधि प्रभु गंगा के तट पर वास करने के लिए चक्रशाला चट्टग्राम से श्रीनवद्वीप धाम में पहुँचेंगे, अन्तर्यामी श्रीमहाप्रभु ने पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु के नवद्वीप आने की इस इच्छा को पहले ही जान लिया और उनके आने से पहले ही अर्थात् उनके नवद्वीप में पहुँचने से पहले ही 'पुण्डरीक,अरे मेरे बाप रे, बन्धु रे' कह कर अकस्मात् क्रन्दन करने लगे। भक्तों द्वारा इसका कारण पूछने पर उन्होंने पुण्डरीक विद्यानिधि का परिचय इस प्रकार दिया था—" पुण्डरीक विद्यानिधि का चरित्र अति अदभुत है। इनका नाम श्रवण करने से संसार पवित्र हो जाता है; किन्तु वे विषयी भोगियों की तरह वस्त्र पहनते हैं व विलासी द्रव्यों के साथ रहते हैं। कोई भी उन्हें वैष्णव रूप से नहीं पहचान पाता। वे सर्वदा कृष्ण-भक्ति रूपी समुद्र में निमज्जित रहते हैं। गंगा का अपने पैरों से स्पर्श न हो, इसलिए वे कभी भी गंगा स्नान नहीं करते, रात्रि को दूर से ही गंगा का दर्शन कर लेते हैं। दिन के समय लोग गंगा में कुल्ला, दन्तधावन और केश संवारना जैसे अनाचार करते हैं, इससे दुखी होकर वे दिन में कभी भी गंगा जी के दर्शन नहीं करते थे परन्तु वे गंगाजल पान किये बिना कभी भी विष्णु पूजा नहीं करते थे। चट्टग्राम और नवद्वीप दोनों स्थानों पर ही उनका घर है। शीघ्र ही वे नवद्वीप आ पहुँचेंगे, विषयी व्यक्तियों जैसा व्यवहार देखकर तुम एकदम उनको पहचान नहीं पाओगे। उनके दर्शन न कर पाने के कारण मैं अपने आप को अशान्त अनुभव कर रहा हूँ।"

नवद्वीपे करिलेन ईश्वर प्रकाश।

विद्यानिधि ना देखिया छाड़े घनश्वास।

नित्य करि’ उठिया बसिया गौर-राय।

‘पुण्डरीक बाप' बलि’ कान्दे उभराय।

पुण्डरीक आरे मोर बापरे बन्धुरे।

कबे तोमा देखिब आरे रे बापरे।*   (चै. भा. म. 7/11-13)

अनुमान है जिस समय श्रीअद्वैताचार्य जी श्रील माधवेन्द्र पूरीपाद जी से दीक्षित हुये थे, उसी समय पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु ने भी माधवेन्द्र पूरीपाद को गुरु रूप से वरण किया था। श्रीमाधवेन्द्र पूरीपाद के शिष्य होने के कारण श्रीमहाप्रभुजी अपने गुरुदेव के गुरु-भाई समझकर पुण्डरीक विद्यानिधि को मर्यादा प्रदान करते थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में भी श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने लिखा है: –

"पुण्डरीक विद्यानिधि-बड़शाखा जानि।

याँर नाम लैञा प्रभु कान्दिला आपनि"**   (चै. च. आ. 10/14)

---

*नवद्वीप में भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का आविर्भाव हो गया है और वे विद्यानिधि को न देखकर विरह में लम्बे श्वास लेते हैं। एक दिन गौरांग प्रभु नृत्य करते-करते अचानक बैठ गये और रो-रो कर पुण्डरीक बाप पुकारने लगे। और हे पुण्डरीक, हे मेरे बन्धु! हे मेरे बाप रे ! मैं कब तुम्हारा दर्शन करूँगा? इस प्रकार कहने लगे।

** पुण्डरीक विद्यानिधि की शाखा बड़ी समझनी चाहिये, जिन का नाम लेकर महाप्रभु रोते थे।

श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी, श्रीमुकुन्द दत्त व श्रीवासुदेव दत्त चट्टग्राम के निवासी होने के कारण श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु से परिचित थे। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी के पिता श्रीमाधव मिश्र के साथ पुण्डरीक विद्यानिधि जी की विशेष घनिष्ठता थी। श्रीमुकुन्द दत्त, पुण्डरीक विद्यानिधि जी के अलौकिक चरित्र और वैष्णवता से परिचित थे परन्तु श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने चट्टग्राम के निवासी होते हुये भी पुण्डरीक विद्यानिधि जी के स्वरूप को न जानने की लीला का अभिनय किया।

जिस समय पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु नवद्वीप में आकर रह रहे थे। उसी समय मुकुन्द दत्त एक दिन गदाधर पण्डित जी को अपूर्व वैष्णव के दर्शन करवाने के लिए पुण्डरीक विद्यानिधि जी के पास ले आये। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी बाल ब्रह्मचारी, अत्यन्त विषय-विरक्त और वैराग्यपरायण थे। विद्यानिधि जी के दर्शन करके व उनकी दूध की झाग के समान बढ़िया सफेद और कोमल शैय्या, अत्यन्त मूल्यवान वस्रों में इत्र की गन्ध और हाथों में लम्बी नाल वाला हुक्का इत्यादि भोग विलास के द्रव्य देखकर गदाधर जी को उनमें कोई भी वैष्णवता का लक्षण न दिखाई दिया और उनको वैष्णव न समझ पाने के कारण हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा हो गई। श्रीमुकुन्द दत्त को गदाधर पण्डित के सन्देहयुक्त विरूप मनोभावों का पता लग गया तो उनके भ्रम को दूर करने के लिये मुकुन्द दत्त जी ने कृष्णलीला-महिमा उद्दीपक निम्नलिखित दो श्लोक उच्चारण कर पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु को सुनाये—

"अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्य साध्वी।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥"

(भा. 3/2/23)

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रूधिराशना।

जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम्॥**

(भा. 10/6/35)

मुकुन्द दत्त के मुख से श्रीकृष्ण महिमात्मक श्लोकों को सुनते ही पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु 'हा कृष्ण' पुकारते हुये मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े और लोट-पोट होने लगे। पाँव की ठोकर से हुक्का व विलास की सामग्री छिन्न –भिन्न हो गई। पुण्डरीक विद्यानिधि जी के श्रीअंगों पर इस प्रकार के आलौकिक अष्टसात्तविक विकारों को देखकर गदाधर पण्डित अत्यन्त विस्मित अपने द्वारा किये गये अपराध के लिये अनुतप्त हो उठे। पुण्डरीक विद्यानिधि जी से दीक्षा ग्रहणकरके उक्त अपराध से मुक्ति का उपाय जानकर गदाधर जी ने यह प्रस्ताव मुकुन्द के समक्ष रखा। श्रीमुकुन्द ने जब गदाधर पण्डित का अभिप्राय विद्यानिधि जी के समक्ष प्रकट किया तो विद्यानिधि प्रभु ने आनन्द के साथ दीक्षा प्रदान का शुभ दिन निर्दिष्ट कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा भी सम्मति प्रदान करने पर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने पुण्डरीक विद्यानिधि जी से मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की।

---

*अहो क्या आश्चर्य है! बकासुर की बहन दुष्टा पूतना ने प्राणों के विनाश की इच्छा से प्रेरित होकर जिनको कालकूट मिश्रित स्तन पान कराने पर भी धात्रि (कृष्ण को अपने बालक की भान्ति दूध पिलाने वाली गोलोकवासिनी अम्बिका-किलिम्बिका की तरह) गति प्राप्त की थी, उन परम दयालु श्रीकृष्ण के बिना मैं और किसके शरणापन्न होऊँ?

**खून पीने वाली व लोगों के बच्चों को मारने वाली राक्षसी पूतना ने श्रीकृष्ण को मारने की इछा से स्तन-पान करवाने पर भी गोलोक की गति प्राप्त की थी।

कृष्णलीला में पुण्डरीक विद्यानिधि वृषभानुराज और गदाधर पण्डित श्रीराधिका थीं। इसीलिये श्रीराधिका के पिता वृषभानुराज होने के कारण ही श्रीराधाभाव में विभावित महाप्रभु जी ने 'पुण्डरीक रे' 'बाप रे' पुकार कर क्रन्दन किया था।

श्रीकृष्ण के दोनों पार्षदों अर्थात् विद्यानिधि प्रभु और गदाधर पण्डित जी का दीक्षा के बाद फिर वही पहले की लीला वाला गाढ़ प्रीति पूर्व सम्बन्ध प्रदर्शित होने लगा। वैष्णव कब कौन सी लीला प्रकट करते हैं, इसे उनकी कृपा के बिना कोई भी समझने में समर्थ नहीं है।

वैष्णव चिनिते नारे देवेर शकति।

मुइ कोन छार शिशु अल्पमति॥

[अर्थात् वैष्णव की पहचान करने की शक्ति देवताओं में भी नहीं है। फिर मैं मूर्ख, शिशु तथा अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति उनकी क्या पहचान करूँगा।]

पुण्डरीक विद्यानिधि जी परम वैष्णव होने पर भी अपनी वैष्णवता को छिपा कर विषयी भोगी के समान रहते थे। सांसारिक ज्ञान से अथवा अपनी चेष्टा से भगवान् को व वैष्णवों को पहचाना नहीं जा सकता।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत के गौड़ीय भाष्य में इस प्रकार लिखा है: –

कृष्ण की लीला के विषय सांसारिक ज्ञान से समझ में आने वाले नहीं हैं। किसी-किसी समय भक्त भी विषयी लोगों का सा आचरण करते हुए जगत् के जीवो की वन्चना करते हैं।

साधारण भोग दृष्टि वाले मूढ़ विचारक कृष्ण को दुनियावी असत् नायक समझकर उनके प्रति श्रद्धाहीन हो बैठते हैं तथा कोई-कोई उन्हें जन्मने-मरने वाला ऐतिहासिक पुरुष समझकर उनके वास्तविक स्वरूप से अपरिचित रहते हैं।

कई बार तो कृष्ण के भक्त भी अयोग्य व्यक्तियों के आगे अपने वास्तविक स्वरूप को प्रदर्शित करने में संकोच कर विषयी व्यक्तियों जैसा अभिनय करते हैं।

जो बाहर का वेश देखकर भ्रमित हो जाते हैं उनके लिये प्रच्छन्न गौरवतार में श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी ने अपने आपको विषयियों के आसन पर आसीन किया था।

एक दिन पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु, महाप्रभु जी के दर्शनों की उत्कण्ठा से घोर रात्रि में महाप्रभु जी के पास पहुँचे और महाप्रभु के दर्शन करने मात्र से प्रेमविह्वल होकर मूर्च्छित से हो गये, यहाँ तक कि वे उनको दण्डवत् प्रणाम भी नहीं कर सके। महाप्रभुजी भी अपने प्रियतम् भक्त विद्यानिधि प्रभु के दर्शनों के लिये व्याकुल थे। सो, उन्होंने भी उसी समय विद्यानिधि को अपने वक्षस्थल से लगाकर उनके कलेवर को प्रेमाश्रुओं से अभिषिक्त कर दिया। महाप्रभु जी द्वारा पुण्डरीक, बाप, प्रेमनिधि इत्यादि शब्दों द्वारा बुलाने एवं क्रन्दन करने से भक्त समझ गये कि विद्यानिधि जी महाप्रभु जी के प्रियतम है। विद्यानिधि प्रभु भक्तों में आचार्यनिधि के नाम से प्रसिद्ध थे—

'पुण्डरीक बाप' बलि कान्देन ईश्वर।

"बाप देखिलाम आजि नयन गोचर॥"

निद्रा हैते आजि उठिलाम शुभक्षणे।

देखिलाम 'प्रेमनिधि' साक्षात् नयने॥

(चै.भा.म. 7 /131,143)

[महाप्रभु जी पुण्डरीक बाप कहकर रोने लगे और साथ ही कहने लगे कि आज हीं मैंने अपने नयनों से अपने पिता जी को देखा। आज मैं शुभ घड़ी में निद्रा से उठा तभी तो अपने प्रेमनिधि को साक्षात् इन नयनों से देखा।]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने जिस समय अपने पार्षदों के साथ श्रीवास आंगन में संकीर्तन विलास किया था उस समय उनके पार्षदों में पुण्डरीक विद्यानिधि भी थे।

महाप्रभु जी के आदेश से प्रत्येक घर में जाकर कृष्ण नाम वितरण के द्वारा जीवो का उद्धार करते समय श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर ने जगाई-मधाई का उद्धार किया था। जगाई-मधाई के उद्धार के पश्चात् महाप्रभु द्वारा जगाई-मधाई को लेकर भक्तों के बीच बैठने पर जगाई-मधाई में बहुत से प्रेम विकार प्रकटित हुये थे। उस समय वहाँ पर उपस्थित पुण्डरीक विद्यानिधि उन्हें देखकर प्रेम में विभोर हो उठे थे। श्रीमन्महाप्रभुजी की आज्ञा के अनुसार श्रीजगन्नाथ जी की रथ यात्रा के दर्शनों के लिये श्रीअद्वैताचार्य जी के साथ गौड़देश के भक्त चातुर्मास के समय प्रतिवर्ष नीलाचल जाते थे। नीलाचल की ओर यात्रा करने वाले गौरंग महाप्रभु जी के पार्षदों में से एक मुख्य पार्षद थे—पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु—

अद्वैत, नित्यानन्द, मुकुन्द, श्रीवास।

विद्यानिधि, वासुदेव, मुरारि-यत दास॥

प्रतिवर्षे आइसे संगे, रहे चारिमास।

ताँ-सभा लैञा प्रभुर विविध विलास॥

(चै.च.म. 1/255-256)

(अर्थात श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीमुकुन्द, श्रीवास, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीवासुदेव, श्रीमुरारी तथा अन्य अनेक भक्त प्रतिवर्ष इकट्ठे होकर आते और पुरी धाम में चार महीने रहते। इन सब को साथ लेकर महाप्रभु जी अनेक प्रकार की लीलायें करते थे।)

पुरुषोत्तम धाम में श्रीजगन्नाथ देव जी की चन्दन यात्रा के समय श्रीनरेन्द्र सरोवर व चन्दन सरोवर के जल में श्रीमन्महाप्रभु जी की भक्तों के साथ जो जलक्रीड़ा की लीला होती थी उसमें पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु भी साथ रहते थे। स्वरूप दामोदर जी के साथ अति गाढ़ सख्य भाव होने के कारण सरोवर में एक दूसरे के ऊपर जल फैंक कर दोनों आनन्दित होते थे।

दुइ सखा –विद्यानिधि, स्वरुपदामोदर।

हासिया आनन्दे जल देन परस्पर॥

(चै. भा.अ. 8/124)

[दोनों मित्र अर्थात् विद्यानिधि तथा स्वरूप दामोदर हँसते हुए आनन्द के साथ एक दूसरे के ऊपर जल फैंकते थे।]

पुरी में श्रीगुण्डिचा मार्जन लीला में भी पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ गुण्डिचा मन्दिर मार्जन सेवा एवं भक्तों के साथ महाप्रसाद सेवन किया था।

एक दिन श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने श्रीमन्महाप्रभु से पुनः दीक्षा ग्रहण का प्रस्ताव रखते हुए कहा—

"इष्टमन्त्र आमि ये कहिलुँ कारो प्रति।

सेइ हैते आमार ना स्फुरे भाल मति॥

सेइ मन्त्र तुमि मोरे कह पुनर्वार।

तबे मन-प्रसन्नता हइबे आमार॥" (चै. भा. अ. 10/23-24)

[अर्थात् अपना जो ईष्ट मन्त्र मैंने किसी को सुना दिया, उसी कारण से मेरी मन्त्र स्फूर्ति ठीक प्रकार से नहीं हो रही है अतः वही मन्त्र आप मुझे फिर से सुनाओ जिससे मेरा मन प्रसन्न हो जाये।]

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी की इस बात को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा—

प्रभु बोले,-तोमार ये उपदेष्टा आछे।

सावधान-तथा अपराधी हओ पाछे॥

मन्त्रेर कि दाय, प्राणो आमार तोमार।

उपदेष्टा थाकिते ना हय व्यवहार॥

(चै. भा. अ. 10/25-26)

[प्रभु बोले—आपके गुरु तो है। सावधान, ऐसा करने से फिर तो मुझे अपराधी होना पड़ेगा। मन्त्र की क्या बात, मेरे प्राण भी तुम्हारे ही हैं परन्तु तुम्हारे उपदेष्टा रहते हुये ऐसा व्यवहार ठीक नहीं है।]

यह सुनकर गदाधर जी ने कहा—

"तिँहो न आछने एथा। ता' न परिवर्त्ते तुमि कराह सर्वदा।"

(अर्थात् वे तो यहाँ है नहीं इसलिये उनके बदले सारा कार्य आप ही करो।)

इस पर महाप्रभु जी ने कहा—

"तोमार ये गुरु विद्यानिधि।

अनायासे तोमारे मिलिया देवे विधि॥"

(चै. भा. अ. 10/28)

(अर्थात्-महाप्रभु जी कहते हैं कि तुम्हारे जो गुरु विद्यानिधि जी है, विधि का विधान ही कुछ ऐसा होगा कि जल्दी ही तुम अपने गुरु जी से मिलोगे।)

सर्वज्ञ चूड़ामणि महाप्रभु सब जानते हैं। अतः उन्होंने कहा कि दस दिन के भीतर ही विद्यानिधि जी मुझे मिलने यहाँ (उत्कल में) आयेंगे और ऐसा ही हुआ। विद्यानिधि जी बिना सूचना के ही वहाँ आ गये। उनके आते ही महाप्रभुजी बाप आ गया, बोलते-बोलते प्रेमानन्द में विह्वल हो गये। इधर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने भी उनसे पुनः इष्ट मन्त्र श्रवण किया—

"गदाधर देवो इष्टमन्त्र पुनर्वार।

प्रेमनिधिस्थाने प्रेमे कैलेन स्वीकार।

आर कि कहिब प्रेमनिधिर महिमा।

याँ'र शिष्य गदाधर एइ प्रेम सीमा"

(चै. भा. अ. 10 /79 -80)

परमाराध्य प्रभुपाद जी ने चै.भा.अ. 10/24 संख्यक पयार की विवृति में लिखा है कि भोगमयी चिन्ता को छोड़ने के लिये जिस शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह ही मन्त्र है। अश्रद्धालु व्यक्ति को ऐसे मन्त्र का उपदेश करने से उपदेशक

के हृदय में मलिनता प्रवेश करती है। संगदोष से दिव्य ज्ञान नष्ट होने पर दिव्य ज्ञान को पुनः लेना आवश्यक है, इसी उद्देश्य से श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने श्रीगौरसुन्दर जी से उनको पुनः दीक्षा देने का अनुरोध किया था। किन्तु महाप्रभु जी ने उनको पूर्व गुरु (विद्यानिधि) से ही पुनः मन्त्रोपदेश सुनने को कहा।

यहाँ पर शिक्षणीय विषय यह है कि श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु जी के नित्यसिद्ध पार्षद हैं। उनमें किसी साधक की तरह अनर्थ के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं हो सकती। उनको केवल निमित्त बनकर महाप्रभु जी ने शिक्षा दी कि अपात्र को मन्त्र का उपदेश करने से मन्त्र की ताकत क्षय होती है और मन्त्र, साधक के हृदय में पहले की तरह आनन्द के साथ स्फुरित नहीं होता। ऐसी अवस्था में दीक्षा गुरु से फिर वही मन्त्र दुबारा सुनने पड़ते हैं, अन्य किसी से श्रवण करना विधि सम्मत नहीं है। कारण, सद्गुरु कभी भी परिवर्तनीय नहीं है और जहाँ तक बात रही गदाधर जी के यह कहने की कि मुझे मन्त्र ठीक से स्फूरित नहीं हो पा रहे हैं—ये दीनता की बात केवल मात्र लोकशिक्षा के लिये ही है।

उड़न षष्ठी यात्रा* के उपलक्ष्य में जगन्नाथ जी के सेवकों द्वारा जगन्नाथ-बलराम जी को माँडयुक्त (मावे वाले) वस्त्र पहनाया देख, पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु, जो कि शुद्ध सदाचारी वैष्णव थे, को बिल्कुल अच्छा न लगा। जगन्नाथ देव के सेवकों का इस प्रकार आचरण अच्छा न लगने पर उन्होंने अपने सखा स्वरूप दामोदर से कहा—

---

*उड़न षष्ठी-शीतकाल के आगमन की प्रथम षष्ठी (छठी)तिथि को उड़न षष्ठी कहते हैं।इसी दिन श्रीजगन्नाथ देव जी के अंगों पर शीत के वस्त्र अर्पित किये जाते हैं। यह शीत वस्त्र माँडुया वसन अर्थात जुलाहे के माँडयुक्त(मावे वाले)बिना धोये वस्त्र होते हैं। देवता को मांड वाले वस्त्र देने के कारण पुण्डरीक विद्यानिधि ने थोड़ी त्रुटि दिखाकर उत्कल भक्तों के प्रति थोड़ी सी घृणा प्रकाशित की और उसका उपयुक्त फल भी प्राप्त किया।

-श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

"मण्डुया वसन ईश्वरे रे देन केने॥

ए देशे त' श्रुति स्मृति-सकल प्रचुरे।

तबे केने बिना धौते मण्डवस्त्र परे?"

(चै. भा. अ. 10/104)

(अर्थात्-ये लोग माँडयुक्त वस्त्र जगन्नाथ जी को क्यों पहनाते हैं? अरे, यहाँ तो श्रुति स्मृति की मान्यता है, फिर श्रुति स्मृति को मानते हुये भी ये क्यों माँड वाले कपड़े पहनाते हैं?)

इसके उत्तर में स्वरूप दामोदर जी बोले कि ईश्वर का आचरण लौकिक स्मृति के शासन से अतीत और दोष रहित है। उक्त विचार विद्यानिधि प्रभु के हृदय को प्रसन्न करनेवाला न होने के कारण वे प्रत्युत्तर में बोले- भगवान के सम्बन्ध में यह ठीक होने पर भी भगवद्-दासों के लिए शुद्धाचार से रहना ही संगत है। श्रीविग्रह निर्गुण होने के कारण वहाँ पर यह विचार ठीक हो सकते है किन्तु सेवक तो निर्गुण ब्रह्म नहीं है, उन्हें तो गुण दोष का विचार करना आवश्यक है। विद्यानिधि प्रभु यद्यपी भगवान् के परम भक्त है परन्तु परमभक्त होने पर भी महाप्रभु जी ने अपने प्रियजन के माध्यम् से जगद्वासियों को यह शिक्षा दी कि जगन्नाथ जी के भक्तों के आचरण में दोष दर्शन करना ठीक नहीं है। अतः रात्रि को स्वप्न में भगवान् जगन्नाथ व बलराम जी विद्यानिधि के निकट उपस्थित हुये। स्वप्न में जगन्नाथ जी की क्रोधमूर्ति को देखकर विद्यानिधि भयभीत हो गये। उन्होंने स्वप्न में देखा की जगन्नाथ और बलराम जी दोनों ही उनकी दोनों गालों पर थप्पड़ मार

रहे हैं। विद्यानिधि प्रभु द्वारा भयभीत और आर्त स्वर से कृष्ण, रक्षा करो, रक्षा करो, अपराध क्षमा करो, चिल्लाने और क्रन्दन करने पर जगन्नाथ जी ने कहा—

तोर अपराधेर अन्त नाञि।

मोर जाति मोर सेवकेर जाति नाञि।

सकल जानिला तुमि रहि' एइ ठाञि॥

तबे केन रहियाछे, जाति नाशा-स्थाने।

जाति राखि' चल तुमि आपन-भवने॥ (चै. भा. अ. 10/131-133)

[अर्थात् जगन्नाथ जी पुण्डरीक विद्यानिधि जी को कहते हैं कि तेरे अपराधों का अन्त नहीं है। मेरी और मेरे सेवकों की जाति नहीं होती। यहाँ रहकर जब तुम्हें सब पता चल गया है तो तब इस जाति नाश के स्थान पर क्यों रहते हो, अपने घर जाओ और अपनी जाति को बचाओ।]

विद्यानिधि प्रभु प्रतः स्वप्न टूटने पर जब उठे तो उनके गालों पर थप्पड़ों के आघात के निशान थे और उनकी गालें फूली हुई थी। विद्यानिधि जी की गालें फूली हुई देखकर भक्त हँसने लगे। विद्यानिधि जी जगन्नाथ जी के कितने प्रिय है, यह घटना ही इसका साक्षात् प्रमाण है कि भगवान् ने स्वयं आकर उन्हें थप्पड़ मारे। आराध्य देव अत्याधिक स्नेहावश ही प्रियजनों पर शासन करते हैं: –

सेइ रात्र्ये जगन्नाथ-बलाइ आसिया।

दुइ भाइ चड़ान ताँरे हासिया हालिया॥

गाल फुलिल आचार्य अन्तरे उल्लास।

विस्तारि' वर्णियाछेन वृन्दावन दास॥

(चै. च. अ. 16/80 -81)

[उसी रात को जगरनाथ तथा बलराम दोनों भाई आकर हँसते-हँसते पुण्डरीक विद्यानिधि के गालों पर थप्पड़ मारने लगे। यद्यपी गाल फूले हुए थे, तब भी पुण्डरीक जी के हृदय में उल्लास था। श्रीवृन्दावन दास जी ने इस घटना का विस्तृत रूप से वर्णन किया है।]

ए भक्तेर नाम लैञा गौरांग ईश्वर।

'पुण्डरीक बाप' बलि' कान्देन विस्तर॥

पुण्डरीकविद्यानिधि चरित्र शुनिले।

अवश्य ताँहारे कृष्णपादपद्म मिले॥

(चै. भा. अ. 10/180-181)

[श्रीगौरांग महाप्रभु इस भक्त का नाम अर्थात् 'पुण्डरीक बाप' पुकार कर बहुत रोते थे। पुण्डरीक विद्यानिधि का चरित्र श्रवण करने से अवश्य ही श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है।]

भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लिखित हुआ है कि श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीराधिका जी का जन्मोत्सव पुण्डरीक विद्यानिधि जी के घर पर ही किया था।

(भक्ति रत्नाकर 12/3177)

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने पुण्डरीक विद्यानिधि जी की महिमा कीर्तन करते हुये ही श्रीचैतन्य भागवत का उपसंहार किया हैं।

****

श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी

श्रीराधाप्रेमरूपा या पुरा वृन्दावनेश्वरी।

सा श्रीगदाधरो गौरवल्लभः पण्डिताख्यकः॥

निर्णीतः श्रीस्वरूपैर्यो व्रजलक्ष्मीतया यथा।

पुरा वृन्दावने लक्ष्मीः श्यामसुन्दरबल्लभा॥

साद्य गौरप्रेमलक्ष्मीः श्रीगदाधर पण्डितः।

राधामनुगता यत्तल्ललिताप्यनुराधिका।

अतः प्राविशदेषा तं गौरचन्द्रोदये यथा॥ (गौ. ग. दी. 147-150)

"गदाधर पण्डितादि-प्रभुर निज शक्ति।

ताँ’ सभार चरणे मोर सहस्र प्रणति॥ (चै. च. आ.1/41)

गुरु (अर्थात शिक्षा गुरु व दीक्षा गुरु), ईशवर भक्त, ईश्वर, अवतार, प्रकाश एवं शक्ति-इन छ: तत्त्वों के रूप में ही श्रीचैतन्य देव का विलास है तथा अचिन्त्य-भेदाभेद विचार से वे अद्वयज्ञान कृष्णचैतन्य नाम से जाने जाते है।

कृष्ण लीला में जो श्रीराधिका जी हैं, गौर लीला में वे ही गदाधर पण्डित गोस्वामी जी हैं।

गौर नारायण जी की शक्ति हैं—लक्ष्मीप्रिया एवं विष्णुप्रिया तथा गौरकृष्ण की शक्ति हैं—श्रीगंगाधर पण्डित गोस्वामी—

पंचतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम्।

भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्।

पंचतत्त्व अवतीर्ण चैतन्येर संगे।

पंचतत्त्व लैञा करेन संकीर्तन रंगे॥

पंचतत्त्व एक वस्तु-नाहि किछु भेद।

रस आस्वादिते तत्त्व विविध विभेद॥

(चै.च.आ.7/4-5)

श्रीगौरांग, श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीगदाधर तथा श्रीवासादि पंचतत्त्व में वस्तुत: कुछ भेद नहीं है, परन्तु रसास्वादन के उद्देश्य से विचित्रलीलामय एक तत्त्व ही भक्त रूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त शक्ति और शुद्धभक्त—इन पांच रूपों में व्यक्त है।

जय जय नित्यानन्द गदाधरेर जीवन।

जय जय अद्वैतादि भक्तेर शरण॥

अर्थात् श्रीगदाधर जी के जीवन-स्वरूप श्रीनित्यानन्द जी की जय हो, जय हो। भक्तों के आश्रय श्रीअद्वैताचार्य जी की जय हो, जय हो।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभु जी के अन्तरंग भक्तों में से सर्वप्रधान भक्त हैं। ये शक्ति तत्त्व के मूल हैं—ऐसा श्रीनवद्वीप लीला और नीलाचल लीला, दोनों लीलाओं में ही वर्णित है। इनका वास स्थान नवद्वीप नगर में था।

बाद में नीलाचल में क्षेत्र संन्यास लेकर ये समुद्र के तट पर टोटा अर्थात् एक उपवन में रहते थे। श्रीराधा गोविन्द जी का मधुर रस से भजन करने वाले शुद्ध भक्त सम्प्रदाय के लोग श्रीगदाधर जी का आश्रय लेते हैं और इनका आश्रय लेने पर ही उनकी गिनती श्रीगौरांग महाप्रभु जी के अन्तरंग भक्तों में होती है। हाँ, जो भक्त मधुर रस द्वारा भगवद् भजन में उत्साही नहीं हैं वे नित्यानन्द प्रभु जी के आनुगत्य में शुद्धभक्ति करते हैं। श्रीनरहरि इत्यादि कई प्रमुख भक्त श्रीगदाधर पण्डित के आनुगत्य में थे। उन्होंने श्रीगदाधर के प्रिय सेव्य जानकर ही श्रीगौरसुन्दर जी का आश्रय ग्रहण किया था। कोई-कोई श्रीमहाप्रभु जी को 'नित्यानन्द-जीवन' एवं कोई-कोई 'गदाधर-जीवन' कहते हैं।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी 1408 शकाब्द में वैशाखी अमावस्या तिथि को चट्टग्राम-बेलेटि ग्राम(वर्तमान में बंगलादेश) के वारेन्द्र ब्राह्मण वंश में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता श्रीमाधव मिश्र तथा माता श्रीरत्ना देवी थीं इनके छोटे भाई का नाम श्रीवाणी नाथ था। इनका कश्यप गोत्र था। 12 वर्ष तक बेलेटी ग्राम में रहने के पश्चात् वे नवद्वीप आ गये थे। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी बाल ब्रह्मचारी थे। शैशव काल से ही श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी की विषयों के प्रति विरक्ति को देखकर श्रील ईश्वर पुरीपाद जी ने परम स्नेहासिक्त होकर उन्हें स्वरचित कृष्ण-लीलामृत ग्रन्थ अध्ययन करवाया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब नवद्वीप में विद्याविलास आरम्भ किया तो तब ऐसा कोई पण्डित नहीं था जो तर्क करने में श्रीमन्महाप्रभु जी से भयभीत न होता हो। श्रीमन्महाप्रभु दूसरे का मत खण्डन करते और तुरन्त खण्डन करके पुन : उसे स्थापन कर देते। श्रीमुकुन्द व श्रीवासादि भक्तवृन्द जो कि मात्र कृष्ण भक्ति रस के पान में ही आनन्द प्राप्त करते थे, श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ तर्क होने के भय से उनको देखते ही भाग जाते थे। नवद्वीप में श्रीमन्महाप्रभु निमाई पण्डित के नाम से प्रसिद्ध थे।

एक दिन निमाई ने गदाधर पण्डित को देखकर उनसे मुक्ति के लक्षण पूछे तो गदाधर जी ने न्यायशास्र के मतानुसार आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति को ही मुक्ति का लक्षण बताया। निमाई पण्डित ने उक्त विचार का खण्डन कर दिया व स्वयं मुक्ति के लक्षणों का वर्णन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु जी से मुक्ति शब्द की अपूर्व व्याख्या सुनकर सभी भक्त विस्मित हो गये और मन ही मन में सोचने लगे कि यदि ये कृष्ण भक्त होते तो अच्छा होता। गया से वापसी के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी के अद्‌भुत प्रेम का दर्शन कर सब भक्त आश्चर्य में पड़ गये। श्रीगिरधर जी ने श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम विकार का साक्षात् दर्शन कर सब के सामने वर्णन किया तो महाप्रभु जी के शरीर में उत्पन्न प्रेम के विकारों की बात सुनकर सभी भक्त परमोल्लसित हो उठे।

एक दिन अपना स्वरूप प्रकाश करने की इच्छा से श्रीमन्महाप्रभु जी ने सब को शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर पर आने के लिये कहा। यह बात सुनकर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर छिप गये थे। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर में श्रीमन्महाप्रभु जी ने कृष्णप्रेमोन्मत्तता और प्रेम विचारों का प्रदर्शन किया, जिसे देखकर गदाधर पण्डित गोस्वामी मूर्च्छित हो गये। गदाधर को लक्ष्य कर श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा—

प्रभु बले,—"गदाधर! तुमि से सुकृति।

शिशु होते कृष्णेते करिया दृढ़ मति॥

आमार से हेन जन्म गेल वृथा-रसे॥

पाइलुँ अमूल्य निधि, गेला दैव दोषे॥" (चै.च.म. 1/98-99)

महाप्रभु कहने लगे कि हे गदाधर! आप सुकृतिशाली हो, बचपन से ही श्रीकृष्ण में आपकी दृढ़ बुद्धि है। मेरा यह जन्म तो वृथा-रस में ही चला गया। अनमोल निधि मैंने पायी थी, परन्तु दैव दोष से वह हाथ से निकल गयी।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब प्रेम में उन्मत हो जाते तो गदाधर पण्डित गोस्वामी उन्हें समझा कर शान्त करते थे। एक दिन बातों ही बातों में श्रीगदाधर पण्डित जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी से कहा कि आपके प्राणनाथ तो आपके हृदय में ही हैं। यह सुनने के साथ-साथ ही श्रीमन्महाप्रभु जी अपनी छाती फाड़ने लगे तो गदाधर पण्डित जी ने ही उन्हें शान्त किया था। यह देख पुत्र स्नेहातुरा शची माता ने गदाधर पण्डित को हमेशा श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ रहने के लिये कहा।

एक दिन महाप्रभु जी अपने प्रिय-पार्षद पुण्डरीक विद्यानिधि का नाम पुण्डरीक रे! मेरे बाप रे!! कहते-कहते क्रन्दन करने लगे तो भक्तों को समझ न आने पर उन्होंने श्रीमहाप्रभु जी से इसका कारण पूछा तो महाप्रभु जी ने पुण्डरीक का परिचय दिया और यह बताया कि वे शीघ्र ही मायापुर आयेंगे। श्रीमन् महाप्रभु जी के कथनानुसार श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु नवद्वीप में आये परन्तु अपने को गुप्त रखने के लिये अत्यन्त भोगी व्यक्तियों के समान लीला का अभिनय करने लगे।

चट्टग्राम वासी मुकुन्ददत्त और वासुदेव दत्त, पुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु को अच्छी तरह से पहचानते थे। कृष्णलीला में जो वृषभानु राज (राधा रानी के पिता) थे, वे ही गौरलीला में पुण्डरीक विद्यानिधि हैं। अतः एक दिन श्रीमुकुन्द, गदाधर पण्डित गोस्वामी को एक अद्‌भुत वैष्णव दिखाने के लिये श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के घर ले आये। श्रीमुकुन्द द्वारा श्रीगदाधर का परिचय प्रदान करने पर विद्यानिधि प्रभु उनसे परमोल्लास के साथ वार्तालाप करने लगे।

दिव्य पलंग के ऊपर दूध की फेन के समान सफेद और कोमल शैया पर बैठे विद्यानिधि प्रभु के चारों ओर इत्र की गन्ध से आमोदित कक्ष, लम्बी नाल वाला हुक्का व सोने का बढ़िया पीकदान देखकर बचपन से ही विरक्त श्रीगदाधर पण्डित के मन में कुछ संशय उपस्थित हुआ। श्रीगदाधर पण्डित जी के चित्त में अश्रद्धा का भाव ताड़ कर श्रीमुकुन्द दत्त ने श्रीविद्यानिधि प्रभु का यथार्थ स्वरूप प्रकाश कराने के लिए श्रीमद्भागवत् का श्रीकृष्ण महिमात्मक एक श्लोक उच्चारण किया—

"अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥"

(श्रीमद्भागवत् 3/2/23)

उक्त श्लोक के श्रवण मात्र से ही श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि प्रभु हा कृष्ण! हा कृष्ण!! कह कर मूर्च्छित होकर गिर पड़े एवं अलौकिक अष्टसात्त्विक विकार उनके श्रीअंगों में दिखाई देने लगे। यह देखकर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी विस्मित हो गये एवं अपने किये अपराध के लिए खूब अनुतप्त हुए। बाद में महाप्रभु जी के निर्देशानुसार श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी प्रभु जी ने अपने अपराध मार्जन के लिए श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी से मन्त्र दीक्षा ग्रहण की।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु जी के चिरसंगी थे। जगाई-मधाई उद्धार के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ जलक्रीड़ा के समय, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी के भवन में, श्रीमन्महाप्रभु जी के ब्रज लीला अभिनय के समय, श्रीवास-आंगन में महाप्रकाश लीला के समय, काजी-उद्धार लीला, संन्यासलीला, नीलाचल गमन, गुण्डिचा मन्दिर मार्जन तथा पुरी में श्रीनरेन्द्र सरोवर में जलकेलि आदि लीलाओं में वे श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ थे।

श्रीचन्द्रशेखर आचार्य जी के गृह में जब श्रीमन्महाप्रभु जी ने व्रजलीला का अभिनय किया था, उसी समय प्रथम प्रहर में श्रीहरिदास जी ने एक कोतवाल का, श्रीवास पण्डित जी ने श्रीनारद और श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीरुक्मिणी का वेश धारण किया था। द्वितीय प्रहर में श्रीगदाधर जी ने रमा के वेश में प्रवेश किया था। श्रीगदाधर जी का रमा के वेश में नृत्य दर्शन कर सभी प्रेमोन्मत्त हो गये थे। उसी समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने गदाधर जी के सम्बन्ध में कहा था "श्रीगदाधर मोर वैकुण्ठेर परिवार"- अर्थात गदाधर जी मेरे वैकुण्ठ के परिवार के सदस्य हैं।

इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी ने आद्याशक्ति का वेश धारणकरते हुये जगत् जननी के भाव से सब भक्तों को आनन्द प्रदान किया और भक्तगण भी श्रीमन्महाप्रभु जी के उस आद्याशक्ति के स्वरूप का स्तव करने लगे। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी द्वारा श्रीपुरुषोत्तम धाम में क्षेत्र संन्यास ले लेने पर श्रीमन्महाप्रभु जी ने उनको टोटा गोपीनाथ जी की सेवा प्रदान करते हुये यमेश्वर टोटा (अर्थात यमेश्वर के उपवन) में रहने के लिये निर्देश दिया था।

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के नीलाचल में शुभागमन का संवाद मिलने पर श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी प्रभु ने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को श्रीटोटा-गोपीनाथ के प्रसाद सेवन के लिये निमन्त्रित किया। श्रीमन्नित्यानंद प्रभु जी ने निमन्त्रण स्वीकार करते हुए श्रीगदाधर पण्डित को गौड़ देश से लाये हुये बारीक चावल दिये। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी ने वे चावल और यमेश्वर उपवन के शाक सब्जी द्वारा अन्न व्यन्जनादि तैयार किये। जब श्रीगदाधर पण्डित टोटा गोपीनाथ को भोग दे रहे थे, उसी समय श्रीमन्महाप्रभु जी वहां पर आ उपस्थित हुये। इससे श्रीगदाधर पण्डित परमोल्लसित हुये और श्रीमन्महाप्रभ, श्रीनित्यानन्द प्रभु व श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी- तीनों ने ही परमानन्द से प्रसाद सेवन किया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब वृन्दावन जाना चाहा तो श्रीराय रामानन्दऔर सार्वभौम भट्टाचार्य जी उन्हें रोकने के लिये नाना प्रकार से प्रयत्न करने लगे। तीसरे वर्ष चातुर्मास के समय गौड़ीय वैष्णव अपनी सहधर्मिणियों के साथ पुरुषोत्तम धाम में आये। गुण्डिचा मन्दिर मार्जन व रथ यात्रा के पश्चात् जब सब भक्तों ने अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान किया तो प्रत्यावर्तन के समय कुलीनग्राम के भक्तों द्वारा वैष्णवों के लक्षण जानने की इच्छा व्यक्त करने पर श्रीमन्महाप्रभु जी ने वैष्णव, वैष्णवतर और वैष्णवतम तीनों के लक्षण कहे।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने भक्तों के समक्ष वृन्दावन जाने की अपनी तीव्र उत्कण्ठा की बात को कहा। महाप्रभु जी की अति-उत्कण्ठा देखकर भक्तों ने उन्हें विजयदशमी के दिन जाने का परामर्श दिया भक्तों की इच्छा के अनुसार ही विजयदशमी के दिन श्रीमन्महाप्रभु जी ने वृन्दावन के लिये यात्रा की। राजा प्रतापरुद्र ने जाने के पथ में अनेक प्रकार से सहायता की। चित्रोत्पल नदी पार होने पर रायरामानन्द, महाराज प्रताप रुद्र और हरिचन्दन श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ चल पड़े। श्रीमन्महाप्रभु का विच्छेद सहन न कर पाने के कारण श्रीगदाधर पण्डित भी महाप्रभु के संग चल पड़े। तब महाप्रभु जी ने उन्हें उनका क्षेत्र संन्यास व्रत छोड़ने के लिए निषेध किया। इसके जवाब में गदाधर पण्डित गोस्वामी जी महाप्रभु जी से बोले—

"जाँहा तुमि, सेइ नीलाचल।

क्षेत्रसंन्यास मोर जाउक रसातल।" (चै.च.म. 16/131)

अर्थात् जहाँ आप हैं वहीं नीलाचल है। जहाँ तक क्षेत्र संन्यास की बात है—भाड़ में जाये मेरा क्षेत्र संन्यास।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने पुनः गोपीनाथजी की सेवा छोडने को निवेश किया तो पण्डित जी बोले आपके पादपद्मों के दर्शनों से हो करोड़ों गोपीनाथों की सेवा हो जायेगी।

श्रीमन्महाप्रभु जी के यह कहने पर कि श्रीगोपीनाथ जी की सेवा छोड़ने से दोष होगा, गदाधर पण्डित जी ने कहा—"प्रतिज्ञाभंग और गोपीनाथ जी की सेवा त्याग का जो भी दोष होगा वह मेरा ही होगा। आप बस चलने की आज्ञा प्रदान करें। मैं अकेले ही शचीमाता के दर्शन करने जाऊँगा, आपको कोई कष्ट नहीं दूंगा।"

श्रीगदाधर जी की अद्भुत गौराङ्ग प्रीति को समझने की श्रीमन्महाप्रभु जी के अंतरंग पार्षदों के अतिरिक्त और किसी की सामर्थ्य नहीं है। राग मार्ग का प्रेम आसानी से समझ में नहीं आता। श्रीगदाधर जी महाप्रभु जी के लिये अपनी प्रतिज्ञा, कृष्ण-सेवा सब कुछ छोड़ने के लिये तैयार हैं। कटक में पहुँचने के पश्चात् महाप्रभु जी ने गदाधर पण्डित को बुला कर कहा कि ये तो निश्चय हो गया कि तुम अपना उद्देश्य, प्रतिज्ञा और सेवा छोड़ दोगे तथा मेरे साथ चलने से तुम्हें सुख होता है किन्तु ये बताओ कि तुम मेरा सुख चाहते हो कि अपना सुख चाहते हो? यदि मेरा सुख चाहो तो नीलाचल वापिस चले जाओ। और अब यदि कोई बात बोली तो तुम्हें मेरी शपथ।

श्रीकृष्ण लीला में रुक्मणी देवी दक्षिण स्वभाव की होने की वजह से जिस प्रकार श्रीकृष्ण के हास परिहास को समझ नहीं पाती थीं और भयभीत होती रहती थीं, उसी प्रकार गदाधर पण्डित गोस्वामी भी श्रीमन्महाप्रभु जी के हास-परिहासपूर्ण वार्तालाप और कृत्रिम उदासीनता को समझ न पाने के कारण सन्त्रस्त होते रहते थे। श्रीगदाधर गोस्वामी सरल और स्निग्ध स्वभाव वाले थे।

एक समय श्रीबल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु के पास आये और दोनों का हास परिहास हुआ। श्रीबल्लभ भट्ट के पाण्डित्य के अभिमान को देखकर उसके प्रति उपेक्षा का भाव प्रकाश करते हुये श्रीमन्महाप्रभु उनके सिद्धान्तों में दोष दिखाने लगे। श्रीमन्महाप्रभु जी के पास आदर न पाने पर वे श्रीगदाधर पण्डित जी के पास जाने लगे और खूब आनुगत्य दिखाने लगे। श्रीबल्लभ भट्ट के साथ श्रीगदाधर जी का मिलना-जुलना पसन्द न होने के कारण श्रीमन्महाप्रभुजी ने गदाधर के प्रति उदासीन भाव प्रकाश किया। इस आशंका से कि महाप्रभु जी शायद मेरा परित्याग कर दें, श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु जी के चरणों में गिर कर क्रन्दन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने उनको हल्का सा आलिंगन करते हुए कहा—

आमि चालाइलुँ तोमा, तुमि ना चलिला।

क्रोध किछु ना कहिला, सकल सहिला॥

आमार भङ्गीते तोमार मन ना चलिला।

सुदृढ़ सरलभावे आमारे किनिला॥

पण्डितेरे भाव-मुद्रा कहन ना जाय।

'गदाधर-प्राणनाथ' नाम हैल जाय॥

पण्डितेरे प्रभुर प्रसाद कहन ना जाय।

'गदाइ-गौराङ्ग" बलि' जाँरे लोके गाय॥

(चै. च. अ. 7/157-160)

अर्थात् मैंने आपके प्रति क्रोध का व्यवहार किया परन्तु आप चलायमान नहीं हुए। क्रोध में आप ने कुछ नहीं कहा। सब सहन कर लिया। मेरे इशारे से भी तुम्हारा मन चलायमान नहीं हुआ। तुमने सुदृढ़ व सरल भाव से मुझे खरीद लिया है। गदाधर पण्डित के भावों की बात कही नहीं जा सकती। इनके प्रेम की वजह से ही श्रीमन्महाप्रभु जी का नाम हो गया "गदाधर प्राणनाथ"। गदाधर पण्डित जी के ऊपर महाप्रभु जी की कृपा के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता—जिन का यश लोग गदाई-गौरांग पुकार कर गाते हैं।

श्रीमन्महाप्रभुजी के अन्तर्धान के पश्चात श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी मात्र 11 मास प्रकट थे। श्रीगौरांग जी के विरह में श्रीगदाधर पण्डित की जो दारुण अवस्था हुई थी, श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर ने भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में उसका वर्णन किया है। केवल मात्र श्रीनिवासाचार्य को दर्शन देने के लिये ही वे जीवन को धारण किये हुये थे—

श्रीगौरसुन्दर बलि मूदये नयन।

छाड़ये निःश्वास दीर्घ अनल समान॥

गौरांग विच्छेदे श्रीपण्डित-गदाधर।

येरूप हइल ताहा प्रभु-अगोचर॥

श्रीनिवासे अनुग्रह करिवार तरे।

आछये जीवन मात्र निश्चल शरीरे॥

(भक्ति रत्नाकर 3/142-144)

[श्रीगौरसुन्दर का नाम लेकर वे आंखें मूंद लेते हैं और उनके विरह में लम्बी-लम्बी तथा अग्नि के समान गर्म सांसें छोड़ते हैं। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के विरह में जो दशा श्रीगदाधर पण्डित जी की हुई, वह श्रीमन्महाप्रभु भी नहीं जानते। श्रीनिवासाचार्य पर कृपा करने के लिए ही वह अपना जीवन धारण किये हुए थे।]

1456 शकाब्द में ज्येष्ठ अमावस्या की तिथि को पुरी धाम में श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी अप्रकट हुये।

*****

श्रीवक्रेशवर पण्डित

व्यूहस्तुर्योऽनिरूद्धो यः स वक्रेश्वर पण्डितः।

कृष्णावेशज नृत्येन प्रभोः सूखमजीजनत्॥

सहस्रगायकन्मह्यं देहि त्वं करुणामय।

इति चैतन्यापादे य उवाच मधुरं वचः।

स्वप्रकाश विभेदेन शशिरेखा तमाविशत्॥

(गो. ग. दी.-71)

श्रीकृष्ण लीला में चतुर्व्यूह केअन्तर्गत जो अनिरुद्ध हैं, वे ही गौरलीला में श्रीवक्रेश्वर पण्डित के रूप में आविर्भूत हुये। श्रीराधिका जी की प्रिय सखी शशिरेखा भी श्रीवक्रेश्वर पण्डित के अन्तर्प्रविष्ट हैं।

बहुत से लोगों का कहना है कि त्रिवेणी के निकट गुप्तिपाड़ा में ही श्रीवक्रेश्वर पण्डित का आविर्भिव स्थान है। श्रीवक्रेश्वर पणिडत आषाढ़ मास की कृष्णपंचमी तिथि में आविर्भूत हुए थे। श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी ने ऐसी अलौकिक शक्ति प्रकाशित की थी कि उन्होंने चौबीस प्रहर अर्थात् तीन दिन तक एक ही भाव में नित्य कीर्त्तन किया था। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के 1 वें परिच्छेद में श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:-

"वकरेश्वर पण्डित-प्रभुर बड़ प्रियभृत्य।

एकभावे चब्बिश प्रहर याँर नृत्य॥

आपने महाप्रभु गाहेन याँर नृत्यकाले।

प्रभुर चरण धरि’ वक्रेश्वर बले॥

दशसहस्र गन्धर्व मोरे देह, चन्द्रमुख।

तारा गाय, मूञि नाचि, तबे मोर सुख॥

प्रभु बलेन,-तुमि मोर पक्ष एक शाखा।

आकाशे उड़िया जाङ, पाङआर पाखा'॥"

(चै.च.आ 10/17-20)

[श्रीवक्रेश्वर पण्डित महाप्रभु के बहुत प्रिय दास हैं, जिन्होंने लगातार तीन दिन तक नृत्य किया था और जिनके नृत्य कीर्त्तन में महाप्रभु स्वयं गान गाते थे। श्रीवक्रेश्वर पण्डित महाप्रभु जी के चरणों को पकड़कर कहने लगे कि हे चन्द्रमुख प्रभु! आप मुझे दस हज़ार गन्धर्व दे दें ताकि वे गायें और मैं उनके सामने नृत्य करूँ, तभी मुझे सुख प्राप्त होगा। महाप्रभु कहने लगे कि तुम मेरे एक पंख हो, कहीं तुम्हारे जैसा दूसरा पंख मिल जाए तो मैं आकाश में उड़ जाऊँ।]

आप श्रीवास-आंगन में और श्रीचन्द्रशेखर भवन में महाप्रभु जी के संकीर्त्तन के समय नृत्य करते थे। श्रीवक्रेश्वर पण्डित श्रीमन्महाप्रभु जी के इस प्रकार प्रिय थे कि श्रीदेवानन्द पण्डित उनकी परिचर्या द्वारा ही श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा के भाजन हुए एवं श्रीवास पण्डित के चरणों में जो उनका अपराध हुआ था, उस अपराध से भी उन्होंने छुटकारा पाया। एक ब्राह्मण द्वारा वैष्णव अपराध के प्रायश्चित के बारे में जिज्ञासा करने पर इसके उत्तर में महाप्रभु जी ने कहा था—

"शुन द्विज, विष करि ये मुखे भक्षण।

सेइ मुखे करि यबे अमृत ग्रहण॥

विष हय जीर्ण, देह हयत अमर।

अमृत-प्रभावे, एबे शुन से उत्तर॥

ना जानिया तुमि यत करिला निन्दन।

से केवल विष तुमि करिला भोजन॥

परम-अमृत एवे कृष्ण-गुण-नाम।

निरवधि सेइ मुखे कर' तुमि पान॥

ये मुखे करिला तुमि वैष्णव निन्दन।

सेइ मुखे कर' तुमि वैष्णव-वन्दन॥

सबा' हैते भक्तेर महिमा बाड़ाइया।

संगीत कवित्व विप्र कर' तुमि गिया॥

कृष्णा-यश-परानन्द-अमृते तोमार।

निन्दा-विष यत सब करिब संहार॥

एइ सत्य कहि, तोमा सबारे केवल।

ना जानिया निन्दा येवा करिल सकल॥

आर यदि निन्द्य-कर्म कभु ना आचरे।

निरन्तर विष्णु-वैष्णवेर स्तुति करे॥

एइ सकल पाप घुचे एइ से उपाय।

कोटि प्रायश्चितेओ अन्यथा नाहि याय॥"

(चै.भा.अ. 3/449-458)

[हे ब्राह्मण सुनो! जिस मुख से विष का भक्षण करते हैं, उसी मुख से यदि अमृत को खाया जाये तब विष का प्रभाव दूर हो जाता है और देह अमृत के प्रभाव से अमर हो जाती है। आगे और सुनो-न जानते हुये आपने जो निन्दा की है, वह केवल आपने विष ही खाया है। कृष्ण का नाम, गुण ही परम अमृत है, अब निरन्तर उसी मुख से तुम इस अमृत को पान करो। जिस मुख से तुमने वैष्णव की निन्दा की है, उसी से तुम वैष्णव की वन्दना करो। भक्त की महिमा सबसे अधिक है। इसलिए हे विप्र! कविता द्वारा व संगीत द्वारा भक्त की महिमा का गान करो। कृष्ण का नाम, कृष्ण का यश, आपके लिये आनन्दमय व अमृत के समान हैं। जितना भी निन्दारूपी विष है, ये उस सब का नाश कर देगा। मैं आप सबसे जिन्होंने न जानते हुये वैष्णव निन्दा की है, सत्य बात कह रहा हूँ। यदि कभी और निन्दा का कर्म नहीं करोगे तथा निरन्तर विष्णु-वैष्णव की स्तुति करोगे, तो इस उपाय के द्वारा यह सब पाप दूर हो जायेंगे, जोकि करोड़ों प्रायश्चित करने से भी दूर नहीं होते।]

"अपराधी व्यक्ति जिस मुख से वैष्णव निन्दा करता है अनुतप्त हो कर यदि उसी मुख्य से अपना अपराध स्वीकार करके वैष्णवों की वन्दना करें तो उसका मंगल होता है। जैसे विष सेवन करने से, उसकी क्रिया से शरीर जर्जर हो जाता है और पुनः विषनाशक अमृत पान करने से विष-नष्ट होने पर शरीर सबल हो जाता है, उसी प्रकार दुबारा वैष्णव निन्दा नहीं करने से, कोटि प्रायश्चित से भी जो वैष्णव निन्दाजनित पाप दूर नहीं होता वह पाप वैष्णव की स्तुति द्वारा ही दूरीभूत हो जाता है।

वैष्णव सेवा के फल से ही कुलिया के देवानन्द पण्डित का महाप्रभु के चरणों में विश्वास हुआ। श्रीवक्रेश्वर पण्डित का देवानन्द के गृह में अवस्थान करना ही देवानन्द के मंगल का कारण बना। स्मार्त्त-धर्म में प्रविष्ट होने पर भी ये देवानन्द पण्डित महाज्ञानी और जितेन्द्रिय थे। श्रीमद्भागवत को छोड़कर और कोई भी ग्रन्थ उनका पाठ्य नहीं था। वे ईश्वरनिष्ठ थे। वे इन्द्रियादियों के वशीभूत नहीं थे। किन्तु श्रीगौरसुन्दर के प्रति इनमें विश्वास का अभाव था। श्रीवक्रेश्वर के अनुग्रह से ही उनकी इस प्रकार की दुर्बुद्धि दूर हुई और भगवान में श्रद्धा हुई।"

(चै.भा.अ. 3/453-481)

"वक्रेश्वर पण्डित-चैतन्य-प्रिय-पात्र।

ब्रह्माण्ड पवित्र याँ'र स्मरणेइ मात्र॥

निरवधि कृष्ण-प्रेम-विग्रह विह्वल।

याँ'र नृत्ये देवासुर-मोहित सकल॥"

(चै.भा.अ 3/469-470)

[वक्रेश्वर पण्डित श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रिय दास है। उनके स्मरण मात्र से ब्रह्माण्ड पवित्र हो जाता है। निरन्तर कृष्णा-प्रेम में वह व्याकुल रहते हैं। उनके नृत्य पर सब देवता व असुर मोहित हो जाते हैं।]

श्रीमन् महाप्रभु जी ने स्वयं देवानन्द पण्डित जी के सामने श्रीवक्रेश्वर पण्डित की महिमा का वर्णन किया है—

"प्रभु बले-"तुमि ये सेविला वक्रेश्वर।

अतएव हैला तुमि आमार गोचर॥

वक्रेश्वर पण्डित-प्रभुर पूर्ण शक्ति।

सेइ कृष्णा पाय ये ताहारे करे भक्ति॥

वक्रेश्वर हृदय कृष्णेर निज-घर।

कृष्ण नृत्य करेन नाचिते वक्रेश्वर॥

ये ते स्थाने यदि वक्रेश्वर-संग हय।

सेइ स्थाने सर्वतीर्थ श्रीवैकुणठमय॥"

(चै.भा.अ. 3/493-96)

[महाप्रभु जी कहने लगे। आपने जो वक्रेश्वर पण्डित की सेवा की है, उसके प्रभाव से तुम मेरी दृष्टि में आ गये हो। वक्रेश्वर पण्डित महाप्रभुजी की पूर्ण शक्ति हैं। जो उनकी भक्ति करेगा, वही कृष्ण की प्राप्ति करेगा। श्रीवक्रेश्वर का हृदय श्रीकृष्ण का अपना घर है। वक्रेश्वर जब नृत्य करते हैं तब श्रीकृष्ण भी आनन्द से उनके साथ नृत्य करते हैं। जिस –जिस स्थान पर वक्रेश्वर जी जाते हैं, वह स्थान सब तीर्थों का तीर्थ बन जाता है तथा वैकुण्ठमय हो जाता है।]

श्रीदेवानन्द पण्डित के अपराध के मार्जन हो जाने पर श्रीमन्महाप्रभु जी स्नेहार्द्रचित्त से देवानन्द जी को उपदेश प्रदान करते हुए बोले—अपनी विद्वता का अभिमान करनेवाला व्यक्ति भागवत् के अर्थ को नहीं समझ सकता, शरणागत के हृदय में ही भागवत् का अर्थ प्रकाशित होता है। एकमात्र शुद्धभक्ति ही भागवत् का प्रतिपाद्य है। ग्रन्थ भागवत् को भक्त भागवत् से अभिन्न समझकर भागवत् का पाठ करने से परम मंगल की प्राप्ति होती है—

'भागवत बुझी' हेन या'र आछे ज्ञान।

सेइ ना जानये भागवतेर प्रमाण॥

अज्ञ हइ' भागवते ये लय शरण।

भागवत-अर्थ ता'र हय दरशन॥

प्रेममय भागवत-श्रीकृष्णेर अंग।

ताहाते कहेन यत गोप्य-कृष्णा-रंग॥

वेद-शास्त्र-पुराण कहिया वेदव्यास।

तथापि चित्तेर नाहि पायेन प्रकाश॥

यखने श्रीभागवत जिह्वाय स्फुरिल।

ततक्षणे चित्तवृत्ति प्रसन्न हइल॥

(चै.भा.अ. 3/514 -18)

[जो ऐसा समझता है कि मैं भागवत् जानता हूँ, वह भागवत् के यथार्थ ज्ञान को नहीं जानता है। अपने को मुर्ख मानकर जो भागवत्-भगवान की शरण लेता है, उसी को श्रीमद्भागवत के अर्थों का दर्शन होता है। श्रीमद् भागवत् प्रेम से परिपूर्ण है।श्रीमद्भागवत के 12 सकन्ध भगवान् श्रीकृष्ण के हस्त चरण व मुखमण्डल आदि 12 अंग हैं। जो भी श्रीकृष्ण की आनन्दमई व रहस्यमई लीलायें हैं, वह इसी में ही कही गयी हैं। श्रीवेदव्यास जी ने वेद, शास्त्र व पुराण की रचना की, फिर भी उनके चित्त में आनन्द नहीं हुआ, परन्तु जब श्रीमद् भागवत् उनकी जिह्वा पर सफुरित्त हुआ तो उनका चित्त प्रसन्न हो गया।]

श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी जब पुरुषोत्तम धाम में थे, तब टोटागोपीनाथ में श्रीमन्महाप्रभु , श्रीअद्वैत आचार्य प्रभु एवं अन्यान्य पार्षदों के साथ वे भी गदाधर पण्डित जी से भागवत् श्रवण करते थे। ग्रन्थ-भागवत् भक्त-भागवत् से ही श्रवणीय है। गोपाल गुरु श्रीवक्रेश्वर पण्डित के शिष्य थे, गोपाल गुरु का पहला नाम मकरध्वज पण्डित था और इनके पिताजी का नाम श्रीमुरारी था। श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी के शिष्य गोपाल गुरु में भी अलौकिक शक्ति के प्रकाश की बात सुनी जाती है। गोपाल गुरु ने बाल्यकाल से ही महाप्रभु जी के पास रहकर उनकी सेवा की थी। श्रीअभिराम ठाकुर जी जब उन्हें प्रणाम करने के लिए आये, तो महाप्रभु जी ने उसे अपनी गोद में बैठाकर उसकी रक्षा की थी। शिशुकाल से ही पवित्र-अपवित्र प्रत्येक अवस्था में कृष्ण नाम कीर्त्तन की शिक्षा देने के कारण उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुजी से 'गुरु' की उपाधि प्राप्त की थी।

श्रीगोपाल गुरु जी ने वृद्ध होने पर अर्थात निर्याण प्राप्ति से पहले अपने शिष्य श्रीध्यानचन्द्र गोस्वामी को अपने द्वारा प्रतिष्ठित और सेवित श्रीराधाकान्त श्रीविग्रहों की सेवा समर्पण की।ऐसा कहा जाता है कि जब ध्यान चन्द्र जी व अन्यनय भक्त गोपाल गुरु जी के श्रीअंगों का दाह करने के लिए स्वर्गद्वार पर लाये तो पीछे से राजपुरुषों ने आकर राधाकान्त मठ को अपने कब्जे में कर लिया। यह सब देखकर ध्यान चन्द्र जी को रोना आ गया। ध्यानचन्द्र गोस्वामी जी द्वारा प्रबल आर्तिभाव से क्रन्दन करने पर गोपाल गुरु गोस्वामी जी श्मशान से प्रकट होकर पुनः राधाकान्त मठ में आये और सब व्यवस्था टीक कर पुनः अन्तर्ध्यान लीला में चले गये। किन्तु उसके पश्चात् भी गोपालगुरु जी को वृदावन में साक्षात् भजन करते देख भक्त लोग आश्चर्यान्वित हो गये थे। राधाकान्त मठ में अभी भी अनेक श्रीविग्रह नित्य सेवित हो रहे हैं। उड़ीसा में वक्रेश्वर पण्डित जी के शिष्य अधिकांश ही गौड़िया वैष्णव रूप में अपना परिचय प्रदान करते हैं।

पुरी में रथयात्रा के समय रथ के आगे जब सात सम्प्रदायों में कीर्त्तन होता था उनमें से चतुर्थ सम्प्रदाय के मूल कीर्तनीया गोविन्द घोष थे और नर्त्तक थे-श्रीवक्रेश्वर पण्डित। श्रीवक्रेश्वर पण्डित श्रीचैतन्यशाखा अथवा गदाधर पण्डित जी की शाखा में वर्णित होते हैं।

आषाढ़ी-शुक्ला षष्ठी तिथि को श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी ने नित्यलीला में प्रवेश किया था।

****

श्रीजगदानन्द पण्डित

केनावान्तरभेदेन भेदं कुर्वन्ति सात्वताः।

सत्याभामाप्रकाशोऽपि जगदानन्द पण्डितः॥

(गौ.ग.दी. 51)

श्रीकृष्ण लीला में जो सत्यभामा हैं, गौर लीला में उन्होंने ही जगदानन्द पण्डित के रूप में प्रकट होकर गौर-लीला की पुष्टि की है।

पण्डित जगदानन्द प्रभुर प्राणरूप।

लोके ख्यात येंहो सत्याभामार सवरूप॥

(चै.च.आ 10/21)

[श्रीजगदानन्द पण्डित महाप्रभु को प्राणों के समान प्रिय हैं, जो कि जगत में सत्यभामा के अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं।]

जय जगदानन्द श्रीगर्भ जीवन।

जय पुण्डरीक विद्यानिधि प्राणधन॥

(चै.भा.म. 7/3)

श्रीजगदानन्द पण्डित जी का आविर्भाव स्थान,सन्, तिथि, पिता व माता का परिचय सब कुछ अज्ञात है। तात्त्विक परिचय की मुख्यता होने के कारण पार्थिव परिचय की अधिक आवश्यकता भक्ति-पथिकों के लिये नहीं देखी जाती। श्रीवृन्दवन दास ठाकुर जी द्वारा लिखित चैतन्य भागवत् के पठन से ज्ञात होता है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु जी जब गया से वापस आकर श्रीनवद्विप मण्डल के अन्तर्गत श्रीधाम मायापुर में श्रीवासांगन में और श्रीचन्द्रशेखर आचार्य के भवन में संकीर्त्तन विलास में निमग्न थे, उस समय से श्रीजगदानन्द पण्डित जी श्रीमहाप्रभु जी के साथ थे।

'सर्ववैष्णवेर हइल शुनिया उल्लास।

आरम्भिला महाप्रभु कीर्तन-विलास॥

श्रीवास मन्दिरे प्रति निशाय कीर्तन।

कोनदिन हय चन्द्रशेखर -भवन॥

नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास।

विद्यानिधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास॥

गंगादास, वनमाली, बिजय नन्दन।

जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान, नारायण॥

सबेइ प्रभुर नृत्य थाकेन संहति।

पारिषद बइ आर केह नाहि तथि॥'

(चै.भा.म. 8/110-113,117)

[अर्थात् यह सुनकर सब वैष्णवों को बहुत प्रसन्नता हुई कि महाप्रभु ने अपनी कीर्त्तन लीला आरम्भ कर दी। प्रत्येक रात्रि को अधिकतर श्रीवास जी के घर में कीर्त्तन होता था। हाँ कभी-कभी श्रीचन्द्रशेखर के घर पर भी होता था। श्रीनित्यानन्द, श्रीगदाधर, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीश्रीवास, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, श्रीमुरारी, श्रीहिरण्य , श्रीहरिदास, श्रीगंगादास, श्रीवनमाली, श्रीविजय नन्दन, श्रीजगदानन्द, श्रीबुद्धिमन्त खान तथा श्रीनारायण-ये सभी महाप्रभु जी के नृत्य के समय उनके साथ रहते थे। ये सब उनके पार्षद ही थे, चूँकि महाप्रभु जी के पार्षदों के अतिरिक्त दूसरा और कोई वहाँ होता ही नहीं था।] श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी के वर्णन के अनुसार ऐसा जाना जाता है कि जगदानन्द पण्डित श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पार्षद थे तथा नवद्वीप मण्डल में श्रीमन्महाप्रभु जी की गृहस्थ लीला के समय के कीर्त्तन के साथी थे। अतः इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने गौड़मण्डल के ही किसी स्थान पर अपनी आविर्भाव लीला प्रकाशित की होगी।

श्रीचैतन्य भागवत के ही वर्णन के अनुसार जब श्रीचैतन्य महाप्रभु जी संन्यास ग्रहणकरने के पश्चात् शान्तिपूर में आये और वहाँ से जब उन्होंने नीलाचल की ओर यात्रा की तो उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीगदाधर, श्रीमुकुन्द , श्रीगोविन्द, श्रीजगदानन्द तथा श्रीब्रह्मानन्द जी उनके साथ थे तथा श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुसार उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु,श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर और श्रीमु कुन्द महाप्रभु जी के साथ थे। आटिसारा, छत्रभोग, उड़ीसा, सुवर्ण रेखा, जलेश्वर, रेमुणा, याजपुर, वैतरणी, कटक, साक्षीगोपाल, भुवनेश्वर, कमलपुर व आठारनाला इत्यादि स्थानों को पार कर जब महाप्रभुजी के साथ नीलाचल जा रहे थे तो रास्ते में श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी ने भक्तों को निष्किचनता, निरपेक्षता, भगवन्निर्भरता, इत्यादि बहुत विषयों के सम्बन्ध में शिक्षा प्रदान की थी।

उत्कल देश में प्रवेश करते समय उन्होंने गंगाघाट नामक एक स्थान पर स्नान किया तथा स्नान करने के पश्चात् भक्तों को एक देवस्थान में ठहराया तथा स्वयं अकेले ही गृहस्थों के घरों में चले गये और आंचल फैला कर भीक्षा की। भीक्षा में प्राप्त द्रव्य को उन्होंने रसोई करने के लिये श्रीजगदानन्दद जी को दिया। श्रीजगदानन्द जी द्वारा रसोई हो जाने पर महाप्रभु जी ने भक्तों के साथ मिलकर तृप्ति के साथ भोजन किया। श्रीचैतन्य भागवत से जाना जाता है कि महाप्रभु जी की यात्रा के समय श्रीजगदानन्द जी महाप्रभु जी का दण्ड उठाकर चलते थे। एक दिन श्रीजगदानन्द जी ने दण्ड नित्यानन्द प्रभु जी को पकड़ा दिया व स्वयं भिक्षा संग्रह के लिए चले गये। उनके जाने पर बलदेवाभिन्न विग्रह श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने मौका पाकर दण्ड को तीन भागों में विभक्त कर दिया और वैष्णवों को त्रिदण्ड ग्रहण की शिक्षा प्रदान करते हुये उन्होंने उसे भार्गी नदी में फैकने की लीला की। श्रीचैतन्य भागवत के वर्णनानुसार जगदानन्द जी टूटा हुआ दण्ड महाप्रभु के पास

लाये थे। एकमात्र सम्बल दण्ड से वञ्चित होने के कारण रूष्ट होकर महाप्रभु जी ने भक्तों से जब यह कहा कि आप लोग आगे चलो और मैं पीछे-2 चलूँगा या मैं आगे चलूँगा और आप पीछे चलें तो भक्तों ने आगे न चल स्वयं पीछे चलना सवीकार किया।

नित्यानन्द-स्वरूपे थुइया एकस्थाने।

चलिला जगदानन्द भिक्षा अन्वेषणे॥

ठाकुरेर दण्ड श्रीजगदानन्द बहे।

दण्ड थुइ नित्यानन्द-स्वरूपेरे कहे॥

"ठाकुरेर दण्डे मन दिओ सावधाने।

भिक्षा करि' आमिह आसिब एइक्षणे"॥*

(चै.भा.अ. 2/202-204)

श्रीमन्महाप्रभु जी अकेले ही आगे चलते-चलते आठारनाला होते हुये पूरी पहूँचे व श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर के शिखर पर मुरलीवादन करते हुये श्रीकृष्ण के दर्शन पर उन्मत्त की तरह दौड़कर जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश कर गये और जगन्नाथ जी के दर्शन कर मूर्च्छित हो गये। उनके मूर्च्छित हो जाने पर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी उन्हें अपने घर पर ले आये। श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर, श्रीमुकुन्द कुछ समय पश्चात् जगन्नाथ जी के मन्दिर में पहुंचे और महाप्रभु जी के बारे में सुनकर साथ-साथ श्रीसार्वभौम पण्डित के घर गये। यही सार्वभौम भट्टाचार्य जी का श्रीजगदानन्द जी से प्रथम मिलन हुआ। श्रीमनमहाप्रभु पुरुषोत्तम धाम से गौड़मण्डल में आकर वृदावन की ओर जाने के अभिप्राय से पाँच दिन विद्यानगर में अवस्थान कर मालदह जिला के रामकेलि ग्राम में पहुँचे और श्रीरूप तथा श्रीसनातन जी से मिले तो उस समय रामकेलि गाँव में महाप्रभु के साथी भक्तों** में जगदानन्द जी भी थे। पुरुषोत्तम धाम में भी महाप्रभुजी के नित्यसंगी भक्तों में श्रीजगदानन्द पण्डितजी के नाम का उल्लेख है—

"पण्डित गोसाञि कैल नीलाचले वास।

वक्रेशवर, दमोदर, शङ्कर, हरिदास॥"

जगदानन्द, भवानन्द, गोविन्द, काशीशवर।

परमानन्दपुरी, आर स्वरूप-दामोदर॥

क्षेत्रवासी रामानन्द राय प्रभृति।

प्रभुसङ्गे एइ सब कैल नित्य स्थिति॥***

(चै.च.म. 1/252-254)

---

*[एक स्थान पर श्रीनित्यानन्द प्रभु जी को दण्ड देकर श्रीजगदानन्द भिक्षा के लिये चले गये, महाप्रभु के दण्ड को श्रीजगदानन्द ही उठाकर ले चलते थे। श्रीनित्यानन्द जी को दण्ड देकर श्रीजगदानन्द ने कहा की यह महाप्रभु का दण्ड है, इसे मन लगाकर सावधानी से रखना, मैं शीघ्र ही भिक्षा करके अता हूँ]

** नित्यानन्द, हरिदास, श्रीवास, गदाधर। मुकुन्द, जगदानन्द, मुरारी वक्रेश्वर।

**** जगदानन्द पण्डित नीलाचल में वास करने लगे। श्रीवक्रेश्वर, श्रीदामोदर, श्रीशंकर, श्रीहरिदास, श्रीजगदानन्द, श्रीभवानन्द, श्रीगोविन्द, श्रीकाशीश्वर, श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीस्वरूप दामोदर तथा क्षेत्र निवासी श्री रामानन्द आदि यह सब महाप्रभु जी के साथ नित्य निवास करते थे।

महाप्रभु, जगदानन्द पण्डित के मधुर रसाश्रित प्रेम के वशीभूत थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में यह निम्नलिखित प्रकार से वर्णित हुआ है—

पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शूद्धसख्य,

गोविन्देर शुद्ध दास्य रस।

गदाधर जगदानन्द, स्वरूपेर (मुख्य) रसानन्द,

एइ चारिभावे प्रभु वश || (चै.च.म.2/78)

[पूरी जी का मुख्य रूप से वात्सल्य प्रेम था, रामानन्दजी का शुद्ध सख्य भाव था, जबकि गदाधर, जगदानन्द तथा स्वरूप दामोदर जी का मधुर रस से सम्बन्ध था। दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर-इन चारों भाव से ही भगवान् वश में होते हैं।]

श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य मायावादी-विचारों का त्याग कर शुद्धभक्ति पथ के पथिक बने तथा महाप्रभु जी के षड़भुज रूप का दर्शन कर कृतार्थ हो गये। उन्होंने एक सौ शलोक की रचना करके महाप्रभु जी की स्तुति की। श्रीमन्महाप्रभु जी की महिमा सूचक दो शलोक ताल पत्र के ऊपर लिखकर महाप्रभु जी को देने के लिए उन्होंने उस समय इन्हीं जगदानन्द जी के हाथ में दिये थे। जगदानन्द पण्डित जी जब वासुदेव सार्वभौम पण्डित द्वारा भेजा गया महाप्रसाद और वह पत्र महाप्रभु को देने आये तो मुकुन्द दत्त ने पहले ही उस पत्र को पढ़ लिया तथा उस पर लिखे दोनों श्लोकों को बाहरी दीवार पर लिख दिया। बाद में जगदानन्द जी द्वारा पत्र महाप्रभु जी को देने पर महाप्रभु जी ने उसे पढ़ा तथा फाड़ कर फैंक दिया। श्रीमुकुन्द दत्त जी द्वारा लिखा होने के कारण ही अब भक्त लोग इन्हें* पढ़कर परमानन्दित होते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने माघ मास के शुक्ल पक्ष में संन्यास ग्रहण किया, फाल्गुन मास में नीलाचल आये तथा चैत्रमास में सार्वभोम का उद्धार कर वैशाख मास में दक्षिण की ओर यात्रा को चल दिये। महाप्रभु जी द्वारा यह कहने पर कि वे अकेले ही दक्षिण यात्रा पर जायेंगे, नित्यानन्द प्रभु जी ने निषेध किया और स्वयं साथ जाने की इच्छा प्रकाश की। उस समय महाप्रभु जी ने श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीदामोदर ब्रह्मचारी, इत्यादि भक्तों की कृत्रिम निन्दा के बहाने उनके अत्यन्त स्नेह पूर्ण व्यवहार के बारे में कहा। श्रीजगदानन्द पण्डित जी के सम्बन्ध में महाप्रभु जी ने कहा था:-

"जगदानन्द चाहे आमा विषय भुञ्जाइते।

जेइ कहे, सेइ भये चाहिए करिते॥

कभु यदि इँहार वाक्य करिये अन्यथा।

क्रोधे तिन दिन मोरे नाहि कहे कथा॥" (चै.च.म. 7/21-22)

[अर्थात जगदानन्द मुझे विषय भुगवाना चाहता है। यह जो कहता है, वह इससे डर-डर कर मुझे करना ही पड़ता है, कभी यदि इसके बात को न मानूँ तो यह तीन दिन तक मुझ से बात भी नहीं करता।]

श्रीमन्महाप्रभु जी के दक्षिण भारत की यात्रा पर चले जाने से महाप्रभु जी के तमाम भक्त विराह ने अत्यन्त कातर होकर दिन गुज़ारने लगे। जहाँ जितना प्रीति सम्बन्ध होता है वहाँ विरह में उतना अधिक दुःख होता ही है। हाँ, विरह के पश्चात् मिलने में अति अद्‌भुत आनन्द का अनुभव होता है, यह ही यथार्थ प्रीति का लक्षण है। श्रीमन्महाप्रभु दक्षिण भारत पर्यटन के बाद जब वापस आकर आलालनाथ में पहुँचे तो कृष्णदास के माध्यम से उन्होंने नित्यानन्द आदि भक्तों को अपने आने का संवाद किया और उन्हें (सब भक्तों को)आने के लिए आदेश दिया। महाप्रभु जी के वापस आने का व मिलने का आदेश सुनकर सभी को महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये अति उत्कण्ठा हुई और हृदय में अतिशय आनन्द प्रकटित हुआ। उस समय जगदानन्द पण्डित जी का किस प्रकार आनन्द उदित हुआ था, कविराज गोस्वामी जी ने चेतन्यचरितामृत में उसका निम्न प्रकार से वर्णन किया है—

"प्रभुर आगमन शुनि' नित्यानन्द राय।

उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय॥

जगदानन्द, दामोदर-पण्डित, मुकुन्द।

नाचिया चलिला, देहे ना धरे आनन्द॥"

(चै.च.म. 9/339-340)

[श्रीनित्यानन्द राय महाप्रभु का आगमन सुनकर तुरन्तदर्शनों के लिए चल पड़े, प्रेम में वे अपने आप को संभाल नहीं पा रहे थे। श्रीजगदानन्द, दामोदर पण्डित, श्रीमुकन्द भी नृत्य करते हुए चल पड़े, कोई भी अपने आनन्द को सम्भाल नहीं पा रहा था।]

महाप्रभु जी की दक्षिण भारत से निर्विघ्न वापसी का संवाद श्रीकृष्ण दास के द्वारा शचीमाता के लिये भेजने का परामर्श नित्यानन्द व जगदानन्द जी ने ही दिया था, जिसकी सम्मति भक्त-इच्छा पूर्ति हेतु महाप्रभु जी ने प्रदान कर दी थी। पुरुषोत्तम धाम में जगदानन्द पण्डित का स्वरूप दामोदर, रायरामानन्द, हरिदास ठाकुर इत्यादि मुख्य पार्षदों से एक-एक करके मिलन हुआ। भक्त और भगवान् को परिवेशन (वितरण) करके परितृप्ति के साथ भोजन करवाना एक मुख्य सेवा है, जो की जगदानन्द पण्डित जी परम -आनन्द के साथ करते थे।

चतुर्मास्य के समय गौड़ीय भक्त प्रतिवर्ष महाप्रभु से मिलने के लिये नीलाचल में आते थे। इस प्रकार तीसरे वर्ष जब महाप्रभु जी ने भक्तों को विदाई दी और वृन्दावन की ओर जाने का अपना दृढ़ निश्चय भक्तों के सन्मुख प्रकट किया तो उस वृन्दावन यात्रा के समय महाप्रभु के संगियों में श्रीजगदानन्द भी एक थे। यद्यपि इस बार महाप्रभुजी उड़ीसा को

पार करके गोड़देश में पाणिहाटी, कुमारहट्ट, कुलियाग्राम, रामकेली इत्यादि स्थानों से होकर कानाई नाटशाला तक पहुँचे और वहीं से ही वापस नीलाचल लौट आये थे।

अधिक लोगों के साथ होने के कारण ही महाप्रभु जी उस समय वृन्दावन नहीं गये तथा बाद में उन्होंने अकेले ही वृन्दावन जाने का संकल्प लिया। श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन गये तो बलभद्र भट्टाचार्य जी उनके साथ गये थे। वे बलभद्र भट्टाचार्य के साथ नीलाचल से झाड़िखण्ड के रास्ते वृन्दावन जाकर पुनः झाड़िखण्ड के रास्ते से ही पूरी में वापस आये। उनके वापस आने पर महाप्रभु का जगदानन्दादि आदि भक्तों के विरह और मिलन में जो अतिशय प्रेम प्रकट हुआ वह वर्णनातीत है।

श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा मथुरामण्डल से अकेले झाड़िखण्ड के रास्ते नीलाचल आने से रास्ते में पानी के दोष और उपवास के कारण उनके शरीर में कण्डु रसा (एक प्रकार का कोढ़) हो गया। जगन्नाथ के सेवकों के साथ कोढ़ वाले अपवित्र शरीर के स्पर्श होने से अपराध होगा—ऐसा विचार कर उन्होंने संकल्प लिया कि जगन्नाथ जी की रथ यात्रा के समय रथ के चक्के के नीचे पिसकर कर अपनी देह त्याग कर देंगे परन्तु अन्तर्यामी श्रीमन्महाप्रभु जी यह सब जान गये और देहत्यागादी के द्वारा श्रीकृष्ण को नहीं पाया जाता, उन्हें तो भजन के द्वारा पाया जाता है; जो देह समर्पित है उसे नष्ट करने का समपर्णकारी को अधिकार नहीं है; इत्यादि उपदेशों के द्वारा महाप्रभु जी ने सनातन को देह तयाग के संकल्प से निवृत्त किया। भगवान्, भक्त के शरीर की बाहरी पवित्रता या अपवित्रता कुछ भी नहीं देखते। वे तो भक्त के शुद्ध सेवामय अन्तःकरण को देखकर आकृष्ट हो जाते हैं। महाप्रभु जी आपने भक्त सनातन के आलिंगन में ज़रा भी आनाकानी नहीं करते थे बल्कि पुनः पुनः उन्हें आलिंगन करते थे। महाप्रभु जी द्वारा पुनः-पुनः आलिंगन करने पर सनातन गोस्वामी के शरीर में से निकलता रस महाप्रभु जी के श्रीअंग पर लगने के कारण सनातन गोस्वामी संकुचित और अत्यन्त दुःखी होते थे। इस सम्बन्ध में जब उन्होंने जगदानन्द जी से परामर्श माँगा तो जगदानन्द पण्डित जी ने उन्हें रथयात्रा के पश्चात् वृन्दावन जाने का उपदेश दिया। उक्त उपदेश को सही समझकर उन्होंने उसे महाप्रभु जी के सामने कहा और वृन्दावन जाने का आदेश पाने के लिए महाप्रभु जी से प्रार्थना की। यह सुनकर महाप्रभुजी क्रुध हो गये और क्रुद्ध होकर जगदानन्दजी की भर्त्सना करते हुये बोले : –

"कलिकार बटुया जगा एछे गर्वी हैल।

तोमा-सबारेह उपदेश करिते लागिल??॥

व्यवहारे-परमार्थे तुमि—तार गुरू तुल्य।

तोमारे उपदेश करे न जाने आपन मुल्य??॥

आमार उपदेष्टा तुमि-प्रामाणिक आर्य।

तोमारेह उपदेशे बालका करे एछे कार्य॥"

(चै.च.अ. 4/158-160)

[कल का पैदा हुआ बच्चा जगदानन्द ऐसा घमण्डी हो गया है कि आप सबको उपदेश करने लगा है। व्यवहार तथा परमार्थ में तुम उसके गुरु के सम्मान हो, वह आपको उपदेश करता है। क्या वह अपनी हैसियत नहीं जानता? आप तो मेरे को भी उपदेश करने वाले हो, आप तो प्रसिद्ध प्रमाणिक पुरुष हो, और वह बालक सा आप को उपदेश करने का कार्य करने लगा है।]

भक्त व भगवान् अपने जन की ही भर्त्सना करते हैं। बहुत सौभाग्य से ही भक्त या भगवान् की भर्त्सना सुनने को मिलती है। इसलिए सनातन गोस्वामी जी ने जगदानन्द जी के महासौभाग्य एवं अपने दुर्भाग्य का वर्णन किया—

"जगदानन्दे पियाओ आत्मीयता सुधारस।

मोरे पियाओ गोरव स्तुति-निम्ब-निशिन्दा-रस॥" (चै.च.अ. 4/163)

[अर्थात सनातन गोस्वामी जी ने महाप्रभु जी से कहा कि जगदानन्द को तो आप आत्मीयता का अमृत रस पिलाते हो और मेरे को गौरव स्तुति रूपी नीम तथा निशिन्दा (एक प्रकार का पौधा जो कि आस्वादन करने पर बहुत कड़वा लगता है) का कड़वा रस पिलाते हो।]

जगदानन्द पण्डित के शुद्ध प्रेम रस के वशीभूत होने पर भी महाप्रभु जी ने वैष्णव की मर्यादा स्थापना के लिये सनातन गोस्वामी की मर्यादा लंघन के कार्य से सबको सावधान किया है। महाप्रभुजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इसमें कोई दो राय नहीं कि जगदानन्द मुझे तुमसे भी अधिक प्यारा है परन्तु मर्यादाओं का उल्लंघन करना मैं कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकता—

जगदानन्द प्रिय आमार नहे तोमा हैते।

मर्यादा-लङ्घन आमि ना पारों सहिते॥

(चै.च.अ-4/166)

बल्लभभट्ट के सामने भक्तों की महिमा वर्णन करते समय महाप्रभु जी ने कहा था कि 'कृष्ण-नाम-प्रेम प्रचारक' जगदानन्द पण्डितादि भक्तों के संग के फल से ही कृष्ण भक्ति होती है—

"आचार्यरत्न, आचार्य निधि, पण्डित गदाधर।

जगदानन्द, दामोदर, शङ्कर, वक्रेश्वर॥

काशीशवर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि।

आर जत भक्तगण गौड़े अवतरि'॥

कृष्ण नाम प्रेम कैल जागते प्रचार।

इँहा सबार सङ्गे कृष्णभक्ति ये आमार॥"

(चै.च.अ-7/48-50)

[अर्थात भक्तों का मान बढ़ाते हुये श्रीमान महाप्रभुजी, कहते हैं कि श्रआचार्य रत्न, श्रीआचार्य निधि, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीजगदानन्द, श्रीदामोदर, श्रीशंकर, श्रीवक्रेश्वर,श्रीकाशीशवर, श्रीमुकुन्द, श्रीवासुदेव, श्रीमुरारी और जितने भी भक्त गोड़देश में अवतरित हुए हैं, इन्होंने कृष्ण-नाम-प्रेम जगत में प्रचारित किया है, इन सबके संग के कारण ही मेरी कृष्ण भक्ति हुई है।]

सत्यभामा केअवतार जगदानन्द पण्डित का वाम्य (जल्दी नाराज़ होने वाला या रूठने वाला) स्वभाव होने के कारण प्रायः इनकी महाप्रभु जी से फ्रेम कलह होती रहती थी—

'जगदानन्द पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव।

सत्याभामा-प्राय प्रेम 'वाम्य-स्वभाव'॥

पुनः-पुनः प्रणय कलह करे प्रभु सने।

अन्योऽन्ये खट्मटि चले दुइजने॥"** (चै.च.आ. 7/138-139)

श्रीजगदानन्द पण्डित की निष्कपट सेवा-प्रवृत्ति और श्रीरामचन्द्र पुरी कपट सेवा का पार्थक्य श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्तयलीला के अष्टम परिच्छेद के प्रारम्भ में ही वर्णित है। बाहरी दृष्टि से श्रीरामचन्द्रपुरी माधवेन्द्र पूरी पाद जी के चरणाश्रित शिष्य होने पर भी सेवा प्रवृत्ति से रहित होने के कारण व स्निग्ध सेवक न होने के कारण माधवेन्द्र पुरीपाद की कृपा से वन्चित रह गए थे।

हरिदास ठाकुर के निर्याण-महोत्सव के समय प्रसाद परिवेशन करने (प्रसाद बाँटने) वालों में से श्रीजगदानन्द पण्डित भी थे। प्रसाद परिवेशन करना महाप्रभु जी के मुख्य पार्षदों का एक मुख्य भक्ति अंग है। इसका आचरण करके शिक्षा दी श्रीजगदानन्द जी ने। चातुर्मास्य में गौड़देश के भक्त महाप्रभु जी से मिलने के लिए आते थे और चातुर्मास्य के पश्चात् ही वापस लौटते थे। जिस वर्ष चातुर्मास्य के पश्चात् भक्तों को विदा देते समय महाप्रभु जी ने नित्यानन्द प्रभु को पूरी में आने के लिये निषेध किया, उस वर्ष जगदानन्द पण्डित महाप्रभु जी की खबर लेकर नदिया नगर में शची माता के पास पहुँचे थे। महाप्रभु जी नीलाचल में रहते हुये भी शची माता के प्रेम के वशीभूत होकर साक्षात् रुप से शची माता के सन्मुख प्रकट हो जाते और माता का दिया हुआ भोजन करते थे—इस सम्बन्ध में यथायथ सब वृत्तान्त जब शची माता ने जगदानन्द जी से सुना तो वे आनन्द में विभोर हो गई तथा अब तक जिसे वह सुफिर्त या स्वप्न समझती थीं, सत्य प्रतीत हुआ। जगदानन्दजी जैसे प्रेमी -भक्त से जब अन्यान्य भक्तों की भेंट हुई तो सभी भक्त महानन्द सागर में निमज्जित हो गये।

श्रीजगनदानन्द पण्डित ने श्रीशिवानन्द सेन के घर से महाप्रभु जी के मस्तक पर लगाने के लिए सुगन्धित चन्दन तेल लिया और उसे एक कलसी में भरकर खूब सावधानी के साथ नीलाचल ले आये तथा उसे महाप्रभुजी के अंगों पर लगाने के लिये गोविन्द को दे दिया। गोविन्द ने महाप्रभु जी से निवेदन किया—जगदानन्द गौड़देश से सुगन्धित चन्दन तेल लाये हैं। उसे मस्तक पर लगाने से पित्त व वायु आदि व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं। महाप्रभु जी ने लोकशिक्षा के लिये गोविन्द को कहा—'संन्यासी के लिये तेल व्यवहार निषिद्ध है और उस पर सुगन्धित तेल तो अति निन्दनीय है। हाँ, जब इतना परिश्रम करके तेल ले ही आये हैं तो उसे जगन्नाथ जी के दीपदान सेवा में लगाने से उनका परिश्रम सार्थक हो जायेगा।' गोविन्द ने जब जगदानन्द पण्डित को महाप्रभु का आदेश सुनाया तो उस समय प्रणय-अभिमान वशतः वे मौन रहे। दस दिन के बाद गोविन्द ने जब दुबारा महाप्रभुजी से पुनः जगनदानन्द जी द्वारा लाया तेल अंगीकार करने की इच्छा प्रकट की तो वे लोकशिक्षा हेतु क्रोधित हो उठे और व्यंग्य करते हुए कहने लगे : –

मर्दनिया एक राख करिते मर्दन।

एइ सुख लागि' आमि करिलुँ सन्यास।

आमार 'सर्वनाश'—तोमा-सबार 'परिहास'॥

पथे जाइते तैलगन्ध मोरे जेइ पाबे।

'दारी सन्यासी' करि आमारे कहिबे॥ (चै.च.अ. 12/112-114)

**श्रीजगदानन्द पण्डित का शुद्ध तथा गाढ़ प्रेम था जैसे सत्यभामा जी का वाम्य-स्वभाव का प्रेम श्रीकृष्ण के साथ था। ये पुनः-पुनः महाप्रभु के साथ कलह करते हैं। दोनों एक दूसरे के साथ खटपट करते ही रहते हैं।

[अर्थात महाप्रभु जी गोविन्द से कहते हैं—हाँ-हाँ क्यों नहीं मालिश करने के लिए एक मर्दनिया भी रख लो, इसी सुख के लिये ही तो मैंने संन्यास लिया था। मेरा तो सर्वनाश हो जायेगा और आपका मज़ाक हो रहा है। मार्ग में चलते हुये मेरे शरीर से जब तेल की गन्ध आयेगी तो लोग मुझे 'दारी संन्यासी'* कहेंगे।]

महाप्रभु जी का क्रोध देख गोविन्द अवाक् हो गये। दूसरे दिन प्रातः काल जगदानन्द पण्डित जब महाप्रभु जी से मिलने आये तो महाप्रभु जी ने उन्हें कहा कि संन्यासी के लिये तेल लगाना उचित नहीं, वह तेल जगन्नाथ जी की सेवा में लगाने में श्रम सार्थक होगा। जगदानन्द पण्डित प्रणय अभिमान-जनित रोष प्रकाश करते हुये कहने लगे—"आपको किस ने कहा कि मैं गौड़देश से तेल लाया हूँ, यह झूठ बात है—" ऐसा कहकर उन्होंने तेल की कलसी महाप्रभु के सामने ही आंगन में पटककर फोड़ दी और अपने घर जाकर दरवाजा बन्द करके सो गये। भक्त-प्रेमवश, भगवान् गौरहरि भक्त का मान तोड़ने के लिये स्वयं जगदानन्द पण्डित के घर गये और घर में जाकर मधुर स्वर से पुकारा जगदानन्द! द्वार खोलो, में जगन्नाथ का दर्शन करके दोपहर में आऊँगा और तुम्हारे द्वारा पकाया हुआ अन्न प्रसाद पाउँगा। जल्दी-जल्दी रसोई करने की व्यवस्था करो। प्रभु-प्रेमिक जगदानन्द पण्डित ने साथ-साथ उठकर स्नान किया और प्रभु के लिये बहुत प्रकार के व्यंजन पकाये। मध्याह्न कृत्य कर महाप्रभु जी ने हस्थ व चरण धोये और भोजन के लिये बैठ गये। जगदानन्द जी ने केले के पत्ते पर घी के साथ शालयान्न तथा बहुत प्रकार के व्यंजन, पिठापाना इत्यादि परोस दिये। महाप्रभु ने अपनी पत्तल के साथ एक और केले के पत्ते पर प्रसाद सजाने के लिये कहा। महाप्रभु का अभिप्राय जगदानन्द को भी अपने साथ भोजन करवाने का था। जगदानन्द के भोजन पर न बैठने तक महाप्रभु जी अपने हाथ उठाकर बैठे रहे। जगदानन्द पण्डित ने अभिमान परित्याग कर महाप्रभु जी से कहा कि वे उनके प्रसाद पाने के पश्चात् अवश्य प्रसाद पायेंगे। महाप्रभु जी ने प्रसाद सेवन करते समय जगदानन्द पण्डित के प्रेम के गुस्से में पकाये अन्न व व्यंजनों की भरपूर प्रशंसा की—

"एछे अमृत-अन्न कृष्णे कर समर्पण।

तोमार भाग्येर सीमा के करे वर्णन??॥" (चै.च.अ. 12/133)

[जगदानन्द जी से मज़ाक करते हुए श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी मुस्कुराते हुए कहते हैं कि ऐसे ही अमृत के समान अन्न को तुम श्रीकृष्ण को अर्पण करते हो, तुम्हारे भागय की सीमा का कौन वर्णन कर सकता है।]

जगदानन्द पण्डित द्वारा पुनः-पुनः व्यंजन परिवेशन करते रहने पर भी महाप्रभु जी भय से कुछ नहीं बोले, चुपचाप सब कुछ खाते रहे। कारण, न खाने पर जगदानन्द नाराज़ होकर फिर भूखा रहेगा और ऐसा करते-करते महाप्रभु जी ने उस दिन दस गुना अधिक भोजन किया। भोजन के पश्चात् जगदानन्द जी ने मुख्यशुद्धि के लिए महाप्रभु जी को पान दिया, माला पहनाई, वह उनके शरीर पर चन्दन का लेप किया। महाप्रभु जी ने जगदानन्द को अपने सामने भोजन करने के लिये कहा। वाम्य स्वभावी जगदानन्द पण्डित ने ऐश्वर्य भाव से महाप्रभु जी को मर्यादा संरक्षण हेतु विश्राम करने के लिये प्रार्थना की और कहा कि रामाई और रघुनाथ भट्ट ने भी तो रसोई में सहायता की है। इसलिए मैं उनको भोजन

करवाने के पश्चात् अवश्य ही भोजन करूँगा। महाप्रभु जी ने जगदानन्द की बात पर विश्वास न किया और गोविन्द को ये देखकर बताने के लिये वहीं छोड़ दिया कि जगदानन्द पण्डित भोजन करता है या नहीं। किन्तु जगदानन्द जी ने गोविन्द को शीघ्र ही श्रीमहाप्रभु जी की पादसेवा के लिए भेज दिया। रामाई, नन्दाई, गोविन्द तथा रघुनाथ इत्यादि सबको भोजन करवाकर जगदानन्द जी ने महाप्रभुजी का अवशेष ग्रहण किया। गोविन्द से जगदानन्द के भोजन करने का संवाद सुनकर महाप्रभु जी ने निशचन्त होकर विश्राम किया।

---

* दारी संन्यासी-ऐसे संन्यासी को संन्यास भी लिये होते हैं और स्री को भी साथ रखते हैं। समाज में इन्हें सम्माननीय दृष्टी से नहीं देखा जाता।

जगदानन्दे-प्रभु ते प्रेम चले एइमते।

सत्यभामा-कृष्णे जैछे शुनि भागवते॥

जगदानन्देर सोभाग्येर के कहिबे सीमा?

जगदानन्देर सोभाग्येर तेंह से उपमा॥

जगदानन्देर 'प्रेमविवर्त्त' * शुने जेइ जन।

प्रेमेर 'स्वरूप' जाने, पाय प्रेमधन॥

(चै.च.अ. 12/152-154)

[श्रीजगदानन्द और महाप्रभु का परस्पर प्रेम ऐसा ही होता था जैसे श्रीमद् भगवतम में श्रीमति सत्यभामा और कृष्ण का प्रेम सुनते हैं। श्रीजगदानन्द के सौभाग्य की सीमा को भला कौन पार पा सकता है? श्रीजगदानन्द के सौभाग्य का तो वे स्वयं ही उदाहरण हैं। श्रीजगदानन्द जी द्वारा रचित 'प्रेम विवर्त्त' जो सुनेगा वह प्रेम के स्वरूप को समझ जाएगा और भगवद्-प्रेमघन को प्राप्त कर लेगा।]

महाप्रभु जी कृष्ण विरह में तीव्र वैराग्य प्रकट करते तथा केले के वल्कलों से बनी शैया पर शयन करते थे। भक्तों को यह देखकर बड़ा कष्ट होता कि महाप्रभुजी वल्कल पर सोते हैं, जो आराम दायक नहीं है। महाप्रभु जी को हड्डियों की चुभन की पीड़ा का अनुभव करके भक्तों को दारूण कष्ट होता था। अतः महाप्रभु जी को सुख देने के लिये जगदानन्द पण्डित जी ने शिमुली की रूई से एक गद्दा व एक तकिया तैयार किया और महाप्रभु को शयन के समय देने के लिये गोविन्द को दे दिया। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वरूप दामोदर जी से भी निवेदन किया। शयन के समय रुई का तकिया देखकर महाप्रभु जी क्रोधित हो उठे परन्तु बाद में जब मालूम पड़ा की ये जगदानन्द जी द्वारा भेजा गये है तो जगदानन्द जी का नाम सुनकर महाप्रभु थोड़ा संकुचित हो गये और कृत्रिम क्रोध प्रकाशित करते हुए कहने लगे-ये रुई का तकिया ही क्यों? एक खाट लेने से और भी अच्छा होता। अरे, संन्यासी के लिये तो भूमि-शयन का ही विधान है और ये जगदानन्द मुझे विषय भुगवाना चाहता है, अत्यन्त लज्जा की बात है। स्वरूप दामोदर जी से महाप्रभु जी ने रुई का तकिया नहीं लिया, यह सुन जगदानन्द जी को बहुत दुःख हुआ। सेवा करने में चतुर स्वरूप दामोदर ने जब केले के सूखे पत्ते से शैया तैयार करके दी तो महाप्रभु जी ने उसे अंगीकार कर लिया, इससे सब भक्तों को सुख होने पर भी जगदानन्द जी को दुःख हुआ। अभिमानवशतः जगदानन्द जी ने महाप्रभुजी से वृन्दावन जाने के लिये आदेश की प्रार्थना की। यद्यपि जगदानन्द जी के भीतर का दुःख बाहर व्यक्त नहीं हुआ तब भी अन्तर्यामी महाप्रभु जी उसे समझ गये और उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए मधुर वाक्यों से बोले-तुम मुझ पर क्रोध करके, मेरे को दोषी ठहराकर मथुरा में जाकर भिकारी बनोगे?

वाम्य स्वभाव जगदानन्द हृदय के भाव को छिपाते हुये बोले—नहीं प्रभो, मेरी बहुत दिन से वृन्दावन जाने की इच्छा है। आपका आदेश न मिलने के कारण जा नहीं सका।

---

*प्रेम विवर्त्त—एक अर्थ तो यह है कि प्रेम का विवर्त्त अर्थात ऐसा प्रेम-व्यवहार जिसमें रोष का भ्रम होता है, द्वितीय अर्थ यह है कि जगदानन्द जी ने अपने 'प्रेम विवर्त्त' नामक ग्रन्थ में जो श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का चरित्र वर्णन किया है वह।,

जगदानन्द पण्डित द्वारा पुनः-पुनः अनुरोध करने पर भी जब महाप्रभु ने भक्त वात्सल्य वशतः उन्हें जाने की सम्मति प्रदान नहीं की तो जगदानन्द पण्डित जी ने स्वरूप दामोदर जी को महाप्रभु जी से वृन्दावन जाने की अनुमति दिलवाने के लिये निवेदन किया।

स्वरूप दामोदर महाप्रभु जी से बोले—जगदानन्द की वृन्दावन जाने की बहुत इच्छा है। आपने जैसे पहले उसे शचीमाता से मिलने के लिये गौड़देश भेजा था, उसी प्रकार वृन्दावन जाने के लिये आदेश देने से अच्छा होता।

स्वरूप दामोदर के अनुरोध के कारण महाप्रभु जी ने जगदानन्द जी को वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी किन्तु अत्यन्त स्नेह परवश होकर विस्तृत रूप से रास्ते की सुविधाओं व असुविधाओं के बारे में बताते हुये कहने लगे-वाराणसी तक तो आप स्वच्छन्दता से चल सकोगे लेकिन उसके आगे सावधानी से चलना क्योंकि उससे आगे का सारा रास्ता सुरक्षित नहीं है, वहाँ बहुत से चोर-डकैतों का डर है इसलिए क्षत्रियों को साथ लेकर चलना। निरीह गौड़ीय को वे रास्ते व घाट पर मारकर लूट लेते हैं और हाँ, मथुरा जाकर पहले सनातन से मिलना और मथुरा में चौबे ब्राह्मणों की चरण वन्दना करना। दूर से ही उनकी भक्ति करना, उनके साथ रहना नहीं। उनका आचरण नहीं समझ पाओगे और अपराध कर बैठोगे। व्रजमंडल की परिक्रमा सनातन के साथ करना। एक मुहूर्त के लिये भी उसका संग नहीं छोड़ना और गोवर्धन पर चढ़कर गोपाल जी का दर्शन भी मत करना और ज्यादा समय वृन्दावन में नहीं रहना। शीघ्र वापस आ जाना।

शीघ्र आसिह, ताँहा न रहिह चिरकाल।

गोवर्द्धने ना चड़िह देखिते 'गोपाल'॥

(चै.च.अ. 13/39)

जगदानन्द पण्डित महाप्रभु जी की वन्दना करते हुये अकेले ही चलते-चलते वाराणसी में तपन मिश्रा और चन्द्रशेखर जी से तथा मथुरा में पहुँच कर सनातन गोस्वामी जी से मिले। सनातन गोस्वामी जी के आनुगत्य में ही जगदानन्द जी ने बारह वनों का भ्रमण किया। द्वादश वन भ्रमण के पश्चात् वे गोकुल-महावन में एक साथ रहने लगे। सनातन गोस्वामी माधुकरी भिक्षा में मिली रोटी खाकर ही जीवन निर्वाह करते थे। किन्तु जगदानन्द जी को रोटी खाने का अभ्यास न होने के कारण देवालय में जाकर चावल दाल रसोई करते थे। एक दिन जगदानन्द पण्डित जी ने सनातन गोस्वामी को प्रसाद पाने के लिये निमन्त्रित किया तथा सनातन गोस्वामी जी भी उनके निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करते हुये वहाँ पहुँचे, परन्तु जब सनातन गोस्वामी जी वहाँ पहुँचे, तो उनके सिर पर एक लाल कपड़ा बँधा था जो कि उन्हें मुकुन्द सरस्वती नामक एक संन्यासी ने दिया था। सनातन गोस्वामी उस बहिर्वास को मस्तक पर बाँधकर जगदानन्द के घर के द्वार पर आकर बैठ गये। सनातन गोस्वामी के मस्तक पर खून जैसा लाल रंग का वस्त्र देकर जगदानन्द पण्डित प्रेमाविष्ट हो गये; किन्तु सनातन गोस्वामी से पूछने पर जब यह मालूम हुआ कि वह महाप्रभुजी का नहीं वरन् मुकुन्द सरस्वती द्वारा प्रदत्त है, तब तो जगदानन्द जी क्रोध होकर चावल की हाँडी उठाकर मारने के लिये उद्यत हो गये और भत्तर्सना करते हुये सनातन से बोले : –

तुमि महाप्रभुर हओ पार्षद-प्रधान।

तोमा सम महाप्रभुर प्रिय नाहि आन॥

अन्य सन्यासीर वस्त्र तुमि धर शिरे।

कोन् एछे हय—इहा पारे सहिवारे?"

सनातन कहे,—"साधु पण्डित महाशय।

तोमा-सम चैतन्येर प्रिय केह नय॥

एछे चैतन्य निष्ठा योग्य तोमाते।

तुमि न देखाइले इहा शिखिमु केमते?

जाहा देखिबारे वस्त्र मस्तके बान्धिलुँ।

सेइ अपूर्व प्रेम एइ प्रत्यक्ष देखिलुँ॥

रक्तवस्त्र 'वैष्णवेर' परिते ना युयाय॥

कोन प्रवासीरे दिमु कि काय उदाय?"

(चै.च.अ 13/56-61)

[आप महाप्रभु जी के प्रधान पार्षद है। आपके सामान महाप्रभु जी का कोई भी प्रिय नहीं है। आप दूसरे दूसरे संन्यासियों के वस्त्रअपने सिर पर धारणकरते हो, कौन ऐसा गौड़ीय वैष्णव होगा जो इसे सहन कर पायेगा—जगदानन्द जी ने कहा। अपने उत्तर में सनातन जी कहते हैं, " हे साधु पण्डित-महाशय! श्रीचैतन्य महाप्रभु का आपके समान कोई प्रिय नहीं है। श्रीचैतन्य जी के चरणों में ऐसी योग्य निष्ठा का प्रदर्शन आप नहीं करेंगे तो उसे मैं किस प्रकार सीखूँगा। जिसे देखने के लिए मैंने सिर पर वस्त्र बाँधा था, वह अपूर्व प्रेम मैंने प्रत्यक्ष ही देख लिया है। वैष्णव को रक्त वस्त्र पहनना शोभा नहीं देता है। अच्छा, मैं इसे किसी यात्री को दे दूँगा और बोलो क्या करूँ इसका?"]

जगदानन्द द्वारा पकाया अन्ना व व्यंजनादि महाप्रभु जी को निवेदित किया गया तथा उसके बाद जगदानन्द जी व सनातन गोस्वामी, दोनों ने बैठकर प्रसाद ग्रहण किया। दो मास इस प्रकार रहने के पश्चात् जगदानन्द भी महाप्रभु जी के विरह में अस्थिर हो गये तथा पूरी में वापस जाने के लिये सनातन गोस्वामी जी से अनुमति की प्रार्थना करने लगे। सनातन गोस्वामी जी ने जगदानन्द जी को जाने की अनुमति देकर विरह व्याकुल हृदय से रासस्थली की रेत, गोवर्धन शिला, गुंजामाला, शुष्क किन्तु पके हुए पीलूफल महाप्रभु जी को देने के लिये उनके हाथों में दिये।

नीलाचल में आकर सपार्षद महाप्रभु जी से मिलकर जगदानन्द जी परमानन्दित हुये तथा जगदानन्द को देखते ही महाप्रभु जी ने उसे ज़ोर से आलिंगन किया। सनातन गोस्वामी द्वारा भेजी सभी वस्तुयें जगदानन्द जी ने महाप्रभु जी को दे दीं। सनातन द्वारा प्रदत्त द्रव्यों को प्राप्त कर महाप्रभुजी प्रसन्न हुये। पीलूफल किस प्रकार खाया जाता है, ये पता न होने पर भी, यह समझकर कि ये वृन्दावन से आया है, भक्तों ने प्रीति के साथ उसे जैसे-तैसे खाया।

शचीमाता के शुद्ध वात्सल्य भाव के वशीभूत होकर महाप्रभु प्रतिवर्ष जगदानन्द पण्डित को प्रसादी वस्त्र व मिष्टान्न देकर नवद्वीप भेजते थे और जगदानन्द पण्डित जी नवद्वीप में जाकर महाप्रभुजी की बातें बता कर शचीमाता का दुःख

मोचन करते थे। अन्तिम बार जब जगदानन्द पण्डित जी नवद्वीप आये तो वहाँ के भक्तों से मिलकर शान्तिपुर गये। शान्तिपुर में श्रीअद्वैत आचार्य जी से जब वे विदाई की याचना कर रहे थे तो उन्होंने (अद्वैताचार्य जी ने) जगदानन्द पण्डित के माध्यम से एक तर्जा (पहेली) महाप्रभु जी के पास भेजी जो कि इस प्रकार है: –

"प्रभुरे कहिह आमार कोटि नमस्कार।

एइ निवेदन ताँर चरणे आमार॥

बाउलके कहिह,-लोक हइल बाउल।

बाउलके कहिह,-हाटे ना बिकाय चाउल॥

बाउलके कहिह,-काये नाहिक बाउल।"

बाउलके कहिह,-इहा कहियाछे बाउल॥

(चै.च.अ 19/19-21)

उपरोक्त पहेली का अर्थ बताते हुए श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि महाप्रभु को कहना कि, लोग प्रेम में उन्मत्त हो गए हैं, प्रेम के हाट में प्रेमरूप चावल को बेचने की जगह नहीं है अर्थात अब इसका और कोई ग्राहक नहीं है। महाप्रभु जी को कहना कि आउल अर्थात प्रेमोन्मत्त बावले का और कोई भी सांसारिक कार्य नहीं है। महाप्रभु को कहना कि प्रेमोन्मत्त होकर ही अद्वैत ने यह बात कही है। तात्पर्य यह है कि प्रभु के आविर्भाव का जो तात्त्पर्य था वह सम्पूर्ण हो गया है। अब जो प्रभु की इच्छा हो, वही हो।

श्रीजगदानन्द पण्डित जी की तिरोधन लीला का स्थान, सन् एवं तिथि भी अज्ञात है।

****

श्रीनन्दन आचार्य

श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीचैतन्य भागवत इन दोनों ग्रन्थों के वर्णनानुसार इस प्रकार जाना जाता है कि श्रीनन्दनाचार्य के पिता श्रीचतुर्भुज पण्डित थे तथा ये विष्णु दास, नन्दन और गंगादास तीन भाई थे।

'चतुर्भुज पण्डित-नन्दन गंगादास।

पूर्वे याँ'र घरे नित्यानन्देर विलास॥'*

(चै. भा. अ. 5/745)

विष्णुदास, नन्दन, गंगादास, तिन भाई।

पूर्वे याँर घरे छिल ठाकुर निताइ॥"**

(चै. च. आ. 11/43)

ये नवद्वीपवासी भट्टाचार्य थे। विष्णुदास और गंगादास भी नीलाचल में कुछ दिन महाप्रभु के पास रहे थे। श्रीनन्दनाचार्य के घर नवद्वीप में श्रीमन्महाप्रभु, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु और श्रीअद्वैत प्रभु जी ने छिप कर रहने की लीला की थी। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु नवद्वीप में नन्दनाचार्य के घर में रहे थे।

'ननन्द आचार्य शाखा जगते विदित।

लुकाइया याँ'र घरे दुइ प्रभु स्थित'॥*** (चै. च. आ. 10/39)

श्रीगौड़ीय वैष्णव-अभिधान (शब्दकोश)में नन्दनाचार्य के पितृ परिचय और वंश परिचय में अन्तर देखा जाता है। उसमें इस प्रकार लिखा है कि श्रीनन्दन आचार्य के घर में एक गृह-विप्र थे उनका नाम भी श्रीनन्दनाचार्य था, श्रीनन्दनाचार्य जी के पिता का नाम श्रीलक्ष्मीनारायण था, जिनके श्रीनन्दन और श्रीभगवान् अधिकारी सार्वभौम नामक दो पुत्र थे। सर्वज्ञ और ज्योतिष शास्त्र में अद्वितीय पण्डित होने के कारण श्रीलक्ष्मीनारायण जी की काफी प्रसिद्धि थी। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी की जन्म लीला का भी दर्शन किया था। श्रीनन्दनाचार्य चैतन्य शाखा में गिने जाते हैं। ये लंगड़े थे श्रीमन्महाप्रभु जी के दक्षिण भारत भ्रमण के पश्चात् वापस पुरी में प्रस्थान करने पर सभी उल्लसित हुये। श्रीनन्दनाचार्य ने लंगड़े होते हुये भी अधिक उत्फुल्लित होकर सब से आगे जाकर महाप्रभु जी की पूजा की थी।

'नन्दन आचार्य आसे गाढ़ अनुरागे।

खोंड़ा बटे तबुओ आसे सकलेर आगे '॥

[श्रीनन्दन आचार्य जी का महाप्रभु जी से अत्यन्त प्रेम है। इसीलिये लंगड़े होते हुए भी वे सब से आगे रहते हैं।]

---

* श्रीचतुर्भुज पण्डित, श्रीनन्दन, श्रीगंगादास तीन भाई हैं, जिन के घर पहले श्रीनित्यानन्द जी की लीला हुई है।

**श्रीविष्णुदास, श्रीनन्दन, श्रीगंगादास पहले जिनके घर में निताई ठाकुर रहते थे।

*** श्रीनन्दन आचार्य जी की शाखा जगत में प्रसिद्ध है, जिन के घर में दोनों प्रभु छिप कर लीला किया करते थे।

श्रीनन्दनाचार्य के पूर्व पुरुष शाकद्वीपी पराशरात्मज शान्तिमुनि वंश में पैदा हुये थे। वात्स्य गोत्र, राढ़ीय भरत शाखा का वंश है। इन्होंने कुछ दिन तारकेश्वर के पास बहिर्खण्ड ग्राम में वास किया था तथा बाद में नवद्वीप के दक्षिण मोहल्ले में रहे। गौड़ीय वैष्णव अभिधान में और भी लिखा है:– "श्रीचैतन्य चरितामृत में उल्लिखित जो विष्णुदास, नन्दन, गंगादास नाम के तीन भाई हैं, तीनों भाईयों के अन्तर्गत जो नन्दन जी हैं वे अलग हैं, अर्थात् वे नन्दनाचार्य नहीं हैं। कारण, इनकी गिनती तो नित्यानन्द शाखा में होती है, यह नन्दन तो एक पद कर्त्ता थे। इनका अन्य परिचय भी अज्ञात ही है।"

श्रीनन्दन आचार्य भवन में श्रीनित्यानन्द प्रभुः–

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने गृह त्याग दिया और अत्यन्त व्याकुल हृदय से अवधूत वेष धारणकरके विभिन्न तीर्थों में कृष्ण का अन्वेषण करने के लिये निकल पड़े। अन्वेषण करते –2 वृन्दावन पहुंचने पर आपको मालूम पड़ा कि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मायापुर में श्रीशचीनन्दन गौरहरि के रूप में प्रकट हुये हैं तो श्रीबलदेवाभिन्न स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु नवद्वीप में आकर श्रीनन्दनाचार्य जी के घर में गुप्त रूप से रहने लगे।श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी की सेवा प्राप्त कर श्रीनन्दन आचार्य धन्यातिधन्य हो गये। इधर श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वप्न में श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी का आगमन देखा और सभी भक्तों को अपने स्वप्न की बात बतायी तथा श्रीहरिदास ठाकुर एवं श्रीवास पण्डित को नित्यानन्द की खोज के लिये भेजा गया। सारे नवद्वीप में अन्वेषण करने पर भी उन्हें नित्यानन्द प्रभु जी की कोई खबर न मिली।

हरिदास ठाकुर और श्रीवास पण्डित से यह सुनकर कि नवद्वीप में नित्यानन्द प्रभु नहीं हैं, महाप्रभु जी हल्का सा मुस्कराये और थोड़ी देर के पश्चात् भक्तों को साथ लेकर स्वयं नन्दनाचार्य के घर में उपस्थित हुये। करोड़ सूर्यों के समान कान्ति वाले एक अपूर्व पुरुष को देखकर भक्त अत्यन्त विस्मित हुये। श्रीनित्यानन्द प्रभु के स्वरूप को प्रकाश करने के लिये श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवास पण्डित को कृष्ण लीला की उद्दीपना करवाने वाला श्लोक बोलने के लिये इशारा किया। महाप्रभु जी का इशारा पाकर श्रीवास पण्डित ने भागवत का "**बर्हापीड़ं नटवर वपुः... ..प्रविशदगीतकीर्त्तिः**" (भा 10/21/5) श्लोक का उच्चारण किया। श्लोक सुनने मात्र से श्रीनित्यानन्द प्रभु 'हा कृष्ण' पुकार कर मूर्छित होकर गिर पड़े व उनके अंगों में अष्टसात्विक विकार प्रकटित होने लगे। श्रीमहाप्रभुजी भी अनेक दिनों से श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी को मिलने के लिये व्याकुल थे, सो आज सब के सामने नित्यानन्द तत्त्व को प्रकाशित कर महाप्रभु जी ने उनको गोद में ले लिया—

'श्रीनन्दन आचार्य परम भाग्यवान।

देख श्रीनिवास एइ भवन ताहान।

भक्त गोष्ठी सह प्रभु लिया, ए भवने।

देखे नित्यानन्द बसि आछये धेयाने॥

निरूपम नित्यानन्द अंगेर माधुरी।

दाँड़ाइया भक्त गण देखे नेत्र भरी'॥ (भक्ति रत्नाकर 12/2422-4)

[श्रीनन्दन आचार्य परम भाग्यवान हैं। श्रीनिवास! देखो, यह उसका घर है। भक्तों के साथ मिल कर श्रीमन्महाप्रभु उस भवन में गये। वहाँ जाकर देखा कि नित्यानन्द जी ध्यान में बैठे हैं। श्रीनित्यानन्द के अंगों की मधुरता कही नहीं जा सकती। सब भक्त खड़े होकर रुदन करते हुए नेत्र भर कर उनकी माधुरी के दर्शन करते हैं।]

श्रीनन्दन आचार्य के भवन में श्रीअद्वैताचार्य प्रभु का गुप्त अवस्थान।

श्रीवासांगन में श्रीव्यास पूजा की समाप्ति के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु और अन्यान्य भक्तों के साथ संकीर्त्तनानन्द में मग्न हो गये। एक दिन महाप्रभु जी ने ईश्वरावेश में श्रीवास पण्डित के छोटे भाई श्रीरामाई पण्डित (श्रीराम पण्डित) को श्रीअद्वैताचार्य जी से अपने प्रकटित होने की बात बताने के लिये भेजा। श्रीरामाई पण्डित को साथ यह भी कह दिया कि अद्वैताचार्य जी ने जिन गोलोकपति श्रीहरि को धराधाम में अवतीर्ण करवाने के लिये गंगाजल और तुलसी से पूजाकर ते हुये आवाहन किया था वे स्वयं ही प्रकटित हो चुके हैं। अतः अद्वैताचार्य अपनी स्री, पुत्रादि परिवार तथा समस्त पूजा की सामग्री के साथ श्रीवासांगन में जल्दी ही महाप्रभु के पास पहुँचें। महाप्रभु जी के निर्देशानुसार रामाई पण्डित अद्वैताचार्य के पास पहुँचे।

सब कुछ जानते हुए भी अद्वैताचार्य ने उनके आने का कारण पूछा तो उत्तर में रामाई पण्डित ने महाप्रभु जी के प्रकट होने की बात बतायी। रामाई से श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रकाश की बात सुनकर श्रीअद्वैताचार्य, उनकी पत्नी श्रीसीता देवी और पुत्र श्रीअच्युतानन्द एवं अन्य-अन्य अनुचर सभी प्रेम में विह्वल हो उठे तथा उनके नेत्रों से अश्रुवर्षा होने लगी। महाप्रभु जी के चरणों में उपस्थित होने के लिये वे घर से ही समस्त पूजा उपकरणों को लेकर चल दिये परन्तु महाप्रभु जी की परीक्षा लेने के लिये वे रास्ते में ही श्रीनन्दनाचार्य के घर पर ठहर गये और रामाई को उनके (अद्वैताचार्य के) नन्दनाचार्य के घर पर रुके रहने की बात न बताने को कहा और बोला कि आप महाप्रभु जी से कहना अद्वैताचार्य ने कहा है कि वे नहीं आयेंगे। सर्वान्तर्यामी विश्वम्भर महाप्रभु जी ने रामाई से अद्वैताचार्य के न आने की बात सुनी तथा सर्वज्ञ होने के कारण अद्वैताचार्य के संकल्प को समझ लिया और विष्णु सिंहासन पर सबके सामने अपना ऐश्वर्य रूप प्रकट करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु के इशारे से श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु जी के मस्तक पर छत्र फैला दिया साथ ही गदाधरादि भक्त नानाविध सेवाओं में नियोजित हो गये। महाप्रभु जी ने सब के सामने अद्वैताचार्य जी के मनोभावों को व्यक्त करते हुये कहा कि अद्वैताचार्य मेरी परीक्षा लेने के लिये पूजा सामग्री सहित नन्दनाचार्य के भवन में छिप कर बैठा है। महाप्रभु जी ने अद्वैताचार्य को यह बताने के लिये कि महाप्रभु जान गये हैं कि तुम वहां छिपे हो तथा उन्हें वहाँ से लिवा लाने के लिए रामाई को पुनः वहाँ भेजा।

महाप्रभुजी का पुनः साक्षात् आदेश प्राप्त कर अद्वैताचार्य प्रभु आनन्द में विभोर होकर अपनी स्री के साथ महाप्रभु जी के पास उपस्थित हुये तथा दूर से ही महाप्रभु जी के पादपद्मों में दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करते हुये स्तव करने लगे। महाप्रभु जी का अपूर्व महैश्वर्य स्वरूप दर्शनकर अद्वैताचार्य जी स्तम्भित हो गये तथा सभी के सामने श्रीगौरहरि की असमोर्ध्व दया की महिमा का गान करने लगे। बाद में श्रीमन्महाप्रभु जी के पादप्रक्षालन कर पन्चोपचार से पूजाकर के अद्वैताचार्य जी ने:–

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण हिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥ (चै.च.म. 13/77)

इत्यादि श्लोकों का उच्चारण करते हुये श्रीगौरसुन्दर को प्रणाम किया। महाप्रभु जी द्वारा अद्वैताचार्य जी को नृत्य के लिये आदेश करने पर उन्होंने अपूर्व नृत्य आरम्भ कर दिया। संकीर्त्तनानन्द में अद्वैताचार्य प्रभु के भावविह्वल नृत्य को देख भक्तगण प्रेमानन्द में निमज्जित हो गये।

श्रीनन्दनाचार्य भवन में महाप्रभु जी की गुप्त रूप में स्थितिः–

पाखण्डी लोग महाप्रभु जी की विद्या प्रतिभा से परास्त होकर षड़यन्त्र रचने लगे। उन्होंने वहाँ के शासक के पास महाप्रभु जी के विरोध में शिकायत की। महाप्रभु जी ने अपने घर वापस लौटकर पाखण्डियों के पाखण्डी विचारों का विनाश करने के लिये भक्तों के साथ मिलकर संकीर्त्तन आरम्भ किया, किन्तु संकीर्त्तन में पहले के समान भाव प्रकटित न होते देखकर महाप्रभु जी दुःख प्रकाश करने लगे। प्रेमोन्मत्त अद्वैताचार्य प्रभु जी ने इसके कारण की ओर निर्देश करते हुये कहा कि महाप्रभु जी ने नित्यानन्द प्रभु को प्रेम का भण्डारी बनाया है जबकि मुझे और श्रीवास को प्रेम से वन्चित किया हुआ है और दूसरी तरफ तिली, माली-यहां तक कि तेली को भी प्रेम दान दिया है। इसलिये महाप्रभु जी के प्रेम को मैंने शोषण कर लिया है, संकीर्त्तन में भाव न होने का यही कारण है। यह सुनकर, महाप्रभु जी ने प्रेमशून्य निष्फल शरीर को त्याग करना ही अच्छा समझा और ऐसा समझकर वे गंगा जी में कूद पड़े। नित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर जी ने महाप्रभु जी को गंगा जी से उठाया। श्रीमन् महाप्रभु जी नन्दनाचार्य जी के घर में गुप्त रूप से रहेंगे, इस संकल्प के बारे में उन्होंने सिर्फ नित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर जी को बताया था उहोंने यह बात बाकी भक्तों से गुप्त रखने के लिए कहा।

महाप्रभु जी से न मिल पाने के कारण सभी भक्त तीव्र विरह से क्रन्दन करने लगे। अद्वैताचार्य प्रभु तो उपवासी रहे। परन्तु इधर नन्दनाचार्य भवन में महाप्रभु जी के विष्णु आसन पर आसीन होने से नन्दनाचार्य परमोल्लास से विविध सेवा कार्यों में व्यस्त हो गये। महाप्रभु जी द्वारा नन्दन आचार्य को अपने गुप्त रहने के विषय में आदेश देने पर नन्दनाचार्य बोले आप भक्तों के हृदय के धन हैं, भक्त ही आपको प्रकाशित करते हैं इसलिये आप भला भक्तों से छिप कर कैसे रह सकेंगे? और हुआ भी ऐसा ही अर्थात भक्तों के विरह में स्थिर न रह सकने के कारण महाप्रभु जी ने श्रीवास पण्डित को बुलाने के लिए नन्दनाचार्य को भेजा। श्रीवास पण्डित जी ने आकर जब अद्वैताचार्य जी की विरह कातरता और उपवास के बारे में बताया तो तुरन्त महाप्रभु जी अद्वैताचार्य जी के पास पहुँचे एवं उन्हें मूर्च्छित देखकर अपने आप को अत्यन्त अपराधी समझने लगे। प्रेम मूर्च्छा से उठकर अद्वैताचार्य जी महाप्रभु जी से अपनी कुमति के लिये पुनः-2 क्षमा प्रार्थना करने लगे और नित्य दास्यभाव से उनके श्रीचरणों में रहने के लिये आर्ति ज्ञापन करने लगे।

महाप्रभु जी की विभिन्न लीलाओं के संगीः–

काटोया में संन्यास ग्रहणकरने के पश्चात् नित्यानन्द प्रभु की चातुरी के कारण महाप्रभु जी ने जब शान्तिपुर में अद्वैताचार्य जी के गृह पर शुभागमन किया था तो उस समय शचीमाता और नवद्वीपवासी भक्त जो महाप्रभु जी से मिलने आये थे, उनमें नन्दनाचार्य भी एक थे। चातुर्मास्य में महाप्रभु जी की सेवा के लिये जिस समय राघव पण्डित झाली (झोली)

लेकर एवं महाप्रभु जी के अन्यान्य भक्त अनेक प्रकार के खाद्य द्रव्य लेकर पुरुषोत्तम धाम गये तो महाप्रभु जी ने अत्यन्त प्रीति के साथ उन्हें ग्रहण किया था, उस समय नन्दन आचार्य जी ने भी अपने लाये हुये द्रव्यों से महाप्रभु जी की सेवा की थी। श्रीअद्वैताचार्यादि जिन सब भक्तों के घर में महाप्रभु जी ने भोजन का निमन्त्रण स्वीकार किया था उनमें नन्दनाचार्य भी थे। सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा प्रताप रुद्र को गौड़ीय वैष्णवों का परिचय देते समय भी नन्दनाचार्य जी का नाम उल्लेख किया था।

राघव पण्डित, इँह आचार्य नन्दन।

श्रीमान् पण्डित एइ, श्रीकान्त, नारायण॥

(चै. च.म.11/89)

श्रीनन्दनाचार्य श्रीवास आंगन में और काज़ी दमन के समय महाप्रभु जी के कीर्त्तन में एवं श्रीधर-आंगन में, श्रीपुरुषोत्तम धाम में, श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जन लीला में तथा इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान लीला के समय, आइ टोटा उपवन में, महाप्रसाद भोजन लीला में एवं श्रीरथयात्रा आदि के समय श्रीमन् महाप्रभु जी के साथी थे। श्रीश्रीनन्दनाचार्य की आविर्भाव और तिरोभाव तिथि अज्ञात है।

श्रीनन्दन आचार्य भवनः–

उक्त स्थान की स्मृति में श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के ज्येष्ठ सतीर्थ श्रीगौड़ीय संघपति नित्य लीला प्रविष्ट ॐ 108श्रीश्रीमद् भक्ति सारंग गोस्वामी महाराज जी ने श्रीमायापुर ईशोद्यान में श्रीनन्दनाचार्य भवन और श्रीगौर नित्यानन्द जी के विग्रहों की प्रतिष्ठा की है।

****

श्रीमुरारी गुप्त

मुरारिगुप्तो हनुमानङ्गदः श्रीपुरन्दरः।

यः श्रीसुग्रीवनामासीद्गोविन्दानन्द एव सः॥

(गौ. ग. दी. 91)

श्रीरामलीला में जो हनुमान जी हैं, गौर लीला मे वे ही मुरारि गुप्त रूप से प्रकटित हुये हैं। मुरारी गुप्त के हृदय में भगवान् मुरारि (श्रीचैतन्य देव) गुप्त रूप से सर्वदा वास करते हैं, इसीलिये वे 'मुरारी गुप्त' के नाम से जाने जाते हैं।

'मुरारि' वैसये गुप्ते इहार हृदये।

एतेके 'मुरारीगुप्त' नाम योग्य हये॥*

(चै. भ.म.10/31)

भव रोग वैद्य श्रीमुरारी नाम यांर।

'श्रीहट्टे' एसबे वैष्णवेर 'अवतार'॥**

(चै. भा. आ. 2/35)

ये श्रीहट्ट में वैद्यवंश में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता के बारे में काफी ढूँढने पर भी मालूम न पड़ सका।आयु में ये महाप्रभु जी की अपेक्षा बड़े थे। श्रीहट्ट से नवद्वीप आकर महाप्रभु के घर के पास आकर रहे तथा महाप्रभु जी की बाल्यलीला के साथी बने। महाप्रभु जी से पहले उनके जिन नित्यसिद्ध पार्षदों के आविर्भाव का वर्णन चैतन्य भागवत में है, उनमें मुरारीगुप्त का नाम भी उल्लिखित हुआ है:–

निगूढ़े अनेक आर वैसे नदीयाय।

पूर्वे सब जन्मिलेन ईश्वर आज्ञाय॥

श्रीचन्द्रशेखर, जगदीश, गोपीनाथ।

श्रीमान्, मुरारि, श्रीगरुड़, गङ्गादास॥

(चै. भा. आ. 2/98-99)

श्रीचन्द्रशेखर, श्रीजगदीश, श्रीगोपीनाथ, श्रीमान् पण्डित, श्रीमुरारि, श्रीगरुड़ तथा श्रीगंगादास आदि अनेक भक्त गुप्तभाव से नवद्वीप में रहते थे। श्रीभगवान् की आज्ञा से उन्होंने पहले ही नवद्वीप में जन्म ले लिया था।

---

* भगवान् मुरारी इनके हृदय में गुप्त रूप से निवास करते हैं इसलिये इनका 'मुरारी गुप्त' नाम युक्ति युक्त ही है।

** श्रीमुरारी, जो कि भव-रोग के वैद्य हैं, ये वैष्णव श्रीहट्ट में आविर्भूत हुये।

यह भी महाप्रभु जी के सहपाठी रूप से गंगादास पण्डित जी के संस्कृत विद्यालय में पढ़ते थे। विद्याविलास लीला के समय महाप्रभु जी मुरारी गुप्त के साथ विचार-विमर्श भी करते थे और मज़ाक भी करते थे, किन्तु मन ही मन मुरारी गुप्त की व्याख्या से सन्तुष्ट होते थे।

मुरारी गुप्त भी महाप्रभु जी के अद्‌भुत पाण्डित्य से विस्मित होते थे तथा महाप्रभु जी के हाथ के स्पर्श से आनन्द सागर में निमज्जित होने का आनन्द अनुभव करते और सोचते थे कि ये कभी भी साधारण मनुष्य नहीं हो सकते—

प्रभुर प्रभावे गुप्त परमपंण्डित।

मुरारिर व्याख्या शुनि' हन हरषित॥

सन्तोषे दिलेन ताँ'र अंङ्गे पद्महस्त।

मुरारिर देह हैल आनन्द समस्त॥

चिन्त्ये मुरारिगुप्त आपन-हृदये।

प्राकृत-मनुष्य कभी ए पुरुष नहे॥

एमन पाण्डित्य किवा मनुष्येर हय?

हस्तस्पर्शे देह हैल परानन्दमय॥

(चै. भा.आ. 10/30-33)

[अर्थात् महाप्रभु जी की कृपा से श्रीमुरारी गुप्त परम पण्डित थे। श्रीमुरारी की व्याख्या सुनकर श्रीमन्महाप्रभु आनन्दित होते थे और आनन्दित होकर अपना कमल के समान हाथ उनके शरीर पर लगाते जिससे मुरारीगुप्त का सारा

शरीर पुलकित हो उठता। तब मुरारी अपने मन में विचार करने लगते कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। ऐसा पाण्डित्य क्या दुनियावी मनुष्य में हो सकता है? इनके हाथ लगने मात्र से ही मेरी देह परमानन्दमय हो जाती है।]

वैष्णवों का भूषण होता है—दीनता। मुरारीगुप्त के अन्दर इतनी दीनता थी कि उनकी दीनता देखकर महाप्रभु जी का हृदय द्रवीभूत हो जाता था।

श्रीमुरारि गुप्त शाखा,-प्रेमेर भाण्डार।

प्रभुर हृदय द्रवे शुनि' दैन्य याँर॥* (चै. च. आ. 10/49)

श्रीमुरारीगुप्त जी ने महाप्रभु जी की बाल्यलीला साक्षात् देखकर 'श्रीचैतन्य चरित' ग्रन्थ लिखा था।

गया से वापस आने के पश्चात् शुक्लाम्बर के घर में महाप्रभु जी का श्रीमुरारीगुप्त से मिलन हुआ था। मुरारीगुप्त को श्रीमान् पणिडत जी से ही महाप्रभु जी के प्रेम विकार की बात पता लगी थी। मुरारीगुप्त जी पर प्रसन्न होकर महाप्रभु जी ने एक दिन उनको अपने वराह के रूप में दर्शन करवाये थे तथा गर्जन करते-करते मुरारी के जल पात्र को दाँतों

* [श्रीमुरारीगुप्त की शाखा प्रेम का भण्डार है। उनका दैन्य भाव देखकर महाप्रभु का हृदय द्रवित हो जाता था।]

पर इस प्रकार उठा लिया जैसे अपने वराहावतार में पृथ्वी को उठाया था। वराह भगवान् के दर्शन कर मुरारीगुप्त जी कृतार्थ हो गये और उनका स्तव करने लगे।

श्रीचैतन्य भागवत् के मध्यखण्ड के तृतीय अध्याय में वृन्दावन दास ठाकुर जी ने इसे सुन्दर रूप में लिखा है:–

वराह-आवेश हैला मुरारि-भवने।

ताँर स्कन्धे चड़ि' प्रभु नाचिला अङ्गने॥ (चै. च. आ. 17/19)

भगवान रामचन्द्र जैसे हनुमान जी से स्नेह करते थे, उसी प्रकार गौरांग महाप्रभु भी मुरारी गुप्त से स्नेह करते थे—

अन्तरे मुरारिगुप्त-प्रति बड़ प्रेम।

हनुमान्-प्रति प्रभु रामचन्द्र येन॥** (चै.भा. म. 3/19)

श्रीवासांगन में 'सातप्रहरिया' महाप्रकाशलीला के समय महाप्रभु जी ने मुरारी को राम रूप के दर्शन कराकर कृतार्थ किया था। अपने इष्ट देव के दर्शन करके मुरारीगुप्त मूर्च्छित हो गये थे। बाद में जब मुरारीगुप्त जी की मूर्च्छा भंग हुई तब उन्होंने महाप्रभु जी का स्तव किया। मुरारी गुप्त का स्तव सुनकर महाप्रभु ने उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार वर प्रदान किया—

मुरारिरे आज्ञा हैल-"मोर रूप देख।"

मुरारि देखये रघुनाथ परतेक॥

दुर्वादलश्याम देखे सेइ विश्वम्भर।

वीरासने बसियाछे महाधनुर्धर॥

जानकी-लक्ष्मण देखे वामेते दक्षिणे।

चौदिके करये स्तुति वनरेन्द्रगणे॥

आपन प्रकृति वासे ये हेन वानर।

सकृत देखिया मूर्च्छा पाइल वैद्यवर॥

मूर्च्छित हइया भूमे मुरारी पड़िला।

चैतन्येर फाँदे गुप्त मुरारी रहिला॥ (चै.भा. म. 10/7-11)

[अर्थात् श्रीमुरारी को महाप्रभु जी की आज्ञा हुई—'मेरा रूप देखो' तो श्रीमुरारी जी ने साक्षात् रघुनाथ जी के दर्शन किये।

** मुरारी गुप्त के ह्रदय में महाप्रभु जी के प्रति अथाह प्रेम भरा था तथा श्रीमन् महाप्रभुजी के ह्रदय में भी मुरारी गुप्त के प्रति लबालब प्रेम था, ठीक उसी प्रकार जैसे भगवान राम के हदय में हनुमान जी के प्रति था।

उन्होंने उन्हीं श्रीमहाप्रभु जी को दुर्वादल की तरह श्याम वर्ण के महाधनुर्धारी वीरासन पर बैठे हुये श्रीराम के रूप में देखा। उन्होंने उनके दाईं ओर लक्ष्मण और बाईं ओर श्रीजानकी जी को देखा था चारों ओर से वानरों को भी स्तुति करते हुये देखा। वानरों को देखकर मुरारी गुप्त भी अपने आपको वानर समझने लगे और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। मुरारी गुप्त जी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की प्रेम रज्जू में फँस गये।]

मुरारी गुप्त से श्रीराम का स्तव पाठ सुनकर श्रीमान्महाप्रभु जी ने उनके मस्तक पर 'रामदास' लिख दिया था।

मुरारिगुप्त-मुखे शुनि' राम-गुणग्राम।

ललाटे लिखिल ताँर 'रामदास' नाम॥

(चै. च. आ. 17/61)

एक दिन श्रीवास मन्दिर में भी महाप्रभु जी ने अपना शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज रूप प्रकट किया था तथा गरुड़-गरुड़ बुलाने पर मुरारीगुप्त हुंकार करते-करते वहाँ पर आये। उनके गरुड़ जी के रूप में प्रकटित होने पर महाप्रभु उनके कन्धों पर चढ़ गये—यह लीला श्रीचैतन्य भागवत् के मध्य खण्ड के 2-रे अध्याय में एवं भक्तिरत्नाकर की द्वादश तरंग में वर्णित है।

श्रीमनमहाप्रभु जी ने श्रीवास के घर में मुरारी गुप्त जी के माध्यम से स्वयं अपने तत्त्व की, नित्यानन्द तत्त्व की और व्यवहार की शिक्षा भी प्रदान की थी। मुरारी गुप्त द्वारा श्रीवास के घर में आकर पहले महाप्रभु जी को और बाद में नित्यानन्द

प्रभु को प्रणाम करने पर महाप्रभु जी ने उनसे कहा—' ये ठीक नहीं है।' मुरारी गुप्त इसका तात्पर्य न समझ सके परन्तु घर आकर रात को स्वप्न में उन्होंने देखा कि नित्यानन्द प्रभु जी साक्षात् हलधर हैं एवं महाप्रभु विश्वम्भर रूप से नित्यानन्द प्रभु जी को पंखा झल रहे हैं। स्वप्न में सभी तत्त्व जानकर अगले दिन जब मुरारी गुप्त जी श्रीवास-आंगन में आये तो पहले उन्होंने नित्यानन्द प्रभु को और फिर श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को प्रणाम किया। चूँकि श्रीमुरारी गुप्त राम जी के उपासक हैं अतः उन्होंने पहले श्रीगुरु पूजा व जगद्गुरु पूजा की, ऐसा न करके यदि उनके द्वारा पहले ही भगवत् पूजा की जाती है तो ऐसा करने से क्रम भंग होता।—गौड़ीय-भाष्य।

"बसि' आछे महाप्रभु कमललोचन।

दक्षिणे से नित्यानन्द प्रसन्न-वदन॥

आगे नित्यानन्देर चरणे नमस्करि'।

पाछे वन्दे विश्वम्भर-चरण मुरारि॥"

(चै. भा. म. 20/22-23)

[कमलनयन महाप्रभु जी विराजमान हैं। उनके दक्षिण में प्रसन्न मुख श्रीनित्यानन्द जी बैठे हैं। श्रीमुरारीगुप्त जी ने आकर पहले श्रीनित्यानन्द जी को प्रणाम किया, उसके पश्चात् महाप्रभु जी के चरणों की वन्दना की]

महाप्रभु जी द्वारा स्नेहाविष्ट होकर मुरारी जी को अपना चबाया हुआ ताम्बूल देने पर मुरारी जी ने अति-आनन्द के साथ उसका भक्षण किया। महाप्रभु द्वारा हाथ धोने के लिये कहने पर मुरारी जी ने अपने हाथ तुरन्त सर पर रख लिये। यहीं पर श्रीमन् महाप्रभु जी ने स्मार्त्त विचार की भ्रान्ति का प्रदर्शन किया तथा प्रकाशानन्द जी के मायावाद का खण्डन करते हुये महाप्रभु जी ने कहा—

"प्रभु बले,-आरे बेटा जाति गेल तोर।

तोर अंगे उच्छिस्ट लागिल सब मोर॥

बलिते प्रभुर हइल ईश्वर आवेश।

दान्त कड़मड़ करि' बलये विशेष॥"

"संन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते।

मोरे खण्ड खण्ड बेटा करे भाल मते॥

पड़ाय वेदान्त, मोर विग्रह ना माने।

कुष्ठ कराइलुँ अंगे तबु नाहि जाने॥

अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगेते अंगेते वैसे।

ताहा मिथ्या बले बेटा केमन साहसे?

सत्य कहों मुरारि आमार तुमि दास।

ये न माने मोर अंग, सेइ याय नाश॥"

(चै. भा. म. 20/31-36)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहने लगे, अरे बेटा! तेरी तो जाति चली गयी, देख तेरे सब अंगों में मेरा उच्छिष्ट लग गया है। यह कहते-कहते महाप्रभु जी आवेश में आकर और अपने दांतों से कड़कड़ की ध्वनि करते हुये कहने लगे-एक संन्यासी प्रकाशानन्द काशी में रहता है। वह तो मेरे टुकड़े-टुकड़े कर रहा है। वह वेदान्त पढ़ाता है पर मेरे विग्रह को, मेरे स्वरूप को नहीं मानता है। मैंने उसके अंगों में कोढ़ पैदा कर दिया है, तब भी वह नहीं समझता है। मेरे जिन अंगों में अनन्त ब्रह्माण्डों का वास है, यह बेटा किस साहस से उसे मिथ्या कहता है? हे मुरारी! तुम मेरे दास हो, मैं सत्य कहता हूँ, जो व्यक्ति मेरे स्वरूप को नहीं मानेगा, वह नाश को प्राप्त होगा]

एक दिन मुरारीगुप्ता ने घर में आकर अपनी पत्नी को भोजन बनाने के लिये कहा तथा उसे भोजन बनवाने के तात्पर्य से भी अवगत करवाया। मुरारी जी की भक्तिमति स्त्री ने घृत-अन्नादि बहुत से पदार्थ बनाये। अपनी स्त्री के द्वारा घी वाले चावल इत्यादि बनाकर देने पर वे प्रेमभाव में विभावित होकर पात्र से एक-एक ग्रास अन्न श्रीकृष्ण के उद्देश्य से भूमि पर गिराने लगे। आश्चर्य का विषय है कि महाप्रभु जी ने वहाँ साक्षात् प्रकट न होकर भी सब ग्रहण किया। दूसरे दिन आकर महाप्रभु जी मुरारी से बोले-'तुम्हारे पास चिकित्सा के लिये आया हूँ। तूने खाओ-खाओ बोलकर मुझे बहुत अन्न खिलाया है। इसलिये अजीर्ण हो गया है। तेरा जल ही इस अजीर्ण की औषधि है। महाप्रभु ने गट-गट कर मुरारीगुप्त के जल पात्र का जल पान कर लिया , इसे देख मुरारीगुप्त मूर्च्छित हो गये तथा उपस्थित सभी भक्त प्रेमाश्रु बहाने लगे।' भक्त का द्रव्य जिस तरह से भी क्यों न दिया जाये, भगवान् अत्यन्त प्रीति के साथ उसे ग्रहणकरते हैं

"जल –पाने अजीर्ण करिते नारे बल।

तोर अन्ने अजीर्ण, औषध-तोर जल॥

एत बलि' धरि' मुरारि जलपात्र।

जल पिये' प्रभु भक्तिरसे पूर्णमात्र॥

कृपा देखि' मुरारि हइला अचेतन।

महाप्रेमे गुप्तगोष्ठी करये क्रन्दन॥"

(चै. भा. म. 20/69-71)

[केवल जल-पान में अजीर्ण ठीक करने की शक्ति नहीं है। यह अजीर्ण तेरे अन्न से ही हुआ है। इसलिये औषधि भी तेरा ही जल है। यह कहकर महाप्रभु ने मुरारी का जल-पात्र पकड़ लिया और भक्ति रस पूर्ण उस जल को पीने लगे। श्रीमुरारी, श्रीमन् महाप्रभु जी की कृपा को देखकर मूर्च्छित हो गये और सपरिवार महाप्रेम में रुदन करने लगे।]

"चिकित्सा करेन यारे हइया सदय।

देहरोग, भवरोग,-दुइ तार क्षय॥

(चै. च. आ. 10/51)

[महाप्रभु जी ने कहा कि दया करके वे जिसका इलाज करते हैं, उसके देह रोग और भवरोग दोनों क्षय हो जाते हैं।]

मुरारी गुप्ता ने भगवान् के संगोपन की लीला के बारे में विचार किया कि भगवदावतार अपनी लीला को प्रकट कर पुनराय उसे संगोपन कर लेते हैं। रावण के वंश का नाश कर सीता उद्धार करते हैं और पुनः उसका परित्याग कर देते हैं, प्राणप्रिय यदुकुल के ध्वंस की व्यवस्था करते हैं। इसलिये महाप्रभु भी कब लीला संवरण करें, ठीक नहीं। अत: उससे पहले ही अर्थात् उनके प्रकट रहते-रहते अपना शरीर समाप्त कर देना ही ठीक है—इस प्रकार विचार कर उन्होंने एक दराँती लेकर रख ली। अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर को सब पता लग गया और उन्होंने साथ-साथ उनसे वह दराँती मांग ली।

उपरोक्त लीला श्रीनरहरि सरकार ठाकुर जी द्वारा रचित 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ की द्वादश तरंग में भी वर्णित है। ये मुरारी गुप्त भी प्रतिवर्ष गौड़ीय वैष्णवों के साथ पुरुषोत्तम धाम में जाते थे। ये अपनी पत्नी के साथ पुरी जाकर महाप्रभु को विभिन्न प्रकार के भोज्य द्रव्यों का भोजन करवाते थे।

श्रीजगन्नाथ देव जी की रथयात्रा के समय सात सम्प्रदायों के अन्तर्गत तृतीय सम्प्रदाय में, जहाँ पर मूलगायक मुकुन्द तथा नर्त्तक श्रीहरिदास थे, वहीं पर ये दोहार रूप से कीर्त्तनिया थे।

श्रीमुरारी गुप्त जी के माध्यम से महाप्रभु जी ने इष्टनिष्ठा की शिक्षा प्रदान की तथा ये भी बताया कि आराध्यदेव में निष्ठा के बिना प्रेम बढ़ता नहीं। हनुमान जी के अवतार मुरारीगुप्त जी महाप्रभु जी का राम रूप से दर्शन करते थे। उनकी इष्ट निष्ठा की परीक्षा लेने के लिये महाप्रभु जी ने उनसे कहा 'सर्वाश्रय, सर्वांशी, स्वयं भगवान् , अखिल रसामृत मूर्ति-व्रजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण के भजन में जो आनन्द है, भगवान् के अन्य स्वरूपों की आराधना में वह आनन्द नहीं है।' श्रीमुरारीगुप्त श्रीमन्महाप्रभु जी को कृष्ण-भजन करने का वचन देने पर भी घर में आकर यह सोचकर कि भगवान् श्रीरघुनाथ जी के पादपद्मों को त्याग करना होगा, अस्थिर हो उठे। सारी रात जाग कर ही बिता देने पर, दूसरे दिन प्रात: महाप्रभु जी के पादपद्मों में निवेदन करते हुये बोले —

"रघुनाथेर पाय मुञी बेचियाछों माथा।

काड़िते न पारि माथा, मने पाइ व्यथा॥

श्रीरघुनाथ-चरण छाड़ान ना याय।

तव आज्ञा-भङ्ग हय, कि करि उपाय!॥

ताते मोरे एइ कृपा कर, दयामय।

तोमार आगे मृत्यु हउक, याउक संशय॥"

(चै. च. म. 15/149-151)

'श्रीनाथे जानकी नाथे चाभेदे परमात्मनि।

तथापि मम सर्वस्वः रामः कमललोचनः॥'

[अर्थात् मैंने अपने इस मस्तक को श्रीरघुनाथ जी के चरणों में बेच दिया है। परन्तु अब मैं पुनः वहाँ से इस सिर को नहीं उठा सकता हूँ। अब इस दुविधा में मैं दुःख पा रहा हूँ कि श्रीरघुनाथ जी के चरण मुझसे छोड़े नहीं जाते हैं। किन्तु यदि नहीं छोड़ता तो आपकी आज्ञा भंग होती है। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ? आप दयामय हैं, मेरे ऊपर ऐसी कृपा करो कि आपके सामने ही मेरी मृत्यु हो जाये, तब यह संशय समाप्त हो जायेगा।]

श्रीमन्महाप्रभु मुरारीगुप्त के इष्टनिष्ठायुक्त वाक्य सुनकर परम सन्तुष्ट होकर बोले—

'साक्षात्-हनुमान तुमि श्रीराम-किङ्कर।

तुमि केने छाड़िवे ताँर चरण-कमल॥'

(चै. च. म. 15/156)

(अर्थात् तुम तो श्रीराम जी के किंकर साक्षात् हनुमान हो तुम भला उनके चरण कमलों को कैसे छोड़ सकते हो?)

जीवगोस्वामी जी के पिता श्रीअनुपम जी की जिस प्रकार राम निष्ठा थी, मुरारीगुप्त की भी उसी प्रकार राम चन्द्र जी के प्रति निष्ठा थी—श्रीमन्महाप्रभु की उक्ति से यह जाना जाता है।

गोसाञि कहेन,-एइमत मुरारिगुप्त।

पूर्वे आमि परीक्षिलुँ तार एइ रीत॥

सेइ भक्त धन्य, जे ना छाड़े प्रभुर चरण।

सेइ प्रभु धन्य, जे न छाड़े निजजन॥

(चै. च. अ. 4/45-46)

[महाप्रभु जी कहते हैं सचमुच वह भक्त धन्य है, जो किसी भी परिस्थिति में अपने प्रभु के चरण नहीं छोड़ता है और वही प्रभु धन्य हैं, जो कभी भी अपने जन को नहीं छोड़ते हैं।]

श्रीकृष्ण की शारदीय-रासयात्रा की पूर्णिमा तिथि को श्रीमुरारीगुप्त जी ने तिरोधान लीला की थी।

****

श्रीगदाधर दास

राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्तिः पुरा स्थिता।

साद्य गौराङ्गनिकटे दास वंश्यो-गदाधरः॥

पूर्णानन्दा व्रजे यासीत् बलदेवप्रियाग्रणीः।

सापि कार्यवशादेव प्राविशत्तं गदाधरम्॥

(गौ. ग. दी. 154-155)

पूर्वकाल में अर्थात् द्वापर युगीय श्रीकृष्ण लीला में जो श्रीराधिका जी की भूषणस्वरूपा चन्द्रकान्ति थीं, वे ही इस दास वंश को अवलम्बन करके श्रीगदाधर दास रूप से प्रकट हुईं। व्रज में जो बलराम की प्रियतमा पूर्णानन्दा थीं, कार्यवशत: वे ही गदाधर दास में प्रविष्ट हुई थीं।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीगदाधर दास जी के स्वरूप के सम्बन्ध में लिखा है—ये श्रीराधा जी की कान्ति हैं। श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी जिस प्रकार श्रीमति वृषभानुनन्दिनि रूपा हैं, उसी प्रकार श्रील गदाधर दास जी भी श्रीमति राधा जी की अङ्गशोभा हैं। ये राधाभावद्युति-सुवलित गौर के आभा स्वरूप हैं। गौरगणोद्देश दीपिका में वे वृषभानुनन्दिनी की विभूति रूप से निर्दिष्ट हुई हैं। ये गौरहरि और नित्यानन्द जी दोनों के ही गणों में गिने जाते हैं। श्रीमन् महाप्रभु जी के लगभग सभी गण ब्रज के मधुर रस के रसिक हैं जबकि नित्यानन्दगण शुद्धभक्ति प्रधान सख्यादि रस के रसिक हैं। गदाधर दास जी नित्यानन्द जी के गण होने पर भी सख्यभावमय गोपाल (ग्वाले) नहीं थे, वे मधुर रस के रसिक थे। काटोया में उनकी गौर-अर्चा थी।

कलकत्ता से चार कोस उत्तर की तरफ भागीरथी के किनारे एड़िया दह नामक ग्राम में इनका जन्म स्थान है। श्रीमन्महाप्रभु जी के अन्तर्धान के पश्चात् ये नवद्वीप से काटोया में चले आये थे और काटोया से इन्होंने एड़ियादह* नामक ग्राम में आकर वास किया था। गौड़ीय-वैष्णव-अभिधान में इस प्रकार लिखा है कि नवद्वीप में रहते समय गदाधरजी शचीमाता और विष्णुप्रिया देवी जी की देख-रेख करते थे तथा उनके अन्तर्धान के बाद वे काटोया चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने गौरांगमूर्ति की प्रतिष्ठा की। इस समय काटोया में जो स्थान महाप्रभु जी के गृह रूप से प्रसिद्ध है, वह इन गदाधरदास जी का ही देवालय है।

श्रीमन्महाप्रभु जिस समय नीलाचल से गौड़देश होते हुये वृन्दावन जा रहे थे, उस समय महाप्रभु जी से मिलने की आकांक्षा से ये गौड़देश होते हुये शान्तिपुर आये थे और कुमारहट्ट में भक्तों के साथ मिलकर पाणिहाटि के श्रीराघव-भवन में भी गये थे। वहीं पर गदाधर दास जी का महाप्रभु जी के साथ मिलन हुआ था। महाप्रभु ने स्नेहाविष्ट होकर गदाधर के मस्तक पर अपने श्रीपादपद्म स्थापित किये थे—

"राघव-मन्दिरे शुनि' श्रीगौरसुन्दर।

गदाधरदास धाइ' आइला सत्त्वर॥

---

* एड़ियादह-24 परगना ज़िले के अन्तर्गत कलकत्ता से 8 मील उत्तर की तरफ, भागीरथी के तट पर है।

प्रभुर परम प्रिय-गदाधर दास।

भक्ति सुखे पूर्ण याँ'र विग्रह प्रकाश॥

प्रभुओ देखिया गदाधर सुकृतिरे।

श्रीचरण तुलिया दिलेन ता'न शिरे॥"

(चै. भा. अ. 5/92-94)

[यह सुनकर कि गौरसुन्दर राघव मन्दिर में हैं, श्रीगदाधर दास जल्दी जल्दी-दौड़ते हुये वहाँ आये। श्रीगदाधर दास महाप्रभु जी के बहुत प्रिय हैं, जो कि सर्वदा परिपूर्ण भक्ति सुख में रहते हैं। श्रीगदाधर जी के सुन्दर कार्यों को देखकर महाप्रभु जी ने उनके सिर पर अपने चरण रख दिये थे।]

जिस समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी को नीलाचल से गौड़देश में प्रेम वितरण के लिये भेजा था, उस समय नित्यानन्द प्रभु के साथ रामदास, गदाधरदास, रघुनाथ वैद्य, कृष्णदास पण्डित, परमेश्वरी दास तथा पुरन्दर पण्डित इत्यादि भक्त थे। नीलाचल से नित्यानन्द प्रभु के साथ वापिस आते समय रास्ते में नित्यानन्द जी के पार्षदों के विभिन्न प्रकार के अद्भुत-अद्भुत भाव प्रकट हुये थे। नित्यसिद्ध व्रजजन गदाधर दास जी का अप्राकृत राधा-भाव है। गदाधर दास जी गोपीभाव में प्रमत्त होकर **"दही ले लो दही"**—ऐसी आवाज़ लगाते हुये ठहाका मारकर उच्च स्वर से हँसे थे। रामदास जी(अभिराम ठाकुरजी) गोपाल भाव में बीच रास्ते में त्रिभंग होकर 9 घंटे खड़े रहे थे तथा कृष्णदास, परमेश्वरीदास गोपालभाव में 'है-है' करते थे। पुरन्दर पण्डित पेड़ पर चढ़कर 'मैं ही अंगद हूँ'—ऐसा कहकर पेड़ से कूद पड़े।

"हइला राधिकाभाव-गदाधर दासे।

'दधि के किनिवे?' बलि' अट्ट -– पट्ट हासे॥

रघुनाथ-वैद्य-उपाध्याय महामति।

हइलेन मूर्त्तिमती ये हेन रेवती॥

कृष्णदास परमेश्वरीदास दुइजन।

गोपालभावे 'हइ-हइ' करे अनुक्षण॥ (चै. भा.अ. 5/238-240)

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी ने गौड़देश में आकर गंगा के दोनों ओर के गावों में घूमते समय एकदिन गदाधर दास जी के घर पर आकर देखा कि गदाधर दास जी गोपीभाव में विभावित होकर सिर पर एक गंगाजल का कलस लेकर **'दूध लोगे दूध'** कहते हुये पुकार रहे थे। श्रीगदाधर का भाव देखकर गदाधर जी के मन्दिर की बाल-गोपाल मूर्ति को उठाकर वक्ष से लगाते हुये नित्यानन्द प्रभु नृत्य करने लगे**—**

गोपीभावे बाह्य नाहि गदाधर दासे।

निरवधि आपनाके 'गोपी' हेन वासे'॥

(चै. भ.अ. 5/381)

[श्रीगदाधर दास जी सदा गोपी भाव में रहते हैं। उन्हें बाहरी (सांसारिक) ज्ञान नहीं रहता है। वे हमेशा अपने आप को गोपी ही समझते हैं।]

श्रीमाधवानन्द घोष जी ने गदाधर जी के घर पर दानखण्ड की लीला' का कीर्त्तन किया था। उनके ऐसा करने पर नित्यानन्द प्रभु का अद्भुत भावावेश प्रकाशित हुआ था, इसीलिये गदाधर का वह घर दानी लीलाक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। एड़ियादह ग्राम में धर्म का विरोधी, हरि संकीर्त्तन के प्रति विद्वेष करनेवाला एक बड़ा पराक्रमशाली काज़ी वास करता था। गदाधर दास प्रेमानन्द में मत्त होकर रात्रि में उच्च-स्वर में हरिनाम संकीर्त्तन करते-करते उक्त काज़ी के घर में चले गये। उस समय काज़ी अपने साथियों के साथ बैठा था। गदाधर दास जी ने वहाँ पहुँचते ही काज़ी को हरिनाम करने के लिये आदेश किया। काज़ी पहले अवश्य क्रोधित हुआ परन्तु बाद में गदाधर दास जी का भाव देखकर शान्त हो गया तथा उनके आने का कारण पूछने लगा।

उत्तर में गदाधर जी बोले-श्रीचैतन्य महाप्रभु व नित्यानन्द प्रभु जी ने जगत में अवतीर्ण होकर सबको ही हरिनाम करवाया, केवल मात्र तुमने हरिनाम नहीं किया था, इसलिये मैं तुमको हरिनाम करवाने आया हूँ। हरिनाम करने से तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे। हिंसा स्वभाव का होने पर भी काज़ी हंसता हुआ गदाधर जी को बोला, "कल मैं हरिनाम करूँगा कृपा करके आज तुम घर जाओ।" इससे गदाधर आनन्द से नृत्य करते हुये कहने लगे, "अरे कल क्यों, मैं कल हरिनाम करूंगा"- यह कहकर तो तुमने आज ही अपने मुख से 'हरि' बोल दिया है। अब कभी भी तुम्हारा अमंगल नहीं होगा।

गदाधरदास बले,-"आर कालि केने।

एइ त' बलिया 'हरि' आपन वदने॥

आर तोर अमंगल नाहि कोन क्षण।

यखन करिला हरिनामेर ग्रहण॥" (चै. भा. अ. 5/409-410)

गदाधर दास जी ने अपनी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से दुर्दान्त काज़ी का उद्धार किया। गदाधर दास के कृष्णावेश के द्वारा ही ये असम्भव कार्य सम्भव हुआ था।

हेनमत गदाधरदासेर महिमा।

चैतन्य-पार्षद-मध्ये याँहार गणना॥

प्रेमभक्ति-रसमय गदाधरदास।

याँ'र दर्शन-मात्र सर्व-पाप-नाश॥** (चै. भा. अ. 5/413,727)

श्रील कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में गदाधर दास जी के सम्बन्ध में जो लिखा है, वह नीचे उद्धृत हुआ है—

* दानखण्डलीला-दानकेलि-कौमुदी ग्रन्थ में वर्णित गान से संबन्धित है।

** [इस प्रकार श्रीगदाधर दास जी की महिमा है। जिनकी गणना श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पार्षदों में होती है। श्रीगदाधर दास जी का सारा कलेवर ही प्रेम भक्ति रसमय हैं, जिनके दर्शनों से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।]

श्रीरामदास आर, गदाधर दास।

चैतन्य-गोसाञिर भक्त, रहे ताँर पाश॥

नित्यानन्दे आज्ञा दिला यबे गौड़ याइते।

महाप्रभु एइ दुइ दिला ताँर साथे॥

गदाधर दास गोपीभावे पूर्णानन्द।

याँर घरे दानकेलि कैला नित्यानन्द॥

(चै. च. आ. 11/13, 14, 17)

[श्रीरामदास और गदाधर दास, श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्त थे और हमेशा उनके पास ही रहते थे। जब गौड़देश जाने के लिये नित्यानन्द जी को आज्ञा दी तब महाप्रभु जी ने इन दोनों को साथ ही भेजा था। श्रीगदाधर दास गोपीभाव में परिपूर्ण आनन्द का आस्वादन करते रहते हैं। ये वे ही गदाधर है, जिनके घर श्रीनित्यानन्द जी ने दानकेलि क्रीड़ा की थी।]

नित्यानन्दे आज्ञा दिल,-"जाह गौड़देशे।

अनर्गल प्रेमभक्ति करिह प्रकाशे॥

रामदास, गदाधर आदि कत जने।

तोमार सहाय लागि' दिलुँ तोमार सने॥

(चै. च. म. 15/42-43)

[अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने श्रीनित्यानन्द जी को आज्ञा दी कि आप गौड़देश में जाओ और निरन्तर शुद्ध प्रेम-भक्ति का प्रचार-प्रसार करो। श्रीरामदास, श्रीगदाधर दास आदि जितने भक्त हैं, इन सबको मैं तुम्हारी सहायता के लिये देता हूँ।]

नित्यानन्द प्रभु जी के आदेशानुसार जिस समय रघुनाथदास गोस्वामी जी ने पाणिहाटि गाँव में वैष्णव सेवा के लिये चिड़वा व दही का महोत्सव किया था, उस समय गदाधर दास जी भी वहां पर उपस्थित थे। श्रीयदुनन्दन चक्रवर्ती श्रीगदाधर दास के शिष्य हैं, यह भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ देखने से जाना जाता है।

श्रीयदुनन्दन चक्रवर्ती विज्ञवर।

यांर इष्ट देव-प्रभु दास गदाधर॥* (भक्ति रत्नाकर 9/352)

---

*(श्रीयदुनन्दन चक्रवर्ती एक उत्तम विद्वान हैं। उनके इष्टदेव श्रीगदाधर दस हैं।)

कार्तिक मास में कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि के दिन श्रीगदाधर दास जी का तिरोभाव हुआ। गदाधर दास जी के तिरोभाव के उपलक्ष्य में जो विराट महोत्सव श्रीनिवासाचार्य प्रभु की अध्यक्षता में अनुष्ठित हुआ था, उसमें तत्कालीन अनेक वैष्णवों ने योगदान किया था। यह उत्सव भी खेतुरी महोत्सव के समान वैष्णव समाज में प्रसिद्ध है –

"कि बलिब कार्तिकेर कृष्णाष्टमी दिने।

मोर प्रभु अदर्शन हैला एखाने॥"

(भक्ति रत्नाकर 9/362)

काटोया में श्रीमहाप्रभु जी की आवास स्थली में ही केशव भारती जी की समाधि है तथा उसके पास ही गदाधर दास जी का समाधि स्थान है।

****

श्रीशिवानन्द सेन

"पुरा वृन्दावने वीरादूती सर्वाश्च गोपिकाः।

निनाय कृष्णनिकटं सेदानीं जनको मम॥" (गौ. ग. दी. 176 श्लोक)

श्रीशिवानन्द सेन के पुत्र श्रीपरमानन्द सेन (पुरीदास) ने गौरगणोद्देश दीपिका के 176वें श्लोक में अपने पितृदेव का परिचय इस प्रकार से दिया है-व्रजलीला में जो वीरादूती नामक गोपी थी, वही गौरलीला की पुष्टि करने के लिये शिवानन्द सेन जी के रूप में अवतीर्ण हुई। 24 परगना ज़िले के अन्तर्गत कुमारहट्ट (वर्तमान में जिसका नाम हालि शहर है, जो कांचन पाड़ा के पास है) में श्रीशिवानन्द सेन जी का जन्मस्थान है। श्रीईश्वर पुरीपाद जी ने भी इसी पवित्र भूमि पर आविर्भाव-लीला की थी। श्रीमन्महाप्रभु जी जब यहाँ पधारे थे तो उन्होंने यहाँ की मिट्टी को उठाया और साथ ले लिया। उस समय से ही भक्तों द्वारा वहाँ से मिट्टी लेते रहने से वहाँ पर एक खड्डा हो गया जो कि बाद में एक छोटे से तालाब के रूप में परिवर्तित हो गया। अब यह स्थान 'चैतन्य डोबा' के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमन्महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहणकर लेने पर श्रीवास पण्डित जी को महाप्रभु जी की लीला भूमि नदिया में रहना असहनीय हो गया था, अतः वे सपरिवार कुमारहट्ट में आकर रहने लगे। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर, खन्ज* भगवान् आचार्य इत्यादि गौर भक्तों का निवास स्थान भी कुमारहट्ट ही है। श्रीशिवानन्द सेन जी द्वारा प्रतिष्ठित गौरगोपाल विग्रह काँचनपाड़ा स्थित श्रीकृष्ण राय मन्दिर में अभी भी सेवित हो रहे हैं।

वैष्णव किसी भी कुल में आविर्भूत हो सकते हैं। वैद्य कुल को धन्य करने के लिये शिवानन्द सेन जी ने वैद्य कुल में आविर्भाव की लीला की। शिवानन्द सेन जी के तीन पुत्र थे—श्रीचैतन्यदास श्रीरामदास और श्रीपरमानन्द (कविकर्णपूर)।

श्रीमन्महाप्रभु जी से मिलने के लिये गौड़ीय भक्तगण प्रतिवर्ष रथ यात्रा के समय पुरुषोत्तम धाम में आते थे। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा-अनुसार गौड़देश के भक्तों का पथ प्रदर्शन करते हुये उन्हें पुरी में लाना, उनके खाने-पीने व ठहरने आदि की व्यवस्था तथा यातायात आदि का सारा खर्चा शिवानन्द सेन की देखरेख में ही होता था –

"ईश्वर आज्ञाय प्रति वत्सरे वत्सरे।

सबे आइसेन रथयात्रा देखिवारे॥

चलिला मुकुन्ददत्त कृष्णेर गायन।

शिवानन्दसेन-आदि लैया आप्तगण॥"*

(चै.भ.अ.8/5, 15)

---

*खन्ज शब्द बंगला भाषा का है जिसका अर्थ है लंगड़ा।

**श्रीमन् महाप्रभु जी की आज्ञा से प्रत्येक वर्ष रथयात्रा देखने के लिए साथ आते हैं। श्रीमुकुन्द दत्त श्रीशिवानन्द सेन आदि को साथ लेकर श्रीकृष्ण का गान करते हुये चल पड़े।

"शिवानन्द-सेन करे घाटि समाधान।

सबारे पालन करि' सुखे लैञा यान॥

सबार सर्वकार्य करेन, देन वासा-स्थान।

शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान॥"*

(चै. च. म. 16/19-20)

तृतीय वर्ष जिसमें कि वैष्णव-गृहणियाँ भी श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये पूरी आ रही थीं, उस समय शिवानन्द सेन अपनी पत्नी और पुत्र चैतन्यदास को भी साथ लाये थे। श्रीचैतन्य चरितामृत में इस प्रकार उल्लिखित हैं –

"श्रीवास-पण्डित-सङ्गे चलिला मालिनी।

शिवानन्द-सङ्गे चले ताँहार गृहिणी॥

शिवानन्देर बालक, नाम—चैतन्य-दास।

तिंहो चलियाछे प्रभुरे देखिते उल्लास॥"

(चै.च.म. 16/22-23)

[श्रीवास पण्डित जी के साथ श्रीमती मोहिनी देवी भी चल पड़ीं और श्रीशिवानन्द के साथ उनकी धर्मपत्नी जा रही थीं। शिवानन्द का पुत्र जिसका नाम चैतन्यदास था, वे भी महाप्रभु जी के दर्शनों की उत्कण्ठा से उनके साथ जा रहा था।]

"शिवानन्द-सेन करे सब समाधान।

घाटियाल प्रबोधि ‘देना सबारे वासा-स्थान॥

भक्ष्य दिया करेन सबार सर्वत्र पालने।

परम आनन्दे यान प्रभुर दरशने॥"

(चै.च.म. 16/26-27)

[श्रीशिवानन्द सेन सब प्रबन्ध करते थे। रास्ते में सबको रहने का स्थान देते, घाट पर नौकाओं का किराया आदि देते, सभी की भोजनादि की व्यवस्था करते। इस प्रकार बिना किसी असुविधा के सभी भक्त परमानन्द के साथ महाप्रभु के दर्शनों के लिए जाते हैं।]

---

*श्रीशिवानन्द सेन ही उड़ीसा के मार्गों को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये वे ही सभी भक्तों का मार्गदर्शन करते और नदी पार होने पर नाव का किराया इत्यादि देते थे। वे ही सब भक्तों का पालन तथा उन्हें आराम से ले जाते थे। वे सब को रहने के लिये स्थान देते तथा सब की सभी प्रकार से सहायता करते।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने अत्यन्त उदार स्वभाव वाले तथा अपने अतिप्रिय चट्टग्राम निवासी वासुदेव दत्त ठाकुर का अधिक खर्चीला स्वभाव देखकर उसके व्यय को कम करने के लिये शिवानन्द जी को उनकी देखभाल करने के लिये नियोजित किया था। गृहस्थियों को अपने कुटुम्ब के भरण –पोषण के लिये अवश्य ही कुछ संचय करना चाहिये-इस प्रकार के लौकिक कर्त्तव्यों का निर्देश भी महाप्रभु जी ने दिया था –

शिवानन्द सेने कहे करिया सम्मान।

वासुदेव-दत्तेर तुमि करिह समाधान॥

परम उदार इँहो, जे दिन जे आइसे।

सेई दिने व्यय करे, नाहि राखे शेषे॥

‘गृहस्थ’ हयेन इँहो, चाहिये सञ्चय।

सञ्चय ना कैले कुटुम्ब-भरण नाहि हय॥

इहार घरेर आय व्यय, सब तोमार स्थाने।

‘सरखेल’ ह्ञा तुमि करिह समाधाने॥

(चै.च.म.15/93-96)

[श्रीमन्महाप्रभु जी शिवानन्द सेन को सम्मान पूर्वक कहते हैं कि वासुदेव दत्त का आप ध्यान रखना। वह बहुत ही उदार हृदय वाला है, दिन भर में जो भी धन इस के पास आता है उसी दिन खर्च कर देता है, बचाता कुछ भी नहीं, ये तो गृहस्थी है, इसे कुछ धन अवश्य ही बचा कर रखना चाहिए क्योंकि यदि गृहस्थ धन इकट्ठा नहीं करेगा तो कुटुम्ब का भरण-पोषण नहीं होगा। इनके घर की आमदनी और खर्च के हिसाब का भार सब आप पर है, इसलिये इस तरफ भी आप ध्यान देना।]

श्रीचैतन्य चरितामृत में शिवानन्द सेन के साथ आये एक कुत्ते का भी अलौकिक चरित्र वर्णन हुआ है। हुआ कुछ ऐसा कि जब शिवानन्द सेन जगन्नाथ पुरी जा रहे थे तो एक सुकृतिवान कुत्ता साथ हो लिया। शिवानन्द पुरी जी ने भी उसके लक्षण देखकर व उसे भक्त जानकर साथ रख लिया और खाना इत्यादि देकर वे उसकी भी रक्षा करते। जाते समय नदी पार होने के लिये उड़िया माझी द्वारा कुत्ते को नौका पर चढ़ाने के लिये अनिच्छा प्रकट करने पर शिवानन्द सेन ने दस पण कड़ि* देकर कुत्ते को पार करवाया। रास्ते में एक दिन सेवक कुत्ते को खाना देना भूल गया, और बाद में जब कुत्ते को खाना देने के लिये ढूँढने लगे तो वह न मिला। कुत्ते के न मिलने से दुःखी होकर शिवानन्द भी उस दिन भूखे रहे।

नीलाचल में पहुँचकर सब लोगों ने पहले की तरह अति उत्कण्ठित होकर महाप्रभु जी व जगन्नाथ जी के दर्शन किये। श्रीमन् महाप्रभु जी ने भक्तों के साथ बैठकर प्रसाद पाया तथा प्रसाद-सेवा करने के पश्चात् महाप्रभु जी ने सभी को

---

*दस फण कड़ि-800 कौड़ी

अपने-अपने वास स्थान पर भेज दिया। दूसरे दिन जब भक्त महाप्रभु जी के दर्शन करने के लिये उनके पास आये तो वहाँ पर उसी कुत्ते को देख आश्चर्यचकित हो उठे। महाप्रभु जी ने हँसते-हँसते कुत्ते को नारियल प्रसाद दिया और 'राम', 'कृष्ण', 'हरि'-कहने को कहा। महाप्रभु जी के कहने पर कुत्ता अनेक बार 'कृष्ण''कृष्ण' उच्चारण करते हुये महाप्रभु जी द्वारा दिया खाद्य खाने लगा। इस प्रकार की अलौकिक घटना देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये। शिवानन्द सेन ने कुत्ते को दण्डवत् प्रणाम किया और दण्डवत् करते हुये बड़ी दीनता के साथ अपने अपराध के लिये क्षमा याचना की। इस घटना के पश्चात् वह कुत्ता अन्तर्हित हो गया। श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से वह कुत्ता सिद्ध देह प्राप्त कर वैकुण्ठ को चला गया –

"आर दिन केह तार देखा ना पाइला।

सिद्ध-देह पाञा कुकुर वैकुण्ठेते गेला॥

ऐछे दिव्यलीला करे शचीर नन्दन।

कुकुरके 'कृष्ण' कहाञा करिला मोचन॥"*

(चै. च. अ. 1/32-33)

यवनों के राजत्त्व काल में वर्धमान ज़िले के अन्तर्गत कालना नगर के साथ वाले 'अम्बिका' नामक गाँव में एक मुलुक अर्थात तहसील-कचहरी थी, उस समय चलती भाषा में इस स्थान को 'अम्बिका मुलुक' कहते थे। वर्तमान में यह

'प्यारीगंज' के नाम से प्रसिद्ध है , उसी स्थान पर 'नकुल ब्रह्मचारी' नामक एक परम वैष्णव रहते थे। गौड़देश के अधिवासियों के उद्धार के लिये महाप्रभु जी द्वारा नकुल के हृदय में प्रवेश करने पर नकुल प्रेमाविष्ट होकर प्रेताविष्ट** व्यक्ति की तरह हँसते, रोते, नाचते और हुँकार करते रहते। यहाँ तक कि उनका प्रेमावेश व देह का वर्ण भी महाप्रभु जी की तरह हो गया था। इस अद्भुत घटना को सुनकर लोग चारों तरफ से उनको देखने के लिये आते। नकुल महाप्रभु जी के भाव में सबको 'कृष्ण' नाम करने के लिये कहते। उनको देखकर सबके अन्दर कृष्ण प्रेम उदित हो जाता। उक्त घटना को सुनकर शिवानन्द को पहले तो एकाएक विश्वास न हुआ और सन्देह युक्त होकर वे उनकी परीक्षा लेने को आये। उन्होंने विचार किया कि वे दूर ही रहेंगे, यदि नकुल के अन्दर वास्तव में महाप्रभु का आवेश होगा, तो वे स्वयं ही उसे बुलायेंगे और उसका इष्ट मन्त्र कौन सा है, बता देंगे। असंख्य लोगों की भीड़ में नकुल ब्रह्मचारी 'शिवानन्द''शिवानन्द' कहकर पुकारने लगे। लोगों के द्वारा शिवानन्द को खोजने पर शिवानन्द नकुल ब्रह्मचारी के पास आ गये और प्रणाम करके उनके पास बैठ गये –

'ब्रह्मचारी बले—"तुमि करिला संशय।

एक मना हैञा ताहा शुनह निश्चय॥

---

*उस दिन के पश्चात् उसे किसी ने नहीं देखा। वह कुत्ता सिद्ध देह प्राप्त कर वैकुण्ठ को चला गया। इस प्रकार श्रीशचीनन्दन दिव्य लीलायें करते हैं। कुत्ते से कृष्ण का नाम उच्चारण कराके उन्होंने उसको भवसागर से पार लगा दिया।

** जिसे भूत ने पकड़ लिया है।

'गौरगोपाल-मन्त्र' तोमार चारि-अक्षर।

अविश्वास छाड़, जेई कैराछ अन्तर॥

(चै. च. अ. 2/30-31)

[ब्रह्मचारी कहने लगे—"आपने मेरे आवेश पर संशय किया है। मन लगाकर सही बात सुनो। तुम्हारा चार अक्षर वाला 'गौर गोपाल' मन्त्र है। अत: संदेह को छोड़ दो, इसी ने हम दोनों में अन्तर कर दिया है।"]

शिवानन्द जी को पक्का निश्चय हो गया कि नकुल ब्रह्मचारी में महाप्रभु जी का आवेश हुआ है। तब उन्होंने ब्रह्मचारी जी के सन्मुख दण्डवत् प्रणामादि द्वारा बहुत श्रद्धा भक्ति जतलाई। श्रीमहाप्रभु जी की अचिन्त्य शक्ति का यह एक नमूना है।

एक साल शिवानन्द जी का भान्जा श्रीकान्त सेन महाप्रभु जी के दर्शनों की उत्कण्ठा से अकेला ही जगन्नाथपुरी चला गया, महाप्रभु जी ने उसके प्रति स्नेह दिखाते हुये उसे दो मास तक अपने साथ रखा तथा तत्पश्चात् वापस गौड़देश जाने के लिये आदेश दिया और कहा कि वह वहाँ जाकर भक्तों को बता दे कि इस वर्ष वे पुरी न आयें। पौष मास में वे

(महाप्रभु जी) स्वयं ही वहाँ पर आकर भक्तों से मिलेंगे और जगदानन्द के घर पर भोजन ग्रहण करेंगे। श्रीकान्त द्वारा गौड़देश जाकर सबको यह सन्देश सुनाने पर कि इस वर्ष स्वयं महाप्रभु ही उनके पास आ रहे हैं, सब आनन्द से विह्वल हो उठे। शिवानन्द जी व जगदानन्द जी प्रतीक्षा में बैठे हैं कि महाप्रभु जी आयेंगे। पौषमास आया तथापि महाप्रभु जी न आये। महाप्रभु जी के नहीं आने पर वे बहुत दुःखी हुये परन्तु अकस्मात् श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी जी (जिनका महाप्रभु द्वारा प्रदत्त नाम श्रीनृसिंहानन्द है) वहाँ आये और उनसे उनके दुःख का कारण पूछने लगे। वे बोले, महाप्रभु जी गौड़देश में आयेंगे ऐसा कहकर भी वे क्यों नहीं आये, यही उनके दुःख का कारण है। यह सुनकर प्रद्युम्न ब्रह्मचारी जी ने आश्वासन दिया कि वे तीन दिन के अन्दर महाप्रभु जी को ले आयेंगे। वे प्रद्युम्न ब्रह्मचारी के अलौकिक प्रभाव को जानते थे। अतः उन्हें विश्वास हो गया। प्रद्युम्न ब्रह्मचारी ने दो दिन ध्यान अवस्था में बैठकर देखा कि महाप्रभु जी पाणिहाटि में पहुँचे चुके हैं तथा अगले दिन मध्यान्ह काल में शिवानन्द सेन के घर में आ पहुँचेंगे। कुछ भी सन्देह न कर उन्होंने शिवानन्द जी को रसोई की व्यवस्था करने के लिये कहा। स्वयं नृसिंहानन्द जी ने भी काफी मेहनत करके सुबह से बहुत प्रकार के व्यंजन तैयार करने प्रारम्भ कर दिये तथा उन्होंने श्रीजगन्नाथ, श्रीमहाप्रभु और श्रीनृसिंह देव जी के तीन अलग-अलग भोगों की व्यवस्था की। भोग निवेदन करने के पश्चात् वे ध्यान करने ही लगे थे कि महाप्रभु जी ने वहाँ पहुँचकर तीनों भोग ही ग्रहणकर लिये। कुछ भी अवशेष न बचा। यह देख प्रद्युम्न ब्रह्मचारी आनन्द से विह्वल हो गये। यद्यपि जगन्नाथ-नृसिंह-श्रीचैतन्य महाप्रभु में, तत्त्व की दृष्टि से कोई भेद नहीं है फिर भी इष्टनिष्ठा का प्रदर्शन करने के लिये वे मज़ाक करते हुये कहने लगे कि 'नृसिंह देव जी तो आज भूखे ही रह गये।'

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी से यह बात सुनकर शिवानन्द सेन को सन्देह हो गया कि श्रीमन् महाप्रभु जी आये थे और तीनों थालियों में सजा नैवेद्य ग्रहणकर गये। अपने सन्देह की बात प्रद्युम्न ब्रह्मचारी से कहने पर उन्होंने उसके जवाब में कहा:-

'तिनजनार भाग तेंहो एकेला खाइला।

जगन्नाथ-नृसिंह उपवासी हइला॥'

(चै. च. अ. 2/71)

[महाप्रभु जी ने तीन जनों का भोजन अकेले ही खा लिया है। इसलिए श्रीजगन्नाथ देव और श्रीनृसिंह देव दोनों भूखे ही रह गये हैं।]

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी जी ने शिवानन्द जी से पुनः भोग की सामग्री मंगवा कर, रसोइ तैयार करके नृसिंह देव जी को भोग अर्पण किया परन्तु शिवानन्द सेन का संशय नहीं गया।----- एक साल के बाद जब शिवानन्द भक्तों को साथ लेकर नीलाचल गये तो एक दिन महाप्रभु जी सब भक्तों के सामने नृसिंहानन्द जी के गुणों का वर्णन करते हुये कहने लगे कि:–

"गतवर्ष पौषे मोरे कराइल भोजन।

कभु नाहि खाई ऐछे मिष्ठान्न-व्यञ्जन॥"

(चै. च. अ. 2/77)

(अर्थात् पिछले साल पौष मास में जो तुमने भोजन करवाया था, वैसे मिष्ठान तो मैंने कभी नहीं खाये।)

यह सुनकर सब भक्त आश्चर्यान्वित हो गये और शिवानन्द जी का सन्देह भी दूर हो गया। शिवानन्द प्रभु जी के प्रति श्रीमहाप्रभु जी की कृपा का यह एक और उदाहरण है।

शिवानन्द सेन जी एक बार पतितपावन श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी की अशेष कृपा के भी पुत्र हुये थे। श्रीमन्नित्यानन्द जी ने स्नेहाविष्ट होकर पदाघात (लात मारने) के बहाने ब्रह्मादि देवताओं के लिये भी सुदुर्लभ पादपद्म शिवानन्द जी के मस्तक के ऊपर स्थापित किये थे। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत में अन्त्य लीला के द्वादश परिच्छेद में इस प्रसंग का वर्णन किया है—

हरिदास ठाकुर जी के निर्याण के पश्चात् महाप्रभु जी के प्रेमविकारों का प्राकट्य रात-दिन बढ़ने लगा। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी गौड़देश के भक्तगण पुरी में आने के लिये उद्यत हुये तथा नवद्वीप में आकर इकट्ठे हुये। महाप्रभु जी द्वारा मना करने पर भी नित्यानन्द प्रभु जी ने भक्तों के साथ पुरी की यात्रा की। शिवानन्द सेन अपनी पत्नी और तीन पुत्रों को लेकर चल पड़े। उड़ीसा के रास्तों की जानकारी होने के कारण शिवानन्द सेन सब को आराम से ले जाते थे। घाटी का टैक्स देने के लिए वे स्वयं रुक जाते तथा सबको भेजकर आप सबसे बाद में आते थे। एक दिन सब कुछ करने के पश्चात् शिवानन्द के आने में विलम्ब हो गया। काफी विलम्ब हो जाने के कारण गाँव में रहने का कोई स्थान न पाकर सभी भक्त वृक्ष के नीचे बैठ गये। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु अप्राकृत व्रजबालक के आवेश में इस प्रकार हो गये मानों भूख से व्याकुल हो गये हों, ऐसी लीला प्रकाश करते हुये वे बनावटी क्रोध का प्रदर्शन करते हुये बोले:–

तिन पुत्र मरूक शिवार, एखन न आइल।

भोके मरि' गेनु, मोरे वासा ना देओयाइल॥ (चै. च. अ. 12/20)

(अर्थात् शिवानन्द के तीनों पुत्र मर जायें। एक तो मैं भूख से मर गया और दूसरा मेरे ठहरने के लिये स्थान भी नहीं बताया।)

नित्यानन्द जी का अभिशाप सुनकर शिवानन्द सेन की पत्नी रोने लगी, कर देने के पश्चात् शिवानन्द ने वापस आकर अभिशाप हेतु क्रन्दन करती हुई अपनी पत्नी को सान्त्वना प्रदान की तथा श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी के पादपद्मों में उपस्थित हुये। शिवानन्द को देखते ही नित्यानन्द प्रभु जी ने उनके सिर पर लात मार दी। शिवानन्द सेन नित्यानन्द प्रभु जी के पादपद्मों का आघात रूपी सौभाग्य प्राप्त कर आनन्दित हो उठे और शीघ्र ही किसी ग्वाले के घर जाकर उन्होंने नित्यानन्द प्रभु के ठहरने की व्यवस्था कर दी। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के पादपद्मों में प्रार्थना करते हुये वे उन्हें निर्दिष्ट वास स्थान में ले आये तथा प्रसन्न चित्त से श्रीशिवानन्द जी ने नित्यानन्द जी की इस प्रकार से स्तुति की:–

आजि मोरे भृत्य करि' अङ्गीकार कैला।

येमन अपराध भृत्येर, योग्य फल दिला॥

'शास्तिछले कृपा कर,—ए तोमार 'करुणा'।

त्रिजगते तोमार चरित्र बुझे कोन् जना?॥

ब्रह्मार दुर्लभ तोमार श्रीचरण-रेणु।

हेन चरण-स्पर्श पाइल मोर अधम तनु॥

आजि मोर सफल हैल जन्म, कुल, कर्म।

आजि पाइनु कृष्णभक्ति, अर्थ, काम, धर्म॥"

(चै. च. अ. 12/27-30)

[अर्थात आपने आज मुझे अपना दास मानकर अंगीकार किया है। मुझ सेवक का जिस प्रकार का अपराध था, उस अनुरूप ही आपने फल दिया है। यह आपकी करुणा है कि शासन का बहाना करते हुए आपने मुझ दास पर कृपा ही की है। इस त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो आप की लीला को समझ सकता है? आपके जिन चरणों की रज ब्रह्मा जी को भी दुर्लभ है, ऐसे चरणों का स्पर्श मेरे शरीर ने प्राप्त किया है। आज मेरा कर्म, कुल तथा जन्म सफल हो गया है। आज मैंने धर्म, अर्थ, काम और कृष्ण-भक्ति, सभी कुछ पा लिया है।]

शिवानन्द जी का स्तव सुनकर नित्यानन्द प्रभु प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने शिवानन्द जी का आलिंगन कर लिया। जब नित्यानन्द जी ने शिवानन्द जी के सिर पर लात मारी थी तो शिवानन्द जी का भन्जा श्रीकान्त अपने मामा जी के मस्तक पर पदाघात देखकर मन ही मन बड़ा क्रोधित हुआ था और मन ही मन सोचने लगा कि उसके मामा जी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पार्षद हैं और गोसाई ने उनको लात मारी? अत्यन्त उदास होकर श्रीकान्त सबको छोड़कर अकेला ही तीव्र गति से चलकर महाप्रभु जी के पास पहुँच गया था। वहाँ पहुँचने पर उसने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को प्रणाम किया। महाप्रभु जी के सेवक गोविन्द ने श्रीकान्त को कुर्ता खोलकर प्रणाम करने के लिये कहा। अन्तर्यामी महाप्रभु जी श्रीकान्त के मनोभाव को जान गये और बोले:–

"श्रीकान्त आस्याछे पाञा मनोदुःख।

किछु ना बलिह, करूक, जाते इहार सुख॥"

(चै. च. अ 12/38)

[अर्थात महाप्रभु जी ने कहा कि श्रीकान्त मन में दुख पाकर आया है। अत: इसे कुछ मत कहना। ऐसा कुछ करो, जिससे इसे सुख हो।] महाप्रभु जी सर्वज्ञ हैं, यह जान श्रीकान्त शान्त हो गये और उन्होंने किसी से कुछ न कहा। भगवान् भक्त के प्रति इतने अनुराग युक्त होते हैं कि भक्त के जो रिश्तेदार होते हैं वे भी उनके अत्यन्त प्रिय हो जाते हैं।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।

साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(भा. 9/4/63)

शिवानन्द सेन के सम्बन्ध से उनकी स्त्री तथा तीनों पुत्रों ने भी महाप्रभु जी की अशेष कृपा प्राप्त की। महाप्रभु जी के निर्देश के अनुसार शिवानन्द जी के कनिष्ठ पुत्र का नाम हुआ-परमानन्द दास। महाप्रभु जी उपहास से कुमार को 'पुरीदास' कह कर सम्बोधन करते थे। शिवानन्द जी जब बालक परमानन्द दास को महाप्रभु जी के पास लाये थे तो महाप्रभु जी ने स्नेहाविष्ट होकर अपने पैर की अंगुली उसके मुख में दे दी थी।

"शिवानन्देर भाग्यसिन्धु के पाइबे पार?

जाँर सब गोष्ठिके प्रभु कहे 'आपनार'॥

तबे सब भक्त लञा करिला भोजन।

गोविन्देर आज्ञा दिला करि' आचमन॥

शिवानन्देर 'प्रकृति', पुत्र-यावत् एथाय।

आमार अवशेष-पात्र तारा येन पाय॥"

(चै. च. अ.12/51-53)

[श्रीशिवानन्द जी के भाग्य को कौन समझ सकता है कि जिसके सारे परिवार को ही महाप्रभु जी अपना कहते थे। महाप्रभु जी ने सब भक्तों को साथ लेकर भोजन किया तथा आचमन करने के पश्चात् अपने सेवक गोविन्द जी को आज्ञा दी कि श्रीशिवानन्द, उनकी पत्नी तथा उनके पुत्र जब तक यहाँ पर हैं तब तक मेरा अवशेष प्रसाद जैसे उनको मिले, ऐसी व्यवस्था करना।]

शिवानन्द जी के छोटे पुत्र पुरीदास के प्रति महाप्रभु जी की जो अशेष कृपा थी वह श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के सोलहवें परिच्छेद में वर्णित हुई है। एक बार रथयात्रा के समय शिवानन्द सेन अपनी पत्नी और कनिष्ठ पुत्र पुरीदास को लेकर महाप्रभु जी के पास आये। महाप्रभु जी ने पुरीदास को "कृष्ण" "कृष्ण"-उच्चारण करने को कहा। बार -बार बोलने पर भी बालक ने कृष्ण नाम उच्चारण नहीं किया। शिवानन्द सेन ने भी बहुत कोशिश की परन्तु वे भी उच्चारण न करवा सके। महाप्रभु जी ने कहा—मैंने जगत में सबको, यहाँ तक कि स्थावरों (वृक्षादि)को भी कृष्ण नाम करवाया किन्तु इस शिशु को कृष्ण नाम नहीं करवा सका, इसका क्या कारण है? स्वरूप दामोदर जी ने उसके कारण की ओर निर्देश करते हुये कहा:–

"तुमि कृष्णनाम-मन्त्र कैला उपदेशे।

मन्त्र पाञा कार आगे ना करे प्रकाशे।

मने मने जपे, मुखे ना करे आख्यान।

एइ इहार मनः कथा—करि अनुमान॥" (चै.च.अ. 16/71)

[अर्थात् अपने इसे कृष्ण नाम के मन्त्र का उपदेश किया है परन्तु मन्त्र लेने के पश्चात् उसे किसी के सामने प्रकाशित नहीं किया जाता इसलिये ऐसा लगता है कि यह उच्चारण न करके मन ही मन जप कर रहा है।]

श्रील प्रभुपाद जी ने इन पयारों के अनुभाष्य में लिखा है "श्रीगुरुदेव जी से प्राप्त मन्त्र को दूसरों के सामने बोलने से उसका वीर्य नहीं रहता अर्थात् उसका प्रभाव खत्म हो जाता है, ऐसा श्रीगदाधर जी के आख्यान से हम पहले ही जान चुके हैं। एक दिन फिर महाप्रभु जी ने जब पुरीदास से कुछ बोलने के लिये कहा तो पुरीदास ने अपना मौन तोड़कर ऐसा श्लोक उच्चारण किया कि सब चमत्कृत हो गये। उस समय उनकी उम्र लगभग सात साल की थी। कोई अध्ययन नहीं, बिना अध्ययन के कैसे श्लोक उच्चारण किया, यह देखकर सब चमत्कृत हो उठे। वास्तव में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की कृपा की महिमा को ब्रह्मादि देवता भी समझ नहीं सकते। पुरीदास (कविकर्णपूर) कृत श्लोकः–

"श्रवसोः कुवलयमक्ष्णो रञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।

वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥*

(चै.च. अ. 16/74)

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी द्वारा श्रीयदुनन्दन आचार्य की आज्ञा पालन करने का बहाना करके भाग जाने पर श्रीगोवर्धन मजूमदार ने दस व्यक्तियों को एक पत्र देकर शिवानन्द जी के पास ही भेजा था और रघुनाथ को वापस भेजने के लिये अनुरोध किया था। लेकिन वहाँ पर रघुनाथ जी का कुछ पता न लगने पर वे दसों आदमी वापस आ गये थे। चातुर्मास्य के पश्चात् शिवानन्द जी द्वारा भक्तों के साथ पुरी से गौड़देश में वापस लौटने पर, रघुनाथ जी के पिता गोवर्द्धन मजूमदार को लोगों के मुख से रघुनाथ द्वारा सिंहद्वार में भिक्षावृति करने एवं तीव्र वैराग्य के साथ भजन करने की बात मालम हई तो भक्तों के पुनः पुरी यात्रा करने पर, रघुनाथ जी के माता-पिता जी ने दुःखी होकर रघुनाथ की सेवा के लिये चार सौ मुद्रा, दो सेवक और एक ब्राह्मण को शिवानन्द सेन के साथ पुरी भेजा था किन्तु रघुनाथ गोस्वामी जी ने अपने लिये कुछ भी स्वीकार नहीं किया। शिवानन्द सेन के पुत्र कविकर्णपूर ने श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक के इसी प्रस्ताव में रघुनाथ दास गोस्वामी जी की महिमा विस्तृत भाव से वर्णन की है।

कुमारहट्ट में जिस समय श्रीवास के गृह में अतिथि भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी ने शुभपदार्पण किया था उस समय वहां अन्य भक्तों के साथ शिवानन्द सेन भी महाप्रभु जी से मिले थे।

"वासुदेव दत्त आइलेन सेइ क्षणे।

शिवानन्द सेन-आदि आप्तवर्ग-सने॥"

(चै. भा. अ. 5/18)

श्रीशिवानन्द सेन जी के आविर्भाव व तिरोभाव का न तो वर्ष मालूम पड़ता है और न ही उनके माता-पिता व पत्नी का नाम ही सही-सही जाना जाता है।

****

*जो श्रवण युगल (दोनों कानों) के नीलकमल, चक्षुओं के अन्जन, वक्षस्थल के महेन्द्र मणिदाम, वृन्दावन की रमणियों के अखिलभूषण हैं, उन श्रीहरि की जय हो |

श्रीपरमानन्द पुरी

जो श्रीकृष्ण लीला में उद्धव हैं, उन्होंने ही परमानन्द पुरी के रूप में अवतीर्ण होकर गौर लीला की पुष्टि की है।

'पुरी परमानन्दो य आसीदुद्धवः पुरा' -(गौ. ग. दी. 118)

श्रीपरमानन्द पुर पाद जी के माता-पिता का परिचय, उनके आविर्भाव और तिरोभाव का सन् व तिथि इत्यादि सभी अज्ञात ही हैं। हाँ, इस प्रकार अवश्य जाना जाता है कि वे त्रिहुत देश* में आविर्भूत हुये थे। श्रीश्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने उनका पूर्व परिचय त्रिहुत देश में उत्पन्न एक विप्र के रूप में दिया है। इनके दीक्षा गुरु श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद हैं। श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद जी के शिष्य होने के कारण ये श्रीमन्महाप्रभु जी के परम प्रिय और मर्यादा के पात्र बन गये थे। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के आदिलीला के नवम परिच्छेद में श्रीपरमानन्द पुरी को भक्ति कल्पतरु के मध्य-मूल के रूप में वर्णन किया है भक्ति कल्पतरु के प्रथम अंकुर श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद, द्वितीय पुष्ट अंकुर श्रीईश्वर पुरीपाद जी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु उसके स्कन्ध हैं।

परमानन्द पुरी-केशव भारती-ब्रह्मानन्दपुरी-ब्रह्मानन्दभारती-विष्णुपुरी-केशवपुरी-कृष्णानन्द पुरी-नृसिंहतीर्थ व सुखानन्द पुरी इन नौ ने ही भक्ति कल्पतरु की जड़ों को मजबूत किया है। यहां पर परम रहस्य की बात यह है कि स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु भक्ति कल्पतरु के माली होने के साथ साथ अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से उसका तना भी स्वयं ही बने हैं—

"मध्यमूल परमानन्द पुरी महाधीर

एइ नव मूले वृक्ष करिल सुस्थिर"

(चै. च.आ. 9/16)

श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल से कृष्णदास नामक विप्र के साथ दक्षिण भारत भ्रमण के लिये निकले तो कूर्मस्थान, जियड़ नृसिंह, विद्यानगर (जहाँ पर महाप्रभु जी का रायरामानन्द के साथ मिलन हुआ था) गौतमी गंगा, मल्लिकार्जुन, अहोबल नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्द क्षेत्र, त्रिमठ, वृद्धकाशी, बौद्ध स्थान, त्रिपति, त्रिमल्ल, पाना नृसिंह, शिवकान्चि, विष्णुकान्चि, त्रिकाल हस्ती, वृद्धकोल, शियाली-भैरवी, कावेरीतीर, कुम्भ कर्ण कपाल तथा श्रीरंगक्षेत्र (जहाँ पर श्रीवैंकट भट्ट को सपरिवार कृष्ण भक्ति प्रदान की थी) इत्यादि स्थानों के दर्शनों के पश्चात जब ऋषभ पर्वत पर आ पहुँचे तो वहीं पर उनका परमानन्द पुरी जी के साथ प्रथम मिलन हुआ था। श्रीपरमानन्द पुरी उस समय ऋषभ पर्वत पर चातुर्मास्य व्रत का पालन कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने वहाँ जाकर पुरी जी की चरण वन्दना की, महाप्रभु जी को चरण वन्दना करते देख परमानन्द पुरी अति-प्रसन्न हुये और उन्होंने उनका आलिंगन किया। तीन दिन तक कृष्ण कथा चर्चा करने के पश्चात पुरी गोस्वामी जी ने जब महाप्रभु जी को बताया कि अब वे (परमानन्द पुरी) पुरुषोत्तम धाम के दर्शन करने के पश्चात् गौड़ देश में गंगा स्नान के लिये जायेंगे तो महाप्रभु जी ने उन्हें पुनः नीलाचल आने की प्रार्थना की। महाप्रभु जी की इच्छा थी कि वे सेतुबन्ध से जल्दी वापिस पुरी में आकर उनसे मिलें—

* मुजफ्फरपुर, दरभंगा व छापरा इत्यादि ज़िले त्रिहुत के अन्तर्गत है, अत: यह बिहार के मध्य में है।

"पुरी-गोसाञी बले,-आमि जाब पुरुषोत्तमे।

पुरुषोत्तम देखि' गौड़े याब गंगास्नाने॥

प्रभु कहे,-तुमि पुनः आइस नीलाचले।

आमि सेतुबन्ध हैते आसिब अल्पकाले॥

तोमर निकटे रहि,-हेन वाञ्छा हय।

नीलाचले आसिबे मोरे हञा सदय॥"

(चै. च. म. 9/171-173)

[अर्थात् श्रीपुरी गोस्वामी कहने लगे कि मैं पुरुषोत्तम धाम को जाता हूँ। उस धाम के दर्शनों के पश्चात गौड़ देश में गंगा स्नान करूँगा। यह सुन महाप्रभु कहने लगे कि आप पुनः नीलाचल में आइये, मैं थोड़े दिनों में सेतुबन्ध होकर आता हूँ। मैं आप के पास ही ठहरूँ, ऐसी मेरी इच्छा है। मेरे ऊपर कृपा करके आप अवश्य ही नीलाचल आइयेगा]

श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा के अनुसार एवं श्रीमन्नित्यानन्द व जगदानन्दादि भक्तों के द्वारा भेजे जाने पर काले कृष्ण दास ने नवद्वीप में आकर शची माता एवं अन्यान्य भक्तों को जब श्रीमन्महाप्रभु के दक्षिण भारत से वापस नीलाचल पहुँचने का संवाद सुनाया तो संवाद सुनकर गौर भक्त परमानन्द में विभोर हो गये। श्रीशची माता जी की इच्छा के अनुसार श्रीअद्वैताचार्यादि भक्त नीलाचल जाने के लिये तैयार हो गये। इसी समय, दक्षिण से परमानन्द पुरी भी गंगा के किनारे-किनारे चलकर वहाँ पहुँच गये और शचीमाता के घर पर ही ठहरे। शचीमाता ने भी अत्यन्त प्रीति के साथ उन्हें भोजन करवाया। वहीं परमानन्द पुरी जी को कालाकृष्ण दास से श्रीमन्महाप्रभु जी के पुरी में वापस आने का समाचार मिला। समाचार मिलते ही वे श्रीमन्महाप्रभु जी से मिलने के लिये उत्कण्ठित हो उठे और महाप्रभु जी के भक्त द्विज कमलाकान्त को साथ लेकर गौड़देश से शीघ्र ही पुरी चले आये। महाप्रभु जी द्वारा चरण वन्दना करने पर प्रेमाविष्ट होकर उन्होंने महाप्रभु जी का आलिंगन किया तथा दोनों ने एक दूसरे के संग रहने की इच्छा को इस प्रकार से जताया:–

प्रभु कहे,—तोमा-सङ्गे रहिते वाञ्छा हय।

मोरे कृपा करि' कर नीलाद्रि आश्रय॥

पुरी कहे,-तोमा सङ्गे रहिते वाञ्छा करि।

गौड़ हैते चलि' आइलाङ नीलाचल-पुरी॥ (चै. च. म. 10/97-98)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं कि आपके साथ रहने की बहुत इच्छा होती है। अत: मुझ पर कृपा करने के लिये आप नीलाचल में ही रहें। जवाब में परमानन्द पुरी जी कहते हैं कि मैं भी आपके साथ रहने की इच्छा करता हूँ इसीलिए तो गौड़देश से चलकर नीलाचल पूरी आया हूँ।]

---

*ऋषभ पर्वत-दक्षिण कर्णाटक में मादुरा ज़िले का एक प्रान्त है। यह मादुरा के 12 मील उत्तर की तरफ 'आनागड़मलय पर्वत' कुटकाचल के उपवन में है। यह वही स्थान है जिस स्थान पर ऋषभ देव दावानल के द्वारा भस्मी भूत हो गये थे! यह इस समय "पालिन हिल" के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने परमानन्द पुरी जी के रहने के लिये काशी मिश्र के भवन में ही एक ओर एकान्त में एक घर पर रहने के लिये निर्देश किया और उनकी सेवा के लिये एक सेवक की भी व्यवस्था कर दी। चातुर्मास में महाप्रभु जी के पार्षदों में से जो हमेशा उनके साथ रहते थे उनमें से परमानन्द पुरी भी एक थे। श्रीपरमानन्द पुरी महाप्रभु जी के कितने प्रिय पात्र थे, यह श्रीवृन्दावनदास ठाकुर लिखित श्रीचैतन्य भागवत के पाठ से जाना जाता है—

दूरे प्रभु-देखिया परमानन्द पुरी।

सम्भ्रमे उठिला प्रभु गौरांग श्रीहरि॥

प्रिय भक्त देखि' प्रभु परम-हरिषे।

स्तुति करि' नृत्य करे महा प्रेम-रसे॥

बाहु तुलि' बलिते लागिला "हरि हरि।

देखिलाम नयने परमानन्दपुरी॥

आजि धन्य लोचन, सफल धन्य जन्म।

सफल आमार आजि हैल सर्व धर्म॥"

प्रभु बोले,-"आजि मोर सफल संन्यास।

आजि माधवेन्द्र मोरे हइला प्रकाश॥"

एत बलि' प्रियभक्त लइ' प्रभु कोले।

सिञ्चिलेन अंग ता'न पद्मनेत्रजले॥

पुरीओ प्रभुर-चन्द्रश्रीमुख देखिया।

आनन्दे आछेन आत्म-विस्मृत हइया॥

कत क्षणे अन्योऽन्ये करेन परणाम।

परमानन्दपुरी-चैतन्येर प्रेम-धाम॥

(चै. भा. अ. 3/168-175)

यत प्रीति ईश्वरेर पुरीगोसाञिरे।

दामोदर स्वरूपेरे तत प्रीति करे॥

संन्यासीर मध्ये ईश्वरेर प्रियपात्र।

आर नाहि, एक पुरी गोसाञि से मात्र॥

दामोदर स्वरूप परमानन्दपुरी।

संन्यासी पार्षदे एइ दुई अधिकारी।

निरवधि निकटे थाकेन दुइ जन।

प्रभु संन्यासे करे दण्डेर ग्रहण॥

पुरी ध्यानपर दामोदरेर कीर्त्तन।

न्यासि-रूपे न्यासि-देहे बाहु दुइजन॥ (चै. भा. अ. 10/42, 46-49)

[अर्थात् दूर से ही महाप्रभु जी ने श्रीपरमानन्द पुरी को देखा तो शीघ्रता से उठ खड़े हुए। प्रिय भक्त को देखकर महाप्रभु जी बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने उनकी स्तुति की और परमानन्दित होकर नृत्य करने लगे। बाहुओं को ऊपर उठाकर हरि हरि उच्चारण करने लगे और कहने लगे कि आज मैंने इन नयनों से श्रीपरमानन्द पुरी का दर्शन किया है। आज मेरे नेत्र धन्य हो गये, आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरे सब धर्म सफल हो गये। महाप्रभु जी बोले, आज मेरा संन्यास सफल हो गया। आज माधवेन्द्र पुरी मेरे सामने प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार कहकर प्रिय भक्त का महाप्रभु जी ने आलिंगन किया और अपने नेत्रों के जल से उनका शरीर सींच दिया। श्रीपुरी भी महाप्रभु का चन्द्र के समान मुख देखकर अपने आप को भूल गये और परमानन्द का अनुभव करने लगे। बहुत समय तक दोनों एक दूसरे को प्रणाम करते रहे। श्रीपरमानन्द पुरी श्रीचैतन्य जी के प्रेम धाम थे। श्रीपरमानन्द पुरी जी के प्रति भगवान् श्रीगौरसुन्दर जी का जिस प्रकार सम्मान भाव था, स्वरूप दामोदर जी के प्रति उससे किसी प्रकार भी कम नहीं था। संन्यासियों के बीच में महाप्रभु जी का प्रिय पात्र एक गुरु गोसाईं जी को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीपरमानन्द पुरी, यह दोनों ही श्रेष्ठ संन्यासी पार्षद हैं। हर समय दोनों महाप्रभु जी के साथ रहते हैं। चूंकि महाप्रभु जी ने संन्यास लिया इसलिए उन्होंने भी दण्ड ग्रहणकर लिया। श्रीस्वरूप दामोदर जी कीर्त्तनानन्दी थे तथा श्रीपरमानन्द पुरी जी ध्यानपरायण भजनानन्दी थे-ये दोनों भगवान् श्रीगौरसुन्दर के संन्यासी कलेवर की दो भुजाओं के समान थे]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्त्री से बातचीत करने के कारण छोटे हरिदास को परित्याग कर दिया था। यहाँ तक कि उन्हें अपने घर में प्रवेश करने के लिये भी मना कर दिया था। इससे दुःखी होकर छोटे हरिदास जी तीन दिन भूखे रहे। स्वरूप दामोदर-आदि भक्तों के द्वारा श्रीमन् महाप्रभु जी से छोटे हरिदास पर प्रसन्न होने के लिये पुनः-पुनः निवेदन करने पर भी महाप्रभु जी ने अपना आदेश वापस नहीं लिया, अपितु तीव्र भर्त्सना ही की। छोटे हरिदास के इस संकल्प से कि यदि महाप्रभु के दर्शन नहीं हुये तो वह प्राणत्याग कर देगा, अवगत होने के पश्चात भक्तों ने हरिदास के अपराध को क्षमा करवाने के लिये परमानन्द पुरी जी से भी प्रार्थना की। श्रीमन्महाप्रभु जी अपने गुरुदेव के गुरु भाई श्रीपरमानन्द पुरी जी को गुरु के समान पूज्य मानते थे। अतः भक्तों को यह विश्वास था कि यदि वे क्षमा के लिये निवेदन करेंगे तो महाप्रभु जी मान लेंगे। महाप्रभु जी ने भी परमानन्द पुरी जी के वाक्य की अमर्यादा नहीं की और छोटे हरिदास को अपने घर में प्रवेश करने का आदेश दे दिया किन्तु स्वयं आलालनाथ जाने के लिये तैयार हो गये। महाप्रभु जी को जाते देख श्रीपरमानन्द पुरी जी ने उन्हें समझा-बुझाकर आलालनाथ जाने से रोका और भक्तों से बोले कि ईश्वर स्वतन्त्र हैं,। अत: उनकी इच्छा पर प्रतिबन्धकता करना ठीक नहीं है, श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने इस आचरण के द्वारा ये शिक्षा दी कि गुरुदेव के गुरु भाई भी गुरु के समान पूज्य हैं। गुरुवर्ग की अमर्यादा करना भक्ति के अत्यन्त प्रतिकूल है।

मर्यादा-लङ्घन आमि ना पारों सहिते। (चै.च.अ. 4/166)

श्रीपुरुषोत्तम धाम में श्रीगुन्डिचा मन्दिर मार्जन लीला, श्रीरथयात्रा उत्सव, श्रीनरेन्द्र सरोवर में जलकेलि इत्यादि प्राय-सभी लीलाओं में ही परमानन्द पुरी महाप्रभु जी के साथ थे। श्रील हरिदास ठाकुर जी के निर्याण उत्सव में भी वे उपस्थित थे। श्रीरथ यात्रा के पश्चात गौड़ीय वैष्णवों के गौड़देश में वापस चले जाने पर श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु एवं स्वरूप दामोदर तथा श्रीपरमानन्द पुरी आदि जिन दस संन्यासियों* को अपने घर में निमन्त्रित कर एक मास तक भोजन करवाया था उनमें से पाँच दिन के लिये निमन्त्रण कर परम प्रीति के साथ परमानन्द पुरी की सेवा की थी। श्रीगौड़ीय वैष्णव और पुरी वासी सब भक्त वृन्द ही परमानन्द पुरी के प्रति पूज्य बुद्धि करते थे और मर्यादा प्रदान करते थे। रथ यात्रा के समय श्रीमन्महाप्रभु ने सब से पहले श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीब्रह्मानन्द भारती इत्यादि गुरुवर्ग के भक्तों पर चन्दन लेप कर मर्यादा का प्रदर्शन किया था तथा गुण्डिचा मन्दिर मार्जन की लीला में परमानन्द पुरी आदि गुरु वर्ग को जल ढोने के कार्य में नियुक्त नहीं किया था। भक्तों के द्वारा लाये गये जल के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु एवं गुरुवर्ग गुन्डिचा मन्दिर को धोने के कार्य में एक साथ नियुक्त हुये थे।

परमानन्द पुरी, आर भारती ब्रह्मानन्द।

श्रीहस्तेर चन्दन पाञा बाड़िल आनन्द॥

अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द।

श्रीहस्त-स्पर्श दुँहार हइल आनन्द॥

(चै. च. म. 13/30-31)

नित्यानन्द, अद्वैत, स्वरूप, भारती, पुरी।

इँहा बिना आर सब आने जल भरी'॥

(चै. च. म. 12/109)

[अर्थात श्रीपरमानंद पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती महाप्रभु जी के हाथ से चन्दन प्राप्त कर बहुत आनन्दित हुए। श्रीअद्वैताचार्य तथा श्रीनित्यानन्द जी भी महाप्रभु जी के हाथ का स्पर्श प्राप्त कर आनन्दित हुए। श्रीजगन्नाथ जी के गुण्डिचा मन्दिर को धोते समय श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीभारती तथा श्रीपरमानन्द पुरी इन को छोड़ अन्य घड़ों में सब जल भर-भर कर लाते थे।]

श्रीचैतन्य लीला के व्यास श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी ने स्वरचित श्रीचैतन्य भागवत ग्रन्थ के अन्त्य खण्ड के तृतीय अध्याय में श्रीपरमानन्द पुरी की महिमा एवं उनके कुएँ की महिमा का अति सुन्दर रूप से वर्णन किया है। श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीपरमानन्द पुरी जी के कुएँ के सम्बन्ध में श्रीचैतन्य भागवत के अपने भाष्य में इस प्रकार लिखा है कि यह कुंआ श्रीजगन्नाथ मन्दिर के पश्चिम के रास्ते से कुछ दूरी पर अवस्थित है। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने इस कुंएँ की ओर निर्देश करते हुये लिखा है कि इसके निकट ही पुलिस स्टेशन है।

---

*दस संन्यासी-1 परमानन्द पुरी 2 दामोदर स्वरूप 3 ब्रह्मानन्द पुरी 4 ब्रह्मानन्द भारती 5 विष्णु पुरी 6 केशव पुरी 7 कृष्णानन्द पुरी 8 नृसिंह तीर्थ 9 सुखानन्द पुरी 10 सत्यानन्द भारती।

श्रीकृष्ण लीला में श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन से जिस प्रकार अत्यन्त प्रीतिपूर्वक वार्तालाप करते थे, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी परमानन्दपुरी जी के साथ कृष्ण कथा प्रसंग में दिन व्यतीत करते थे। श्रीपुरी गोस्वामी जी के कुएँ का जल अच्छा नहीं, यह अन्तर्यामी होने के कारण एवं बाद में साक्षात् पुरी गोसाईं जी से जान लेने पर श्रीमन्महाप्रभु जी दुःखी हुये। पुरी गोस्वामी जी के कुएँ के जल को स्पर्श करने से तमाम जीव, सब पापों से मुक्त हो जायेंगे; अतः जगन्नाथ देव जी ने कुंएँ के जल को मैला- कुचैला कर दिया था, जिससे कि उस जल को कोई स्पर्श करने की व पान करने की इच्छा न करे। पाप से मुक्ति के सहज उपाय का सुयोग न देकर श्रीजगन्नाथ देव जी ने माया का और कृपणता का प्रदर्शन किया है। इसीलिये जगन्नाथ जी के अभिन्न स्वरूप व भक्त की लीला कर रहे श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने दोनो हाथों को ऊपर उठाकर जीवों के प्रतिकृपा करने के लिये श्रीजगन्नाथ देव जी के सामने निम्न प्रार्थना की: –

"जगन्नाथ महाप्रभु, मोरे एइ वर।

गंगा प्रवेशुक एइ कूपेर भितर॥

भोगवति गंगा ये आछेन पातालेते।

ताँ'रे आज्ञा कर एइ कूपे प्रवेशिते॥

(चै.च.म. 3/242-243)

[अर्थात् हे जगन्नाथ महाप्रभु! मुझे यह वर दीजिये कि इस कुंएँ में श्रीगंगा जी प्रवेश करें। पाताल में जो भोगवती गंगा है, आप उसको आज्ञा करो कि वह इस कुंएँ में प्रवेश करे।]

श्रीमन्महाप्रभु जी के इस प्रकार करुणापूर्ण मधुर वाक्यों को सुनकर भक्तों ने आनन्द से उच्च स्वर में हरि ध्वनि की। श्रीमन्महाप्रभु जी के आदेश को शिरोधार्य कर गंगा नदी कूप में प्रविष्ट हो गयी। दूसरे दिन प्रातः काल ही कुँआ अति निर्मल जल से भर गया। कुंएँ को निर्मल जल से भरा देख सभी भक्त आश्चर्यचकित रह गये।

श्रीपरमानन्द पुरी भी कुएं में निर्मल जल देखकर परमानन्दित हुये। श्रीमन्महाप्रभु जी ने पुरी गोस्वामी जी के कुंएँ की महिमा वर्णन करते हुये कहा-जो इस कुंएँ के जल में स्नान करेगा व जो इस कुंएँ का जल पान करेगा, वह गंगा स्नान का फल और कृष्ण भक्ति प्राप्त करेगा। इतना कहने के बाद महाप्रभु जी ने स्वयं भी उस कुएँ के जल में स्नान किया और कुएँ के जल का पान किया। भक्त जिस प्रकार भगवान् की महिमा का कीर्त्तन करते हैं, भगवान् भी उसी प्रकार भक्त की महिमा का कीर्त्तन व उनकी महिमा वर्धन करते हैं। भगवान् से विमुख जीव भक्त की महिमा को जानने में असमर्थ होता है। भक्त के संग व उसकी कृपा के बिना जीव का मंगल नहीं होता, इसीलिये करुणामय भगवान् भक्तों की महिमा प्रकाशित करते रहते हैं –

"प्रभु बोले,-"आमि ये आछिये पृथिवीते।

जानिह केवल पुरी गोसाञिर प्रीते॥

पुरी गोसाञिर आमि-नाहिक अन्यथा।

पुरी बेचिलेओ आमि विकाई सर्वथा॥

सकृत् ये देखे पुरी गोसाञिरे मात्र।

सेइ हइबेक श्रीकृष्णेर प्रेम पात्र॥"

(चै. भा.अ. 3/255-257)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहने लगे कि मैं केवल पुरी गोस्वामी जी की प्रीति के कारण ही इस पृथ्वी पर विराजमान हूँ। इस में कोई सन्देह नहीं है कि मैं पुरी गोसाईं का हूँ। पुरी गोसाईं को पूरा अधिकार है वह जहाँ चाहे मुझे बेच सकते हैं। हाँ, जो पुरी गोसाईं जी की एक झलक भी दर्शन कर लेगा, वह श्रीकृष्ण का प्रेम पात्र बन जायेगा।]

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है कि श्रीपरमानन्द पुरी जी ने 'गोविन्द विजय' नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी।

****

श्रीमुकुन्द दत्त

"व्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठ-मधुव्रतौ।

मुकुन्द –वासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्ग-गायकौ॥"

(गौ. ग. दी 140)

श्रीकृष्ण लीला में व्रज के जो मधुकण्ठ थे, गौरलीला में वे ही मुकुन्ददत्त है। वे पूर्व चक्रशाला-चट्टग्राम ज़िले के पाटिया थाने के अन्तर्गत छनहरा ग्राम में (जो अभी बंगला देश में है) आविर्भूत हुये थे। ये श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी के श्रीपाट से प्रायः 20 मील दूर है। वासुदेव दत्त* ठाकुर इनके भाई हैं—

"चट्टग्राम देशे चक्रशाला ग्राम हय।

सम्भ्रान्त दत्त अम्बष्ठ ताहे ख्यात रय॥

सेइ वंशे जनमिला दुइ भागवत।

श्रीमुकुन्द दत्त आर वासुदेव दत्त॥

वासुदेव ज्येष्ठ, मुकुन्द कनिष्ट हन।

दुइ आसि नवद्वीपे करिलेन वास॥

"श्रीमुकुन्द-दत्त-शाखा, प्रभुर समाध्यायी।

याँहार कीर्तन नाचे चैतन्य गोसाञि॥" (चै. च.आ. 10/40)

[चट्टग्राम में एक चक्रशाला ग्राम है। वहाँ पर अम्बष्ठ दत्त जी रहते हैं जोकि अति सम्माननीय व्यक्ति के रूप में विख्यात हैं। इसी कुल में श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त नाम के दो परम भक्तों ने जन्म लिया जिनमें वासुदेव बड़े भाई हैं जबकि श्रीमुकुन्द दत्त कनिष्ठ। बाद में दोनों ने ही नवद्वीप में आकर वास किया था। श्रीमुकुन्द दत्त महाप्रभु जी के सहपाठी थे जिनके कीर्त्तन में श्रीमन् महाप्रभु नृत्य करते थे।]

मुकुन्द दत्त चट्टग्राम से नवद्वीप में आकर महाप्रभु जी के सहपाठी रूप से सबसे पहले महाप्रभु जी की विद्याविलास लीला में प्रविष्ट हुये थे। शैशव काल से ही मुकुन्द और महाप्रभु जी एक साथ गंगादास पण्डित की पाठशाला में पढ़े थे। जब निमाई पण्डित अध्ययन रस में प्रमत्त होकर हज़ारों छात्रों के साथ नवद्वीप में भ्रमण करते थे तब गंगादास पण्डित के अतिरिक्त और कोई भी पण्डित निमाई की व्याख्या नहीं समझ पाता था। पाखण्डियों के लिये निमाई पण्डित साक्षात् यमस्वरूप थे जबकि स्त्रियों के लिये तो वे साक्षात् मदनस्वरूप थे एवं पण्डितों के सामने साक्षात् वृहस्पति स्वरूप थे। चट्टग्राम निवासी अनेक वैष्णव उस समय गंगावास और अध्ययन के लिये नवद्वीप में आ कर रहते थे।

---

* श्रीप्रेम विलास ग्रन्थ में लिखा है कि श्रीवासुदेव दत्त श्रीमुकुन्द दत्त के बड़े भाई हैं।

वैष्णव लोग प्रत्येक दिन दोपहर के समय श्रीअद्वैत सभा में आकर परस्पर मिलते थे। अद्वैत सभा में वैष्णव लोग मुकुन्द के द्वारा गीत तथा सुमधुर हरि कीर्त्तन श्रवण कर विचार-द्वन्द में प्रवृत्त हो जाते थे। सब निमाई की फाँकी (पहेलियाँ) पूछने के भय से उनसे दूर भाग जाते थे। मुकुन्द महाप्रभु जी के साथ व्याकरण की फाँकी को लेकर हुये द्वन्द से छुटकारा पाने के लिये 'व्याकरण तो बच्चों का पाठ्य है' कहकर महाप्रभु को अलंकार-शास्त्र के कठिन-कठिन प्रश्न पूछते, महाप्रभु जी सभी का यथायथ उत्तर देते। वे अपने उत्तरों को एक बार स्थापन करते, फिर खण्डन करते और पुनः स्थापन कर देते। सर्वशास्त्रों में महाप्रभु जी का अगाध पाण्डित्य देखकर मुकुन्द आश्चर्यचकित रह जाते -

'मनुष्येर एमत पाण्डित्य आच्छे कोथा।

हेन शास्त्र नाहिक अभ्यास नाहि यथा!॥

एमत सुबुद्धि कृष्ण भक्त हय यवे।

तिलोको इहान सङ्ग ना छाड़िये तबे॥' (चै. भा. आ. 12/18-19)

[ऐसा पाण्डित्य मनुष्य में कहाँ होता है? कोई ऐसा शास्त्र नहीं है, जिसका इन्हें अभ्यास नहीं है। इस प्रकार का सुबुद्धिमान यदि कृष्ण भक्त हो जाये तो हम थोड़ी देर के लिये भी इनका संग न छोड़ें।]

कृष्णेतर बातों के प्रति विरक्त भक्त लोग कृष्ण कथा को छोड़कर और-और बातें सुनने की रुचि नहीं रखते। इसीलिये निमाई को देखते ही वे कहीं छुप जाते। एक दिन महाप्रभु हंसते हुये कहने लगे—

"मुकुन्द मेरे सामने से तू और ज्यादा दिन नहीं भाग पायेगा। मैं इस प्रकार का वैष्णव बनूँगा कि ब्रह्मा व शिव तक मेरे द्वार पर आकर लोटपोट होंगे।"

"हासि' बोले प्रभु,-आगे पड़ौँ कतदिन।

तबे से देखिवा मोर वैष्णवेर चिन॥

एइमत वैष्णव मुई हइमु संसारे।

अज-भव आसिवेक आमार दुयारे॥

शुन, भाइ सब, एइ आमार वचन।

वैष्णव हइसु मुइ सर्व-विलक्षण।

आमारे देखिया एवे ये-सब पलाय।

ताहराओ येन मोर गुण-कीर्ति गाय॥"* (चै. भा.आ 11/46-49)

---

* महाप्रभु हंसकर बोले, कुछ दिन और ठहरो, तब मेरे वैष्णवता के चिन्ह देखोगे। संसार में मैं इस प्रकार का वैष्णव बनूँगा कि अज – भव पर्यन्त मेरे द्वार पर आयेंगे। हे भाईयो! आप सब यह मेरा वचन सुनो, मैं सब तरह से विलक्षण वैष्णव बनूँगा। मुझे देखकर यह सब जो भाग रहे हैं, ये ही मेरा गुणगान करेंगे।

गया में ईश्वरपुरी पाद जी से दीक्षा ग्रहण की लीला के अभिनय के पश्चात, जब महाप्रभु जी वापस नवद्वीप में लौटकर आये तो हमेशा ही कृष्णप्रेमोन्मत्त अवस्था में रहने लगे। श्रीमन्महाप्रभु जी को ऐसी अवस्था में देखकर मुकुन्द उनके भाव के अनुरूप श्लोकों का उच्चारण और कीर्त्तन करके उनको सुख देते थे। मुकुन्द का कीर्त्तन ऐसा प्राणस्पर्शी व सुमधुर होता था कि औरों की तो बात ही क्या, श्रीअद्वैताचार्य व श्रीईश्वर पुरीपाद जी तक भी प्रेमाविष्ट हो जाते थे।

पुण्डरीक विद्यानिधि (कृष्णलीला के वृषभानु महाराज) जिनको महाप्रभु जी ने 'पुण्डरीक' 'बाप रे' कहकर पुकारा था व जिनका नाम लेकर क्रन्दन किया था, वे नवद्वीप में आकर परम भोगी की लीला का अभिनय करते हुये गुप्त रूप से रह रहे थे। वैष्णवों में से मात्र मुकुन्द दत्त ही विद्यानिधि के तत्त्व से अवगत थे। जन्म से ही विरक्त गदाधर पण्डित गोस्वामी जी को एक अद्भुत वैष्णव दिखाने के लिये मुकुन्द दत्त उन्हें विद्यानिधि जी के पास ले गये, उस समय विद्यानिधि जी एक आलीशान पलंग के ऊपर बैठकर पान चबा रहे थे। उनका पान चबाना इत्यादि व्यवहार, दूध की फेन के समान उनकी सफेद शैय्या, इत्र की गन्ध व उनका भोग विलास दर्शन करके गदाधर को विद्यानिधि जी की वैष्णवता के प्रति संशय हो

गया। गदाधर के मन की बात जानने वाले मुकुन्द दत्त जी ने तभी श्रीकृष्ण महिमा सूचक एक श्लोक का उच्चारण किया: –

"अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।

लेभेगतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कंवा दयालुं शरणं व्रजेम॥"

(भा. 3/2/23)

भागवत का श्लोक सुनने मात्र से पुण्डरीक विद्यानिधि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उनके श्रीअंगों पर विविध सात्त्विक विकार प्रकटित होने लगे। विद्यानिधि जी के अद्‌भुत प्रेम के दर्शनकर गदाधर पण्डित वैष्णवापराध के कारण अत्यन्त अनुतप्त हो उठे। उन्होंने मुकुन्द दत्त जी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वैष्णव अपराध खण्डन के लिये वे विद्यानिधि जी से दीक्षा ग्रहण करेंगे। मुकुन्द दत्त जी गदाधर जी का प्रस्ताव सुनकर उल्लसित हो उठे तथा गदाधर जी की प्रशंसा करने लगे। श्रीमुकुन्द दत्त जी के अनुरोध पर विद्यानिधि जी ने गदाधर जी को दीक्षा प्रदान करने के लिये शुभ दिन भी निर्दिष्ट कर दिया तथा बाद में महाप्रभु जी की अनुमति के अनुसार दीक्षा प्रदान की।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने जब श्रीवास-आंगन में संकीर्त्तन विलास किया था तो उस समय संकीर्त्तन में मुकुन्ददत्त भी साथ थे। श्रीवास-अंगन में हुये हरिवासर तिथि के ऊषाकालीन कीर्त्तन में एक कीर्त्तन यूथ के मूल गायक थे-मुकुन्ददत्त। श्रीमन् महाप्रभु जी द्वारा श्रीवास-अंगन में सातप्रहरिया भाव प्रकाश करते समय इन्हीं मुकुन्ददत्त जी ने अभिषेक लीला का गान गाया था—

" श्रीहरिवासरे हरिकीर्तन-विधान।

नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण॥

पुण्यवन्त श्रीवास-अंगने शुभारम्भ।

उठिल कीर्तन ध्वनि 'गोपाल गोविन्द'॥

ऊषः काल हैते नृत्य करे विश्वम्भर।

यूथ यूथ हैल यत गायन सुन्दर॥

श्रीवासपण्डित लइया एक सम्प्रदाय।

मुकुन्द लइया आर जन-कत गाय॥"

(चै.भा. म. 8/138-141)

"गौरांगेर भक्त सब महामंत्रवित्।

मंत्र पड़ि' जल ढाले हइ' हरषित॥

मुकुन्दादि गाय अभिषेक सुमंगल।

केह कान्दे, केह नाचे आनन्दे विह्वल॥" (चै. भा. म 9/31-32)

महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर जी ने विष्णु सिंहासन पर बैठकर जो 21 घण्टे तक महाप्रकाश लीला की थी, उसमें सब रसों के भक्तों की इच्छा पूर्ति के लिये विष्णु के सब अवतारों के रूपों को प्रकटित किया था। भक्तों के द्वारा वैकुण्ठाधिपति षडैश्वर्यपूर्ण श्रीगोर- नारायण के राजराजेश्वर अभिषेक के सुसम्पन्न होने पर श्रीगौरसुन्दर जी अत्यन्त स्नेहाविष्ट होकर भक्तों को बुला-बुला कर उनकी इच्छा के अनुकूल रूप प्रदर्शन करते व उन्हें वर प्रदान करते। किन्तु महाप्रभु जी अपने प्रिय भक्त मुकुन्ददत्त को क्यों नहीं बुला रहे हैं, इसे भक्त न समझ पाये।

श्रीवास पण्डित ने जब मुकुन्ददत्त पर कृपा करने के लिये कहा तो महाप्रभु जी बोले -'मुकुन्द खड़जाटिया बेटा है',* उसकी मति स्थिर नहीं है। वह कभी तो भक्तों के दल में मिल जाता है और कभी अभक्तों के दल में मिलकर मेरे अंगों पर प्रहार करता है। इसलिये वह मेरे दर्शनों का अधिकारी नहीं है। महाप्रभु जी की इस प्रकार कठोर उक्ति सुनकर व खेदयुक्त होकर मुकुन्द ने देह त्याग करने का संकल्प लिया। किन्तु देह त्यागने से पहले श्रीवास जी के माध्यम से उन्होंने महाप्रभु के पास अपना ये प्रश्न भिजवाया कि क्या उसे भी कभी दर्शन होंगे?

महाप्रभु जी बोले-'हाँ, करोड़ जन्म के बाद वह दर्शन पायेगा।'

"करोड़ जन्म के बाद दर्शन पाऊँगा", "करोड़ जन्म के बाद दर्शन पाऊँगा", "महाप्रभु का वचन कभी झूठा नहीं होगा"-इस प्रकार बोलते-बोलते मुकुन्द आनन्द में विभोर होकर नृत्य करने लगे ही थे कि महाप्रभु जी ने तत्काल मुकुन्द के सारे अपराध क्षमा कर उसको अपने ईश्वर रूप के दर्शन कराये। अपनी पराजय स्वीकार करते हुये महाप्रभु जी बोले- 'मुकुन्द की जिह्वा पर मेरा सर्वदा अधिष्ठान है।'

'मुकुन्देर जिह्वाय आमार नित्य अधिष्ठान।

येखाने येखाने हय मोर अवतार।

तथाय गायन तुमि हइवे आमार॥' (चै. भा.म. 10/260)

---

* ग्वाले लोग गाय को खलि भी देते हैं और लाठी भी मारते हैं। महाप्रभु जी कहते हैं, ये मुकुन्द भी ऐसे भक्ति की पुष्टि करते हुये दाँतों में तिनका लेकर दीनता भी दिखाता है और कभी लाठी भी चलाता है।

[अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं कि मुकुन्द दत्त की जिह्वा में मेरा नित्य अधिष्ठान है। हे मुकुन्द! सुनो जहाँ-जहाँ पर मेरा अवतार होगा। वहीं वहीं पर तुम मेरे गायक के रूप में रहोगे।]

मुकुन्द ने भक्ति शून्यता के लिये अपने को धिक्कार दिया तथा भक्ति योग के प्रभाव और भक्ति हीनता के भयावह परिणामों का दृष्टान्तों के साथ वर्णन किया –

भक्ति न मानिलुँ मुञि एइ छार मुखे।

देखिलेइ भक्तिशून्य कि पाइव सुखे?॥

विश्वरूप तोमार देखिल दुर्योधन।

याहा देखिवारे वेदे करे अन्वेषण॥

देखियाआओ सवंशे मरिल दुर्योधन।

न पाइल सुद्धभक्तिशून्येर कारण॥

(चै. भा. म 10/215-217)

[अर्थात् व्यर्थ ही मैंने इस नीच मुख से भक्ति को न माना। भक्ति से शून्य रहकर मैं प्रभु के दर्शन करने पर भी क्या सुख पाऊँगा? अब देखो न, दुर्योधन ने भी तो आपके विश्वरूप के दर्शन किये, जिस के दर्शन वेद भी ढूँढते फिरते हैं, परन्तु हुआ क्या, आपके दर्शन करने पर भी वह सवंश नाश हो गया और भक्ति शून्य होने के कारण आप की शुद्धभक्ति प्राप्त नहीं कर सका।]

एक दिन महाप्रभु जी कृष्ण प्रेम लीला प्रविष्ट अवस्था में गोपियों का पक्ष अवलम्बन करते हुये 'गोपी' 'गोपी' शब्द उच्चारण कर रहे थे तो एक विद्यार्थी ने महाप्रभु जी को कृष्ण नाम उच्चारण करने के लिये कहा। प्रेम-विभावित महाप्रभु विद्यार्थी को कृष्ण पक्ष का व्यक्ति समझकर उसे लाठी से मारने गये। महाप्रभु का भाव न समझ पाने के कारण विद्यार्थी अन्यान्य विद्यार्थियों के साथ मिलकर महाप्रभु के प्रति विरोधाचरण करने में लग गया। महाप्रभु जी ने उन्हें इस प्रकार के अपराधमय कार्य से मुक्त करवाने के लिये संन्यास ग्रहण का संकल्प लिया। महाप्रभु जी ने मुकुन्द के गृह में जाकर मुकुन्द से कृष्णमंगल गान श्रवण किया। इसके पश्चात अपना संन्यास ग्रहणकरने का अभिप्राय उनके सामने व्यक्त किया। उसे सुनते ही वेदना से आहत हो मुकुन्द ने महाप्रभु जी से कुछ दिन अपेक्षा करने का अनुरोध किया। सब भक्त ही महाप्रभु जी की श्रीशिखा (अत्यन्त सुन्दर केशों से बनी चुटिया) के अन्तर्धान की चिन्ता से दुःख सागर में निमग्न हो गये।

कन्टक नगर में महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहण के कुछ समय पश्चात ही मुकुन्द ने अन्यान्य भक्तों के साथ कीर्त्तन करके महाप्रभु जी को सुख दिया था। केशव भारती से संन्यास ग्रहणकरने के पश्चात महाप्रभु जी जब नीलाचल गये थे तो मुकुन्द दत्त भी उनके साथ थे। नित्यानन्द जी द्वारा महाप्रभु जी के दण्ड भंग (दण्ड तोड़ने की) लीला के समय एवं नीलाचल में वासुदेव सार्वभौम के गृह में भी मुकुन्द दत्त जी उपस्थित थे। नरेन्द्र सरोवर में महाप्रभु जी की जलकेलि लीला में भी वे साथ ही थे। वे प्रतिवर्ष भक्तों के साथ गौड़देश से महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये जाते थे। नीलाचल में जगन्नाथ देव की रथयात्रा के समय श्रीजगन्नाथ जी के आगे जो सात मण्डलियों का संकीर्त्तन होता था, उनमें से तीसरी मण्डली के मूल संकीर्त्तनिया थे- श्रीमुकुन्द तथा नर्त्तक थे हरिदास ठाकुर। महाप्रभु जी के प्रति मुकुन्द की किस प्रकार गाढ़ प्रीति थी, वह महाप्रभु की उक्ति से ही जाना जाता है:-

"मुकुन्द हयेन दुःखी देखी' संन्यास-धर्म।

तिनबारे शीते स्नान, भूमिते शयन॥

अन्तरे दुःखी मुकुन्द, नाहि कहे मुखे।

इहार दुःख देखि' मोर द्विगुण हये दुःखे।"

(चै. च. म 7 / 23 -24)

[अर्थात् मुकुन्द तो मुझे सर्दी में तीन बार स्नान करते एवं भूमि पर शयन आदि संन्यासियों के धर्म का आचरण करते देखकर दुःखी होते हैं, चाहे वे मुँह से कुछ नहीं कहते, परन्तु मन-मन में दुःखी होते हैं। उनका दुःख देखकर मुझे दुगना दुःख होता है।]

मुकुन्द दत्त नीलाचल में स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, हरिदास ठाकुर तथा महाप्रभु जी के समस्त मुख्य पार्षदों के साथ मिले थे। ज्येष्ठ पूर्णिमा अर्थात् श्रीजगन्नाथ देव जी की रथ यात्रा तिथि को श्रीमुकुन्द दत्त ठाकुर ने तिरोधान लीला की थी।

****

श्रीवासुदेव विप्र

तबे त' करिला प्रभु दक्षिण गमन।

कूर्मक्षेत्रे कैल वासुदेव विमोचन॥ (चै.च.म. 1/102)

[अर्थात् तब महाप्रभु जी दक्षिण को चले गये और कूर्मक्षेत्र में जाकर उन्होंने वासुदेव का उद्धार किया।]

श्रीश्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने 'कूर्मक्षेत्र' या कूर्म स्थान के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है: –

"गन्जाम ज़िले में बी. एन्. आर. लाइन पर चिकाकोल रोड' स्टेशन से आठ मील पूर्व की ओर कूर्माचलम् या श्रीकूर्मम् है। यह तेलगु वासियों का सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। वहीं पर कूर्ममूर्ति विराजमान है। ग्यारहवीं शताब्दी में जब श्रीरामानुज, श्रीजगन्नाथ जी द्वारा कूर्माचल में फेंके गये थे तब उन्होंने कुर्ममुर्ति के सामने, उसे शिवमूर्ति समझकर उपवास किया था। किन्तु बाद में जब उन्हें मालूम पड़ा कि यह विष्णु मूर्ति है, तो उन्होंने वहाँ कूर्मदेव की सेवा को प्रकाशित किया। गन्जाम ज़िला उड़ीसा के अन्तर्गत है।"

अब इस स्टेशन का नाम चिकाकोल रोड के स्थान पर श्रीकाकुलाम रोड हो गया है। यह आन्ध्रप्रदेश के अन्तर्गत है। इसके अतिरिक्त बी. एन्. आर. के स्थान पर अब उसका दक्षिण-पूर्वी रेलवे (South Eastern Railway) नाम हो गया है।

श्रीवासुदेव विप्र दक्षिण के रहने वाले थे। आप महाप्रभु जी के परम भक्त थे। भक्त चरित्र अतीव दुर्ज्ञेय है। अत्यन्त दीन हीन भाव से रहने के कारण भक्तों का चरित्र समझना साधारण लोगों के लिये बहुत ही कठिन है। महाप्रभु जी ने ही वासुदेव विप्र की महिमा को उजागर किया। दक्षिण-भारत भ्रमण के समय महाप्रभु जी ने 'कूर्म' नामक विप्र को कृतार्थ किया। महाप्रभु 'कूर्म' विप्र के घर पर है, यह जानकर सर्वांगों से गलित कुष्ठ युक्त वासुदेव विप्र उनके दर्शनों के लिये अत्यन्त व्याकुलता के साथ वहाँ पर आये। किन्तु कूर्म विप्र से यह सुनकर कि महाप्रभु जी यहाँ से चले गये हैं अतीव दुःख से मूर्च्छित हो गये तथा भूमि पर गिर पड़े। भक्त वत्सल परमकरुणामय-भक्तार्तिहर-सर्वान्तर्यामी महाप्रभु जी तब तक काफी दूर चले गये थे परन्तु वहाँ से वापस आकर उन्होंने भक्त वासुदेव विप्र को दर्शन दिये तथा उसका आलिंगन किया। महाप्रभु जी के स्पर्श मात्र से विप्र की कुष्ठ व्याधि दूर हो गई और उनका शरीर परमसुन्दर सुपुरुष की तरह हो गया। भगवान् सर्वत्र ही विराजित हैं, उनके लिये व्याकुलता रहने से ही उन्हें देखा जा सकता है। भगवान् केवल मात्र भक्ति द्वारा वशीभूत होते हैं। जागतिक किसी भी योग्यता या गुणों को वे नहीं देखते। उन्होंने वासुदेव विप्र की भीषण गलित कुष्ठ व्याधि की ओर ध्यान नहीं दिया बल्कि अपना परम प्रिय समझकर उनका आलिंगन किया। वासुदेव विप्र का अद्‌भुत चरित्र है। उनका सारा शरीर कोढ़ से गला हुआ था। उनके सारे शरीर में कीड़े ही कीड़े भरे पड़े थे जोकि उनके शरीर का माँस खाते रहते थे। माँस खाते-खाते यदि कोई कीड़ा नीचे गिर जाता तो गिरे हुये कीड़े को वे दुबारा उठाकर उसी स्थान पर रख देते। कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी लिखते हैं: –

'वासुदेव'-नाम एक द्विज महाशय।

सर्वाङ्गे गलित कुष्ठ, ताते कीड़ामय॥

अङ्ग हैते जेइ कीड़ा खसिया पड़य।

उठाञा सेइ कीड़ा राखे सेइ ठाञ॥ * (चै.च.म. 7/136-137)

वासुदेव विप्र महाप्रभु जी की असीम दया को देखकर आश्चर्यान्वित हो गये और भागवत का एक श्लोक उच्चारण करके उन्होंने महाप्रभु जी का स्तव किया: –

'क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।

ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥**

(भा. 10/81/16)

जीव में ऐसे गुण होना कभी भी सम्भव नहीं है। दुर्गन्ध के कारण जिसे देखकर लोग दूर से ही भाग जाते हैं, किन्तु स्वतन्त्र ईश्वर महाप्रभु जी ने कृपाविष्ट होकर उन्हें केवल स्पर्श ही नहीं बल्कि आलिंगन भी किया।***

सुन्दर शरीर की प्राप्ति होने पर वासुदेव विप्र इस आशंका से भयभीत हो गये कि कहीं यह शरीर का अभिमान उनके पतन का कारण न बन जाये। कारण, अभिमानी व्यक्ति कृष्ण कीर्त्तन के लिये अनाधिकारी है। महाप्रभु जी ने वासुदेव विप्र को श्रेष्ठ अधिकारी समझकर उसे जीवोद्धार करने के लिये आचार्य का कार्य करने का आदेश दिया –

प्रभु कहे,-"कभु तोमार ना हबे अभिमान।

निरन्तर कर तुमि 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम॥

कृष्ण उपदेशि' कर जीवेर निस्तार।

अचिराते कृष्ण तोमा करिवेन अङ्गीकार॥

(चै.च.म. 7/147)

[अर्थात् महाप्रभु जी ने कहा कि आपको कभी भी अभिमान नहीं होगा। निरन्तर आप कृष्ण-कृष्ण गाते रहो। कृष्ण का उपदेश करते हुये लोगों का उद्धार करो। जल्दी ही श्रीकृष्ण आपको अंगीकार कर लेंगे।]

---

*अर्थात् वासुदेव नामक एक द्विज महाशय थे जिनके सारे शरीर में गलित कुष्ठ (कोढ़) हो गया था, जिसके कारण सारा शरीर कीड़ों से भर गया था। किसी अंग से कोई कीड़ा यदि नीचे गिर जाता तो वे उसे उठाकर पुनः उसी स्थान पर रख देते थे।

** सुदामा विप्र ने कहा कि कहाँ तो मैं अतिपापिष्ठ, दरिद्र, विप्राधम और कहाँ वे लक्ष्मी के एकमात्र आश्रय-भगवान् श्रीकृष्ण। अयोग्य ब्राह्मण सन्तान जानकर भी आज उन्होंने मुझे आलिंगन किया-कितने आश्चर्य की बात है।

*** वैष्णव का शरीर कभी भी प्राकृत नहीं होता, वह हमेशा ही अप्राकृत है व परम पवित्र है। महाप्रभु जी अपूर्व भक्त-वात्सल्य, हरिदास ठाकुर जी के माध्यम् से श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के चौथे परिच्छेद में निम्न प्रकार से वर्णित है:-

हरिदास कहे,-"तुमि ईश्वर दयामय। तोमार गम्भीर हदय बुझन ना जाय॥

वासुदेव-गलत्कुष्ठी, ताते अङ्ग-कीड़ामय। तारे आलिङ्गन कैला हैञा सदय॥

आलिङ्गिया कैला तार कन्दर्प-सम अङ्ग। बुझिते न पारि तोमार कृपार तरङ्ग॥

प्रभु कहे,-'वैष्णव-देह 'प्राकृत' कभु नय। 'अप्राकृत' देह भक्तेर 'चिदानन्दमय'॥" (चै.च.अ. 4/188-191)

[अर्थात् हरिदास ठाकुर जी कहते हैं -हे प्रभु! आप दयामय हैं। आपके गम्भीर हृदय को समझा नहीं जा सकता। वासुदेव विप्र को गलित कुष्ठ था, उसका सारा शरीर कीड़ों से भरा पड़ा था, उसको भी आपने दया करके आलिगंन किया था और आलिंगन करके उसके सारे अंगों को कामदेव की तरह सुन्दर बना दिया था। अतः हे प्रभु! आपकी कृपा तंरग को मैं नहीं समझ सकता। महाप्रभु जी कहते हैं कि वैष्णव का शरीर कभी भी प्राकृत नहीं होता। भक्त का शरीर अप्राकृत व चिदानन्दमय होता है। बाहिर्मुख व्यक्ति वैष्णवों के अंगों की बाहरी विकृति देखकर वन्चित रह जाते हैं। वे उनके अप्राकृत चिन्मय स्वरूप को नहीं देख पाते।

****

श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर

"व्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठ-मधुव्रतौ।

मुकुन्द-वासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्ग-गायकौ॥"

(गौ. ग. दी.-140)

व्रज में जो मधुकण्ठ और मधुव्रत नाम के गायक थे, अब वे दोनों ही मुकुन्द एवं वासुदेव दत्त नाम से गौरांग देव के गायक हैं। श्रीवासुदेव दत्त जी पूर्व बंगाल में चट्टग्राम जिले के पाटिया थाने के अन्तर्गत छनहरा ग्राम में आविर्भूत हुये थे। ये स्थान श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी के जन्मस्थान (मोखला ग्राम) से प्राय: बीस मील दूर है। श्रीमन् महाप्रभु जी के पार्षद श्रीमुकुन्द दत्त जी इनके छोटे भाई हैं। ये अम्बष्ठ कुल में उत्पन्न हैं –

"चट्टग्राम देशे चक्रशाला ग्राम हय।

सम्भ्रान्त दत्त अम्बष्ठ ताहे ख्यात रय॥

सेइ वंशे जनमिला दुइ भागवत।

श्रीमुकुन्द दत्त आर वासुदेव दत्त।

वासुदेव ज्येष्ठ, मुकुन्द कनिष्ठ हन।

दुइ आसि नवद्वीपे करिलेन वास॥"

"श्रीमुकुन्द-दत्त-शाखा, प्रभुर समाध्यायी।

याँहार कीर्तन नाचे चैतन्य गोसाञि॥" (चै.च.आ. 10/40)

[अर्थात् चट्टग्राम के अन्तर्गत में चक्रशाला ग्राम है। वहां अम्बष्ठ दत्त जी रहते हैं जोकि अति सम्माननीय व्यक्ति के रूप से विख्यात हैं। इसी वंश में इन दो भागवतों अर्थात् श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त का जन्म हुआ। श्रीवासुदेव बड़े हैं जबकि श्रीमुकुन्द दत्त छोटे। दोनों ने ही नवद्वीप में आकर वास किया था।]

सुकण्ठ गायक और संगीत शास्त्र-विशारद श्रील वासुदेव दत्त ठाकुर श्रीमन्महाप्रभु जी के कीर्त्तन विलास और नगर संकीर्त्तन में योगदान देने वाले प्रधान पार्षदों में से एक थे। वासुदेव दत्त के वैष्णवोचित गुणों से आकृष्ट होकर महाप्रभु इनसे मिलने की कामना करते रहते थे –

वासुदेव दत्त-प्रभुर भृत्य महाशय।

सहस्र-मुखे याँर गुण कहिले ना हय॥

(चै. च. आ. 10/41)

[अर्थात् श्रीवासुदेव दत्त महाशय जी महाप्रभु के दास हैं। जिनके गुणों को हज़ार मुखों से कहने पर भी पूरा नहीं कहा जा सकता।]

(महाप्रभु)-यद्यपि मुकुन्द-आमा सङ्गे शिशु हैते।

ताँहा हैते अधिक सुख तोमारे देखिते॥

(चै. च. म. 11/138)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं कि यद्यपि मुकुन्द दत्त बचपन से ही मेरे साथ हैं, तब भी मुझे उससे अधिक सुख आपको देखकर होता है।]

श्रीवास पण्डित और शिवानन्द सेन के साथ इनकी विशेष घनिष्ठता थी। कुमारहट्ट वा कान्चनपल्ली (कांचन पाड़ा) में ये श्रीवास पण्डित और शिवानन्द सेन के साथ ही रहते थे। श्रीवासुदेव दत्त अत्यन्त उदार हृदय के व्यक्ति थे। वे अपनी चिन्ता न करके, उदार हाथों से रुपया खर्च करते थे, ऐसा करते देखकर ही श्रीमन्महाप्रभु जी ने शिवानन्द सेन को इनके खर्चे इत्यादि की देखभाल के लिये नियुक्त किया था। जीवों के दुःखों को देखकर इन्होंने महाप्रभु जी से उनके दुःखों को हटाने के लिये एवं उनके पाप स्वयं लेकर नरक भोगने की सकातर प्रार्थना ज्ञापन की थी: –

"जगत तारिते प्रभु तोमार अवतार।

मोर निवेदन एक करह अङ्गीकार॥

करिते समर्थ, तुमि हओ दयामय।

तुमि मन कर, तबे अनायासे हय॥

जिवेर दुःख देखि' मोर हृदय विदरे।

सर्वजीवेर पाप प्रभु देह’ मोर शिरे॥

जीवेर पाप लैञा मुञि करि नरक भोग।

सकल जीवेर प्रभु, घुचाह भवरोग॥"

(चै. च. म. 15/160 -63)

[हे प्रभो! जगत को तारने के लिए ही आपका अवतार हुआ है। इसलिये कृपा करके मेरे एक निवेदन को स्वीकार कीजिए। हे दयामय! आप उसे पूर्ण करने में भी समर्थ हैं। यदि आप चाहें तो मेरी यह प्रार्थना अनायास ही पूरी हो जायेगी। प्रार्थना ये है कि जीवों के दुःख देखकर मेरा हृदय फटा जा रहा है। आप सब जीवों के पाप मेरे सिर पर रख दीजिए, मैं उन सब जीवों के पापों को लेकर नरक भोगूँगा। हे प्रभु! आप सब जीवों का भवरोग समाप्त कर दीजिए।]

"जगते यतेक जीव, तार पाप लैञा।

नरक भुंजिते चाहे जीव छाड़ाइया॥"

(चै. च. आ. 10/42)

[महाप्रभु जी भक्तों से कहते हैं कि ये वासुदेव दत्त जगत के जितने जीव हैं, उन सबका पाप लेकर स्वयं नरक भोगना चाहता है और सब जीवों का बन्धन छुड़ाना चाहता है।]

वासुदेव दत्त की अत्यद्भुत जीव दुःख-कातरता की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमाविष्ट होकर बोले –

'ब्रह्माण्ड जीवेर तुमि वान्छिले निस्तार।

बिना पाप-भोगे हबे सबार उद्धार॥

असमर्थ नहे कृष्ण, धरे सर्व बल।

तोमाके वा केने भुञ्जाइबे पाप –फल?

तुमि जाँर हित वाञ्छ’, से हइल ‘वैष्णव’।

वैष्णवेर पाप कृष्ण दूर करे सब॥‘

(चै. च. म. 15/167-69)

[महाप्रभु कहते हैं कि तुमने जो ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों के निस्तार की इच्छा की है, इसलिये बिना पाप भोग किये ही उन सबका उद्धार हो जाएगा। श्रीकृष्ण असमर्थ नहीं हैं, वे सर्वशक्तिमान हैं, तुम्हें भला वे क्यों पापों का फल भोगने देंगे? आपने जिसका हित चाहा है वह तो वैष्णव हो गया और श्रीकृष्ण वैष्णवों के सब पाप दूर कर देते हैं।]

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में लिखा है-खृष्ट भक्तों (क्रिश्चन लोगों) में ये विश्वास है कि उनके गुरु एकमात्र महामति यीशु ही जीवों के तमाम पापों का भार ग्रहणकरने के लिये ही इस जगत में अवतीर्ण हुये थे, किन्तु गौरपार्षदों में से श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर जी ने हरिदास जी के समान या यूँ कहें कि उनसे भी अनन्त कोटिगुना अधिक उन्नत, उदार व विश्ववैष्णव-भाव की शिक्षा जगत के जीवों को दी।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी के दीक्षा गुरु श्रीयदुनन्दनाचार्य वासुदेव दत्त ठाकुर जी का अनुग्रह प्राप्त कर कृतार्थ हुये थे। श्रीचैतन्य भागवत् के रचयिता श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी की आविर्भाव स्थली (हावड़ा- काटोया लाइन में, पूर्वस्थली रेलवे स्टेशन से एक मील दूर) मामगाछी (मोदद्रुम द्वीप) में श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह 'श्रीमदन गोपाल जी' आज भी पूजित हो रहे हैं। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर श्रीमन्महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे, ये कुमारहट्ट (वर्तमान में हालिशहर) में श्रीवासजी के घर में रहते समय श्रीमन्महाप्रभु जी की वाणी से जाना जाता है –

आपनि श्रीगौरचन्द्र बले बार बार।

"ए शरीर वासुदेव दत्तेरआमार॥

दत्त आमा यथा बेचे, तथाय विकाइ।

सत्य सत्य इहाते अन्यथा किछु नाइ॥

वासुदेव दत्तेर वातास या'र गा'य।

लागियाछे, ताँ'रे कृष्ण रक्षिबे सदाय॥

सत्य आमि कहि-शुन वैष्णव मण्डल।

ए देह आमार-वासुदेवेर केवल॥"

(चै. भा. अ. 5/27-30)

[स्वयं श्रीगौर चंद्र पुनः-पुनः कहते हैं कि मेरा यह शरीर श्रीवासुदेव दत्त का है। ये दत्त जहाँ मुझे बेच देगा वहाँ ही मैं बिक जाऊँगा-यह बात मैं बिल्कुल सत्य-सत्य कहता हूँ, इस में कुछ भी झूठ नहीं है। श्रीवासुदेव दत्त की वायु भी जिसके शरीर को स्पर्श कर लेगी उसकी श्रीकृष्ण सदा ही रक्षा करेंगे। हे वैष्णव गण! सुनों, मैं यह बात सत्य-सत्य कह रहा हूँ, यह मेरी देह केवल वासुदेव की ही है।

****

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर

ऋचीकस्य मुनेः पुत्र नाम्ना ब्रह्मा महातपाः।

प्रह्लादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन्॥

(गो.ग.दी. 93)

ऋचीक मुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा था, वही प्रह्लाद के साथ जन्म ग्रहणकर अभी हरिदास रूप से आये हैं।

मुरारीगुप्तचरणैश्चैतन्यचरितामृते।

उक्तो मुनिसुतः प्रातस्तुलसीपत्रमाहरण्॥

अधौतमभिशप्तस्तं पित्रा यवनतां गतः।

स एव हरिदासः सन् जातः परमभक्तिमान्॥

(गो.ग.दी. 94, 95)

श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में मुरारी गुप्त जी ने कहा कि कोई एक मुनिकुमार तुलसी पत्र लेने गया तथा तुलसी पत्र तोड़कर उसने बिना धोये ही अपने पिता को दे दिये जिससे पिता द्वारा अभिशप्त होने पर वह यवनता को प्राप्त हुआ। उस मुनिपुत्र ने ही अब परम भक्तिमान हरिदास के रूप में जन्म ग्रहण किया है।

श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुर जी ने नवद्वीप धाम-माहात्म्य नामक ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है-द्वापर युग में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बछड़े और ग्वालों के साथ भ्रमण करते समय सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जानते हुये भी उनकी परीक्षा लेने के लिये बछड़ों व गोप बालकों को हरण कर लिया तथा एक वर्ष तक सुमेरु पर्वत की गुफा में रखा। किन्तु वर्ष के अन्त में ब्रह्मा जी ने व्रज में आकर श्रीकृष्ण को गोपबालक और गोवत्सों के साथ उसी प्रकार भ्रमण करते देखा तो वे आश्चर्यान्वित हो गये। बाद में अपनी भूल को जानकर वे अनुतप्त होकर श्रीकृष्ण के चरणों में प्रपन्न हो क्षमा याचना करने लगे। क्षमा की भिक्षा चाहने पर श्रीकृष्ण ने कृपापूर्वक ब्रह्मा जी के समक्ष अपने स्वरूप का प्रदर्शन किया। जिस द्वापर युग में स्वयं भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का आविर्भाव होता है, उसी द्वापर युग के साथ लगे कलियुग के प्रारम्भ में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण राधारानी के भाव और कान्ति को लेकर औदार्यलीलामय विग्रह श्रीगौरांग रूप से अवतीर्ण होते हैं। नवद्वीप धाम के अन्तर्गत अन्तर्द्वीप में बैठकर ब्रह्मा जी इस चिन्ता में चिन्तामग्न थे कि कहीं गौरावतार में भी वे गल्ती से भगवत् चरणों में दुबारा अपराध न कर बैठें। श्रीकृष्ण उनके हृदय का भाव जान गये तथा उनके भावानुसार श्रीकृष्ण ने उनको गौराङ्ग रूप से दर्शन देते हुये कहा-"गौराङ्गावतार के समय तुम यवन कुल में आविर्भूत होकर हरिदास ठाकुर के रूप से नाम-माहात्म्य का प्रचार करोगे एवं जीवों का कल्याण करोगे।

उपरोक्त वर्णन से जाना जाता है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ही हरिदास ठाकुर के रूप में अवतीर्ण हुये थे। कहा जाता है कि अहंकार के वशीभूत होकर ब्रह्मा जी पुनः गौरपादपद्मों में अपराध न कर बैठें इसलिये उन्होंने स्वयं ही गौरावतार के समय नीचकुल में जन्म ग्रहणकरने की प्रार्थना श्रीकृष्ण के समक्ष ज्ञान की थी। अद्वैत विलास ग्रन्थ में भी इसका वर्णन मिलता है।

वैष्णव किसी भी कुल में आविर्भूत हो सकते हैं, वैष्णव नीचकुल में आविर्भूत होने पर भी सर्वोत्तम होता है—यह दिखाने के लिये ही श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने पार्षदों को विभिन्न कुलों में आविर्भूत करवाया था। श्रीचैतन्य भगवात् में श्रीवृन्दावनदास ठाकुर जी ने लिखा है—

'जाति, कुल, सब-निरर्थक' बुझाइते।

जन्मिलेन नीचकुले प्रभुर आज्ञाते॥

'अधम-कुलेते यदि विष्णुभक्त हय।

तथापि सेइ से पूज्य'– सर्वशास्त्रे कय॥

"उत्तम-कुलेते जन्मि' श्रीकृष्णे ना भजे।

कुले ता'र कि करिवे, नरकेते मजे॥"

एइ सब वेद-वाक्येर साक्षी देखाइते।

जन्मिलेन हरिदास अधमकुलेते॥

प्रहलाद येहेन दैत्य, कपि हनूमान।

एइ मत हरिदास नीच-जाति नाम॥" (चै.भ.आ. 16/237-241)

[अर्थात जातिकुल इत्यादि की निरर्थकता को दिखाने के लिये ही हरिदास जी महाप्रभु जी की आज्ञा से नीचकुल में आविर्भूत हुये।"विष्णु भक्त यदि नीच कुल में भी होता है तो भी वह पूज्य है और उत्तम कुल में होकर भी यदि कोई कृष्ण भजन नहीं करता तो उत्तम कुल उसका क्या भला करेगा, वह तो निश्चित रूप से ही नरक में गमन करेगा।"-इन सभी वेदवाक्यों के प्रमाण दिखाने के लिये ही हरिदास अधम कुल में आविर्भूत हुये। जिस प्रकार से प्रह्लादजी दैत्य कुल में और हनुमान जी बन्दर कुल में आविर्भूत हुये, उसी प्रकार हरिदास जी नीच जाति में आये।]

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर बुढ़न ग्राम में आविर्भूत हुये थे, खुलना ज़िले में सातक्षीरा महकमे* में बुढ़न नामक एक परगना** है। बुढ़न परगना में 65 ग्राम हैं।

बुढ़न*** नामक ग्राम कहाँ है यह सुनिश्चित रूप से निर्णीत नहीं किया जा सकता। किसी किसी के मत के अनुसार हरिदास ब्राह्मणकुल में आविर्भूत हुये थे। इनके पिता का नाम सुमति और माता का नाम गौरी था। शैशव काल में ही पितृ-मातृहीन होने पर बुढ़न से 2½ कोस दूर सालाई नदी के दूसरे किनारे पर बसे हालिमपुर ग्राम में खां साहब के घरपर आप लालित-पालित हुये। श्रीअद्वैत विलास में इस प्रकार लिखा है कि श्रील हरिदास 1372 शकाब्द के

---

* महकुमा-ज़िले का एक अंश।

** परगना-वह भूभाग, जिसके अन्तर्गत बहुत से ग्राम हों।

*** बुढ़न-किसी-किसी के मतानुसार बुढ़न 24 परगना ज़िले के अन्तर्गत है जबकि किसी-किसी के मतानुसार यह यशोहर ज़िला के अन्तर्गत है। वर्तमान में वह खुलना ज़िले के अन्तर्गत है। खुलना लाइन में वनग्राम (वनगाँव) स्टेशन के बाद ही बेनापोल है। अतः बेनापोल और बुढ़न अब दोनों ही बंगला देश में हैं।

अग्रहायण मास में खाना उल्ला काज़ी के घर में अवतीर्ण हुये थे किन्तु बचपन में ही आपका पितृ-मातृ वियोग हो गया। 'श्रीअद्वैतविलास' ग्रन्थ के अनुसार श्रीहरिदास ठाकुर का आविर्भाव काल 1372 शकाब्द है जबकि 1407 शकाब्द में श्रीचैतन्य महाप्रभु आविर्भूत हुये थे। इसलिए हरिदास ठाकुर आयु में महाप्रभु की अपेक्षा 35 वर्ष बड़े थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभु जी की अपेक्षा 12 वर्ष बड़े होने से श्रीहरिदास ठाकुर नित्यानन्द प्रभु की अपेक्षा भी 23 वर्ष बड़े थे। श्रीमन् महाप्रभु जी जब गया धाम में श्रीईश्वर पुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहण की लीला का अभिनय कर नवद्वीप में वापिस लौटे और आकर संकीर्त्तन विलास में निमग्न हुये, तो तब हरिदास ठाकुर भी उनके साथ थे। किशोर-अवस्था में नवद्वीप में महाप्रभु जी का संकीर्त्तन विलास हुआ। किशोर अवस्था 10 से 15 वर्ष तक की होती है, इससे अनुमान लगता है कि तब हरिदास ठाकुर जी की आयु प्रायः 50 वर्ष की थी। श्रीमन् महाप्रभु जी की इच्छा से हरिदास ठाकुर जी उनके (महाप्रभु जी के) आविर्भाव से बहुत पहले ही आविर्भूत हो चुके थे। श्रीमन्महाप्रभु जी की लीला के संगी होने से पहले हरिदास ठाकुर जी द्वारा नाम-महिमा के प्रकाश की बहुत सी लीलायें सम्पादित हुईं। कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी द्वारा युगधर्म हरिनाम-संकीर्त्तन धर्म के प्रवर्त्तन के एक प्रधान पार्षद थे-नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर। श्रील हरिदास ठाकुर जी के माध्यम से

श्रीमन्महाप्रभु जी ने नाम-महिमा का प्रचार किया। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्य भगवात्' में हरिदास ठाकुर जी का पावन चरित्र और उनकी महिमा विस्तृत रूप से वर्णित हुई है। श्रीहरिदास ठाकुर जी के पावन चरित्र का अवशिष्टांश श्रील कविराज गोस्वामी जी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत से भी जाना जाता है:–

"हरिदास ठाकुर-शाखार अद्‌भुत चरित।

तिन लक्ष नाम तिँहो लयेन अपतित॥

ताँहार अनन्त गुण,-कहि दिग्मात्र।

आचार्य गोसाञि याँरे भुंजाय श्राद्धपात्र॥

प्रह्लाद-समान ताँर गुणेर तरंग।

यवन-ताड़नेओ याँर नाहिक भ्रुभंग॥

तेंहो सिद्धि पाइले ताँर देह लञा कोले।

नाचिल चैतन्यप्रभु महाकुतुहले॥

ताँर लीला वर्णियाछेन वृन्दावनदास।

येवा अवशिष्ट, आगे करिव प्रकाश॥"* (चै. च. आ. 10 /43-47)

---

* हरिदास ठाकुर जी की शाखा का अद्‌भुत चरित्र है। वह प्रतिदिन निरन्तर तीन लाख नाम लेते हैं। उनके गुण अनन्त हैं, मैं तो केवल बिन्दुमात्र ही कहता हूँ। श्रीअद्वैताचार्य जी जिनको श्राद्ध का भोजन करायें, उनकी महिमा स्वयं विचार करने योग्य है। उनके गुण समूह प्रह्लाद जी के समान हैं। यवनों के पीटने पर भी उनका बाल बाँका न हुआ। उनके शरीर त्यागने पर श्रीमहाप्रभु जी उनकी देह को अपनी गोदी में उठाकर, महानन्द के साथ नृत्य करने लगे थे। उनकी लीला श्रीवृन्दावन दास जी ने वर्णित की है। उनकी जो लीलायें रह गयी हैं. उनका प्रकाश आगे करूँगा-ऐसा श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी कहते हैं।

श्रीहरिदास ठाकुर जी की कौन सी लीला कब हुई उसका सही-सही समय निर्दिष्ट नहीं है फिर भी जहाँ तक सम्भव हुआ उसके लिये क्रमानुयायी लीला वर्णन की चेष्टा की जा रही है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवत् के आदि खण्ड में श्रीमन्महाप्रभु जी की- गया क्षेत्र की ओर यात्रा और वहाँ से वापसी तक की लीला है तथा मध्यखण्ड में महाप्रभु जी का गया से वापिस आने के पश्चात् कृष्ण विरह में अद्‌भुत प्रेम-विकार प्रकटन, शिष्यों के समक्ष समस्त शब्दों की कृष्णपरक व्याख्या और बाद में शिष्यों को लेकर संकीर्त्तनारम्भ, चन्द्रशेखर भवन एवं श्रीवास आँगन में संकीर्त्तन विलास इत्यादि तथा अन्त में संन्यास ग्रहण तक वर्णित हुआ है। इसी मध्य खण्ड की संकीर्त्तन विलास लीला में ही हरिदास ठाकुर जी का नाम उल्लिखित है –

मध्य खण्डे गङ्गाय पड़िला दुःख पाइया।

नित्यानन्द-हरिदास आनिल तुलिया॥*

(चै.भ.आ. 1/149)

श्रीवासांगन में और चन्द्रशेखर भवन में श्रीमन्महाप्रभु जी के संकीर्त्तन विलास के संगी भक्तों में से एक हरिदास ठाकुर भी थे—

सर्व-वैष्णवेर हइल शुनिया उल्लास।

आरम्भिला महाप्रभु कीर्तन-विलास॥

श्रीवास-मन्दिरे प्रति निशाय कीर्तन।

कोनदिन हय चन्द्रशेखर भवन॥

नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास।

विद्यानिधि, मुरारी, हिरण्य, हरिदास॥"** (चै.भा.म. 8/110 -112)

श्रीमन्महाप्रभु जी की अभीष्ट सेवा सम्पादन के लिये उनके नित्यपार्षद हरिदास ठाकुर यवनकुल में आविर्भूत होकर भी बचपन से ही हरिनाम में स्वाभाविक रूप से ही प्रगाढ़ रुचि रखते थे। निष्कपटता पूर्वक व अपराध रहित होकर निरन्तर हरिनाम करने वाले को कोई भी किसी भी प्रकार के दुनियावी प्रलोभन के द्वारा निश्चित मङ्गल (हरिभक्ति के पथ) से च्युत नहीं कर सकता।यहाँ तक कि स्वयं मायादेवी भी आकर उसका पतन नहीं कर सकती। नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर के ज्वलन्त प्रमाण हैं। भक्तों के सामने हरिदास ठाकुर जी के गुणों की महिमा का श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने मुख से जो वर्णन किया उसका श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के स्वरचित श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ की अन्त्य लीला के तृतीय परिच्छेद में उल्लेख मिलता है, जिसका संक्षिप्त रूप यहाँ दिया जा रहा है—

---

* मध्यखण्ड में ऐसा वर्णन है कि कृष्ण-विरह जनित दुःख पाकर श्रीमन् महाप्रभु जी श्रीगंगा में कूद पड़े थे तब श्रीनित्यानन्द जी तथा श्रीहरिदास जी ने ही उन्हें उठाकर बाहर निकाला था।

** यह सुनकर सब वैष्णव उल्लसित हो गये। श्रीमहाप्रभु जी ने अपना आनन्दमय संकीर्त्तन आरम्भ कर दिया। श्रीवास जी के घर प्रत्येक रात्रि कीर्त्तन होता। कभी-कभी श्रीचन्द्रशेखर के घर में होता। उनके साथ होते श्रीनित्यानन्द, श्रीगदाधर, श्रीअद्वैत, श्रीवास, श्रीविद्यानिधि, श्रीमुरारी, श्रीहिरण्य तथा श्रीहरिदास।

हरिदास ठाकुर जी ने अपने बुढ़न ग्राम के घर को त्यागकर कुछ दिन बेनापोल के जंगलों में वास किया था। उस समय हरिदास ठाकुर जी ने किशोर-अवस्था को पार कर यौवन में प्रवेश किया था। अनुमान लगाया जाता है कि उस समय महाप्रभु जी आविर्भूत नहीं हुये थे। बेनापोल के जंगलों में हरिदास ठाकुर निर्जन स्थान में एक कुटिया में रहते और प्रतिदिन तुलसी सेवा और तीन लाख हरिनाम करते तथा ब्राह्मणों के घरों पर जाकर भिक्षा करते थे। उनकी एकान्तिक भजन-निष्ठा और वैष्णवता को देखकर सभी उनका सम्मान करने लगे। उस समय उस अंचल में रामचन्द्र खान नाम का

एक वैष्णव विद्वेषी व पाखण्ड विचारों वाला जमींदार रहता था। हरिदास ठाकुर की प्रतिष्ठा देख-देखकर उसे जलन होने लगी। अतः हरिदास ठाकुर को सम्मानहीन करने के लिये, उनके दोष दिखाने के लिये वह विभिन्न प्रकार के उपाय ढूंढने लगा। किन्तु हरिदास जी में किसी भी प्रकार का छिद्र अर्थात् दोष न दिखा सकने पर अन्त में उसने वेश्याओं को बुलाया और उनके द्वारा हरिदास को चरित्र-भ्रष्ट करवाने के लिये वेश्याओं में से परमसुन्दरी युवती, जो लक्षहीरा के नाम से प्रसिद्ध थी, हरिदास ठाकुर जी को पतित करने के लिये नियुक्त की गई। वेश्या ने तीन दिन में ही हरिदास का पतन करने का विश्वास दिलाया। वेश्या के ऐसा कहने पर रामचन्द्र खान ने कुछ प्यादे (पैदल सिपाही) उसके साथ भेजने का प्रस्ताव रखा ताकि वे दोनों को एक साथ बाँध कर ला सकें। किन्तु वेश्या ने पहले सिपाही को साथ ले जाने की इच्छा नहीं की, एक बार उसका संग हो जाने पर ही सिपाही ले जाना अच्छा होगा, ऐसा समझाया। वेश्या रात को सुन्दर रूप से सजधज कर हरिदास ठाकुर की कुटिया में आकर उपस्थित हुई। कुटीर के सामने तुलसी देखकर हिन्दू संस्कारवशतः तुलसी को प्रणाम कर हरिदास के पास आकर खड़ी हो गयी। हरिदास ठाकुर को आकर्षण करने के लिये जितने प्रकार की स्त्री सुलभ चेस्टायें होती हैं, उनका प्रदर्शन करती हुई सुमधुर स्वर से बोली- 'ठाकुर तुम बहुत सुन्दर हो, तुम्हारा नव यौवन देखकर कौन नारी धैर्य धारणकर सकती है? तुम्हारे संग के लिये लोभान्वित होकर ही मैं यहां आयी हूँ। तुमको न पाने पर मैं प्राण त्याग दूँगी। उसके उत्तर में हरिदास ठाकुर बोले-'मैंने संख्या पूर्वक नाम कीर्तन का व्रत आरम्भ किया है। उक्त व्रत के पूरा होने पर आपकी इच्छा पूरी करूँगा।' हरिनाम कीर्त्तन करते-करते प्रातःकाल हो जाने पर वेश्या चंचल हो गयी और वहाँ से वापस आकर उसने रामचन्द्र खान को सारा वृत्तान्त सुनाया।

अगले दिन रात में वेश्या के पुनः आने पर हरिदास ठाकुर ने दुःख व्यक्त किया कि वे कल उसकी इच्छा पूर्ति न कर सके तथा साथ ही आश्वासन दिया कि नाम संकीर्त्तन संख्या व्रत समाप्त हाने पर वे आज अवश्य ही उसकी इच्छा पूर्ण करेंगे। उस रात भी वेश्या ने तुलसी को प्रणाम किया और मुनियों का भी धैर्य तोड़ देने वाले स्त्री-भावों को प्रकट किया परन्तु हरिदास ठाकुर निर्विकार भाव से हरिनाम करते रहे। हरिदास ठाकुर जी के मुख से उच्चारित नाम संकीर्त्तन सुनते-सुनते रात्रि समाप्त हो गई। रात्रि को समाप्त हुआ देख वेश्या अत्यन्त उतावली हो उठी तो हरिदास जी बोले- 'मैंने एक महीने में एक करोड़ हरिनाम लेने का व्रत लिया हुआ है, वह बस शेष ही होने वाला है। कल अवश्य ही मेरा व्रत पूरा हो जायेगा, तब स्वच्छन्दता से तुम्हारा संग हो सकेगा।' तीसरे दिन भी रात में आकर वेश्या ने तुलसी को प्रणाम किया और हरिदास ठाकुर जी के पास बैठकर हरिनाम सुनने लगी। लम्बे समय से हरिनाम सुनते- सुनते उसके मन का मैलापन दूर हो गया और उसे अपनी करनी पर अनुताप होने लगा। अत्यन्त अनुतप्त होकर उसने ठाकुर के श्रीपादपद्मों में गिरकर क्षमा भिक्षा मांगी और रामचन्द्र खान के बुरे उद्देश्य की सारी बात ठाकुर के आगे व्यक्त कर दी। हरिदास ठाकुर बोले-'रामचन्द्र के बुरे उद्देश्य की बात मैं जानता हूँ, मैं उस दिन ही यहाँ से चला जाता जिस दिन तुम यहाँ आयी थी, केवल तुम पर कृपा करने के लिये ही मैंने तीन दिन प्रतीक्षा की है। वेश्या ने अपने उद्धार के लिये हरिदास जी से उपदेश की प्रार्थना की तो हरिदास ठाकुर ने पाप के द्वारा संग्रह किये धन का ब्राह्मणों को दान देने और दान करके उसकी कुटीर में आकर निरन्तर हरिनाम और तुलसी सेवा करने के लिये उपदेश दिया। वेश्या ने

गुरुदेव* जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके घर का सारा धन ब्राह्मणों को दान दे दिया और मस्तक मुण्डन करके व एक वस्त्र पहनकर कुटिया पर आ पहुँची। वहाँ आकर हरिदास ठाकुर के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र का प्रतिदिन तीन लाख बार कीर्त्तन करने लगी। निरन्तर नाम ग्रहण और तुलसी सेवा के फल से वेश्या का विषय-भोगों के प्रति विरक्ति रूपी तीव्र वैराग्य हो गया, उसकी इन्द्रियाँ दमित हो गयीं और उसमें शुद्ध प्रेम का प्रकाश हो गया। हरिदास ठाकुर की कृपा से वह वेश्या परमवैष्णवी बन गयी।

प्रसिद्धा वैष्णवी हैल परम-महान्ती।

बड़ बड़ वैष्णव ताँर दर्शनेते यान्ति॥ (चै.च.अ. 3/141)

[वह वैश्या एक प्रसिद्ध वैष्णवी-परम महान्ती हो गयी, बड़े-बड़े वैष्णव भी उसके दर्शन करने के लिये जाने लगे।]

वैष्णव द्वारा किसी का अपराध ग्रहण न करने पर भी व वैष्णव द्वारा अपने आप को वैष्णव न समझने पर भी तथा अपने कर्मों के दोष से ही उसे सुख-दुःख की प्राप्ति होती है- ऐसा समझने पर भी एवं अपने दुःख के लिये दूसरों पर दोषारोपण न करने पर भी, भक्त- वत्सल भगवान् भक्त के चरणों में हुये अपराध को कभी सहन नहीं कर पाते। निर्दोष व दूसरों के हित में लगे हुये भक्तों के चरणों में हुये अपराध को भगवान् कभी भी क्षमा नहीं करते। अत: भक्त के चरणों में अपराध करने से जीव का सभी प्रकार से अकल्याण और सर्वनाश हो जाता है। इस का और कोई भी उपाय नहीं होता। वैष्णव अपराध का फल कभी तो साथ-साथ प्राप्त होता है और कभी- कभी कुछ विलम्ब के बाद।

हरिदास ठाकुर के प्रति विद्वेष का आचरण करने के कारण ज़मींदार रामचन्द्र खाँ का जो अपराधबीज रोपित हुआ था, उसने ही वृक्ष रूप में परिणित होकर फल प्रदान किया अर्थात् अपनी पतित उद्धार लीला में नित्यानन्द प्रभु अपने पार्षदों के साथ रामचन्द्र खाँ के घर आये, सर्वजीवान्तर्यामी नित्यानन्द प्रभु रामचन्द्र खाँ के अपराध को पहले से ही जानते थे। अतः क्रोधित होकर रामचन्द्र खाँ को दण्ड देने के लिये ही वे उसके घर आये थे। पतितपावन नित्यानन्द प्रभु पापी-तापी, ऊँच-नीच सब पर ही कृपा करते हैं व सभी को प्रेम प्रदान करते हुए जगाई-माधाई के समान महापापियों का भी उन्होंने उद्धार किया। परन्तु आज हरिदास सरीखे भक्त के चरणों में अपराध होने के कारण ही उनमें क्रोधावेश प्रकटित हुआ है।

हरिदास ठाकुर जी के चरणों में अपराध होने के कारण रामचन्द्र खाँ असुर के समान स्वभाव वाला हो गया और इसी स्वभाव के कारण वह नित्यानन्द प्रभु और उनके पार्षदों को मर्यादा न दे सका। व्यंग से उसने उनके ठहरने के लिये गायों की गोशाला की ओर निर्देश किया। पहले से ही अप्रसन्न नित्यानन्द प्रभु जी ने रामचन्द्र खाँ को दण्ड देने के लिये उस स्थान को परित्याग कर दिया और क्रोधित होकर बोले कि सचमुच ही यह स्थान उनके योग्य नहीं है, यह तो यवनों के रहने योग्य है। नित्यानन्द प्रभु के स्थान त्याग कर चले जाने के बाद हुआ कुछ ऐसा कि रामचन्द्र खां के द्वारा

---

*शिष्य का सब कुछ गुरु को प्राप्त होने पर भी वैष्णव-गुरु अपने शिष्य के घर का धनादि सांसारिक मल स्वयं ग्रहण नहीं करते। जो गुरु-दक्षिणा ग्रहणकरते हैं, वे दक्षिणा मार्ग के द्वारा यमभवन में गिरते हैं। वैष्णव लोग इस प्रकार के यमभवन के यात्री नहीं हैं। वे उत्तरा मार्ग के पथिक हैं। इसलिये कर्मी ब्राह्मण आदि को दुनियावी वैभवादि देने की व्यवस्था है। वैष्णव-गुरु अपने शिष्य के हरि विमुख करवाने वाले भोग्य विपय वैभव स्वयं ग्रहणकरके शिष्य के आनुगत्य की व उसके मुख की ओर ताकने की अपेक्षा नहीं करते। हाँ,

ऐसे वैभव को हरिवैमुख्य जनक जानकर उसका त्याग अवश्य कर देते हैं। शिष्य को प्राकृत अभिमान से मुक्त कराना एवं उसके द्वारा परित्यक्त-सांसारिक मल (रुपया पैसा आदि) स्वयं न ग्रहणकरना ही सदाचारी वैष्णव गुरु का कर्त्तव्य है-ठाकुर हरिदास जी की यही शिक्षा है। – श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

बादशाह का कर न दे सकने के कारण यवन वज़ीर अपने दलबल के साथ आकर उसके दुर्गा-मण्डप में रहा।उसने वहाँ अवध्य (वध न करने योग्य गाय का) वध किया तथा अमेध्य (न खाने योग्य) गाय के माँस का भक्षण किया तथा उसकी स्त्री व पुत्रों के साथ उसे बाँध दिया और उसका सारा घर व गाँव लूट लिया—इस प्रकार उन्होंने उसकी जाति-धन-जायदाद सब नाश कर दी।

महान्तेर अपमान ये देश-ग्रामे हय।

एक जानेर दोषे देश उजाड़य॥

(चै.च.अ. 3/163)

[जिस देश व ग्राम में महापुरुष का अपमान होता है, वहाँ एक मनुष्य के दोष से सारा देश ही उजड़ जाता है।]

श्रील हरिदास ठाकुर यशोहर जिले से हुगली ज़िले में आ गये। हुगली जिले के अन्तर्गत सप्तग्राम त्रिवेणी के निकटवर्त्ती चान्दपुर* गाँव में हिरण्य गोवर्धन मजुमदार के पुरोहित श्रीबलराम आचार्य के घर में रहने लगे। एक पर्णकुटीर में बैठकर निरन्तर हरिनामानुशीलन एवं बलराम आचार्य के गृह में भिक्षा निर्वाहण-यही उनका नित्य नियम बन गये। बालक रघुनाथ दास यहाँ आकर हरिदास ठाकुर का दर्शन करते। हरिदास ठाकुर जी के कृपा कटाक्ष से ही रघुनाथ दास जी का श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के सान्निध्य में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हरिदास ठाकुर जी के प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करने और अन्यान्य गुणों को सुनकर रघुनाथ जी के पिता जी व ताऊ जी को बड़ा सन्तोष हुआ। इन्हीं के घर प्रतिदिन भागवत् इत्यादि शास्त्रों की आलोचना होती थी। शास्त्र चर्चा करते हुये एक दिन एक पण्डित ने कहा कि हरिनाम करने का फल पाप-क्षय है जबकि दूसरे पण्डित के द्वारा हरिनाम का फल मुक्ति कहने पर हरिदास ठाकुर बोले—' हरिनाम ग्रहण के फल से तो श्रीकृष्ण के चरणों में प्रेम उपजता है, पाप ध्वंस और मुक्ति तो यूँ ही आनुषङ्गिक रूप से अपने आप ही हो जाती है। दृष्टान्त स्वरूप जैसे सूर्य-उदय के पहले अरुणोदय काल में ही अन्धकार दूर हो जाने से चोर, प्रेत व राक्षस आदि का भय नाश हो जाता है और सूर्य के उदित होने पर धर्म-कर्म का प्रकाश होता है, उसी प्रकार नामोदय के प्रारम्भ में ही पापादि का नाश हो जाता है और नाम उदय होनेपर श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में प्रेम प्राप्त होता है। हरिनामाभास मात्र से ही मुक्ति हो जाती है किन्तु भगवान् द्वारा मुक्ति देने पर भी शुद्ध भक्त उसे ग्रहण नहीं करते। हिरण्य-गोवर्धन मजुमदार ** का राज-कर वाहक पियादा, सुन्दरदर्शन, पण्डित गोपाल चक्रवर्ती, नामाभास से मुक्ति होती है, सुनकर क्रोधित हो उठा और बोला—'अरे ! इस भावुक का सिद्धान्त तो सुनो, करोड़ जन्मों तक ब्रह्मज्ञान से भी जो मुक्ति नहीं होती है, यह कहता है कि नामाभास से ही वह मुक्ति हो जाती है।'

हरिदास ठाकुर बोले—'भक्ति सुख के सामने मुक्ति का सुख अति तुच्छ है, भक्ति के आभास से अर्थात् नाम के आभास से ही मुक्ति हो जाती है।

इससे ब्राह्मण और भी क्रुद्ध हो गया और बोला—'हरिदास जी को यह शपथ ग्रहणकरनी पड़ेगी कि यदि नामाभास से मुक्ति न होती हो तो वह अपनी नाक काट देंगे।'

---

* चाँदपुर सप्तग्राम-त्रिवेणी में हिरण्य और गोवर्धन के गृह के पूर्व की ओर चान्दपुर ग्राम है। वहाँ उनके पुरोहित बलराम आचार्य और कुलगुरु यदुनन्दन आचार्य का घर था।

** मजुमदार-नवाबों के जमाने में राजस्व का हिसाब रखने वाला।

हरिदास जी ने शपथ ग्रहणकर ली कि नामाभास से यदि मुक्ति न होती हो तो वे अपनी नाक काट देंगे।

महापुरुष की मर्यादा उल्लंघन होने के कारण सभी सभासद हा-हा-कार कर उठे और हिरण्य-गोवर्धन मजुमदार के पियादे का तिरस्कार करने लगे। बलराम आचार्य ने भी उसकी भर्त्सना की और कहा-घटपटिया मूर्ख कहीं का, अरे! भक्ति के बारे में तू जानता ही क्या है? तूने हरिदास ठाकुर का अपमान किया है, तेरा कल्याण नहीं होगा।' तेरा तो सर्वनाश हो जायेगा।

हरिदास-ठाकुरे तुञि कैलि अपमान।

सर्वनाश हबे तोर, न हबे कल्याण॥ (चै.च.अ. 3/200)

सबने हरिदास ठाकुर के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। हरिदास ठाकुर बोले—'तुम्हारा कोई दोष नहीं है और ब्राह्मण का भी दोष नहीं है। वह बेचारा ब्राह्मण तो अज्ञ-तर्कनिष्ठ है। तर्क के द्वारा नाम का माहात्म्य जाना नहीं जा सकता। तुम सभी का मंगल हो। मेरे कारण किसी को दुःख न हो।'

दोनों मजुमदार भाइयों ने भी पियादे गोपाल चक्रवर्ती को नौकरी से निकाल दिया यद्यपि हरिदास ठाकुर ने ब्राह्मण का दोष ग्रहण न कर उसको क्षमा कर दिया था तथापि कृष्ण ने भक्त-निन्दा को सहन नहीं किया और ब्राह्मण को दण्ड प्रदान किया। तीन दिन के पश्चात् ही कुष्ठ होने के कारण उसकी ऊँची नाक गल कर गिर गयी। ब्राह्मण की इस प्रकार की दुगर्ति को देखकर सभी भयभीत हो गये और परेशान से होकर हरिदास जी की गुण महिमा का बखान करने लगे।

ब्राह्मण की दुर्गति की बात सुन हरिदास ठाकुर भी दुःखी हो गये और उस स्थान को त्याग कर नदिया ज़िले के अन्तर्गत शान्तिपुर आ गये। वहाँ आकर अद्वैताचार्य जी से मिले। श्रीअद्वैताचार्य* श्राद्ध का अवशेष पात्र जो कि ब्राह्मण का प्राप्य है, वह हरिदास ठाकुर को देते थे। हरिदास ठाकुर द्वारा उसे ग्रहणकरने में आपत्ति करने पर भी अद्वैताचार्य कहते-'खाइये-खाइये, आपके खाने से करोड़ ब्राह्मणों का भोजन हो जायेगा।'

श्रीअद्वैताचार्य की इच्छा के अनुसार हरिदास ठाकुर प्रतिदिन उनके घर में अन्न ग्रहणकरते। कविराज गोस्वामी जी के वर्णनानुसार जाना जाता है कि इस समय तक महाप्रभु जी अवतीर्ण नहीं हुये थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के अवतार के मूल में श्रील अद्वैताचार्य और हरिदास ठाकुर जी की भक्ति और उनकी सकातर प्रार्थना ही है-

"जगत्-निस्तार लागि' करेन चिन्तन।

अवैष्णव-जगत् केमने हइबे मोचन??॥

कृष्ण अवतारिते अद्वैत प्रतिज्ञा करिला।

जल-तुलसी दिया पूजा करिते लागिला॥

हरिदास करे गोफाय नाम-सङ्कीर्त्तन।

---

*श्रीअद्वैताचार्य-गौड़ीय-वैष्णव-अभिधान के मतानुसार श्रीअद्वैताचार्य जी 1355 शकाब्द में आविर्भूत हुये थे। इस प्रकार अद्वैताचार्य जी श्रीमन्महाप्रभु जी के आविर्भाव से 52 वर्ष पहले प्रकट हुये थे, अद्वैताचार्य जी 125 वर्ष तक प्रकट रहे। श्रीमन् महाप्रभु जी के अन्तर्धान के बाद भी अद्वैताचार्य जी 25 वर्ष प्रकट रहे। अतः अद्वैताचार्य जी आयु में हरिदास ठाकुर जी से भी बड़े थे।

कृष्ण अवतीर्ण हइबेन,-एइ ताँर मन॥

दुइजनेर भक्त्ये चैतन्य कैला अवतार।

नाम-प्रेम प्रचार करि' कैला जगत्-उद्धार॥" (चै.च.अ. 3/221-224)

[अर्थात श्रीअद्वैताचार्य जी व हरिदास ठाकुर जी जगत के कल्याण के लिये चिन्तन करते कि अवैष्णव जगत का किस प्रकार से उद्धार होगा? कृष्ण को अवतरित कराने के लिए श्रीअद्वैत जी ने प्रतिज्ञा कर ली और तुलसी व गंगाजल से पूजा आरम्भ कर दी और इधर श्रीहरिदास गुफा में नाम संकीर्त्तन करते रहते। कृष्ण अवतार धारण करें, यही उनके मनमें है। दोनों की भक्ति के कारण ही श्रीकृष्ण ने अवतार लिया व नाम-प्रेम का प्रचार करके जगत का उद्धार किया।]

निष्कपट- एकान्तिक भाव से निरन्तर हरिनाम करने वाले को विश्वमोहनकारी मायादेवी भी शुद्धभक्ति के पथ से च्युत नहीं कर सकती। इसके साक्षात् उदाहरण स्वरूप हैं- **नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी**। ।जगत की कोई भी प्रलोभन की वस्तु उनके आकर्षण का विषय न हो पायी। बाह्य दर्शन से किसी को हरिनामाश्रित रूप से देख पाने पर भी यदि उसको कनक -कामिनी-प्रतिष्ठादि तुच्छ वस्तुओं द्वारा प्रलोभित होते देखा जाये तो समझना होगा कि यथार्थ रूप से वह हरिनामाश्रित नहीं हुआ है। 'फलेन फलकारणमनुमीयते' अर्थात् फल के द्वारा फल के कारण का अनुमान होता है। बहुत से स्थानों पर हरिनाम होते और करते दिखने पर भी वास्तविक फल नहीं देखा जाता; इसका कारण है कि एकान्तिक भाव के साथ अपराधरहित हरिनाम ग्रहणकरने का व्रत नहीं लिया गया। शान्तिपुर में गंगा के किनारे एक गुफा में निर्जन में बैठकर हरिदास ठाकुर हरिनाम करते थे। उनकी परीक्षा करने के लिये स्वयं मायादेवी परमासुन्दरी नारी रूप में प्रकटित हुई और सुमधुर वाक्यों से सम्बोधन करती हुई ऋषियों को भी धैर्य से च्युत करा देने वाले विचित्र भावों को प्रकट करती हुई उनके संग की प्रार्थना करने लगी। उसके इस प्रकार प्रार्थना करने पर हरिदास ठाकुर जी ने मायादेवी को आश्वासन दिया कि 'हरिनाम' की संख्यापूर्ति का व्रत समापन होने के पश्चात् वे उसकी इच्छा पूरी करेंगे। इस प्रकार तीन रात्रि बीतने पर भी हरिदास ठाकुर के चित्त में कोई विकार उत्पन्न होते न देख मायादेवी विस्मित हो गयी और पराजय

स्वीकार कर उनकी कृपा प्रार्थना करने लगी। हरिदास ठाकुर जी से कृष्णमन्त्र में दीक्षित होकर मायादेवी ने कृतार्थ होकर अन्तर्धान किया।

पूर्वे आमि राम-नाम पाञाछि 'शिव' हैते।

तोमार सङ्गे लोभ हैल कृष्णनाम लेते॥

मुक्ति-हेतु तारकब्रह्म हय 'रामनाम'।

'कृष्णनाम' पारक हञा करे प्रेमदान॥

'कृष्णनाम' देह' तुमि मोरे कर धन्या।

आमारे भासाय जैछे एइ प्रेमवन्या॥* (चै.च.अ. 3/254-256)

---

* पहले मैंने राम नाम शिवजी से पाया था। आपके संग से कृष्ण नाम लेने का लोभ हो गया। रामनाम मुक्ति के लिए तारक ब्रह्म है और कृष्ण नाम पारक है और प्रेमदान करता है। कृष्ण नाम देकर मुझे धन्य कर दीजिये और प्रेम की यह बाढ़ मुझे भी बहाकर ले जाये।

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी द्वारा रचित 'श्रीचैतन्य भागवत' में वर्णित हरिदास ठाकुर जी के चरित्र में देखा जाता है कि श्रील हरिदास ठाकुर, 'शान्तिपुर' में श्रीअद्वैताचार्य के साथ मिलने से पहले फुलिया * ग्राम में आये थे। फुलिया के ब्राह्मण लोग हरिदास ठाकुर जी की हरिनाम भजन में निष्ठा और उनके प्रेम-विकारों को देखकर उन्हें एक श्रेष्ठ वैष्णव समझकर सम्मान करने लगे। मुसलमान कुल में आविर्भूत होने वाले हरिदास जी की हरिनामानुशीलन में इतनी रुचि देखकर इस्लाम के धर्मावलम्बी व्यक्ति धर्म परिवर्तन की आशंका से काज़ी (विचारक) के पास गये। काज़ी ने मुलुकपति(नवाब) के पास शिकायत की तथा सिफारिश की कि हरिदास के घृणित कार्य के लिये उसे जल्दी ही दण्ड दिया जाये। नवाब के आदेश से पुलिस ने आकर, हरिदास ठाकुर जी को गिरफ्तार करके कारागार में बन्द कर दिया। कारागार के बन्दी, हरिदास की महिमा पहले से ही जानते थे। उन्होंने मन में सोचा कि हरिदास ठाकुर के समान महापुरुष के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने से उनकी कारागार से मुक्ति हो जायेगी। किन्तु हरिदास ने उनको **ऐसी अवस्था में ही रहने के लिये कहा**। उनके ऐसा कहने पर सभी कैदी हताश हो गये। उनके हताश होने पर हरिदास जी ने आशीर्वाद का तात्पर्य समझाते हुये कहा—

'बन्दि थाक',-हेन आशीर्वाद नाहि करि।

"विषय पासर', अहर्निश बल हरि॥"

छले करिलाङ आमि एइ अशीर्वाद।

तिलार्द्धेक ना भाविह तोमरा विषाद॥ (चै.भा.आ. 16/63-64)

'बन्दियों को कारागार में और कोई सांसारिक झंझट नहीं है। वे निश्चिन्तता से हरिनाम कर सकते हैं।

एक दिन नवाब ने हरिदास जी को पवित्र इस्लाम धर्म परित्याग करके हिन्दू धर्म ग्रहणकरने का कारण पूछा।उसके उत्तर में हरिदास ठाकुर बोले-'ईश्वर एक है', वह अद्वयज्ञानतत्त्व है तथा वही सभी का ईश्वर है। सम्प्रदाय में भेद होने के कारण उसके मात्र नामों में भेद है, परन्तु परमार्थ में सब एक ही हैं। ईश्वर, जीवों के हृदयों में बैठकर जिसको जिस प्रकार की आराधना कराता है वह उसी प्रकार से आराधना करता है।

हिन्दु कुल में ब्राह्मण रूप से जन्म-ग्रहणकरके भी लोग यवनधर्म ग्रहणकरते हैं। उसी प्रकार मेरे मुसलमान कुल में आने पर भी ईश्वर ने मुझे हरिनाम ग्रहण में नियुक्त किया है। इसमें जीव की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। हाँ, यदि इसमें कोई दोष हो तो आप मुझे दण्ड प्रदान कीजिये।'

नवाब हरिदास जी को शासन करते हुआ बोला–'तुम्हारे, जो अपने धर्म के ईश्वर का नाम है तुम उसे ही करो। दूसरा धर्म त्याग दो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो कठोर सजा भुगतनी पड़ेगी।' हरिदास ठाकुर जी ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—

खण्ड खण्ड हइ देह याय यदि प्राण।

तबु आमि वदने न छाड़ि हरिनाम॥ (चै.भा.आ. 16/94)

---

* फुलिया-राणाघाट-शान्तिपुर रेल लाइन पर, शान्तिपुर से राणाघाट की तरफ 8 कि.मी. दूरी पर फुलिया रेलवे स्टेशन है। फुलिया नदिया ज़िले के अन्तर्गत है।

(अर्थात् मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें और प्राण चले जायें तब भी मैं मुख से हरिनाम नहीं छोड़ूंगा।)-इस वाक्य के द्वारा हरिदास ठाकुर की श्रीहरिनाम के प्रति एकान्तिक भजन निष्ठा प्रदर्शित होती है। माया बद्ध जीव आत्माके स्वार्थ-श्रीहरि की आराधना की अपेक्षा, देह मन के स्वार्थ को ही अधिक मानते हैं; किन्तु एकान्त-पारमार्थिक व्यक्ति शरीर-मन के तात्कालिक स्वार्थ की ओर ध्यान न देकर, आत्मा के स्वार्थ स्वरूप-श्रीहरि की आराधना में ही मन का निवेश करते हैं।

श्रीहरिदास ठाकुर जी की श्रीहरिनाम ग्रहण में दृढ़ता देखकर उनके सम्बन्ध में क्या व्यवस्था की जाये, जब नवाब ने काज़ी से पूछा तो काज़ी ने कहा-'इसको ऐसी सजा देना उचित है जिससे लोग धर्म परिवर्तन से भय करें। सब लोगों के सामने इसको बाईस बाज़ारों में पीटते-पीटते खत्म करना होगा। हाँ, बाईस बाज़ारों में मारने के पश्चात् भी यदि यह जीवित रहे, तब समझेंगे कि ये सच्चा ज्ञानी व सच्चा व्यक्ति है।' नवाब के आदेश से जल्लादों के द्वारा बाज़ार-बाज़ार में हरिदास जी के ऊपर कोड़े बरसने लगे। निर्दयी भाव से कोड़े मारने पर भी उनकी मृत्यु नहीं हुई। प्रह्लाद के समान, कृष्ण की कृपा से कृष्णनामानन्द में प्रमत्त होने के कारण व कृष्ण द्वारा रक्षित होने के कारण, हरिदास जी ने किसी प्रकार का भी कष्ट अनुभव नहीं किया; परन्तु हरिदास जी के ऊपर निर्दयी भाव से प्रहार होने पर सज्जन लोग मर्माहत होकर हा-हा-कार करने लगे। पापियों के द्वारा पीटे जाने पर भी हरिदास जी उनके मंगल की प्रार्थना करते—

"ए-सब जीवेर, कृष्ण! करह प्रसाद।

मोरे द्रोहे नहु ए-सबार अपराध॥' (चै.भा.आ. 16/113)

(अर्थात् हे कृष्ण! इन सब जीवों पर कृपा करना, मेरे प्रति द्रोह करने में इनका कोई अपराध न हो।) दो-तीन बाज़ारों में कोड़े मारने पर ही व्यक्ति मर जाता है, परन्तु बाईस बाज़ारों में प्रहार करते रहने पर भी हरिदास जी की मृत्यु होती न देखकर प्रहारकारी यवन चिन्तित हो गये। उन्हें चिन्ता लग गयी कि काज़ी विश्वास ही नहीं करेगा कि उन्होंने हरिदास के ऊपर बुरी तरह प्रहार भी किया है और साथ ही उसका हमारे लिए मृत्यु दण्ड के लिये आदेश होगा। यवनों को दुःखी देखकर हरिदास ठाकुर जी कृष्ण-ध्यान में समाधिस्थ होकर मृत के समान हो गये। हरिदास के मृत की भाँति समाधिस्थ देह को नवाब के पास लाने पर नवाब ने उसे कब्र देने का आद्रेश दिया, किन्तु काज़ी ने कहा कि इसने जिस प्रकार का घृणित कार्य किया है, उसके लिये इसे समाधिस्थ न कर गंगा के जल में फेंक देना उचित है। काज़ी के कहने पर यवनों ने हरिदास जी को गंगा जी के जल में फेंक दिया। हरिदास जी का शरीर बहते-बहते दूसरे किनारे पर पहुँच गया। दूसरे किनारे पहुँचने पर हरिदास जी स्वयं ही उठकर उच्चस्वर से हरिनाम करने लगे और हरिनाम करते-करते फुलिया आ गये। इस प्रकार की अलौकिक लीला देख सब आश्चर्यान्वित हो गए। मुलुकपति और सब यवनों ने हरिदास जी को साक्षात् पीर समझकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे क्षमा माँगी। हरिदास जी की कृपा से उन्होंने पाप से छुटकारा पाया। मुलुकपति ने हरिदास जी को स्वछन्दता से सर्वत्र विचरण करते हुये हरिनाम करने की अनुमति प्रदान कर दी।*

---

*श्रीचैतन्य भगवात् मध्यखण्ड के 10वें अध्याय में श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने लिखा है कि जब यवन निर्ममता से हरिदास जी के ऊपर प्रहार कर रहे थे उस समय महाप्रभु जी चक्र लेकर असुरों का संहार करने के लिये अवतीर्ण हुये थे, किन्तु हरिदास ठाकुर जी की प्रार्थना के कारण संहार नहीं कर सके। अत:भगवान् चैतन्य महाप्रभु जी ने हरिदास जी को आवृत कर उनकी रक्षा की थी। बाद में महाप्रभु जी की पीठ पर बेंतों के चिन्ह भी देखे गये। भगवान के आविर्भाव के मूल कारण भक्त हैं। भक्त हरिदास के ऊपर अत्याचार होने के कारण महाप्रभु जी ने शीघ्र अवतीर्ण होने का संकल्प ग्रहण किया।

महाप्रभु जी से उपरोक्त वृत्तान्त सुनकर जब हरिदास ठाकुर जी मूर्च्छित हो गये तब महाप्रभु जी ने हरिदास ठाकुर जी को अपना स्वरूप भी दिखाया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी की महिमा का स्वयं अपने श्रीमुख से कीर्त्तन किया था।श्रीहरिदास ठाकुर जी के दर्शन से ही अनादि काल के कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी का संग ब्रह्मा-शिवजी को भी वान्च्छनीय है और गंगा भी उनके स्पर्श की कामना करती है।

फुलिया में दुबारा हरिदास ठाकुर जी के दर्शन प्राप्त कर ब्राह्मण बड़े आनन्दित हुये। हरिदास ठाकुर जी के ऊपर कोड़े बरसने से ब्राह्मण वेदना से आहत होकर मृत के समान हो गये थे। हरिदास ठाकुर जी उनको प्रबोध देते हुये बोले कि विष्णु-निन्दा श्रवण रूपी महापराध के फलस्वरूप ही उनको इस प्रकार का दण्ड मिला है जो कि थोड़ा ही है।

हरिदास ठाकुर जी गंगा के किनारे एक गुफा में बैठकर हरिनाम करते थे। सभी उस गुफा में आकर श्रीहरिदास जी के दर्शन करते; परन्तु जिस गुफा में हरिदास जी रहते थे उसमें एक भयानक विषधर सर्प रहता था जिससे जब दर्शनार्थी वहाँ हरिदास ठाकुर जी के दर्शन करने आते तो विष-ज्वाला का अनुभव करते। सभी ने हरिदास ठाकुर को वह स्थान छोड़कर अन्य कहीं जाने के लिये प्रार्थना की। सबके अनुरोध पर श्रीहरिदास जी के द्वारा उक्त स्थान छोड़कर जाने के इच्छुक होने पर सन्ध्या से पहले ही वह महानाग उस गुफा को छोड़कर अन्यत्र चला गया।

जड़-प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिये कपटता करके कृष्ण प्रेम के कृत्रिम भावों को प्रकट करना हरिभक्ति के प्रतिकूल है। यह भी हरिदास ठाकुर के पूर्व जीवन चरित्र में प्रदर्शित होता है हुआ कुछ ऐसा कि फुलिया में ही एक सपेरा एक धनाढ्य व्यक्ति के घर पर कालियदमन लीला का गान कर रहा था। उस कृष्ण लीला को श्रवण कर श्रीहरिदास जी मूर्च्छित

हो गये। उनके अप्राकृत शरीर में अष्ट-सात्त्विक विकार प्रकाशित हो उठे। यह देखकर सभी हरिदास जी के चरणों की धूलि लेकर अपने अंगों में मलने लगे। हरिदास ठाकुर जी की प्रतिष्ठा को देखकर एक प्रतिष्ठाकामी ब्राह्मण भी सपेरे का गान सुनते-सुनते बड़ी निर्लज्जता से अचानक जमीन पर गिर कर बहुत प्रकार के कृत्रिम भाव दिखाने लगा। सपेरा, ढोंगी विप्र की कपटता को समझ गया और बेंतों से उसकी पिटाई करने लगा। बेंतों की चोट पड़ने पर वह 'बाप रे''माँ रे'- कहता हुआ भाग खड़ा हुआ। इस लीला के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि भगवद् इच्छा से एक साधारण सपेरे में भी सरलता और कपटता समझने की योग्यता आ गयी। सपेरे ने श्रीहरिदास ठाकुर जी के स्वाभाविक प्रेम और ढोंगी विप्र की कपटता के बारे में सबको समझा दिया।

श्रीहरिदास ठाकुर जब निरन्तर हरिनाम करते थे व उच्च स्वर से भगवान् को पुकारते थे तब बहुत से व्यक्ति इनकी महिमा को समझ नहीं पाये। श्रीगौरसुन्दर के आविर्भाव से पहले जगत् के अधिकांश व्यक्ति विषय भोगों में प्रमत्त थे। वे विष्णु-भक्ति और हरि-कीर्त्तन के लगभग विरोधी थे। श्रीअद्वैताचार्य और श्रीहरिदास ठाकुर जगत् की ऐसी दुर्दशा को देखकर दुःखी होते थे। भक्तों के द्वारा उच्च कीर्त्तन करने पर पाखण्डी लोग कहते कि चातुर्मास्य में भगवान् शयन में हैं। इस समय उनको उच्च स्वर से पुकारना और उनकी निद्रा भंग करना बहुत बड़ा अपराध है। इससे देश में अकाल पड़ेगा। कोई कहता कि कुछ ब्राह्मणों ने अपनी पेट- पूजा के लिये ही इन सब छल धर्मों का प्रचलन किया है, इत्यादि। इस प्रकार बहुत विद्रूपात्मक वाक्यों के द्वारा पाखण्डी लोग भक्तों की भर्त्सना करते थे। पाखण्डियों के वाक्यों से दुखी होने पर भी हरिदास ठाकुर जी ने उच्च स्वर से संकीर्त्तन करना बन्द नहीं किया। एक दिन हरिनदी* का एक दुर्जन ब्राह्मण श्रीहरिदास ठाकुर जी के साथ तर्क करने लगा। उसका मत था कि भगवान् का नाम मन-मन में ग्रहणकरना उचित है। उच्च स्वर से पुकारने का क्या मतलब है? कौन से शास्त्र में लिखा है कि भगवान् को उच्चःस्वर से पुकारना पड़ता है?

उसके उत्तर में हरिदास ठाकुर जी ने उच्च संकीर्त्तन की महिमा विशेष रूप से व्याख्या करके समझायी। उन्होंने बताया कि जप की अपेक्षा उच्च संकीर्त्तन को शत गुना अधिक फल होता है। उच्च संकीर्त्तन के द्वारा पशु, पक्षी कीट आदि सब प्राणियों का उद्धार होता है—

---

* हरिनदी-यशोहर ज़िले के अन्तर्गत प्रसिद्ध ग्राम।

"पशु-पक्षी-कीट-आदि बलिते ना पारे।

शुनिलेइ हरिनाम ता'रा सब तरे'॥

जपिले श्रीकृष्णनाम आपनी से तरे।

उच्च-संकीर्त्तन पर उपकार करे॥

अतएव उच्च करि' कीर्त्तन करिले।

शतगुण फल हय सर्वशास्त्रे बले॥"

(चै. भा. आ. 16/ 280-282)*

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।

आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतृन् पुनाति च॥ (नारदीय पुराण)

अर्थात् जो हरिनाम का जप करता है उससे उच्च स्वर से कीर्त्तन करनेवाला शत गुना श्रेष्ठ है। यह ठीक भी है क्योंकि जपकर्त्ता तो मात्र अपने को ही पवित्र करता है। जबकि उच्च स्वर से कीर्तन करनेवाला व्यक्ति अपने को और सुनने वालों को अर्थात् सबको ही पवित्र करता है। जैसे कोई धन कमाकर अपना पोषण करता है और कोई सैकड़ों व्यक्तियों का पोषण करता है, तो कौन अच्छा है? जप के द्वारा स्वयं का पोषण होता है जबकि उच्च-संकीर्त्तन के द्वारा अनेकों प्राणियों का उपकार होता है, इसलिये उच्च संकीर्त्तन करनेवाला ही सर्वोत्तम है।

श्रीहरिदास ठाकुर के शास्त्र सम्मत वाक्य सुनकर भी हरिनदी ग्राम का ब्राह्मण सन्तुष्ट न हुआ बल्कि क्रुद्ध हो गया और हरिदास ठाकुर जी को उनकी जाति से उन्हें सम्बोधित करके गाली देने लगा। हरिदास जी का अपमान करते हुये वह कहने लगा कि यदि नाम की महिमा शास्त्र-सम्मत न हुई तो सबके सामने ही इस हरिदास के नाक-कान काटकर इसका प्रतिशोध लूँगा।

हरिदास जी के चरणों में अपराध होने के कारण कुछ दिनों के बाद ही उस ब्राह्मण के ही नाक और कान गल गये। इस घटना के बाद ही श्रीअद्वैताचार्यादि शुद्ध भक्तों के संग की लालसा से श्रीहरिदास ठाकुर नवद्वीप चले गये।

श्रीहरिदास ठाकुर श्रीवासांगन में और श्रीचन्द्रशेखर भवन में श्रीमन्महाप्रभु जी के संकीर्त्तन विलास के संगी हुये थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीनित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर जी को प्रत्येक घर में जाकर 'कृष्ण नाम', 'कृष्ण भजन' और 'कृष्ण विषयक शिक्षा' करने की भिक्षा माँगने के लिये भेजा था—

एक दिन आचम्बिते हैल हेन मति।

आज्ञा कैल नित्यानन्द-हरिदास-प्रति॥

---

* पशु, पक्षी, कीट आदि बोल नहीं सकते। हरिनाम सुनकर उन सभी का उद्धार हो जायेगा। कृष्ण नाग जपने वाला स्वयं तर जाता है, जबकि उच्च संकीर्त्तन करनेवाला उच्च संकीर्त्तन द्वारा दूसरों का भी उपकार करता है। इसलिए उच्च स्वर से संकीर्त्तन करने से सौ गुना अधिक फल मिलता है-ऐसा सब शास्त्र कहते

"शुन शुन नित्यानन्द, शुन हरिदास।

सर्वत्र आमार आज्ञा करह प्रकाश॥

प्रति घरे घरे गिया कर एइ भिक्षा।

'बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा॥'

इहा बइ आर न बलिबा, बलाइया।

दिन-अवसाने आसि' आमारे कहिबा॥

तोमरा करिले भिक्षा, सेइ ना बलिब।

तबे आमि चक्रहस्ते सबारे काटिब॥"

(चै.भ.म. 13/7-11)

[अर्थात् एक दिन अचानक महापभु जी की ऐसी इच्छा हुयी। उन्होंने श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदास जी के प्रति यह आज्ञा की- सुनो-सुनो नित्यानन्द, सुनो हरिदास! मेरी इस आज्ञा का सर्वत्र प्रचार करो, प्रत्येक घर- घर में जाकर यह भिक्षा मांगो-कि कृष्ण बोलो, कृष्ण का भजन करो, और कृष्ण-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करो- इसको छोड़कर और कुछ न बोलना और न ही बुलवाना। दिन बीत जाने पर साँय को आकर मुझे सारा हाल बताना। आप यह भिक्षा माँगो, जो ऐसा नहीं बोलेगा अर्थात् कृष्ण भजन नहीं करेगा, उसे मैं हाथ में चक्र लेकर काट दूँगा।]

श्रीमन्महाप्रभु जी के आदेश से श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर जी सर्वत्र भ्रमण करते हुये प्रचार करने लगे। एक दिन वे मतवाले शराबी व डाकू जगाई और माधाई के पास पहुँचे और उनसे भी उक्त प्रकार की भिक्षा की प्रार्थना की। जगाई-माधाई को पतित देखकर नित्यानन्द प्रभु की उन पर कृपा हुई। किन्तु नित्यानन्द प्रभु की आवाज़ सुनकर जगाई-माधाई महाक्रोधित हो उठे और उनको मारने के लिये दौड़े। उन्हें पकड़ने को आता देख नित्यानन्द प्रभु भाग गये किन्तु आयु अधिक होने के कारण हरिदास जी नित्यानन्द प्रभु की तरह न दौड़ सके। किसी प्रकार उन्होंने अपने जीवन को बचाया। अवधूत नित्यानन्द जी के इस प्रकार के आचरण की बात हरिदास जी ने श्रीअद्वैताचार्य जी को बताई और संकल्प लिया कि वे अब चंचल अवधूत नित्यानन्द जी के साथ नहीं जायेंगे। नित्यानन्द प्रभु जी का डरकर भागना, एक अद्‌भुत रहस्यमयी लीला है। ये ठीक है कि बाद में नित्यानन्द प्रभु ने अकेले ही जाकर जगाई-माधाई का उद्धार किया।

श्रील हरिदास ठाकुर नवद्वीप में महाप्रभु जी की जलकेलि लीला में भी साथ थे। एक दिन महाप्रभु जी भगवद् भाव में विभोर होकर गंगा जी में कूद पड़े। महाप्रभु जी के भाव-विभोर हो कर गंगा जी में कूदने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीहरिदास ठाकुर जी ने ही उन्हें पानी से बाहर निकाला था। श्रीमहाप्रभु द्वारा स्वयं को गोपन रखने का निर्देश होने के कारण श्रीनित्यानन्द जी एवं हरिदास जी ने महाप्रभु जी को नन्दनाचार्य के भवन में छिपाकर रखा था। प्रभु के अदर्शन से अद्वैताचार्य इत्यादि भक्तों को विरह दुःख होने की लीला व बाद में श्रीवास पण्डित जी को बुलाकर उनके विरह दुःख का विमोचन करवाने इत्यादि की लीला वहीं पर सम्पन्न हुई थी।

श्रीचन्द्रशेखर आचार्य-भवन में व्रजलीला का नाटक करते समय महाप्रभु जी ने हरिदास ठाकुर जी को हाथ में डंडा लेकर चौकीदार के वेश में प्रवेश करवाया था। नाटक अभिनय के समय श्रीमन् महाप्रभु आद्याशक्ति, श्रीनित्यानन्द प्रभु राधा जी की नानी, गदाधर पण्डित व्रजवनिता, अद्वैताचार्य महाविदूषक व श्रीवास पण्डित जी नारद जी के रूप में सजे थे। नाटक के अभिनय में सब को कृष्ण सेवा के लिये जागरण करवाना ही ठाकुर हरिदास जी का कार्य था—

'जाग जाग जाग', डाके प्रभु हरिदास।

नारदेर काचे नाचे पण्डित श्रीवास॥" (चै. भा. म. 18/100)

भागीरथी के किनारे पर हुये श्रीमन् महाप्रभु जी के नगर संकीर्त्तनमें भी हरिदास ठाकुर जी ने योगदान दिया था—

तबे हरिदास कृष्ण-रसेर सागर।

आज्ञाय चलिला नृत्य करिया सुन्दर॥ (चै. भा. म. 23/204)

संन्यास लेने से पहले की रात श्रीमन्महाप्रभु जी और श्रीहरिदास ठाकुर जी एक ही घर में रहे थे। महाप्रभु के संन्यास ग्रहण के संकल्प से हरिदास ठाकुर और सब भक्तों की विरह-ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी। संन्यास ग्रहण के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु के श्रीपुरुषोत्तम धाम में जाने पर हरिदास ठाकुर रथयात्रा दर्शन के लिये नीलाचल चले गये।

श्रील हरिदास ठाकुर का पुरुषोत्तमधाम स्थित श्रीजगन्नाथ मन्दिर और श्रीकाशी मिश्र-भवन में निषेध न होने पर भी म्लेच्छ कुल में आने के कारण अपने को अनाधिकारी मान कर दैन्यवश वहाँ नहीं जाते थे। श्रीरूप गोस्वामी और श्रीसनातन गोस्वामी श्रेष्ठ ब्राह्मण घर में आविर्भूत होने पर भी म्लेच्छ के यहाँ नौकरी करने के कारण अपने आपको म्लेच्छ समझते थे तथा इसी कारण मन्दिर में नहीं जाते थे व श्रीहरिदास ठाकुर जी के साथ रहते थे। महाप्रभु जी स्वयं ही नित्य प्रति उनको मिलने जाते थे।

"हरिदास ठाकुर, श्रीरूप-सनातन।

जगन्नाथ-मन्दिरे ना जा'न तिन जन॥

महाप्रभु जगन्नाथेर उपल-भोग देखिया।

निजगृहे जा'न एइ तिनेरे मिलिया॥

एइ तिन मध्ये जबे थाके जेइ जन।

ताँरे आसि' आपने मिले,-प्रभुर नियम॥"*

(चै. च. म. 1/63-65)

---

* श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीरूप और श्रीसनातन, यह तीनों श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर में नहीं जाते थे। श्रीमहाप्रभु जी, श्रीजगन्नाथ जी का उपल भोग दर्शन करने के बाद इन तीनों को मिलकर ही अपने घर जाते थे। इन तीनों में से जो भी वहाँ होता, उसको महाप्रभु जी मिलते, महाप्रभु जी का ऐसा नियम था।

अनवसर काल में श्रीजगन्नाथ देव के दर्शन न पाकर महाप्रभु जी कृष्ण विरह अवस्था में आलालनाथ में जाकर रहने लगे। गौड़देश से 200 भक्त आये हैं, सुनकर वे आलालनाथ से वापिस पुरी आये और भक्तों से मिले किन्तु हरिदास जी को न देखकर उनके बारे में पूछने लगे। हरिदास ठाकुर जी राजपथ में ही दण्डवत् प्रणाम करते हुये पड़े थे। महाप्रभु जी द्वारा भेजे भक्तों ने जब हरिदास ठाकुर जी के पास जाकर महाप्रभु जी के आदेश के बारे में बताया तो वे बोले—

"हरिदास कहे,-आमि नीच-जाति छार।

मन्दिर-निकटे जाइते मोर नाहि अधिकार॥

निभृते टोटा-मध्ये स्थान यदि पाङ।

ताँहा पड़ि' रहो' एकले काल गोङाङ॥

जगन्नाथ-सेवकेर मोर स्पर्श नाहि हय।

ताँहा पड़ि' रहों,-मोर एइ वाञ्छा हय॥" (चै. च. म. 11/165-167)

[श्रीहरिदास जी कहने लगे, 'मैं तो नीच जाति का अति तुच्छ व्यक्ति हूँ। मन्दिर के नज़दीक जाने का मुझे अधिकार नहीं है। एकान्त स्थान में यदि कोई स्थान मिल जाये तो मैं वहाँ पड़ा रहूँ और अकेला ही समय बिताऊँ। श्रीजगन्नाथ देव जी के सेवकों से कहीं मेरा स्पर्श न हो जाए, इसलिए मेरी तो यही इच्छा है']

भक्तों ने वापिस आकर महाप्रभु जी को हरिदास जी की इच्छा बताई तो महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हुये। महाप्रभु जी ने काशीमिश्र जी से अपने भजन स्थान के नजदीक पुष्पोद्यान में एक खाली घर की याचना की। श्रीगौरसुन्दर जी के आज्ञावाहक सेवक के रूप से उक्त सेवा का सुयोग पाकर काशीमिश्र जी धन्य हो गये। महाप्रभु जी हरिदास जी के पास आये और उन्होंने उन्हें भूमि से उठाया और उनका आलिङ्गन किया। हरिदास ठाकुर जी ने जब महाप्रभुजी के सामने दैन्योक्ति की कि वह अस्पृश्य हैं, स्पर्श के अयोग्य हैं तो महाप्रभु जी बोले—

प्रभु कहे,-"तोमा स्पर्शि पवित्र हइते।

तोमार पवित्र धर्म नाहिक आमाते॥

क्षणे क्षणे कर तुमि सर्वतीर्थे स्नान।

क्षणे क्षणे कर तुमि यज्ञ-तपो-दान॥

निरन्तर कर तुमि वेद-अध्ययन।

द्विज-न्यासी हैते तुमि परम-पावन॥

एत बलि ताँरे लैञा गेला पुष्पोद्याने।

अति निभृते ताँरे दिला वासा-स्थाने॥

एइस्थाने रहि' कर नाम-संकीर्तन।

प्रतिदिन आसि' आमि करिब मिलन॥

मन्दिरेर चक्र देखि' करिह प्रणाम।

एइ ठाञि तोमार आसिबे प्रसादान्न॥ (चै. च. म. 11/ 189-191,193-195)

[महाप्रभु जी कहते हैं-मैं तो स्वयं पवित्र होने के लिये आपका स्पर्श कर रहा हूँ। आप जैसा पवित्र धर्म* तो मुझमें भी नहीं है। निरन्तर कृष्ण नाम करने से आप तो क्षण-क्षण में सभी तीर्थों में स्नान करते हो और क्षण-क्षण में तुम तपस्या, यज्ञ और दान करते हो, निरन्तर वेद का अध्ययन करते हो, आप तो ब्राह्मण और संन्यासी से भी परम पावन हो।]

[ऐसा कहकर महाप्रभु जी उनको पुष्प-उद्यान में ले गये और अत्यन्त निर्जन स्थान में उन्हें रहने की जगह दे दी और कहा कि इस स्थान पर रहकर आप नाम संकीर्त्तन करो। मैं प्रतिदिन यहाँ आकर आपसे मिला करूँगा। श्रीमन्दिर का सुदर्शन चक्र देखकर यहीं से प्रणाम कर लेना। यहीं आपके लिए अन्न-प्रसाद पहुँच जाया करेगा।]

यही पुष्पोद्यान आजकल सिद्धबकुल के नाम से प्रसिद्ध है। पहले इसका नाम मुद्रा मठ था। सिद्ध बकुल के सम्बन्ध में एक कहावत है। पण्डालोग जगन्नाथ जी के दन्त मार्जन के पश्चात् दातुन किसी विशिष्ट व्यक्ति को प्रसाद रूप से प्रदान करते हैं। दैवक्रम से एक दिन जगन्नाथ जी की सेवा में लगने के पश्चात् पण्डों ने वह दातुन महाप्रभु जी को दी थी। महाप्रभु जी ने उस दातुन को हरिदास ठाकुर जी की भजन स्थली पर गाड़ दिया। धीरे-धीरे वह दातुन वृक्ष रूप में परिणत हो गयी। कहा जाता है कि महाप्रभु जी ने चैत्र मास की संक्रान्ति या महाविषुव-संक्रान्ति में वह दातुन रोपण की थी। इसीलिये श्रीसिद्ध बकुल मठ में उपरोक्त दिवस को दन्तकाष्ट-रोपण महोत्सव मनाया जाता है।

रथयात्रा के समय श्रीहरिदास ठाकुर जी सात सम्प्रदायों में से तृतीय सम्प्रदाय में श्रीजगन्नाथदेव जी के सामने नृत्य करते थे, जिसमें मूल कीर्त्तनिया होते थे-श्रीमुकुन्द दत्त।

श्रीहरिदास ठाकुर जी के माध्यम से महाप्रभु जी ने नाम की महिमा का प्रचार किया। एक दिन दुर्गति जीवों के लिये अत्यन्त दुःखी होकर महाप्रभु जी सिद्ध बकुल में आकर हरिदास ठाकुर जी से बोले-हरिदास! कलिकाल में अन्त्यज लोग गाय और ब्राह्मण की हिंसा किया करेंगे, इन सब दुराचारी यवनों का किस प्रकार से उद्धार होगा?

उसके उत्तर में हरिदास जी बोले-प्रभु! यवनों की दुर्गति देखकर आप दुःखी न होओ। 'हा राम' शब्द उच्चारण से जो उनका नामाभास होगा, उससे ही उनकी मुक्ति हो जायेगी—

"दंष्ट्रिदंष्ट्राहतो म्लेच्छो हारामेति पुनः पुनः।

उक्त्वापि मुक्तिमाप्नोति किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥"** (नृसिंह पुराण)

* पवित्र धर्म—नाम-संकीर्तन अधिष्ठान रूप धर्म।

**वन में जाते समय एक मुसलमान को जंगली सूअर ने दाँतों द्वारा आधात किया तो उसने घृणा से 'हाराम' 'हाराम'—कहकर प्राण त्याग दिये। मृत्यु काल में सूअर को लक्ष्य कर घृणा के साथ बार -बार 'हाराम' 'हाराम' कहने से उस मुसलमान ने मुक्तिलाभ की। 'हाराम' शब्द में हा राम-इस सांकेतिक राम शब्द के होने से उस म्लेच्छ का सांकेतिक नामाभास के बल से उद्धार हो गया। राम नाम के सांकेतिक नामाभास का यदि इतना फल है तो श्रद्धा के साथ राम कहने से क्या-क्या प्राप्त होगा-कहा नहीं जा सकता।-श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

अजामिल म्रियमाण अवस्था में अर्थात् जीवन की अन्तिम अवस्था में 'नारायण' नाम उच्चारण करके नामाभास के द्वारा ही समस्त पापों से मुक्त हो गया था। यह सुनकर महाप्रभु जी सुखी हुये, किन्तु पुन: जिज्ञासा करते हुये कहने लगे कि स्थावर-जंगमादि (वृक्ष, पशु, पक्षी आदि) प्राणियों का उद्धार कैसे होगा? उसके उत्तर में हरिदास जी बोले—

"तुमि ये कैराछ एइ उच्च सङ्कीर्त्तन।

स्थावर-जङ्गमेर सेइ हय त' श्रवण॥

शुनिया जङ्गमेर हय संसार-क्षय।

स्थावरे से शब्द लागे, प्रतिध्वनि हय॥

प्रतिध्वनि' नहे सेइ करये कीर्त्तन।

तोमार कृपार एइ अकथ्य कथन॥

सकल जगते हय उच्च सङ्कीर्त्तन।

शुनिया प्रेमावेशे नाचे स्थावर-जङ्गम॥

उच्च सङ्कीर्त्तन ताते करिला प्रचार।

स्थिरचर जीवेरे खण्डाइला संसार॥"

(चै.च. अ. 3/68-71, 75)

[अर्थात् आप जो उच्च ध्वनि से श्रीनाम संकीर्त्तन करवाते हो, उसे स्थावर व जंगम दोनों ही सुनते हैं। जंगम-प्राणियों का तो हरिनाम संकीर्त्तन सुनते ही संसार बन्धन टूट जाता है।और स्थावर-वृक्ष आदि पर जब वह संकीर्त्तन ध्वनि टकराती है तो उनसे भी प्रतिध्वनि निकला करती है। हे प्रभो ! वह वास्तव में प्रतिध्वनि नहीं है, वह तो उन स्थावरों द्वारा अनुकीर्त्तन ही है। आप की कृपा से यह न कहने वाली बात भी मैंने कह दी। आपने जगत में जिस उच्च संकीर्त्तन का प्रचार किया है उसके द्वारा आपने तमाम जीवों को संसार से छुटकारा दिलवा दिया है।]

एक दिन सिद्धबकुल में हरिदास जी द्वारा सनातन गोस्वामी जी की महिमा कीर्त्तन करने पर सनातन गोस्वामी जी ने हरिदास जी की महिमा बोलते हुये कहा—

अवतार-कार्य प्रभुर-नाम प्रचारे।

सेइ निज-कार्य प्रभु करेन तोमार द्वारे॥

प्रत्यह कर तिनलक्ष नाम-सङ्कीर्त्तन।

सभार आगे कर नामेर महिमा कथन॥

आपने आचरे केह, ना करे प्रचार।

प्रचार करेन केह, ना करे आचार॥

'आचार', 'प्रचार'-नामेर करह 'दुइ' कार्य।

तुमि-सर्व गुरु, तुमि-जगतेर आर्य॥

(चै.च.अ. 4/100-103)

श्रीहरिदास जी की बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी जी बोले—"ठाकुर! आपके समान और कौन हो सकता है? आप श्रीमहाप्रभु जी के गणों में- परिकर में महाभाग्यवान् हैं। महाप्रभुजी के अवतार का एक प्रयोजन है- श्रीहरिनाम-प्रचार। वह श्रीहरिनाम-प्रचार का अपना काम श्रीमन् महाप्रभुजी आपके द्वारा करा रहे हैं। आप प्रति दिन तीन लाख श्रीनाम का सङ्कीर्त्तन करते हैं और सभी के आगे श्रीनाम की महिमा का भी आप कथन करते रहते हैं। कोई-कोई स्वयं किसी अनुष्ठान का आचरण करते हैं किन्तु उसका वे प्रचार नहीं करते और कोई ऐसे हैं, वे केवल प्रचार करते हैं किन्तु स्वयं उसका आचरण नहीं करते। आप तो श्रीनाम का आचरण एवं प्रचार दोनों कार्य करते हैं अतः आप सबके गुरु हैं तथा समस्त जगत् के पूज्य हैं।"

श्रीचैतन्य चरितामृत, अन्त्य खण्ड, 11वें परिच्छेद में श्रीहरिदास ठाकुर जी के निर्याण (अन्तर्धान लीला) का प्रसंग अत्यन्त हृदयग्राही रूप से वर्णित हुआ है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

"नमामि हरिदासं तं चैतन्यं तञ्च तत्प्रभुम्।

संस्थितामपि यन्मूर्तिं स्वाङ्के कृत्वा ननर्त्तः यः॥" (चै.च.अ. 11/1)

मैं श्रीहरिदास जी को प्रणाम करता हूँ एवं उनके प्रभु श्रीचैतन्यदेव को नमस्कार करता हूँ-जिन्होंने हरिदास जी की परित्यक्त देह को गोद में लेकर नृत्य किया था।*

श्रीहरिदास जी ने वृद्ध हो जाने के कारण संख्यापूर्वक नाम कीर्त्तन पूरा न कर पा सकने के कारण गोविन्द के द्वारा लाये हुये महाप्रसाद को पहले तो सेवन करने में अनिच्छा प्रकट की परन्तु बाद में यह सोचकर कि महाप्रसाद की अवज्ञा करना उचित नहीं है, प्रसाद का एक कण ग्रहणकर लिया। महाप्रभु जी ने स्नेहाविष्ट होकर अप्राकृत सिद्धदेह

हरिदास जी को साधन में अधिक आग्रह न करके हरिनाम की संख्या को थोड़ा घटाने के लिये कहा। हरिदास ठाकुर जी ने यह जान कर कि महाप्रभु जी अब जल्दी ही अपनी लीला का संवरण करेंगे, उससे पहले ही अपने अप्रकट होने की इच्छा महाप्रभु जी के पादपद्मों में व्यक्त की। भक्तविरह में व्याकुल होने पर भी भक्तवत्सल महाप्रभु जी ने उनकी इच्छा को पूरा करने की सम्मति दे दी। हरिदास ठाकुर जी ने महाप्रभु जी को अपने सन्मुख रखकर दोनों नेत्रों से उनका मुख कमल दर्शन करते- करते, हृदय में महाप्रभु जी के पादपद्म धारणकरते हुये अश्रुसिक्त नयनों से **श्रीकृष्ण चैतन्य** नाम उच्चारण करते हुये भीष्म जी के समान निर्याण प्राप्त किया।

भक्तों के संकीर्त्तन में मत्त हो जाने पर महाप्रभु जी प्रेम विह्वल होकर हरिदास जी के शरीर को गोद में उठाकर नृत्य करने लगे। तत्पश्चात भक्तों के द्वारा हरिदास ठाकुर जी के शरीर को समुद्र तट पर लाया गया व समुद्र जल से उन्हें स्नान करवाया गया। उपरान्त, रेत में खड्डा खोदकर उसमें स्थापन किया गया। महाप्रभु जी ने स्वयं अपने हाथों से उसमें बालु अर्पण की—इस प्रकार से श्रीहरिदास ठाकुर जी को समाधिस्थ करने का कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीहरिदास जी के श्रीअङ्गों का स्पर्श प्राप्त करके समुद्र भी महातीर्थ बन गया। श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी की समाधि पीठ

---

*मालदह रामकेलि ग्राम में श्रीमन्महाप्रभु के श्रीरूप सनातन से मिलने से पहले ही श्रीरूप सनातन ने श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदास ठाकुर जी से साक्षात्कार कर लिया था। इसलिये वे हरिदास जी की महिमा पहले से ही जानते थे।

की परिक्रमा करके उनके विरहोत्सव के लिये स्वयं भिक्षा की। स्वरूप दामोदर गोस्वामी जी ने महाप्रभु जी द्वारा एकत्रितभिक्षा को उठाकर लाने नहीं दिया और उन्होंने स्वयं ही सब व्यवस्था की। महोत्सव में भक्तों को कण्ठभर (कण्ठ तक भर के अर्थात् भर पेट) भोजन कराया गया। महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर भक्तों को वरदान दिया—

हरिदासेर-विजयोत्सव जे कैल दर्शन।

जे इँहा नृत्य कैल, जे कैल कीर्त्तन॥

जे ताँरे बालुका दिते करिल गमन।

तार मध्ये महोत्सवे जे कैल भोजन॥

अचिरे ता सबाकार हबे 'कृष्णप्राप्ति'।

हरिदास-दरशने हय ऐछे 'शक्ति'॥

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।

स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,-कैल सङ्ग भङ्ग।

हरिदासेर इच्छा जबे हइल चलिते।

आमार शकति ताँरे नारिल राखिते॥

इच्छामात्रे कैल निजप्राण निष्क्रामण।

पूर्वे जेन शुनियाछि भीष्मेर मरण॥

हरिदास आछिल पृथिवीर 'शिरोमणि'।

ताहा बिना रत्न-शून्य हइल मेदिनी॥

'जय जय हरिदास' बलि' कर हरिध्वनि।

एत बलि' महाप्रभु नाचेन आपनि॥

(चै. च. अ. 11/91-98)

श्रीमहाप्रभु जी ने कहा—"श्रीहरिदास जी के इस विजयोत्सव का जिन्होंने दर्शन किया है, जिन्होंने इस उत्सव में नृत्य किया एवं जिन्होंने गान किया है, जिन्होंने हरिदास जी को रज अर्पण करने के लिये समुद्र पर गमन किया है अथवा उनके इस महोत्सव में जिन्होंने प्रसाद पाया है—उन सब को अति शीघ्र ही श्रीकृष्ण-चरणों की सेवा प्राप्त होगी- श्रीहरिदास जी के दर्शनों में ही यह शक्ति है। ऐसे वरदान का उच्चारण करते हुए फिर महाप्रभु ने कहा—" श्रीकृष्ण ने कृपा करके मुझे श्रीह रिदास जी का सङ्ग प्राप्त कराया था, वे स्वतन्त्र ईश्वर हैं, उन्होंने अपनी इच्छा से मेरा उन से वियोग करा दिया है। श्रीहरिदास जी की जब भगवत् धाम को जाने की इच्छा हुई तो मेरी यह शक्ति न थी कि मैं उन्हें रोक सकता या रख सकता। उन्होंने अपनी इच्छा-मात्र से अपने प्राणों को विसर्जन किया, जैसे सुना करते थे कि श्रीभीष्मपितामह ने अपनी इच्छा से देह त्याग किया था। श्रीहरिदास जी पृथ्वीतल पर सर्व शिरोमणि थे, अब उनके बिना यह पृथ्वी रत्न शून्य हो गई है।" अब सब मिल कर "श्रीहरिदास जी की जय" ऐसी उच्च ध्वनि करिये।" इतना कह कर श्रीमहाप्रभु—"जय हरिदास" कहते-कहते नृत्य करने लगे।

भाद्र शुक्ला चतुर्दशी तिथि को हरिदास ठाकुर जी ने तिरोधान लीला की।

****

श्रीकाशीश्वर पण्डित

श्रीकाशीश्वर पण्डित (ब्रह्मचारी, गोस्वामी) पूर्व लीला के अर्थात् वृन्दावन लीला के श्रीकृष्ण सेवक भृंगार अथवा शशी रेखा हैं।

"पुरा वृन्दावने चेटौ स्थितौ भृङ्गार भंगुरौ ।

श्रीकाशीश्वर-गोविन्दौ तौ जातौ प्रभु सेवकौ॥"

(गौ. ग. दी. 137)

श्रीकाशीश्वर पण्डित का पीठ स्थान हुगली ज़िले में श्रीरामपुर स्टेशन से एक मील दूर चातरा ग्राम में था। काशीश्वर पण्डित के पिता कांजी लाल जी कानु वंश में पैदा हुए, उनका वात्स्य गोत्र था तथा उनकी उपाधि चौधरी थी। इसलिये चातरा ग्राम में जहाँ काशीश्वर पण्डित का देवालय था, वह अभी भी चौधरी पाड़ा (मुहल्ला) नाम से विख्यात है। वहाँ के मन्दिर में काशीश्वर पण्डित द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौरांग विग्रह और श्रीराधा-गोविन्द जी विराजमान हैं। होली के समय इस स्थान पर उत्सव-आदि के अनुष्ठान किए जाते हैं। काशीश्वर पण्डित बहुत बलवान थे। बल्लभपुर के श्रीरुद्र पण्डित उनके भान्जे थे। काशीश्वर पण्डित श्रीईश्वर पुरीपाद जी के कृपासिक्त शिष्य थे। इसलिए इनकी गणना श्रीचैतन्य शाखा में होती है–

"ईश्वर पुरीर शिष्य-ब्रह्मचारी काशीश्वर।

श्रीगोविन्द नाम ताँर, प्रिय अनुचर॥"

(चै.च.आ. 10/138)

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के सेवक श्रीगोविन्द भी ईश्वर पुरीपाद जी के शिष्य थे। श्रीईश्वर पुरीपाद जी के जीवनकाल में श्रीकाशीश्वर पण्डित और श्रीगोविन्द दोनों ही निष्ठा सहित गुरु सेवा करते थे। श्रीईश्वर पुरीपाद जी ने अपने अप्रकट होने से कुछ पूर्व ही दोनों को महाप्रभु जी की सेवा करने की आज्ञा की थी। ईश्वर पुरीपाद जी के अन्तर्धान होने पर वे दोनों ही महाप्रभु जी की सेवा में नियोजित हो गये। पहले श्रीगोविन्द जी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के निकट आये तथा तीर्थ भ्रमण के बाद श्रीकाशीश्वर पण्डित महाप्रभु जी के पादपद्यों में उपस्थित हुए।

"ईश्वर-पुरीर-भृत्य,—'गोविन्द' मोर नाम।

पुरी-गोसाञिर आज्ञाय आइनु तोमार स्थान॥

सिद्धिप्राप्तिकाले गोसाञि आज्ञा कैले मोरे।

कृष्णचैतन्य-निकटे जाई' सेविह ताँहारे॥

काशीश्वर आसिबेन सब तीर्थ देखिया।

प्रभु आज्ञाय मुञि आइलु तोमा-पदे धाञा॥"

(चै.च.म. 10/132-134)

"काशीश्वर गोसाञि आइला आर दिने।

सम्मान करिया प्रभु राखिला निज स्थाने॥"

(चै.च.म. 10/185)

"गुरुर किङ्कर हय मान्य आपनार।" अर्थात् गुरुजी का सेवक तो पूज्य होता है—इस विचार के अनुसार गुरु-सेवक से सेवा ग्रहणकरना अनुचित है और गुरु की आज्ञा का पालन न करने से भी अपराध होता है। इस प्रकार की स्थिति में क्या करना चाहिये? महाप्रभु जी द्वारा जिज्ञासा करने पर, सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा कि गुरु की आज्ञा का अवश्य पालन करना चाहिए।*

इसी कारण महाप्रभु जी श्रीकाशीश्वर पण्डित और गोविन्द जी की सेवा ग्रहणकरने के लिये सहमत हो गये।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब श्रीजगन्नाथ के दर्शनों को जाते तो बलवान काशीश्वर पण्डित लोगों की भीड़ को ठेल कर महाप्रभु जी के चलने का रास्ता बनाते हुए चलते थे ताकि महाप्रभु जी के श्रीअंग में किसी का भी स्पर्श न हो—

"ईश्वरपुरीर शिष्य-ब्रह्मचारी काशीश्वर।

श्रीगोविन्द नाम ताँर, प्रिय अनुचर॥

ताँर सिद्धिकाले दोंहे ताँर आज्ञा पाञा।

नीलाचले प्रभुस्थाने मिलिला आसिया॥

गुरुर सम्बन्धे मान्य कैल दुँहाकारे।

ताँर आज्ञा मानि′ सेवा दिलेने दोंहारे॥

अंगसेवा गोविन्देरे दिलेन ईश्वर।

जगन्नाथ देखिते आगे चले काशीश्वर॥

अपरश याय, गोसाञि मनुष्य-गहने।

मनुष्य ठेलि पथ करे काशी बलवाने॥

(चै.च.आ. 10/138-142)

"महाप्रभु सुखे लञा सब भक्तगण।

जगन्नाथ-दर्शने करिला गमन॥

----

* स शुश्रवान्मातरि भार्गवेण फितुनियोगात् प्रहृतं द्विषद्वत्।

प्रत्यगृहीदग्रजशासनं तदाज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीय॥ (रघुवंश 14 सर्ग 46 श्लोक।)

आगे काशीश्वर जाय लोक निवारिया।

पाछे गोविन्द जाय जल-करङ्ग लञा॥"

(चै.च.म.12/206-207)

पुरुषोत्तम धाम में श्रीरथयात्रा के समय श्रीमन्महाप्रभु जब नृत्य करते थे, तब भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए, महाप्रभु को चारों ओर से घेर कर तीन मण्डलों की रचना होती थी। प्रथम मण्डल में नित्यानन्द प्रभु अपने भक्तगणों के साथ, दूसरे मण्डल में ये काशीश्वर जी, मुकुन्दादि भक्तगणों के साथ होते थे और तीसरे मण्डल में होते थे—महाराज प्रतापरुद्र अपने पात्रों के साथ।

"काशीश्वर-मुकुन्दादि जत भक्तगण।

हाताहाति करि' हैल द्वितीय आवरण॥"

(चै.च.म. 13/89)

पुरुषोत्तम धाम में संकीर्तन के बाद जब महाप्रभु जी भक्तगणों के साथ महाप्रसाद पाने को बैठते तो प्रसाद परोसने वालों में काशीश्वर भी होते थे—

"स्वरूप गोसाईं जगदानन्द दामोदर।

काशीश्वर गोपीनाथ वाणीनाथ शंकर।

परिवेषन करे ताँहा एइ सातजन॥"

स्वरूप गोसाईं, जगदानन्द, दामोदर, काशीश्वर, गोपीनाथ, वाणीनाथ और शंकर-ये सात ही वहाँ भोजन परोसते थे।

नवद्वीप धाम में श्रीमन्महाप्रभु की गृहस्थ लीला के समय में, श्रीवास जी के आंगन में, संकीर्तन विलास और गंगा स्नान के समय में भी काशीश्वर पण्डित महाप्रभु जी की लीला के साथी होते थे। जिस समय महाप्रभु जी ने भक्तों के साथ संकीर्तन करते-करते श्रीधर के घर में उपस्थित होकर उनके लोहे के बर्तन में पानी पिया था, तब महाप्रभु जी की उस भक्तवात्सल्य लीला को दर्शन करके काशीश्वर पण्डित आदि भक्त रो पड़े थे।

"गोविन्द, गोविन्दानन्द, श्रीगर्भ, श्रीमान।

कान्दे काशीश्वर, श्रीजगदानन्द, राम॥"

(चै.भा.म. 23/451)

श्रीकाशीश्वर पण्डित जी श्रीमन्महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे, यह श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी द्वारा लिखित श्रीचैतन्य भागवत से जाना जाता है—

"जय श्रीजगदानन्द-प्रिय-अतिशय।

जय वक्रेश्वर-काशीश्वरेर हृदय॥"

(चै.भा.म. 1/6)

"जय जय श्रीजगदानन्दे जीवन।

जय हरिदास-काशीश्वर-प्राणधन॥"

(चै.भा.म. 24/3)

नीलाचल में जब सगोष्ठी श्रीमद् अद्वैताचार्य जी का शुभागमन हुआ तो महाप्रभु जी उनके शुभागमन का समाचार पाकर स्वागत के लिए गए तो उस समय भी काशीश्वर पण्डित महाप्रभु जी के साथ थे।

काशीश्वर पण्डीत ने कार्तिक मास की शुक्ला चतुर्दशी को तिरोधान लीला की। (एक मत के अनुसार आश्विन मास में श्रीराधा-कृष्ण की रास पूर्णिमा के दिन उनका तिरोभाव हुआ)।

****

श्रीधर पण्डित

श्रीकृष्ण लीला में जो द्वादश गोपालों के अन्यतम् कुसुमासव गोपाल थे, वे ही श्रीगौरलीला की पुष्टि के लिए, श्रीधर पण्डित के रूप में आविर्भूत हुए थे—

"**खोलावेचातया ख्यातः पण्डितः श्रीधरे द्विजः।**

आसीद् व्रजे हास्यकारी यो नाम्ना कुसुमासवः॥"

(गौ. ग.दी. 133 श्लोक)

श्रीधर पण्डित नवद्वीपवासी थे। नौ द्वीपों के समुदाय स्वरूप श्रीनवदीप धाम के अन्तर्गत अन्तर्द्वीप श्रीमायापुर के शेष प्रान्त में, चाँद काज़ी की समाधि की दक्षिण पूर्व दिशा में, श्रीधर जी का निवास स्थान था, जो कि श्रीधर आँगन के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीधर पण्डित के आवास में केलों का कुंज था। वर्तमान समय में स्थूल रूप से देखने पर वह केलों का कुंज नज़र नहीं आता।

श्रीधर ने केले के बगीचे से गुज़ारा करने वाले एक गरीब ब्राह्मण की लीला की थी। विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्य लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद ने श्रीधर पण्डित की पुण्य स्मृति का संरक्षण करने के लिए, श्रीधर आँगन के स्थान को प्रकट किया। इस प्राकट्य से पहले भी श्रीधर आँगन के स्थान पर नियमित रूप से सेवा पूजा की व्यवस्था थी परन्तु चारों ओर की प्रतिकूलताओं के कारण वर्तमान समय में यह पुनः संगोपित हो रही है। नवद्वीप-धाम की परिक्रमा के समय भक्त-गण अब भी वहाँ जाकर श्रीधर पण्डित के लिए दण्डवत् प्रणाम करते हैं तथा श्रद्धा व पूजा की सामग्री भी निवेदित करते हैं। श्रीभक्ति विनोद ठाकुर रचित श्री'नवद्वीप धाम माहात्म्य' में इस प्रकार लिखा है कि जुलाहों के गाँव के बाद ही खोला बेचा श्रीधर जी का स्थान आता है। यहीं पर श्रीमन् महाप्रभु जी ने कीर्तन किया था व विश्राम भी किया था।

श्रीजीव गोस्वामी जी के प्रति श्रीनित्यानन्द जी की उक्ति है—

"तबे तन्तुवाय-ग्राम हइलेन पार।

देखिलेन खोला बेचा श्रीधर आगार॥

प्रभु बले,-एइ स्थाने श्रीगौराङ्ग हरि।

कीर्त्तन विश्राम कैल भक्ते कृपा करि'॥

एइ हेतु विश्रामस्थान एई नाम।

हेथा श्रीधरेर घरे करह विश्राम॥" (नबद्वीप-धाम-माहात्म्य)

उक्त धाम माहात्म्य ग्रन्थ में श्रीधर के केले के बगीचे के निकट एक सरोवर के होने की बात भी लिखी है। इस सरोवर का भी बाह्य दर्शन आजकल लुप्त हो गया है।

दुनियावी धन व ऐश्वर्य की प्राप्ति भगवद्-कृपा का चिन्ह नहीं हैं। जो भगवत्-प्रेम के धन से मालामाल हैं, वे ही यथार्थ में भगवद्-कृपा प्राप्त व्यक्ति हैं। महाप्रभु जी ने अपने पार्षद श्रीधर के द्वारा यही शिक्षा प्रदान की है कि विष्णु भक्त निर्विषयी होते हैं जबकि देवी-देवताओं के भक्तों की अक्सर बाह्य सांसारिक उन्नति दिखाई देती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीधर द्वारा लोक-शिक्षा के लिए श्रीधर के घर जाकर उनके दारिद्रय दु:ख के कारण के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। महाप्रभु

जी ने श्रीधर को पूछा कि क्या बात है लक्ष्मीपति की सेवा करने पर भी आपको अन्न-वस्त्रादि का अभाव है व आपका मैला-कुचैला घर है जबकि दूसरे पक्ष में चण्डी विषहरि की पूजाकर के साधारण लोग सांसारिक वस्तुओं से मालामाल रहते हैं?

उत्तर में श्रीधर बोले—"राजा महलों में वास करके, उत्कृष्ट द्रव्यों का भोजन करके जिस प्रकार समय गुजारते हैं, पक्षी भी उसी भाव से वृक्ष पर घोंसले में वास करके नाना स्थानों से आहार संग्रह करके और उसे खाकर समय व्यतीत करते हैं। इससे राजा और पक्षी के बीच विषय सुख-भोग में कोई खास अन्तर नहीं है।"

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीधर से कहा—"बाहरी रूप से तुम दरिद्रता की लीला करते हुए भी असली धनी हो। वैष्णव वास्तव में सर्वोत्तम सर्वैश्वर्य के अधिकारी व समस्त वस्तुओं के मालिक होते हैं। इस बात को मैं शीघ्र ही सारे मूर्ख अनभिज्ञ जगत के समक्ष व्यक्त करूँगा।"

धन-सम्पदा व अट्टालिका आदि सब प्रकार के पार्थिव विषय सुख से वन्चित व्यक्ति को हम साधारणतया दरिद्र और भाग्यहीन कहते हैं। जिनके यहाँ इन विषयों की प्रचुरता हो, उसको धनी और भाग्यवान् कहा जाता है। परन्तु दरिद्र और धनी का तात्त्विक अर्थ भिन्न है। देखो न, आनन्द के लिए धन अर्जित किया जाता है, दुःख के लिए नहीं। इसलिए आनन्द ही असली धन है। परब्रह्म श्रीकृष्ण परमानन्द स्वरूप हैं। इसलिए श्रीकृष्ण में प्रीति रखने वाला व्यक्ति ही धनी होता है तथा उनसे विमुख व्यक्ति दरिद्र होता है—ये ही धनी और दरिद्रता का तात्विक अर्थ है। उदाहरण स्वरूप श्रीकृष्ण भक्त विदुर की लीला करते हुए भी, कृष्ण-प्रेमधन के कारण धनी थे। दूसरे पक्ष में महाराज दुर्योधन अतुल ऐश्वर्य के स्वामी होने पर भी श्रीकृष्ण की विमुखता के कारण दरिद्र थे। स्वयं भगवान् कृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने अपने प्रिय पार्षद-दरिद्र की लीला करने वाले (केला बेचने वाले) श्रीधर के माध्यम से असली धनी और भाग्यवान् कौन हैं—यह जगतवासियों को बताया। भगवान् भक्ति द्वारा ही वशीभूत होते हैं, अन्य किसी साधन से नहीं: –

"भक्तयाहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपानकानपि सम्भवात्॥"

(भा. 11/14/21)

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तत्या प्रयच्छति।

तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥"

(गीता 6/26)

(जो कोई भी मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प, फल या जल भी भेंट करता है, मैं उस भक्त के सामने प्रकट होकर उस वस्तु को ग्रहणकर लेता हूँ।)

भक्तिपूर्वक दिए हुए पत्र, पुष्प, फल और जल को भी भगवान् ग्रहणकरते हैं, खाते हैं जबकि अभक्त द्वारा दिए हुए पदार्थ वे ग्रहण नहीं करते।

“भक्तेर द्रव्य प्रभु काड़ि-काड़ि खाय।

अभक्तेर द्रव्य प्रभु उल्टी ना चाय॥”

अर्थात् भक्तों के द्रव्यों को प्रभु छीन झपट कर खाते हैं जबकि अभक्त के द्रव्य के प्रति वे उल्ट कर भी देखना नहीं चाहते। भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के द्वारा दिए हुए बहुमूल्यवान् सुस्वादु द्रव्यों का परित्याग करके विदुर और उनकी पत्नी द्वारा प्रदत्त मामूली वस्तुओं को ग्रहण किया था। स्वयं भगवान श्रीमन्महाप्रभु की भक्त श्रीधर के द्रव्यों की छीना-झपटी एक अद्‌भुत रसमयी लीला है।

महाप्रभु जी के विद्या-विलास के समय श्रीधर केले के फूल और केले के पेड़ के भीतर का डण्डा(जिसकी बंगाल में सब्जी बनायी जाती है) बेच कर जीवन-यापन करते थे। बिक्री द्वारा जो सामान्य धन की प्राप्ति होती थी, उसके आधे के द्वारा वे गंगा पूजा और आधे के द्वारा किसी प्रकार से अपना जीवन-यापन करते थे। वे युधिष्ठिर की तरह महा-सत्यवादी थे। द्रव्यों के यथार्थ मूल्य ही बताते थे, नवद्वीप में उनकी यह बात सभी जानते थे। किन्तु महाप्रभु श्रीधर के पास आकर श्रीधर के बताए मूल्य का आधा देकर उनसे थोर, केला, मोचा ले जाने के लिए खींचातानी, छीना-झपटी करके प्रतिदिन चार दण्ड(डेढ घण्टा) उनसे झगड़ा करते।

"प्रतिदिन चारि दण्ड कलह करिया।

तबे से किनये द्रव्य अर्ध्दमूल्य दिया॥

सत्यवादी श्रीधर यथार्थ मूल्य बले।

अर्द्धमूल्य दिया प्रभु निज हस्ते तोले॥

उठिया श्रीधर दास करे काड़ाकाड़ि।

एइमत श्रीधर-ठाकुरेर हुड़ाहुड़ि॥"

(चै.भा.म. 9/163-165)

अर्थात प्रतिदिन चार दण्ड (डेढ घण्टा) महाप्रभु जी व श्रीधर जी में प्रेम भरा झगड़ा होता रहता है, तब भी महाप्रभु जी उनसे आधे दाम देकर जबरदस्ती सब्जी इत्यादि खरीद लेते थे। सत्यवादी श्रीधर जी तो ठीक-ठाक मूल्य ही बताते थे परन्तु महाप्रभु जी तुरन्त उसका आधा मूल्य देकर सब्जी उठा लेते थे। तभी श्रीधर भी उठकर वह सब्जी उनके हाथ से लेने लगते, तभी ऐसा दृश्य बनता कि श्रीधर लौकी इत्यादि सब्जी को अपनी ओर खींचते तो महाप्रभु जी अपनी ओर। इस प्रकार भक्त और भगवान आपस में प्रेम की खींचातानी करते रहते।

श्रीधर के साथ कलह कर लेने पर भी उनको गुस्सा होते न देख, गौरसुन्दर उनका सारा द्रव्य छीन लेते। बाहरी रूप से घटना इस प्रकार होने पर भी, असलियत में गौरसुन्दर की सौम्य मूर्ति देखकर उनके द्वारा बलपूर्वक द्रव्यादि छीने जाने पर भी श्रीधर क्रुद्ध नहीं होते थे। श्रीधर महाप्रभु जी की श्रीमूर्ति देखकर मुग्ध हो जाते और आनन्दसागर में डूबने उतराने लगते। महाप्रभु जी भी उनसे कलह के समय परम संतोष के साथ प्यार भरी गाली देते और इशारे से अपना तत्त्व व्यक्त करते हुए श्रीधर से इस प्रकार कहते—

"प्रत्यय गंगारे द्रव्य देह’ त किनिया।

आमारे वा किछु दिले मूल्येते छाड़िया॥

ये गंगा पूजह तुमि, आमि तार पिता।

सत्य सत्य तोमारे कहिल एइ कथा॥"

(चै.भा.म. 9/178-179)

अरे, तुम गंगा जी को भी तो कुछ न कुछ खरीद कर देते हो। तो मुझे भी थोड़ा सस्ता दे दिया करो, सच-सच बताऊँ, जिन गंगा जी की तुम पूजाकर ते हो, मैं उसका पिता हूँ।

एक दिन श्रीधर ने महाप्रभु जी से समझौता कर लिया कि वे उन्हें बिना मूल्य के ही लौकी, केले के थोर व मोचा आदि सब्जियाँ दिया करेंगे, तब से महाप्रभु जी श्रीधर के द्रव्यों से साग-सब्ज़ी बना कर परम तृप्ति के साथ अन्न खाते थे।

प्रभु बले,-"भाल, भाल आर नाहि दाय।"

श्रीधरेर खोले प्रभु प्रत्यह अन्न खाय॥

भक्तेरे पदार्थ प्रभु हेनमते खाय।

कोटि हैलेओ अभक्तेर उलटि ना चाय॥

(चै.भा.म. 9/184-186)

अर्थात महाप्रभु जी कहते हैं—बहुत बढ़िया-बहुत बढ़िया, अब कोई झमेला नहीं है। इस प्रकार महाप्रभु जी प्रतिदिन श्रीधर जी के यहाँ से लाई हुई सब्जी के साथ अन्न ग्रहणकरते थे। भक्तों के पदार्थों को भगवान इसी प्रकार खाते हैं जबकि अभक्तों के द्रव्य संख्या में करोड़ों होने से भी वे उनकी तरफ मुड़ कर भी नहीं देखते।

श्रीवास पण्डित जी के आँगन में जिस समय महाप्रभु जी ने विष्णु-सिंहासन पर बैठ कर सात प्रहर तक महाप्रकाश लीला की तो भक्तों को अपना ऐश्वर्य रूप दिखाने के लिए विष्णु जी के सभी अवतारों के रूपों को प्रकट किया था। उस समय भक्तों द्वारा लाए गए श्रीधर को भी महाप्रभु जी ने अपना ऐश्वर्य रूप दिखा कर कृतार्थ किया था।

श्रीधर अपने घर में सारी रात जाग कर उच्च स्वर से हरिनाम करते थे, जिससे भक्त तो सुखी होते थे परन्तु अभक्त नींद में व्याघात् पहुँचने पर नाना प्रकार के कटु-वाक्यों द्वारा उनकी भर्त्सना करते।

महाप्रकाश लीला के दिन महाप्रभु जी की आज्ञा से जब भक्त-गण उनको लाने के लिए उनके घर गये तो आधे रास्ते से ही श्रीधर के द्वारा उच्चारित हरिनाम सुनकर उनके घर में उपस्थित हुए थे। श्रीधर, श्रीवासांगन में महाप्रभु जी की अपूर्व ऐश्वर्य मूर्ति के दर्शन करके मूर्च्छित हो गए। महाप्रभु जी के वाक्यों से पुनः चैतन्यता पाकर व महाप्रभु जी की कृपा संचारित शक्ति से उन्होंने महाप्रभु जी का अपूर्व स्तव किया।

महाप्रभु जी उनके स्तव से सन्तुष्ट होकर उन्हें अष्ट सिद्धि रूप वर देना चाहते थे, परन्तु श्रीधर ने वह न लेकर महाप्रभु जी के पादपद्मों की सेवा के लिए ही प्रार्थना की—

'माग माग' पुनः पुनः बले विश्वम्भर।

श्रीधर बलये-"प्रभु, देह' एइ वर॥

ये ब्राह्मण काड़ि' निले मोर खोलापात।

से ब्राह्मण हउक मोर जन्म जन्म नाथ॥"

ये ब्राह्मण मोर संगे करिल कन्दल।

मोर प्रभु हउक ताँर चरणयुगल॥

(चै.भा.म. 9/223-225)

अर्थात महाप्रभु के वर माँग-वर माँग, कहने पर श्रीधर जी कहते हैं कि यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो ये वर दीजिए कि जो ब्राह्मण मुझ से सब्जी छीनने के लिये आया करता था वह ब्राह्मण ही मेरा जन्म-जन्मान्तर का नाथ बन जाये। जिस ब्राह्मण के साथ मेरा प्रेम भरा झगड़ा होता था, उनके चरण कमल ही मेरे पूज्य रहें—

"धन-नाहि, जन नाहिक, नाहि पांडित्य।

के चिनिवे ए सकल चैतन्येर भृत्य॥

कि करिवे विद्या, धन, रूप, यश, कुले।

अहंकार बाड़ि' सब पड़ये निर्मूले॥

कला मूला बेचिया श्रीधर पाइला याहा।

कोटिकल्पे कोटीश्वर ना देखिवा ताहा॥"

(चै.भा.म 9/233-235)

अर्थात धन नहीं है, पीछे जन समूह नहीं तथा विद्वता भी नहीं है-ऐसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के सेवक को कौन पहचानेगा। ये विद्या, धन, रूप, यश व ऊँचा कुल क्या मेरा उद्धार करवायेगा, ये तो मात्र अहंकार को बढ़ाकर पतन ही करवायेगा। केले इत्यादि की सब्जी बेचकर श्रीधर जी ने जो प्राप्त किया, करोड़ों कल्पों में देवताओं ने वह देखा भी नहीं होगा।

दुनियावी ज्ञान से अर्थात् बाहरी परिचय से वैष्णव का स्वरूप पहचानना असम्भव है। अधिक धन रहने से ही उसकी अधिक वैष्णवता हो, ऐसा नहीं। अधिक लोगों को इकट्ठा कर पाने से ही वे अधिक वैष्णव हो सकेंगे, ऐसा भी नहीं। शास्त्रादि में अधिक पाण्डित्य प्राप्त करने से वे विष्णु भक्त हो जाएँगे, ऐसा भी नहीं। श्रीचैतन्य दासगणों का अधिक धन नहीं भी हो सकता, उनका अधिक लोक-संग्रह नहीं भी हो सकता, उनका अधिक तर्क-वितर्क रूप पाण्डित्य का अधिकार नहीं भी हो सकता किन्तु वे इन सब विषयों से क्यों उदासीन हैं, इसे जानने का अधिकार जनसाधारण का नहीं है अर्थात्

वे इसे नहीं समझ सकते। वास्तविकता ये है कि श्रीचैतन्य सेवा को ही वे धन, जन और पाण्डित्य की अपेक्षा अधिक मानते हैं। इसलिए उनका गौरव, महिमा और श्रेष्ठता लोकदृष्टि से देखे जाने की सम्भावना नहीं है। —श्रील भक्ति सिद्धांत सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

"वैष्णव चिनिते पारे काहार शक्ति।

आछये सकल सिद्धि देखये दुर्गति॥

खोलावेचा श्रीधर ताहार एइ साक्षी।

भक्तिमात्र निल अष्ट-सिद्धिके उपेक्षि॥

यत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।

निश्चय जानिह सेइ परानन्दसुख॥

विषय मदान्ध सब किछुइ ना जाने।

विद्यामदे धनमदे वैष्णव ना चिने॥"

(चै.भा.म. 9/238-241)

अर्थात वैष्णव को पहचानने की शक्ति भला किसमें हो सकती है, क्योंकि आठों सिद्धि उनके पास होते हुए भी दुनियावी दृष्टि से उनमें दुर्गति देखी जाती है। केले की सब्जी बेचने वाले श्रीधर इसके जवलन्त प्रमाण हैं। सभी के सामने उन्होंने आठों सिद्धियों को न माँगकर भगवान से भक्ति ही माँगी।

वैष्णवों के जितने भी व्यवहारिक दुःख देखे जाते हैं, उनमें उन्हें दुखी मत समझना, निश्चय जानना कि उन्हें परानन्द सुख की अनुभूति हो रही है। विषयों के मद में अन्धे जीव वैष्णव के इस रहस्य के बारे में कुछ भी नहीं जानते, और यही कारण है कि विद्या, धनादि के मद से वे वैष्णवों को नहीं पहचान पाते।

श्रीमन्महाप्रभु चाँदकाजी के उद्धार की लीला के बाद संकीर्तन और नृत्य करते-करते (शंखों का व्यवसाय करने वाले) शंखवणिक नगर व जुलाहों के मोहल्ले को पार कर जब श्रीधर-आँगन में पहुँच गए, तो उन्होंने श्रीधर के घर के जल से भरे पुराने लोहे के बर्तन को उठाकर परम तृप्ति के साथ पानी पिया। टूटे हुए जल के पात्र में प्रभु को पानी पीते देखकर श्रीधर उच्च स्वर से रोते हुए मूर्छित होकर गिर पड़े। भक्त का जल पीने से भक्ति का लाभ होता है—श्रीमन्महाप्रभु जी ने आचरण करके इसकी शिक्षा दी। भक्त के पुराने लोहे के बर्तन का पानी भी भगवान् के निकट अमृत के समान व परम आदरणीय होता है। दूसरी ओर अभक्त दाम्भिक का रत्न के पात्र में दिया हुआ जल भी भगवान् के लिए उपेक्षित होता है—

"ओहे श्रीधरेर भांगा घर देखि दूरे।

मंद-मंद हासे एथा उल्लास अंतरे॥

ए पथे श्रीधर घरे गिया गण सने।

देखे फूटा लौहपात्र आछये आँगने॥

बाहिरेर जल ताथे आछये किंचित्।

ताहा पिये गौरचन्द्र हैया उल्लासित॥

भक्त-वत्सल प्रभु प्रेमाय विह्वल।

सुरधुनी धारा प्राय नेत्रे वहे जल॥

श्रीधर आँगने हैल अद्‌भुत कीर्तन।

कांदे नित्यानन्दाद्वैत आदि यत जन॥

ये सुख हइल एइ श्रीधरेर घरे।

ताहा मने करितेइ अंतर विदरे॥"

(भक्ति रत्नाकर 62/3136-3141)

"श्रीधरेर लौहपात्रे कैल जलपान।

समस्त भक्तेरे दिल इष्ट वरदान॥"

(चै.च.आ. 17/70)

अर्थात भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्रीधर जी के प्रसंग में लिखा है कि महाप्रभु जी जब अपने भक्तों को साथ लेकर जुलाहों के मुहल्ले को पार कर रहे थे तो वे अपने भक्तों को बड़े उत्साह के साथ व मुस्कराते हुए कहते हैं कि देखो, वह दूर टूटा सा श्रीधर का मकान दिखाई दे रहा है। शायद, इसी रास्ते से श्रीधर जी अपने साथियों के साथ घर गये होंगे। उनके घर के पास पहुँच कर महाप्रभु जी ने देखा कि उनके आँगन में एक लोहे का बर्तन पड़ा है और उसमें कुछ पानी भी है तो बड़े उल्लास के साथ महाप्रभु जी ने वह बर्तन उठाया और गट् गट् करके सारा पानी पी गए। पानी पीकर भक्त-वत्सल महाप्रभु जी प्रेम में विह्वल हो उठे और गंगा की धारा के समान उनके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उसके बाद श्रीधर जी के आंगन में अद्‌भुत संकीर्तन का प्रारम्भ हुआ जिसमें नित्यानन्द जी व श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्त संकीर्तन करते-करते प्रेमावेश में बहुत रोये। जो भी हो, श्रीधर जी के घर पर जो आनन्द वितरित हुआ उसका वर्णन करना मुश्किल है।

श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है कि श्रीधर के लोहे के पात्र से जल-पान करके महाप्रभु जी ने सभी भक्तों को उनके इच्छित वर प्रदान किये।

काटोया में संन्यास ग्रहणकरने के बाद ही प्रेमोन्माद की अवस्था में महाप्रभु जी वृन्दावन के लिए चल पड़े तथा वृन्दावन की यात्रा के समय श्रीमन्महाप्रभु तीन दिन तक राढ़ देश में ही भ्रमण करते रहे और जब नित्यानन्द प्रभु जी द्वारा बड़ी चतुराई से शान्तिपुर में लाए गए तो उस समय शची माता व नवद्वीप-वासी भक्तों के साथ मिले। उस समय हुए भक्तों के साथ साक्षात्कार में श्रीधर भी महाप्रभु जी से मिले थे।

संन्यास ग्रहण के अभिप्राय से गृहत्याग से पूर्व श्रीधर जी के द्वारा दी हुई लौकी महाप्रभु जी ने प्रीति सहित ग्रहण की थी। श्रीमन् महाप्रभु जी की इच्छा के अनुसार शची माता ने श्रीधर द्वारा दी हुई लौकी और दूध द्वारा "दुग्ध-लौकी" पदार्थ की रसोई की थी।

एक लाउ हाते करि' सुकृति श्रीधर।

हेनइ समये आसि' हइला गोचर॥

लाऊ-भेट देखि' हासे श्रीगौरसुन्दर।

"कोथाय पाइला?" प्रभु जिज्ञासे ताहारे॥

जिन-मने जाने प्रभु "कालि चलिवाङ।

एइ लाउ भोजन करिते नारिलाङ॥

श्रीधरेर पदार्थ कि हइबे अन्यथा।

ए लाऊ भोजन आजि करिब सर्वथा॥"

(चै.भा.म. 27/33-36)

अर्थात ठीक उसी समय परम सुकृतिवान श्रीधर जी हाथ में लौकी लिए खड़े दिखाई दिये। लौकी को देखकर श्रीमन् महाप्रभु जी अपनी हंसी न रोक पाये और हँसते-हँसते कहने लगे—अरे, ये लौकी कहाँ मिली तुम्हें?

फिर महाप्रभु जी सोचने लगे कि ये श्रीधर मेरे लिए लौकी लेकर आया है परन्तु कल तो मैं चला जाऊँगा तो क्या मैं इस लौकी का भोजन नहीं कर पाऊँगा? श्रीधर के द्वारा लायी ये लौकी क्या बेकार चली जाएगी, कि तभी मन-ही-मन अपने निर्णय को बदला महाप्रभु जी ने और उसी दिन उस लौकी की रसोई बनाने का आदेश दिया; ये सोचकर कि श्रीधर की लौकी खाकर ही मैं यहाँ से जाऊँगा।

श्रीधर अन्यान्य गौड़ देशीय भक्तों के साथ हर वर्ष रथ-यात्रा के समय पुरी जाते थे।

****

श्रील जगदीश पण्डित

"अपरे यज्ञपत्न्यौ श्रीजगदीश-हिरण्यकौ।

एकादश्यां ययोरन्नं पार्थयित्वाऽघसत् प्रभुः॥"

(गौ. ग. दी. 192 श्लोक)

"आसीद् व्रजे चन्द्रहासो नर्त्तको रसकोविदः।

सोऽयं नृत्यविनोदी श्रीजगदीशाख्यः-पणिडतः॥"

(गौ. ग. दी. 143 श्लोक)

श्रीकृष्ण लीला में जो याज्ञिक ब्राह्मण पत्नी थी, वे ही श्रीजगदीश पण्डित व श्रीहिरण्य पण्डित के रूप में गौरलीला की पुष्टि के लिए आविर्भूत हुई थी। ब्रज के रसकोविद चन्द्रहास नर्तक रूप में भी श्रीजगदीश पण्डित प्रभु की पूर्व लीला का परिचय प्रदत्त हुआ है। ये श्रीचैतन्य शाखा और नित्यानन्द शाखा दोनों शाखाओं में ही गिने जाते हैं।

श्रीजगदीश पण्डित प्रभु भारत के पूर्वांचल-गोहाटी (प्राग्ज्योतिषपुर) में आविर्भूत हुए थे। इनके पितृदेव श्रीकमलाक्ष भट्ट थे। श्रीजगदीश पण्डित के माता-पिता परम विष्णु- भक्ति- परायण थे । माता-पिता के अप्रकट होने के बाद श्रीजगदीश पण्डित प्रभु, अपनी पत्नी दुःखिनी और भाई हिरण्य पण्डित को साथ लेकर गंगा के किनारे रहने के लिए श्रीमायापुर में श्रीजगन्नाथ मिश्र के गृह के निकट में ही आ गए एवं वहीं पर रहने के लिए गृह का निर्माण करके अवस्थान करते रहे । श्रीजगन्नाथ मिश्र के साथ श्रीजगदीश पण्डित प्रभु की बड़ी अन्तरंग मित्रता थी। निमाई के प्रत्ति श्रीजगन्नाथ मिश्र

और शचीमाता का जिस प्रकार वात्सल्य भाव था, श्रीजगदीश पण्डित प्रभु और दुःखिनी माता का भी निमाई के प्रति उसी प्रकार का वात्सल्यभाव था। दुःखिनी माता निमाई को अपना दूध भी पिलाया करती थीं।

यशोदानन्दन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही शचीसुत निमाई के रूप में आविर्भूत हुए थे। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के पार्षदभक्तों के बिना निमाई को पुत्र रूप में स्नेह करने का परम सौभाग्य लाभ होना संभव नहीं हो सकता। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु श्रीमन्महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे, यह उन्होंने अपनी बाल्यलीला में छल के द्वारा प्रदर्शित किया है। संकीर्तन पिता श्रीमन्महाप्रभु बाल्यलीला के छल से सब को हरिनाम कराते थे। शचीमाता और अन्यान्य सभी स्त्रियाँ जब हाथ से ताली बजाकर हरिनाम कीर्तन करती थीं तो तब ही शिशु निमाई का क्रन्दन रूकता था।

एक दिन एकादशी तिथि में श्रीजगन्नाथ मिश्र, श्रीशचीमाता एवं अन्यान्य सबके सब हरिनाम कीर्तन कर रहे थे, तब भी शिशु निमाई का रोना रुक नहीं रहा था तो वे अत्यन्त विचलित हो गए तथा स्नेहासिक्त होकर निमाई को कहने लगे—

("बच्चा तूइ कि चास्, कि दिले तोर क्रन्दन थाम्बे बल")।

(अर्थात् बेटे! तू चाहता क्या है, क्या चीज़ दूं जो तू चुप हो जाए?)

शिशु ने कहा-"आज एकादशी तिथि है तथा श्रीजगदीश पण्डित के घर में आज जो विष्णु नैवैद्य (भगवान का भोग) तैयार किया गया है वह 'मैं" खाना चाहता हूँ। उसको खाने से मेरा रोना बन्द हो जाएगा।"

सुनकर तो श्रीजगन्नाथ मिश्र विस्मित हो गए, आज एकादशी तिथि है, ये इस बच्चे को कैसे मालूम हुआ? व एकादशी में श्रीजगदीश पण्डित ने विष्णु के नैवेद्य तैयार किया हैं, इसे कैसे पता लगा?

तभी जगन्नाथ मिश्र जी श्रीजगदीश पण्डित के घर गये। उनके घर में विष्णु के नैवेद्य का विपुल आयोजन देखकर जगन्नाथ मिश्र आश्चर्यचकित हो गए। पुत्र के नैवेद्य ग्रहण की इच्छा एवं ग्रहण नहीं करने से उसका क्रन्दन रुकेगा नहीं.......... इत्यादि सब बात बतायी, निमाई विष्णु का नैवेद्य ग्रहणकरना चाहता है अर्थात् खाना चाहता है, यह पुत्र के पक्ष में अकल्याणकर हो सकता है, इस प्रकार के भय की बात भी जगन्नाथ मिश्र ने व्यक्त की। नित्यपार्षद श्रीजगदीश पण्डित प्रभु ने अनुभव किया कि नन्दनन्दन श्रीगोपाल जी ने ही निमाई के रूप में इसे ग्रहणकरने की इच्छा की है। उन्होंने कोई भी शंका व द्विधा ना करके साथ-साथ श्रीजगन्नाथ मिश्र को समस्त नैवेद्य अर्पण कर दिए। सारे नैवेद्य लेकर जगन्नाथ मिश्र जी घर आए और सारे के सारे नैवेद्य उन्होंने निमाई के आगे रख दिये। भक्त के प्रदत्त नैवेद्य पाकर शिशु का क्रन्दन रुक गया। निमाई परमानन्द के साथ उसको खाने लगे—

"जगदीश पण्डित, आर हिरण्य महाशय।

यारे कृपा कैल बाल्ये प्रभु दयामय॥

एइ दुइ-घरे प्रभु एकादशी दिने।

विष्णुर नैवेद्य मागि' खाइल आपने॥"

(चै.च.आ. 10/70-71)

(दयामय गौरहरि जी ने अपनी बाल्यलीला में ही जिन पर कृपा कि-वे हैं श्रीजगदीश पण्डित और हिरण्य महाशय, इन दोनों के घर में महाप्रभु जी ने एकादशी के दिन मांग कर विष्णु भगवान का नैवेद्य खाया था।)

"श्रीजगदीश पण्डित हय जगत्-पावन।

कृष्णाप्रेमामृत वर्षे, येन वर्षा घन॥"

(चै.च.आ. 11/30)

(श्रीजगदीश पण्डित जगत को पावन करने वाले हैं, ये घने बादलों की तरह कृष्णा-प्रेम की वर्षा करते हैं।)

श्रीचैतन्य भागवत आदि लीला के चतुर्थ अध्याय में ये लीला वर्णित है—

"भक्तेर द्रव्य प्रभु काड़ि-काड़ि खाय।

अभक्तेर द्रव्य पाने उलटी ना चाय॥"

(भक्त की वस्तु प्रभु छीन-छीन कर खाते हैं और अभक्त की वस्तु को मुड़कर देखना भी नहीं चाहते।)

श्रीमन्महाप्रभु जिस प्रकार श्रीजगदीश पण्डित प्रभु की विशुद्धभक्ति के वशीभूत थे, श्रीमन्महाप्रभु के अभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु भी उसी प्रकार की श्रीजगदीश पण्डित प्रभु के प्रेम में वशीभूत होकर उन्हें अपना निजजन मानकर उनसे अत्यन्त प्रीति करते थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीजगदीश पण्डित के प्राण थे।

"जगदीश पण्डित परम ज्योतिर्धाम।

सपार्षदे नित्यानन्द यार धन प्राण॥"

श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जब पानिहाटी में चिड़ादधि (दही व चिड़वा) का महोत्सव किया था, उस समय श्रीजगदीश पण्डित प्रभु भी वहाँ उपस्थित थे।

श्रीमन्महाप्रभु जी के निर्देश से परवर्तीकाल में श्रीजगदीश पण्डित प्रभु,कृष्ण-भक्ति और युगधर्म- हरिनाम संकीर्तन के प्रचार के लिए नीलाचल गए थे। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण, श्रीजगन्नाथ मिश्र तनय श्रीगौरहरि और श्रीजगन्नाथ एक ही तत्व है। पुरुषोत्तम धाम में श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन करके श्रीजगदीश पण्डित प्रभु प्रेम में आप्लावित हो गए तथा वहाँ से लौटते समय वे जगन्नाथ जी के विरह में व्याकुल हो गये। **पूरी में लाख-लाख व्यक्ति श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन को जाते हैं, किन्तु लौटते समय क्या किसी की भी विरह- व्याकुलता देखी जाती है?**

हो सकता है किसी भाग्यवान् जीव के वह भाव उदित हों। वास्तव में जिसके हृदय में वह विरह-व्याकुलता होती है, उसके प्रति ही श्रीजगन्नाथ देव की यथार्थ कृपा वर्षित हुई है, ऐसा प्रमाणित होता है, नहीं तो

प्रमाणित नहीं होता कि उस पर जगन्नाथ जी की यथार्थ कृपा हुई अर्थात् श्रीजगदीश पण्डित प्रभु विरह-व्याकुल होकर क्रन्दन करते रहे तो श्रीजगन्नाथ देव जी ने कृपा परवश होकर स्वप्न में उन्हें निर्देश दिया कि वे उनका श्रीविग्रह लेकर सेवा करें। तत्कालीन महाराज को श्रीजगन्नाथ देव जी ने नव-कलेवर के समय उनका समाधिस्थ विग्रह श्रीजगदीश पण्डित को देने के लिए निर्देश दिया। महाराज, जगदीश पण्डित प्रभु से मिल कर अपने आपको सौभाग्यवान समझने लगे। उन्होंने श्रीजगन्नाथ देव जी का समाधिस्थ विग्रह श्रीजगदीश पण्डित प्रभु को अर्पण किया। जगदीश पण्डित प्रभु ने श्रीजगन्नाथ देव जी से जिज्ञासा की कि वे उनके भारी विग्रह को किस प्रकार वहन करके जाएंगे तो श्रीजगन्नाथ देव जी उन्हें इस प्रकार निर्देश दिया कि वे शोला* की भान्ति हल्के हो जाएँगे और उन्हें नए वस्त्र द्वारा आवृत्त करके एक लाठी के सहारे कन्धों पर रख कर वाहन करना होगा तथा जहाँ पर स्थापन करने की इच्छा हो, वहीं पर ही रखना होगा। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु अपने संगी ब्राह्मणों की सहायता से श्रीमूर्ति वहन करते हुए चक्रदह (पश्चिम बंगाल) के अन्तर्गत गंगा के तटवर्ती यशड़ा श्रीपाठ में आकर उपस्थित हुए।

श्रीजगदीश पण्डित प्रभु एक ब्राह्मण व्यक्ति के कन्धों पर श्रीजगन्नाथ देव को रख कर गंगा में स्नान-तर्पण के लिए गए कि अकस्मात् श्रीजगन्नाथ देव अत्यन्त भारी हो गए। सेवक उन्हें कन्धे पर रखने में असमर्थ हो गया अतः उसने उन्हें जमीन पर उतार दिया। जगदीश पण्डित प्रभु स्नान-तर्पण के बाद जब वापस आए तो जगन्नाथ जी का ज़मीन पर अवतरण देखकर समझ गए कि श्रीजगन्नाथ देव जी ने यहीं पर ही अवस्थान करने की इच्छा की है।

चक्रदह एक ऐतिहासिक पवित्र स्थान है। पौराणिक युग में यह स्थान "रथवर्म" नाम से प्रसिद्ध था। द्वापर के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र श्रीप्रद्युम्न ने एक बार शम्बरासुर का इसी स्थान पर वध किया था। उसके बाद से इसने 'प्रद्युम्न नगर' नाम से प्रसिद्धि लाभ की, परवर्तीकाल में सगर वंश के उद्धार-के लिये श्रीभागीरथ जब गंगा जी को ला रहे थे तो उस समय उक्त स्थान में उनका रथ का पहिया (चक्र) धँस गया था इसलिए यह 'प्रद्युम्न नगर' चक्रदह नाम से प्रचारित हुआ। अब यह स्थान 'चाकदह' नाम से जाना जाता है।

---

*शोला-एक जल का पौधा जिसका तना सुखाने से बहुत हल्का हो जाता है।

श्रीजगन्नाथ देव जी पुरुषोत्तम धाम से यशड़ा श्रीपाट में आ गए हैं-ये खबर जब चारों और प्रचारित हुई तो अगणित नर-नारी यशड़ा श्रीपाट में श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के लिए आने लगे। श्रीजगन्नाथ देव जी के यशड़ा श्रीपाट में रहने के कारण श्रीजगदीश पण्डित प्रभु ने अपने घर मायापुर में न जाकर यशड़ा में ही अवस्थान करने का संकल्प लिया। श्रीजगन्नाथ की मूर्ति पहले गंगा जी के किनारे एक वट वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठित थी, बाद में गोयाड़ी कृष्ण नगर के राजा श्रीकृष्णचन्द्र के सहयोग से वहाँ पर एक मन्दिर निर्मित हुआ।

उक्त मन्दिर के जर्जर होने पर उमेश चन्द्र मजूमदार महोदय जी की सहधर्मिणी मोक्षदा दासी ने श्रीमन्दिर का पुनः संस्कार किया। मन्दिर चूड़ा-रहित व साधारण गृह के आकार जैसा है। श्रीमन्दिर में श्रीजगन्नाथ देव, श्रीराधा बल्ल्भ जी व श्रीगौर गोपाल विग्रह विराजित हैं। जिस लाठी के सहयोग से श्रीजगदीश पण्डित जी पूरी से श्रीजगन्नाथ विग्रह लाए थे वह लाठी अब भी श्रीजगन्नाथ मन्दिर में सुरक्षित है।श्रीजगन्नाथ देव जी की सेवा के लिए भक्तगणों के दान से प्रचुर ज़मीन-जायदाद हुई थी परन्तु बाद में श्रीजगदीश पण्डित प्रभु के अधस्तन सेवायतगणों ने मन्दिर की परिचालना का खर्च चलाने के लिए धीरे-धीरे उन ज़मीनों को बेच दिया। यहाँ श्रीजगन्नाथ देव जी की रथयात्रा नहीं होती। परन्तु यहाँ श्रीजगन्नाथ

देव जी के स्नान-यात्रा का उत्सव प्रतिवर्ष विशेष समारोह के साथ सम्पत्र होता है। बड़े विशाल मैदान में स्नान- यात्रा की श्रीवेदी है।

श्रीजगन्नाथ जी की स्नान-यात्रा तिथि में वे मूल मन्दिर से उक्त वेदी पर शुभ विजय करते हैं अर्थात् आते हैं तथा वहीं पर स्नान-यात्रा महोत्सव सम्पन्न होता है। मैदान में मेला लगता है व वहाँ पर अगणित नर-नारियों की भीड़ होती है। यशड़ा में श्रीजगन्नाथ जी के मेले की प्रसिद्धि आज तक विद्यमान है।

पाँच सौ साल पुराना जीर्ण दोलमंच भी है। श्रीराधा-वल्लभ जी उक्त दोल मंच पर शुभ विजय करते हैं अर्थात् विराजित होते हैं। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु और उनकी सहधर्मिणी के वात्सल्य प्रेम से आकृष्ट होकर श्रीगौरांग महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु जी ने यशड़ा श्रीपाट में दो बार शुभ पदार्पण किया था वह इन अवसरों पर संकीर्तन विहार व महोत्सव भी किए।

जिस समय श्रीमन् महाप्रभु यशड़ा से नीलाचल में जाने के लिए उद्यत हुए थे तो दुःखिनी माता विरहकातर होकर क्रन्दन करने लगी तब महाप्रभु जी ने श्रीगौर गोपाल विग्रह रूप में वहाँ विराजित रहने के लिए स्वीकार किया। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु ने गृहस्थ लीला का अभिनय किया था।श्रीरामभद्र गोस्वामी उनके पुत्र रूप में प्रकटित हुए थे।

कालना के सिद्ध भगवान् दास बाबा जी महाराज ने कुछ दिन यशड़ा श्रीपाट में अवस्थान करके वहाँ भजन किया था। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु जी के तिरोभाव दिवस-पौषी तृतीया तिथि में यशड़ा श्रीपाट में वार्षिक महोत्सव होता है। श्रीजगदीश पण्डित का आविर्भाव तिथि पौषी शुक्ला द्वादशी है।

श्रीजगदीश पण्डित जी के श्रीपाठ की सेवा वर्तमान में श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान द्वारा परिचालित हो रही है। “श्रीचैतन्य वाणी" पत्रिका के दूसरे वर्ष की नवम् संख्या में उक्त सेवा प्राप्ति विषय निम्न रूप में वर्णित है। भक्त-प्रेमवश्य, भक्त-वत्सल भगवान् अपने भक्त की सेवा ग्रहणकरने के लिए भला कौन से छल का अवलम्बन नहीं करते? भगवान् एकान्त भाव से जिसे सेवा देना चाहते हैं, उसके लिए लीलामय श्रीहरि कितनी लीलाएँ प्रकट करते हैं, इसके बारे में क्या कह सकते हैं?

जिन गोविन्द की सेवा के लिए सैकड़ों-सैकड़ों लक्ष्मियाँ हमेशा तैयार रहती हैं, लीला में कभी-कभी उनको भी सेवकों का अभाव हो जाता है व ऐसा लगता है मानों उनकी सेवा में विघ्न हो रहा हो। श्रीगोवर्धनधारी गोपाल जी ने अपने प्रिय भक्त श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद जी की सेवा स्वीकार करने के लिए उनके पूर्व सेवकों को म्लेच्छों का भय दिखला कर उनके (सेवकों के) कन्धों पर चढ़कर श्रीगोवर्धन पर्वत के ऊपर जंगल के अन्दर आगमन किया व पूरीपाद जी की सेवा का इंतज़ार करने के लिए वहाँ अवस्थान किया इत्यादि—

“बहुदिन तोमार पथ करि निरीक्षण।

कबे आसि’ माधव आमा करिबे सेवन॥”

(चै.च.म. 4/39)

(गोपाल जी माधवेन्द्रपुरी पाद जी को सम्बोधित करते हुये कहते हैं-हे माधवेन्द्र! मैं बहुत दिनों से तुम्हारा इंतज़ार कर रहा था और सोच रहा था कि कब माधव आकर मेरी सेवा करेगा?)

लीलामय श्रीहरि की इस प्रकार न जाने कितनी लीलाएँ हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु के पार्षद, श्रील जगदीश पण्डित ठाकुर एवं उनकी भक्तिमती पत्नी दुःखिनी माता के स्वहस्त सेवित श्रीश्रीजगन्नाथ देव और श्रीगौर गोपाल विग्रहों ने जैसे उनकी सेवा ग्रहण की, ठीक इसी प्रकार एक अपूर्व लीला ढंग से उन्होंने भक्तराज त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद् भक्ति दयित माधव महाराज जी की सेवा भी अयाचित भाव से अंगीकार की। श्रीजगदीश पण्डित प्रभु की वंश-परम्परा में अधस्तनगण श्रीविश्वनाथ गोस्वामी, श्रीशम्भुनाथ मुखोपाध्याय और श्रीमृत्युन्जय मुखोपाध्याय महोदय आर्थिक अवस्था से उन्नत न थे। इसी कारण श्रीविग्रहों की नित्य-नैमित्तिक रूप से होने वाली सेवा-परिचालना व वार्षिक सेवानुष्ठान तथा जीर्ण होते मन्दिर का पुनः संस्कार न करवा पाने पर यशड़ा के पांचु ठाकुर महाशय और राणाघाट के श्रीसंतोष कुमार मल्लिक की प्रेरणा से गत सन् 1962 में उनके द्वारा यशड़ा श्रीपाट की सेवा श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता ॐ 108 श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी के श्रीहस्तों में सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर दी गयी। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता ने सेवा ग्रहणकरने के साथ-साथ श्रीमन्दिर के जीर्णोद्वार और नविन गृह आदि निर्माण एवं लाइट इत्यादि की व्यवस्था के लिए बहुत रुपया खर्च किया।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के प्रतिष्ठाता अस्मदीय परमाराध्या श्रील गुरुदेव जी ने यशड़ा श्रीपाट की सेवा प्राप्ति के बाद प्रथम वार्षिक महोत्सव के लिए समय मैदान में बैठ कर हज़ारों-हज़ारों नर-नारियों का महाप्रसाद के द्वारा जिस भाव से स्वागत किया था व उससे जिस आनन्द का आप्लावन हुआ, उसे स्मरण करके आज भी सब पुलकित हो उठते हैं।

****

श्रील महेश पण्डित

"महेशपण्डितः श्रीमान्महाबाहुर्व्रजे सखा"

(गौ. ग. दी. 129)

ये द्वादश गोपालों में से एक 'महाबाहुसखा' नाम के सखा हैं। पहले इनका श्रीपाट जीराट के पूर्व की तरफ मसिपुर में था। मसिपुर के गंगा में चले जाने से इनका श्रीपाट वहाँ से सुख-सागर के नज़दीक बेलेडाङ्गा में स्थानान्तरित हुआ। गंगा

के टूट जाने से, बेलडांगा का श्रीपाट भी गंगा के अन्दर चले जाने से वह 1334 बंगाब्द में पालपाड़ा में अवस्थित हुआ। पालपाड़ा पांचनगर ज़िला के हिस्से के अन्तर्गत है। आखिर में श्रीपाट चाकदह के निकट काठालपुलि में स्थानान्तरित हुआ। (श्रील प्रभुपाद का अनुभाष्य चै च आदि 11/321)

ये चैतन्य शाखा और नित्यानन्द शाखा दोनों में ही गिने जाते हैं। किसी-किसी का कहना है की श्रीमहेश पण्डित यशड़ा के श्रीजगदीश पण्डित के छोटे भाई हैं। ये जगदीश, हिरण्य और महेश नाम के तीन भाई थे।

श्रीमहेश पण्डित जी ने श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के साथ पाणिहाटि महोत्सव में योगदान किया था एवं उत्सव के बाद श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के साथ सप्तग्राम में भी गए थे। श्रील नरोत्तम ठाकुर जिस समय खड़दह में आये थे, उस समय महेश पण्डित जी भी वहाँ उपस्थित थे—

"**महेश पण्डित आसि अतिशय स्नेहे।**

नरोत्तमे विदाय करिया स्थिर नहे॥"

(भक्ति रत्नाकर 8/220)

अर्थात महेश पण्डित जी ने आकर बड़े स्नेह के साथ श्रीनरोत्तम जी को विदा तो कर दिया परन्तु उसके बाद वे उनके विरह में रोते ही रहे, स्थिर नहीं हो पाये।

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जिस प्रकार से पतित-पावन और उदार थे, उनके पार्षद श्रीमहेश पण्डित जी ने भी उसी प्रकार अत्यन्त उदार एवं पतित-पावन होकर जीवोद्धार का कार्य किया। आप कृष्णा-प्रेम में उन्मत्त होकर नृत्य करते थे।

"**महेश पण्डित-ब्रजेर उदार गोपाल।**

चक्कावाद्ये नृत्य करे प्रेमे मातोयाल॥"

(चै.च.आ. 11/32)

अर्थात महेश पण्डित जी व्रज के एक उदार प्रकृति के ग्वाले हैं, जो कि श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए प्रेम में मतवाले होकर फिरकी की भाँति बढ़ी तीव्र गति से घूम-घूमकर नृत्य करते थे।

श्रीचैतन्य भागवत में भी श्रीमहेश पण्डित जी की कथा वर्णित है।

"**महेश पण्डित अति परम महन्त।**"

(चै.भा.अ. षष्ट अध्याय)

इनके श्रीपाट का मन्दिर साधारण गृह के आकर में अभी भी है। जीर्ण- शीर्ण मन्दिर में श्रीगौर-नित्यानन्द मूर्ति है। श्रीगोपीनाथ, श्रीमदन मोहन, श्रीराधा- गोविन्द और श्रीशालग्राम भी विराजित हैं। मन्दिर के सामने महेश पण्डित जी की फूलों की समाज- वेदी है।

पौषी कृष्णा-त्रयोदशी तिथि में श्रीमहेश पण्डित जी ने तिरोधान लीला की ।

****

श्रीगौरीदास पण्डित

सुबलो यः प्रियश्रेष्ठः स गौरीदास पण्डितः।

(गौ. ग. दी. 128)

श्रीगौरीदास पण्डित द्वादश गोपालों के अन्तर्गत श्रीसुबल सखा थे। ये श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के अन्यतम मुख्य पार्षदों में से एक थे—

"गौरीदास पण्डित-परमभाग्यवान्।

कायमनोवाक्ये नित्यानन्द याँ'र प्राण॥"

(चै.भा.अ. 5/730)

पहले ये मुरागाछा स्टेशन के समीपवर्ती शालिग्राम नामक गाँव में निवास करते थे। बाद में इन्होंने वर्द्धमान ज़िला के अम्बिका कालना में जाकर स्थायी रूप से वास किया। अम्बिका कालना में रहने से इनके इसी श्रीपाट की प्रसिद्धि हुई। श्रीकंसारि मिश्र इनके पिता और कमला देवी इनकी माता थीं। श्रीकंसारी मिश्र वत्स गोत्रीय थे और इनकी पदवी घोषाल थी। कंसारि मिश्र के छः पुत्रों में चौथे पुत्र थे, श्रीगौरीदास पण्डित। श्रीदामोदर, श्रीजगन्नाथ और सूर्यदास सरखेल, गौरीदास पण्डित के तीनों बड़े भाईयों में से श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीवसुधा और श्रीजाह्नवा के पिता थे, श्रीसूर्यदास सरखेल। गौरीदास पण्डित के दो कनिष्ठ भाईयों के नाम थे, श्रीकृष्णदास सरखेल और श्रीनृसिंह चैतन्य।

"सरखेल सूर्यदास पण्डित उदार।

ताँर भ्राता गौरीदास पण्डित प्रचार॥

शालिग्राम हैते ज्येष्ठ भ्राताय कहिया।

गंगातीरे कैला वास अम्बिका आसिया॥"

(भक्ति रत्नाकर 7/330-337)

गौरीदास पण्डित एवं उनके शिष्य श्रीहृदय चैतन्य का केवलमात्र शिष्य शाखावंश है। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है कि गौरीदास पण्डित की पत्नी विमला देवी को अवलम्बन करके दो पुत्र हुए। दोनों पुत्रों के नाम थे बलराम और रघुनाथ। शौक्रवंश की प्रामाणिकता न होने से श्रील.भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ने उसे स्वीकार नहीं किया। श्रील सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अपने अनुभाष्य में इस प्रकार लिखा है –गौरीदास के शिष्य हृदय चैतन्य, हृदय चैतन्य के शिष्य (अन्नपूर्णा देवी के पुत्र) गोपीरमण थे। इनकी वंशावली के लोग आजकल कालना के महाप्रभु जी के मन्दिर के अधिकारी हैं। श्रीगौरदास पण्डित के पीठ स्थान में जो मन्दिर विद्यमान है, उसके प्रकोष्ठों में श्रीगौरीदास, श्रीराधा-कृष्ण, श्रीगौर नित्यानन्द, श्रीजगन्नाथ, श्रीबलराम, श्रीराम-सीता के श्रीविग्रह विराजमान हैं। श्रीगौरीदास पण्डित के मंदिर में प्रवेश करने के रास्ते में एक अपूर्व इमली का पेड़ है। ऐसा कहा जाता है कि उक्त इमली के वृक्ष के नीचे ही महाप्रभु जी के साथ श्रीगौरदास पण्डित जी का मिलन हुआ था।

"देवादिदेव गौरचन्द्र गौरीदास मन्दिरे।

गौरीदास मन्दिर प्रभु अम्बिकाते विहरे॥"

(प्राचीन पद)

गौरीदास पण्डित जी का श्रीमन्दिर अम्बिका में स्थित है। अम्बिका के उत्तर में कालना है। इन दोनों के युक्त होने पर इसका नाम अम्बिका-कालना हो गया है। श्रीमन्दिर में श्रीमन्महाप्रभु का हाथ से चलने वाला नाव का चप्पू और उनकी हस्तलिखित गीता दिखायी जाती है-

"एकदिन शांतिपुर हैते गौर राय।

गंगा पार हैया आइलेन अम्बिकाय॥

पण्डिते कहय शान्तिपुर गियाछिलु।

हरिनदी ग्रामे आसि नौकाय चड़िलु॥

गंगा पार हैलु-नौका बाहिरे बैठाय।

एइ लह बैठा-एवे दिलाम तोमाय॥

भवनदी हैते पार करह जीवेरे।

एत कहि आलिंगन कैला पण्डितेरे॥"

(भक्ति रत्नाकर 7/333-336)

"प्रभुदत्त गीता, बैठा प्रभु सन्निधाने।

अद्यापिह अम्बिकाय देखे भाग्यवाने॥"

(भक्ति रत्नाकर 7/341)

अर्थात एक दिन श्रीमन् महाप्रभु गौर राय जी गंगा जी को पार करके अम्बिका पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर महाप्रभु जी गौरीदास जी को कहते हैं-मैं शान्तिपुर गया था और वहीं से इस गंगा जी को पार करने के लिए मैं हरिनदी गाँव से नाव में चढ़ा, परन्तु जब मैं नदी पार करके उतरा तो मैंने नाव का चप्पू निकाल लिया, जिसे मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। आप ये चप्पू लो और जैसे मैंने इस नदी को पार किया, उसी प्रकार आप भी जीवों को इस विशाल भव-नदी से पार करवाओ। इतना कहकर महाप्रभु जी ने श्रीगौरीदास पण्डित जी को आलिंगन कर लिया।

आज भी जो लोग अम्बिका जाते हैं, उन्हें महाप्रभु जी के हाथों से गौरीदास जी को दी गयी श्रीमद् भगवद्-गीता व नाव का चप्पू दर्शन करने का सौभाग्य मिलता है।

पतितपावन श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जिस प्रकार अधिकार व अनाधिकार का विचार न करते हुए सर्वत्र प्रेम प्रदान में उन्मत्त रहते थे, श्रीनित्यानन्द जी के पार्षद श्रीगौरीदास पण्डित जी में भी उसी प्रकार की महाशक्ति प्रकट हो गयी थी—

"श्रीगौरीदास पण्डिते प्रेमद्दंडभक्ति।

कृष्ण प्रेमादिते, निते, धरे महाशक्ति॥

नित्यानन्दे समर्पिल जाति-कुल पाँति।

श्रीचैतन्य-नित्यानन्दे' प्राणपति॥"

(चै.च.आ. 11/26-27)

श्रीगौरीदास पण्डित जी के घर की पश्चिम दिशा में श्रीसूर्यदास पण्डित का मन्दिर तथा उससे कुछ ही दूरी पर श्रीभगवानदास बाबा जी का आश्रम स्थित है।

अम्बिका कालना में श्रीगौरीदास पण्डित जी की एक अलौकिक महिमा की बात सुनी जाती है- श्रीमानमहाप्रभु जी ने जिस समय हरिनदी ग्राम से नौका की पतवार (चप्पू) चला कर अम्बिका में गौरीदास पण्डित के घर शुभागमन करते हुए इमली के वृक्ष के नीचे आसन ग्रहण किया था, तब गौरीदास पण्डित जी ने श्रीमन्महाप्रभु से वहाँ चिरदिन ठहरने के लिए प्रार्थना की थी। भक्त की इच्छा पूरी करने के लिए सामने के नीम के वृक्ष की लकड़ी से श्रीमन्महाप्रभु ने अपने और श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के दो विग्रह प्रकट किये और यह भी सुना जाता है कि श्रीविग्रह के निर्माण के समय श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु भी वहाँ साक्षात् भाव से उपस्थित थे। गौरीदास पण्डित की अनन्यनिष्ठ शुद्धा भक्ति से वशीभूत होकर उनके द्वारा दिए हुए पदार्थों को, श्रीगोर- नित्यानन्द के विग्रहों ने साक्षात् भाव से भोजन भी किया था। श्रीगौरांग महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु के वहाँ से चले जाने के लिए उद्यत होने पर, गौरीदास पण्डित ने विरह व्याकुल मन से उनके जाने में बाधा उत्पन्न की तो श्रीमन्महाप्रभु जी गौरीदास पण्डित को दिलासा देते हुए बोले-"हम साक्षात् भाव से तथा विग्रह रूप में प्रकटित हैं। इन दोनों युगलों में से जिस युगल को तुम ठहरने के लिए बोलोगे वही युगल ठहरेगा और दूसरा चला जायेगा।" इस पर गौरीदास पण्डित ने विग्रह युगल को जाने के लिए कहा और उन दोनों को रहने के लिए कहा। गौरीदास पण्डित की इच्छापूर्ति के लिए विग्रह युगल चले गए तथा श्रीगोर- नित्यानन्द श्रीमन्दिर में विराजमान रहे—

'नाम' 'विग्रह' 'स्वरूप', तिन एकरूप।

तिने 'भेद' नाहि, तिन 'चिदानन्द रूप'॥ (चै.च. म. 17/131)

अर्थात भगवान के नाम, उनके विग्रह तथा उनके स्वरूप में कोई भेद नहीं है। श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखे इस वाक्य की सत्यता यहाँ प्रदर्शित हुई।

श्रीजाह्नवा देवी जी वृन्दावन में गौरीदास पण्डित की समाधि देखकर रोई थीं—

"गौरीदास पण्डितेर समाधि देखिते।

बहे वारिधारा नेत्रे नारे निवारते॥"

(भक्ति रत्नाकर 11/259)

अर्थात गौरी दास जी की समाधि को देखकर श्रीजाह्नवा देवी जी अति व्याकुल हो उठीं, उनके नेत्रों से बहने वाली अश्रु धाराएँ रुकने का नाम ही नहीं लेती थीं।

श्रावण मास की शुक्ला द्वादशी को श्रील गौरीदास पण्डित गोस्वामी जी का तिरोभाव हुआ।

****

श्रीजाह्नवा देवी

"श्रीवारुणी-रेवतवंशसम्भवे

तस्य प्रिये द्वे वसुधा च जाह्नवी।

श्रीसुर्यदासस्य महात्मनः सुते

ककुद्मिरूपस्य च सूर्यतेजसः॥

केचित् श्रीवसुधादेवीं कलावपि विवृण्वते।

अनङ्गमञ्जरीं केचिज्जाह्नवीञ्च प्रचक्षते।

अभयन्तु समीचीनं पूर्वान्यायात् सतां मतम्॥"

(गौ.ग.दी. 65-66)

'पहले जो बलदेव जी की पत्नियाँ वारुणी और श्वेतवंश में उत्पन्न रेवती थीं, वे ही इस अवतार में वसुधा एवं जाह्नवा नाम से नित्यानन्द की दोनों पत्नियाँ हुईं। यह दोनों सूर्य के समान तेजस्वी थी वह सूर्यदास की कन्याएँ थीं। यह सूर्यदास ही पहले रेवती के पिता ककुद्मी थे। कोई-कोई व्यक्ति कलियुग में श्रीवसुधादेवी को अनंगमंजरी और कोई-कोई श्रीजाह्नवादेवी को भी आनंगमंजरी कहते हैं। सज्जन व्यक्तियों के अनुसार पहले की भाँति यह दोनों ही प्रशंसा के योग्य हैं।'

श्रीजाह्नवा माता के पिता थे-श्रीसूर्यदास सरखेल। श्रीगोडी़य वैष्णव अभिदान में श्रीजाह्नवा माता की जननी रूप से 'भद्रवती' उल्लिखित हुई हैं। नवद्वीप से थोड़ी ही दूर शालिग्राम* में ही श्रीसू र्यदास सरखेल का श्रीपाठ है। सूर्यदास** सरखेल श्रीकंसारी मिश्र के तीसरे पुत्र थे।

श्रीकंसारी मिश्र के पहले और दूसरे पुत्र का नाम था-श्रीदामोदर और श्रीजगन्नाथ। सूर्यदास सरखेल के छोटे तीन भाई थे-श्रीगौरीदास, श्रीकृष्णदास सरखेल और श्रीनरसिंह चैतन्य।

"नवद्वीप हइते अल्पदूर शालिग्राम।

तथा वैसे पण्डित सूर्यदास नाम॥

गौड़े राजा यवनेर कार्ये सुसमर्थ।

---

*(पूर्वी रेलवे के मुरादाबाद स्टेशन के बिलकुल नज़दीक)

* श्रीगोड़ीय वेष्णव अभिधान (शब्दार्थ कोष) के वर्णन से जाना जाता है कि सूर्यदास सरखेल ने बाद में कालना में अपना निवास रखा था।

सरखेल'-ख्याति, उपार्जिल बहु अर्थ॥

सूर्यदास-चरिभ्राता अति शुद्धाचार।

सर्वत्र विदित ताहा काहिब कि-आर॥

श्रीसूर्यदासेर गुण कहिल ना हय।

वसुधा, जाह्नवा-नामे ताँर कन्याद्वय॥"

(भक्तिरत्नाकर 12 तरंग 3875-3878)

अर्थात नवद्वीप के नज़दीक ही शालिग्राम नाम का एक गाँव है जहाँ सूर्यदास जी रहते हैं। ये गोड़ देश के राजा के लगभग सभी कार्यों में बड़े सुनिपुण थे। वहीं से इन्होंने काफी धन कमाया तथा वहीं से इन्हें 'सरखेल' की उपाधि तथा प्रसिद्धि मिली। सूर्यदास जी के चार भाई थे जिनका आचरण बड़ा शुद्ध था। इनके भाइयों के विशुद्ध आचरण का चारों और प्रचार तो था ही किन्तु सूर्यदास जी में भी गुणों की कमी न थी। इनकी वसुधा और जाह्नवा नाम की दो कन्याएँ थीं।

सूर्यदास जी के भाई कृष्ण दास जी को श्रीनित्यानन्द जी के प्रति बड़ा प्रेम और दृढ़ विश्वास था। सूर्यदास जी को बताकर गौरीदास जी गंगा जी के किनारे अम्बिका में आकर रहने लगे थे –

"सूर्यदास सरखेल, ताँर भाइ कृष्णादास।

नित्यानन्दे दृढ़ विश्वास, प्रेमेर निवास॥"

(चै.च.आ 11/25)

"सरखेल सूर्यदास पण्डित उदार।

ताँर भ्राता गोरीदास पण्डित प्रचार॥

शालिग्राम हैते ज्येष्ठ भ्राताय कहिया।

गंगातीरे कैला वास अम्बिका आसिया॥"

(भक्तिरत्नाकर-7/330-31)

ऊपर कहे भक्तिरत्नाकर-ग्रन्थ के वर्णन अनुसार जाना जाता है कि श्रीसूर्यदास सरखेल का निवास 'शालिग्राम' में ही था। उनकी आज्ञा लेकर श्रीगौरीदास पण्डित अम्बिका कलना में आकर रहे थे।

श्रीनरहरि चक्रवती ठाकुर द्वारा रचित भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में श्रीजाह्नवादेवी का पावन चरित्र वर्णित हुआ है। विष्णु- तत्वमात्र की ही तीन शक्तियां विद्यमान हैं- 'श्री' 'भू' और 'नीला' या 'लीला'। भगवद तत्व-श्रीनित्यानन्द प्रभु में भी

उक्त तीन शक्तियों का प्रकाश दिखाई देता है। नरलीला के अनुरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु की विवाहलीला का विशेष विवरण भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ के द्वादश तरंग में लिपिबद्ध हुआ है। उकत वर्णन की संक्षिप्त सारकथा यह है- शालिग्राम के पास बड़गाछि ग्रामनिवासी कायस्थ कुल में उत्पन्न श्रीहरिहोड़ के पुत्र श्रीकृष्णदास ने श्रीनित्यानन्द प्रभु के विवाह की व्यवस्था की थी। श्रीसूर्यदास सरखेल को अपनी दो कन्याओं के विवाह के लिए चिन्तित देखकर एक वृद्ध ब्राह्मण ने उनकी दोनों कन्याओं के योग्य पात्र के विषय में बताने के लिए वहाँ पहुँचकर कहा- 'राढ़देश के एकचक्रा धाम में विप्रश्रेष्ठ श्रीहाड़ाइ पण्डित और उनकी पत्नी पद्मावती देवी रहते हैं जो कृष्णलीला में श्रीवासुदे व रोहिणी थे। बलदेव जी से अभिन्न नित्यानन्द प्रभु उनके पुत्ररूप से प्रकट हुए हैं। नित्यनन्द प्रभु ने बहुत-से तीर्थों में भ्रमण और तपस्या की है, वे महाविद्वान और चैतन्य महाप्रभु के प्रियतम है। श्रीनित्यानन्द प्रभु आपकी दोनों कन्याओं के नित्य पति हैं।' सूर्यदास सरखेल ने उक्त ब्राह्मण के निर्देश के अनुसार अपने दोनों कन्याओं-वसुधा और जाह्नवा को नित्यानन्द प्रभु के पादपद्मों में समर्पित कर दिया तथा विवाह के बाद नित्यानन्द प्रभु की कृपा से वसुधा, जाह्नवा को नित्यानन्द जी के बाँए और दाँये वारुणी और रेवती रूप में- जिसे उन्होंने पहले स्वप्न में दर्शन किया था, उसे पुनः साक्षात् रुप से दर्शन किया व परमानन्द से आत्म विस्मृत हो उठे –

"वसु-जाह्नवारे देखे वारूणी रेवती।

अंगछटा कनक कुंकुमपुंज जिति॥

बलदेव वामे दक्षिणेते किल क्लिसय।

विचित्र वसन भूषणादि शोभामय॥

भक्ते सुख दिते महा-ऐश्वर्य प्रकाश।

देखि आत्मविस्मरित हैला सूर्यदास॥"

(भक्तिरत्नाकर 12/3908-10)

श्रीकृष्णदास सरखेल के घर मे विवाह का अधिवासकृत्य एवं सूर्यदास सरखेल के घर शालिग्राम मे ही विवाह कार्य समपन्न हुआ। बड़गाछि और शालिग्राम के ब्राह्मण व सज्जनगण विवाह उत्सव मे समुपस्थित थे।

"लोक शास्त्रमते सुर्यदास भाग्यवान्।

नित्यानन्दचन्द्रे दुई कन्या कैल दान॥"

(भक्तिरत्नाकर 12/3987)

दुनियावी दृष्टि से व शास्त्रों की दृष्टि से सूर्यदास जी महाभाग्यवान हैं क्योंकि उन्होंने अपनी दोनों कन्याएँ नित्यानन्द जी को समर्पित कर दीं।

श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी की कृपा के बिना कोई भी भवसागर से उतीर्ण नहीं हो सकता। श्रीजाह्नवा देवी की कृपा के बिना कोई भी श्रीनित्यानन्द की सेवा तथा उनके ही आराध्य श्रीगोरहरि और श्रीराधा-कृष्णा की प्रेम-सेवा प्राप्त नहीं कर सकता,

"ओगो श्रीजाह्नवा देवि! ए दासे करूणा।

कर आजि निजगुणे घुचाओ यन्त्रणा॥

तोमार चरणतरी करिया आश्रय।

भवार्णव पा'र हब क'रेछि निश्चय॥

तुमि नित्यानन्द-शक्ति कृष्णाभक्ति-गुरु।

ए दासे करह दान पदकल्पतरु॥

कत कत पामरेरे क'रेछ उद्धार।

तोमार चरणे आज ए काङ्गाल छार॥" (कल्याणकल्पतरू)

अर्थात स्वरचित भजन मे श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि हे जाह्नवा देवी जी! आप इस दास पर करूणा कीजिए तथा आज ही अपनी कृपा से इसे तमाम दुःखों से बचा लीजिए। मुझे पूरा विश्वास है कि जो भी आपके चरणों का आश्रय लेगा, आप उसे भवसागर से पार कर देंगी। आप श्रीमन् नित्यानन्द जी की शाक्ति हो तथा कृष्णा-भक्ति की गुरु हो। आप कृपा करके तमाम इचछाओं को पूर्ण करा देने वाले अपने चरण-कल्प-तरूओं को मुझे प्रदान कर दीजिए। आपने न जाने कितने पतितों का उद्धार किया है इसलिए आज ये तुच्छ कंगाल भी, आपके चरणों में प्रर्थना कर रहा है।

भक्तवर श्रीकृष्णदास ने अपने रचित 'जय राधे जय कृष्णा जय वृन्दावन' कीर्तन में कृष्णनाम, कृष्ण धाम और कृष्ण-पार्षदगण की महिमा के समय, अन्त में श्रीजाह्नवा देवी की इस प्रकार से कृपा प्रार्थना की है –

'श्रीजाह्नवा-पादपद्म करिया स्मरण।

दीन कृष्णदास कहे नामसंकीर्तन॥'

अर्थात कृष्ण दास जी कहते हैं कि श्रीजाह्नवा देवी के पादपद्मों को स्मरण करता हुआ ये दीन कृष्णदास हरिनाम संकीर्तन करता है।

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु ने विवाह लीला के बाद श्रीशचीमाता की इच्छानुसार शान्तिपूर में श्रीअद्वैताचार्य के घर में व पश्चात् सप्तग्राम में श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर के भवन में कुछ समय अवस्थान करके, गंगा के पास ही खड़दह में आकर निवास किया था। श्रीजाह्नवा देवी की कोई सन्तान न हुई। श्रीक्षीरोदकशायी विष्णु एवं साक्षात् श्रीगंगादेवी ही श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीवसुधा को अवलम्बन करके पुत्र और कन्या रूप में प्रकट हुये-पुत्र श्रीवीरभद्र गोस्वामी या श्रीवीरचन्द्र गोस्वामी तथा कन्या श्रीगंगा।

*गौरगणोद्देशदीपिका के वर्णनासार श्रीगंगा के पति श्रीमाधवाचार्य साक्षात् श्रीशान्ततनु राजा के अवतार हैं। श्रीवीरचन्द्र प्रभु श्रीजाह्नवा माता की कृपाशक्ति प्राप्त, दीक्षित शिष्य है। श्रीनित्यानन्द दास द्वारा रचित प्रेमविलास ग्रन्थ के वर्णन के अनुसार जाना जाता है कि वीरचन्द्र प्रभु को श्रीजाह्नवा माता जी का चतुर्भुज रूप में दर्शन हो गया जिससे उनका मन बदल गया तथा उन्होंने जाह्नवा माता जी से दीक्षा ले ली।

---

*'सङ्कर्षणस्य यो व्युहः पयोब्दिशायिनामकः। स एव वीरचन्द्रोऽभूच्चैतन्याभिन्नविग्रहः॥' (गौ. ग. दी.67)

'पयोब्दिशायि नामक संकर्षण के जो व्यूह थे, वे चैतन्य के अभिन्न विग्रह हैं तथा अभी वे ही नित्यानन्दात्मज वीरचन्द्र के नाम से परिचित हुये है।

खेतुरीधाम में फाल्गुनी-पूर्णिमा तिथि पर हुए श्रील नरोत्तम ठाकुर के श्रीविग्रह प्रतिष्ठा महोत्सव में श्रीजाह्नवादेवी उपस्थित थी एवं उनके ही निर्देशानुसार प्रतिष्ठा का सब कार्य सम्पन्न हुआ था। श्रीजाह्नवादेवी ने स्वयं रसोई बनाकर भगवान को भोग निवेदन किया तथा महन्तगणों को स्वयं परिवेशन करके खिलाया था –

"श्रीजाह्नवा ईश्वरी परम हर्ष हैया।

प्रातः काले करिलेन स्नानाह्निक क्रिया॥

परम उत्साहे कैल अपूर्व रन्धन।

अन्न व्यंजनादि यत ना हय वर्णन॥"

(भक्तिरतनाकर 10/686-87)

अर्थात श्रील नरोत्तम ठाकुर जी के विग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव में जाह्नवा देवी जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रातः उठकर अपना स्नान व अह्निक आदि क्रियाएँ पूर्ण कीं। उनके बाद उन्होंने बड़े उत्साह के साथ महोत्सव के लिए रसोई की। इस महोत्सव में उन्होंने कितने प्रकार के व्यंजन बनाए, उनका वर्णन करना बड़ा मुश्किल है।

"गोड़देशे गौराङ्गेर प्रिय परिकर।

नरोत्तमे देखि सबे आनन्द अन्तर॥

श्रीजाह्नवादेवी सूर्यपण्डित-दुहिता।

नित्यानन्द-प्रेयसी ये जगते पूजिता॥"

प्रेमभक्तिरत्न-प्रदाने प्रवीणा येह।

श्रीठाकुर महाशय नामे हृष्ट तेंह॥

देखिया अलौकिक प्रेम वैराग्य प्रबल।

श्रीजाह्नवादेवी महा-आनन्दे विह्लल॥

कृपा-करि श्रीखेतरी ग्रामेते आसिया।

करये सबारे तृप्त सन्दर्शन दिया॥

श्रीमती जाह्नवादेवीर अनुग्रह यत।

मो छार पामर ताहा वर्णिव वा कत॥

(भक्तिरत्नाकर 1/429-34)

श्रीभक्तिरत्नाकर के एकादश तरंग में श्रीजाह्नवा देवी का भ्रमण वृत्तान्त लिखित हुआ है। उन्होंने खेतुरीधाम से वृन्दावन जाने के रास्ते में पड़ने वाले बद्विष्णु ग्राम में एक पाखण्डी डाकू को कृष्णप्रेम प्रदान करके उसका उद्धार किया था। श्रीजाह्नवादेवी ने वृन्दावन में पहुँचकर गौरीदास पण्डित की समाधि देखकर क्रन्दन किया था।

'गोरीदास पण्डितेर समाधि देखिते।

वहे वारिधारा नेत्रे, नारे निवारिते॥' (भक्तिरतनाकर 11 तरंग)

अर्थात गौरीदास पण्डित जी की समाधि को देखकर श्रीमती जाह्नवा देवी जी इतना रोईं कि कोशिश करने से भी उनके नेत्रों से अश्रुधाराएँ नहीं रुक पा रही थीं।

श्रीजाह्नवा देवी के वृन्दावन में शुभ पदार्पण करने पर श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रील भूगर्भ गोस्वामी, श्रील लोकनाथ गोस्वामी, श्रील श्रीजीव गोस्वामी तथा श्रील मधु पण्डित आदि प्रमुख गोस्वामीगणों ने श्रीईश्वरी- जाह्नवादेवी को बहुत सम्मान प्रदान किया था। उसके बाद श्रीजाह्नवादेवी गोस्वामीगणों को लेकर श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्द व श्रीगोपीनाथ जी के दर्शनों के पश्चात् श्रीराधाकुण्ड में पहुँची थीं। वहाँ पर सर्वक्षण श्रीनामसंकीर्तन में रत दुबले-पतले श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के साथ श्रीजाह्नवा देवी का साक्षात्कार हुआ। श्रीजाह्नवा देवी जी ने श्रीराधा कुण्ड में तीन दिन तक रहकर भजन किया था। श्रीजाह्नवादेवी जी कुण्ड के किनारे वंशीध्वनि श्रवण करके और श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त करते प्रेमाविश्व हो उठी थी। श्रीजाह्नवादेवी जी श्रीराधाकुण्ड के जिस घाट पर ठहरी थीं व जिस घाट पर उन्होंने स्नान किया था, वह घाट आज भी जाह्नवाघाट के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीजाह्नवा देवी जी वैष्णवों को लेकर श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा करती थीं। परिक्रमा के समय उन्होंने श्रीजीव गोस्वामी से श्रीवृहद्भागवतामृत श्रवण किया था। श्रीब्रजमणडल परिक्रमा के बाद उन्होंने गौड़देश में वापस आकर गौड़मण्डल के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किया। वे खेतुरीधाम में 3-4 दिन ठहरीं तथा बुधुरी(मुर्शिदाबाद), नित्यानन्द प्रभु की बालयलीलास्थली एकचक्राग्राम, श्रीमन् महाप्रभु की संन्यासलीला का स्थान काटोया, याजिग्राम,श्रीखण्ड, प्राचीन नवद्वीप, श्रीधाम मायापुर, अम्बिका, सप्तग्राम व उद्धारण दत्त ठाकुर के घर के दर्शन करके खड़दह में लौट आई। उन्होंने वसुधादेवी और श्रीवीरभद्र प्रभु को समस्त भ्रमण वृत्तान्त यथाक्रम से वर्णन करके सुनाया था। गौड़मण्डल में भ्रमण के समय श्रीजाह्नवादेवी का कटोया में श्रीयदुनन्दन आचार्य और श्रीनिवासाचार्य के साथ तथा याजिग्राम में श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील रामचन्द्र कविराज एवं श्रीखण्ड के रघुनन्द ठाकुर के साथ साक्षात्कार हुआ था।

श्रीनित्यानन्द पार्षद श्रीपरमेश्वरी दास ठाकुर ने श्रीजाह्नवादेवी की कृपा से वृन्दावन में श्रीराधारानी के साथ श्रीगोपीनाथ जी के मिलन का दर्शन किया था। परमेश्वरी दास ठाकुर ने खड़दह में जाकर श्रीवसुधा और श्रीजाह्नवादेवी को प्रणाम करके उक्त अलौकिक घटना सुनाई तो सारी घटना सुनकर श्रीजाह्नवादेवी प्रेमाविष्ट हो उठीं। उन्होंने आँटपुर में श्रीराधागोपीनाथ के विग्रह की सेवा शीघ्र प्रकाशित करने के लिये परमेश्वरी ठाकुर को आदेश प्रदान किया। श्रीजाह्नवादेवी ने श्रीयदुनन्दन आचार्य की दो कन्याओं- श्रीमती और श्रीनारायणी के साथ वीरचन्द्र प्रभु की विवाह लीला भी सम्पादन की थी। श्रीवीरचन्द्र प्रभु की दो शक्तियाँ- श्रीमती और श्रीनारायणी भी बाद में श्रीजाह्नवादेवी की शिष्या हो गई थीं।

वैशाख मास की शुक्ल नवमी तिथि को अवलम्बन करके श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवादेवी की आविर्भाव लीला हुई।

****

श्रीविष्णु प्रिया देवी

श्रीसनातनमिश्रोऽयं पुरा सत्राजितो नृपः।

विष्णुप्रिया जगन्माता यत् कन्या भू-स्वरूपिणी॥

(गौ.ग.दी. 47)

पूर्वकाल में जो राजा सत्राजित थे, वही दूसरे जन्म में श्रीसनातन मिश्रा नाम से पैदा हुए हैं। जगन्माता भूस्वरूपिणी-विष्णु प्रिय जी, उन्हीं की कन्या हैं।

यदुवंश के राजा सत्राजित की कन्या सत्यभामा से श्रीकृष्ण ने विवाह किया था। गौरलीला में राजा सत्राजित श्रीसनातन मिश्र और सत्यभामा जी ही विष्णुप्रिया हुईं। श्रीविष्णु तत्व मात्र की ही श्री, भू, लीला—तीन शक्तियाँ होती हैं। श्रीगौरनारायण की श्री-शक्ति स्वरूपिणी—श्रीलक्ष्मी प्रिया देवी, भू-शक्ति स्वरूपिणी अर्थात् भक्ति-शक्ति स्वरूपिणी श्रीविष्णुप्रिया देवी एवं लीला-शक्ति श्रीधाम थीं। श्रीगौरकृष्ण की शक्ति श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी थे।

विद्या दो प्रकार की होती है—परा और अपरा। परा विद्या स्वरूपिणी श्रीविष्णु प्रिया जी की आविर्भाव तिथि श्रीपंचमी को (माघ मास की शुक्ला पंचमी को) है। इसी दिन शुद्ध भक्तों ने उनकी पूजा का विधान किया है। सांसारिक व्यक्ति दुनियाँ के जड़ीय विद्या में बढ़ोतरी के लिए उक्त तिथि को अपरा विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की पूजाकर ते हैं।

श्रीविष्णु प्रिया देवी के पितामह श्रीदुर्गादास मिश्र थे। एक अन्य मत के अनुसार दुर्गादास मिश्र उनके पिता थे। प्रेमविलास के मत में, दुर्गादास मिश्र की परम्परा में, यादवाचार्य के वंशधरगण श्रीविष्णुप्रिया देवी के परिवार के रूप में गिने जाते हैं।

श्रीगौरनारायण की शक्ति के रूप में विष्णुप्रिया जी के आविर्भाव का उल्लेख श्रील वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवत में तथा श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत में हुआ है—

आदिखण्डे, पूर्व-परिग्रहेर विजय।

शेषे, राज-पण्डितेर कन्या परिणम॥ (चै. भा.आ. 1/110)

पूर्व परीग्रह यानि प्रभु की पहली पत्नी लक्ष्मी प्रिया देवी के लीला संवरण यानी स्वधाम यात्रा के बाद प्रभु का राज पण्डित श्रीसनातन मिश्र की कन्या, श्रीविष्णु प्रिया देवी के साथ विवाह हुआ। महाप्रभु जी के दूसरे विवाह का उल्लेख श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर कृत गौड़ीय भाष्य में मिलता है—

तबे विष्णुप्रिया-ठाकुराणीर परिणय।

तबे त' करिल प्रभु दिग्विजयी जय॥ (चै.च.आ.16/25)

जागतिक स्त्री-पुरुष का विवाह, बन्धन का कारण होता है, जबकि मनुष्य लीला के अनुकरण में श्रीभगवान का और उनकी शक्ति का मिलन कराने के लिए विवाह एक अलौकिक कार्य होता है; यहाँ तक कि भगवान के साथ भगवान की शक्ति की परिणय लीला का श्रवण-कीर्तन करने से संसार से मुक्ति मिलती है—

ये शुनवे प्रभुर विवाह-पुण्य-कथा।

ताहार संसार-बन्ध ना हय सर्वथा॥

प्रभु पार्श्वे लक्ष्मीर हइल अवस्थान।

शचीगृह हइल परम-ज्योतिर्धाम॥ (चै.भा.आ. 10/119-120)

याँहार मूर्तिर विभा देखिले नयने।

पापमुक्त हइ' याय वैकुण्ठ-भूवने॥

से प्रभुर विभा लोक देखये साक्षात्।

तेञि ता'न नाम-'दयामय' दीननाथ'॥ (चै.भा.आ. 15/216-217)

अर्थात जो महाप्रभु जी के विवाह की पवित्र कथा को सुनता है, उसके तमाम सांसारिक बन्धन कट जाते हैं। महाप्रभु जी के बगल में जब विष्णुप्रिया जी आयी तो शचीमाता का सारा घर ज्योति से भर गया। जो अपने नयनों से विष्णु प्रिया जी की ज्योर्तिमयी मूर्ति को देख लेता है, वह तमाम पापों से मुक्त हो जाता है और वैकुण्ठधाम में चला जाता है। इसलिए ही तो विष्णुप्रिया जी का एक नाम दयामय-दीननाथ है। पूर्वी बंगाल में छात्रों के साथ अध्ययन लीला में मग्न होने से श्रीमन्महाप्रभु की नवदीप में वापसी देरी होने के कारण श्रीलक्ष्मी प्रिया जी ने विरह सहन करने में असमर्थ होकर प्रभु के चरणों का ध्यान करते करते प्राण त्याग दिये। श्रीमन्महाप्रभु जी ने नवदीप में वापस आकर विरह-संतप्त माता को सान्त्वना प्रदान की। उसके बाद शची माता ने पुत्र को दूसरी बार विवाह करने के लिए कहा तथा विवाह के लिए व्यग्र होकर काशी नाथ पण्डित* को घटक रूप में, नवद्वीप वासी राजपण्डित सनातन मिश्र से उनकी कन्या, विष्णुभक्ति परायणा, विष्णु प्रिया देवी से विवाह सम्बन्ध करवाने के लिए भेजा। सनातन मिश्र के लिए काशीनाथ पण्डित की उक्ति नीचे उद्धृत है : –

विश्वम्भर-पण्डितेरे तोमर दुहिता।

दान कर'-ए सम्बन्ध उचित सर्वथा॥

तोमार कन्यार योग्य सेइ दिव्यपति।

ताँहार उचित एइ कन्या महा-सति॥

येन कृष्णं-रुक्मिणीते अन्योऽन्य-उचित।

सेइमत विष्णुप्रिया-निमाञि पण्डित॥ (चै.भा.आ. 15/57-59)

*** श्रीकाशीनाथ-यश्च सत्राजित विप्रः प्रहितं माधवः प्रति।**

सत्योद्वाहाय कुलकः श्रीकाशीनाथ एव सः॥ (गौ.ग.दी.-50)

अर्थात काशीनाथ पण्डित विष्णुप्रिया जी के पिता श्रीसनातन मिश्र जी को कहते हैं कि आप विश्वम्भर पण्डित को अपनी कन्या दान कर दीजिए। यह सम्बन्ध हर प्रकार से उचित है और तुम्हारी कन्या के योग्य है। जिस प्रकार श्रीकृष्णा जी रुक्मिणी जी के लिए अद्वितीय उचित हैं, इसी प्रकार निमाई पण्डित जी भी विष्णुप्रिया के उचित हैं।

इधर बुद्धिमान व धनवान बुद्धिमन्त खान* प्रभु के विवाह का सारा खर्च अपनी इच्छा से उठाने पर तैयार हो गये। श्रीविश्वम्भर के साथ विष्णुप्रिया देवी का विवाह सम्बन्ध स्थिर होने पर, शुभदिन और लग्न में महासमारोह पूर्वक अधिवास-उत्सव सम्पन्न हुआ। गोधूलि लग्न के समय महाप्रभुजी पालकी में बैठकर राज पण्डित श्रीसनातन मिश्र के घर जाकर उपस्थित हुए और लोकाचार के अनुसार गौर-विष्णुप्रिया का विवाह सम्पन्न हुआ।

दूसरे दिन अपराह्न काल में, महाप्रभुजी विष्णुप्रिया जी के साथ पालकी में ही अपने घर वापस आ गए। लक्ष्मी – नारायण जी की विवाह लीला का नित्य श्रवण करने पर जीव को स्वाभाविक जगत की भोक्ता व भोग्य सम्बन्ध युक्त- पुरुष और प्रकृति की दाम्पत्य की अभिलाषा नहीं होती तथा उसके चिन्तन में नारायण ही सारा जगत के भोक्ता के रूप में उपलब्धि का विषय बन जाते हैं। बुद्धिमन्त खान महाप्रभु जी का आलिंगन और कृपा प्राप्त करके धन्यातिधन्य हो गये। श्रीचैतन्य भागवत में श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने महाप्रभु और विष्णुप्रिया के विवाह के वर्णन में लिखा है : –

केह बले-"एइ हेन बुझि हर-गौरी।"

केह बले-"हेन बुझि कमला श्रीहरि॥"

केह बले-"एइ दुइ कामदेव रति।"

केह बले-"इन्द्र-शची लय मोर मति॥"

केह बले-"हेन बुझि रामचन्द्र-सीता।"

एइमत वले यत सुकृति-वनिता॥ (चै.भा.आ. 15/206-208)

कोई कहता है कि मैं यह देख रहा हूँ कि यह दोनों शिव-पार्वती हैं। कोई कहता है कि दोनों लक्ष्मी-नारायण हैं। कोई कहता है कि यह दोनों कामदेव और रति हैं। कोई कहता है कि मेरी बुद्धि के अनुसार यह दोनों इन्द्रदेव व शची हैं। कोई कहता है कि यह दोनों रामचन्द्र और सीता हैं। इस प्रकार सुकृतिवान स्रियाँ अपने विचार से कुछ न कुछ कहती हैं।

विष्णुप्रिया देवी शैशव काल से ही पिता-माता और विष्णु-परायणा थीं। वह प्रतिदिन तीन बार गंगा-स्नान करती थीं। गंगा-स्नान को जाने के दिनों में ही शची माता के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था। उनके प्रणाम करने पर शची माता उन्हें आशीर्वाद देतीं। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा चौबीस वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहणकरने की बात सुनकर श्रीविष्णु प्रिया देवी की अत्यन्त विरह-संतप्त होने की हालत का अद्वैत प्रकाश ग्रन्थ में वर्णन हुआ है। प्रतिदिन प्रभात में शचीमाता के साथ गंगा-स्नान को जाना, सारा दिन घर में रहना, चन्द्र सूर्य भी उन्हें उनके रूप को नहीं देख सकते थे। भक्तलोग भी उनके श्रीचरणों के अतिरिक्त उनके रूप को न देख पाये, यहाँ तक कि उनकी आवाज़ को कोई सुन न पाया, सदा आंसु बहाते बहाते लाल मुख से बैठे रहना, केवल शचीमाता के बचे हुए अन्न से जीवन धारणकरना, एकान्त में

*** बुद्धिमान खान-चैतन्येर अति प्रिय बुद्धिमन्त खान, आजन्म आज्ञाकारी तेहों सेवक-प्रधान। (चै.च.आ.10/74)**

नाम-संकीर्तन करना, हरिनाम-अमृत में गहन रुचि, श्रीगौरांग के चित्र की प्रेम भक्ति सहित एकान्त सेवा, श्रीगौरांगके श्रीचरण-कमलों में आत्मसमर्पण, सहधर्मिणी का आदर्श तथा 'तृणादपि सुनिच' श्लोक की सहिष्णुता का आदर्श- विष्णुप्रिया जी की ये सभी लीलाएँ अद्वैत प्रकाश ग्रन्थ में बड़े विस्तृत भाव से वर्णित हैं।

श्रीनिवास आचार्य जी ने श्रीविष्णुप्रिया देवी की कृपा प्राप्त की थी। श्रीनिवासाचार्य जी ने विष्णुप्रिया देवी का व गौरांग प्रभु का निष्काम रूप से दर्शन किया था। श्रीनरहरि चक्रवर्ती जी ने इस विषय का भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ की चौथी तरंग में सुन्दरभाव से वर्णन किया है—

प्रतिदिन श्रीनिवास करये दर्शन।

ईश्वरीर क्रिया, यैच्छे न हय वर्णन॥

प्रभुर विच्छेदे निद्रा त्यजिल नेत्रेते।

कदाचित् निद्रा हैल शयन भूमिते॥

कनक जिनिया अंग से अति मलिन।

कृष्णा चतुर्दशीर शरीर प्राय क्षीण॥

हरिनाम संख्या पूर्ण तण्डुले करय।

से तण्डुल पाक करि प्रभुरे अर्पय॥

ताहारइ किंचिन्मात्र करये भक्षण।

कहे ना जानय कैने राखये जीवन॥ (भक्ति रत्नाकर 4/47-51)

श्रीनिवास प्रतिदिन श्रीविष्णुप्रिया के दर्शन करते हैं। वास्तव में जैसी जैसी श्रीविष्णुप्रिया जी की क्रियायें होती हैं, उनका शब्दों में ठीक वर्णन नहीं हो पाता। महाप्रभु जी के विच्छेद से श्रीविष्णुप्रिया के नेत्रों ने नींद का त्याग कर दिया है। भूमि पर पड़े-पड़े ही कभी-कभार नींद आ जाती है। सोने के समान जो अंग थे, वह मलिन हो गये हैं। कृष्ण-चतुर्दशी के चाँद की भान्ति शरीर क्षीण हो गया है। चावलों से हरिनाम की गिनती करती हैं और फिर उन्हीं चावलों की रसोई करके महाप्रभु जी को भोग लगाती हैं। उसमें से भी थोड़ा ही खा पाती हैं। कोई नहीं जानता कि वह अपने जीवन की रक्षा कैसे करती हैं?

श्रीलोचन दास ठाकुर ने श्रीविष्णुप्रिया देवी का माहाप्रभु जी के लिए विरह का चैतन्य मंगल ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन किया है—

विष्णु प्रिया कान्दनेते पृथिवी विदरे।

पशु पक्षी लता तरु ए पाषाण झूरे॥

पापिष्ट शरीर मोर प्राण नाहि जाय।

भूमिते लोटियां देवी करे हाय हाय॥

विरह अनल श्वास बहे अनिवार।

अधर शुकाय-कम्प हाय कलेवर॥ (चै.मं. मध्य लीला 14/15-16)

अर्थात् विष्णु प्रिया जी के रोने से पृथ्वी फट जाती है। पशु, पक्षी, लता-वृक्ष यहाँ तक की पाषाण भी द्रवित हो जाते हैं। मेरे पापी शरीर से प्राण नहीं निकलते हैं—ऐसा कहकर वह देवी पृथ्वी पर लोटती हैं और हाय हाय करती हैं, श्वासों के द्वारा उनके विरह की अग्नि बहती है। होंठ सूख जाते हैं और उनका सारा शरीर कांपने लगता है।

विष्णुप्रिया देवी जी ने जो भजन का आदर्श प्रस्तुत किया है उसका श्रीजाह्नवा देवी के शिष्य श्रीनित्यानन्द दास ने अपने द्वारा रचित ग्रन्थ प्रेमविलास में इस प्रकार वर्णन किया है—

ईश्वरी नाम ग्रहण शुन भाई सब।

से कथा श्रवणे लीला हय अनुभव॥

नवीन मृद भजन आने दुई पाशे धरी।

एक शून्य पात्र और पात्रे तण्डुल भरि॥

एक बार जपे बोल नाम बत्रिश अक्षर।

एक तण्डुल रखेन पात्रे आनन्द अन्तर॥

तृतीय प्रहर पर्यन्त लयेन हरिनाम।

ताते ये तण्डुल हय, लैया पाके यान॥

सेइ तण्डुल मात्र रन्धन करिया।

भक्षण करान प्रभुके अश्रुयुक्त हैया॥

रात्रिदिन हरि नाम प्रभुर संख्या यत।

से चेष्टा बूझिते नारि बुद्धि अति हत॥

प्रभुर प्रेयसी येंह तांहार कि कथा।

दिवानिशि हरिनाम लयेन सर्वथा॥

तांहार असाध्य किवा नामे एत आर्ति।

नाम लयेन ताहे रोपण करेन प्रभुशक्ति॥

ईश्वरी श्रीविष्णुप्रिया जी जिस प्रकार से नाम लेती थीं, आप सब भाई सुनो। इस कथा के श्रवण से लीला का अनुभव होगा। वह मिट्टी के दो बर्तन लाकर अपने दोनों ओर रख लेती थीं। एक ओर खाली पात्र और दूसरी और चावल से भरा हुआ पात्र रख लेतीं। सोलह नाम तथा बत्तीस अक्षर वाला मन्त्र (हरे कृष्ण महामन्त्र) एक बार जपकर एक चावल उठाकर खाली पात्र में रख देतीं। इस प्रकार तीसरे पहर तक हरिनाम का जप करती रहतीं और चावल एक पात्र से दूसरे पात्र में रखती जातीं। इसी प्रकार जितने चावल इकट्ठे होते, उनकी रसोई करके श्रीमन्महाप्रभु को रोते रोते अर्पण करतीं। रात दिन इसी प्रकार हरिनाम की जो संख्या होती उसे अपनी तुच्छ बुद्धि से मैं समझ नहीं पाता हूं। कहाँ तक उनकी महिमा कहें, वे तो महाप्रभुजी की प्रेयसी है और निरन्तर रात दिन हरिनाम लेती रहती हैं। उनकी हरिनाम में जितनी आर्ति है, वह असाध्य है। हरिनाम के कारण प्रभु उनमें अपनी शक्ति रोपण करते हैं।

श्रीविष्णुप्रिया देवी ने ही सर्वप्रथम गौर मूर्ति का प्रकाश कर उनकी पूजा की थी, ऐसा प्रमाण मुरारी गुप्त जी के कड़चा (व्यक्तिगत डायरी) से जाना जाता है:-

प्रकाश रूपेण निज प्रियायाः

समीपमासाद्य निजां हि मूर्तिम्।

विधाय तस्यां स्थित एषः कृष्णः

सा लक्ष्मीरूपा च विषेवते प्रभुम्।

गौरभक्तों में कोई कोई हरिकथा प्रसंग में इस प्रकार कहते हैं—सीता देवी के वनवास का काल में एक पत्नीव्रती भगवान श्रीरामचन्द्र ने सोने की सीता का निर्माण करवाकर यज्ञ किया था पर दूसरी बार विवाह नहीं किया। श्रीगौर नारायण लीला में विष्णु प्रिया देवी ने उस ऋण से उऋण होने के लिए ही श्रीगौरांग प्रभु की मूर्ति का निर्माण करा के पूजा की थी। श्रीविष्णु प्रिया देवी द्वारा सेवित श्रीगौरांग की मूर्ति की अब भी नवद्वीप में पूजा की जाती है।

श्रीवंशीवदन ठाकुर और श्रीईशान ठाकुर ने श्रीविष्णु प्रिया देवी की कृपा प्राप्त की थी। महाप्रभु जी द्वारा संन्यास ग्रहणकरने के पश्चात् श्रीईशान ठाकुर और श्रीवंशीवदन ठाकुर ने शची माता और विष्णु प्रिया देवी की देखभाल की थी।

****

श्रीदेवानन्द पण्डित

पुराणानामर्थवेत्ता श्रीदेवानन्दपण्डितः

पुरासीन्नन्दपरिषत्पण्डितो भागुरिर्मुनिः॥ (गौ. ग. दी. 106)

सभी पुराणों के अधिवेत्ता देवानन्द पण्डित पूर्व जन्म में नन्द महाराज के सभा पण्डित भागुरि मुनि थे।

सार्वभौम-पिता-विशारद महेश्वर।

ताँहार जांघाले* गेला प्रभु विश्वम्भर॥

सेइखाने देवानन्द पण्डितेर वास।

परम सुशान्त विप्र मोक्ष-अभिलाष॥ (चै.भा.म. 21/6-7)

कुलिया ग्रामे कैल देवानन्देर प्रसाद।** (चै.च.म. 1/153)

एइ विशारदेर जांघाल-एइ खाने।

देखा हैल देवानन्द पण्डितेर सने॥

येंह श्रीवासेर स्थान अपराध कैला।

प्रभु वाक्यदण्डे तेंह दुःखित हइला॥ (भ. र. 12/2976-77)

कुलिया गाँव में देवानन्द जी ने अपना मकान बनवाया था। सार्वभौम जी के पिता महेश्वर विशारद थे। उनका जांघाल (बान्ध) भी वहां पर था। वहीं पर महाप्रभु जी की देवानन्द पण्डित जी से भेंट हुई थी। इन्होंने श्रीवास पण्डित जी के प्रति अपराध किया था और इसी कारण इन्हें महाप्रभु जी ने डांटा भी था। श्रीचैतन्य भागवत, श्रीचैतन्य चरितामृत और श्रीभक्ति रत्नाकर आदि ग्रन्थों के अनुसार जाना जाता है कि श्रीदेवानन्द पण्डित जी का निवास स्थान सार्वभौम भट्टाचार्य जी के पिता श्रीमहेश्वर विशारद के घर के आसपास ही था। हाँ, उनकी संस्कृत पाठशाला कुलिया ग्राम में थी, इस बात का स्पष्ट उल्लेख है।

---

* जांघाल-बान्धः विद्यानगर में महेश्वर विशारद के घर की बाढ़ से रक्षा के लिए एक बान्ध था।

** कुलियाः नवद्वीप के निकट गंगा के पश्चिम तट पर स्थित एक उपनगर है। गंगा के पूर्वपार श्रीमायापुर में उस समय नवद्वीप नगर स्थित था। वर्तमान शहर नवद्वीप ही प्राचीन कुलिया है। यहां ही अपराध भंजन पीठ है। शहर के स्थान-स्थान पर आमाद कोल, कोलेर गंज, कोलेर दह तथा गदखालिर कोल आदि प्राचीन कुलिया के नाम आज भी इस बात को प्रमाणित करने में लगे हैं कि ये ही प्राचीन कुलिया है।-श्रीसरस्वती ठाकुर लिखित गौड़ीय भाष्य से।

नवधा भक्ति के पीठ स्वरूप नवद्वीप धाम के अन्तर्गत पाद सेवन का भक्ति क्षेत्र, कोल द्वीप चलित भाषा में कुलिया नाम से परिचित है। कोल शब्द का अर्थ होता है-वराह। सत्ययुग में वासुदेव विप्र को भगवान ने वराह मूर्ति से दर्शन दिया था।

श्रीदेवानन्द पण्डित ज्ञानी, तपस्वी, जन्म से दुनियावी भोगों के प्रति उदासीन और साधारणतः महापण्डित के रूप में प्रसिद्ध होकर भी भागवत् सेवा में उन्मुख न होने के कारण, भागवत का असली अर्थ शुद्धभक्ति है, यह हृदयंगम कर पाने में समर्थ नहीं हुए। वे मोक्ष कामी होने के कारण तपस्या व शुष्क वैराग्य कोही अधिक मानते थे। भागवत पाठ करते हुए भी वे उसकी भक्ति-परक व्याख्या नहीं करते थे। एक दिन देवानन्द पण्डित के भागवत पाठ के समय श्रीचैतन्य महाप्रभु के पार्षद श्रीवास पण्डित भागवत सुनने के लिए वहाँ आकर बैठ गये। वे भागवत सुनते- सुनते भावाविष्ट होकर रोने लगे। देवानन्द पण्डित के पाखण्डी शिष्यों ने उन्हें सभा से निकाल दिया। छात्रों के उस निन्दित कार्य के लिये व छात्रों के ऐसा करने से न रोकने पर देवानन्द पण्डित से वैष्णव अपराध हो गया। महाप्रभुजी उसके लिए देवानन्द जी पर बड़े क्रोधित हुए थे—

भक्ति बिनु भागवत ये आर बखाने।

प्रभु बले,-"से अधम किछुइ ना जाने॥

निरवधि भक्तिहीन ए बेटा बखाने।

आजि पुँथि चिरिब, देखह विद्यमाने॥" (चै.भा.म. 21/20-21)

भक्ति को छोड़कर जो श्रीमद्भागवत् पुराण के कोई दूसरी तरह से व्याख्या करते हैं, महाप्रभु जी कहते हैं कि वे भागवत के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते हैं। देवानन्द की तरफ इशारा करते हुये महाप्रभु जी कहते हैं कि ये बेटा निरन्तर भक्तिहीन ही व्याख्या करता है। आप सभी के सामने मैं आज इसकी पुस्तक फाड़ दूँगा।

भगवत् सेवा से वन्चित लोग जिस समय आत्म-स्वरूप को भूल कर भगवत् सेवा से उदासीन हो जाते हैं एवं भगवद्-विमुखता को ही अपना पुरुषार्थ बतलाते हैं तो उस समय परम दयामय श्रीगौरसुन्दर अभक्तों के उस कार्य से विरक्ति प्रदर्शित करते हैं तथा उनके मंगल के लिए उसके उस कार्य को बहुत निन्दित और अप्रयोजनीय बताते हैं। महाप्रभु जी अपनी इस लीला से समझाते हैं कि कर्मफल-भोग या कर्मफल-त्याग, दोनों ही घोर अन्याय है। यही बताते हैं। महाप्रभु जी के इस क्रोध-दर्शन से वैष्णव जन परमानन्द प्राप्त करते हैं।

– श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

श्रीवास पण्डित के चरणों में देवानन्द पण्डित द्वारा अपराध होने के बहुत बाद एक दिन महाप्रभु जी ने उस रास्ते से जाते समय देवानन्द पण्डित को भागवत व्याख्या करते देखकर श्रध्दाहीन देवानन्द की तीव्र भर्त्सना की। वैष्णवों की निन्दा के द्वारा जिस प्रकार भगवद् कृपा से वन्चित होकर दुर्गति प्राप्त होती है, उसी प्रकार वैष्णव महिमा के कीर्त्तन से और वैष्णव सेवा द्वारा भगवत् कृपा लाभ और दुष्कर्मों से छुटकारा पाने का सुयोग मिलता है—

"शुन द्विज, विष करि ये मुखे भक्षण।

सेइ मुखे करि यबे अमृत-ग्रहण॥

विष हय जीर्ण, देह हयत अमर।

अमृत-प्रभावे, एबे शुन से उत्तर॥" (चै.भा.अ. 3/449-450)

(अर्थात हे द्विज! सुनो, जिस मुख से आपने विष खाया है अब उसी मुख से जब अमृत ग्रहण करोगे तो विष दूर हो जाएगा और तुम्हारी देह अमर हो जाएगी।)

बहुत सौभाग्य से महाप्रभु जी के प्रिय पार्षद श्रीवक्रेश्वर पण्डित देवानन्द पण्डित के घर में ठहरे थे। देवानन्द पण्डित वक्रेश्वर पण्डित की सब प्रकार से सेवा करके महाप्रभु की कृपा के पात्र बन गये थे। महाप्रभु जी के प्रति देवानन्द पण्डित का विश्वास न था। श्रीवक्रेश्वर पण्डित से श्रीमन् महाप्रभु जी की महिमा सुनकर उनके हृदय में परिवर्तन हुआ तथा वक्रेश्वर पण्डित के प्रभाव से उनको शुद्धभक्ति में विशिष्ट अनुराग हो गया था। वैष्णव सेवा के फल से ही कुलिया के देवानन्द पण्डित महाप्रभु जी के चरणों में विश्वास करने लगे थे। श्रीवक्रेश्वर पण्डित देवानन्द पण्डित के घर में रहकर

उनके मंगल का कारण बने थे। देवानन्द पण्डित स्मार्त धर्म में प्रविष्ट होने पर भी महाज्ञानी और संयत थे। श्रीमद्भागवत के बिना और कोई भी ग्रन्थ उन द्वारा पाठ्य न था। वे ईश्वर निष्ठ थे तथा इन्द्रिय आदि के वश में नहीं थे। लेकिन गौरसुन्दर के प्रति विश्वास का उनमें अभाव था। श्रीवक्रेश्वर पण्डित की कृपा से ही उनकी वह दुर्बुध्दि दूर हो गयी थी और वे भगवान में श्रद्धालु हो गये थे।

भागवती देवानन्द वक्रेश्वर-कृपाते।

भागवतेर भक्ति-अर्थ पाइल प्रभु हैते॥

(चै.च.आ. 10/77)

श्रीमन्महाप्रभु जी ने देवानन्द जी को भागवत की भक्ति परक व्याख्या करने के लिए कहा। देवानन्द पण्डित का यह विशेष सौभाग्य है कि उन्होंने महाप्रभुजी की दण्ड रूपी कृपा का लाभ प्राप्त किया था। किसी सौभाग्यशाली जीव को ही श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से सज़ा प्राप्त होती है। कहते हैं कि महाप्रभुजी जिसे दण्ड देते हैं, वह भी सीधा वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करता है—

तथापिह देवानन्द बड़ पुण्यवन्त।

वचनेओ प्रभु यारे करिलेन दण्ड॥

चैतन्येर दण्ड महा-सुकृति से पाय।

याँर दण्डे मरिले वैकुण्ठे लोक याय॥

(चै.भा.म. 21/77-78)

कोल द्वीप या कुलिया को अपराध भंजन पाट (पीठ स्थान) कहा जाता है, जहाँ देवानन्द पण्डित के अपराधों का भन्जन हुआ था।

गोपाल चापाल का अपराध भी श्रीमन्महाप्रभु जी ने यहीं क्षमा किया था। पौषी कृष्णा एकादशी तिथि को श्रीदेवानन्द पण्डित का तिरोभाव होता है।

****

श्रील लोकनाथ गोस्वामी और श्रीभूगर्भ गोस्वामी

श्रीकृष्ण लीला में जो लीलामंजरी नामक सखी थीं वे ही गौरलीला की पुष्टि के लिए श्रीलोकनाथ गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई थीं।

लोकनाथाख्य-गोस्वामी श्रीलीलामञ्जरी पूरा। (गौ. ग. दी. 187)

ये श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी के साक्षात् शिष्य और पार्षद गिने जाते हैं। पहले इनका यशोहर ज़िले के अन्तर्गत तालखड़ी नामक गाँव में निवास था। हाँ, ये ठीक है कि सबसे पहले उनका निवास कांचनापाड़ा में था, बाद में तालखड़ी ग्राम में उनका निवास हुआ। इनके पिता श्रीपद्मनाभ चक्रवर्ती और माता श्रीसीता देवी थीं।

यशोहर देशे ते तालखेड़ा ग्रामे स्थिति।

माता सीता, पिता पद्मनाभ चक्रवर्त्ती॥ (भक्ति रत्नाकर 1/296)

श्रीमद्राधाविनोदैक सेवा सम्पत् समन्वितम्।

पद्मनाभात्मजं श्रीमल्लोकनाथ प्रभुं भजे॥

(भक्तिरत्नाकर लिखित प्राचीन उक्ति)

श्रीमद् राधा विनोद की एकान्तिक सम्पत्ति स्वरूप श्रीपद्मनाभ जी के पुत्र श्रील लोकनाथ प्रभु का मैं भजन करता हूँ। लोकनाथ गोस्वामी के छोटे भाई श्रीप्रगल्भ भट्टाचार्य जी के वंशधर तालखड़ी ग्राम में थे। व्रज के प्रेममंजरी श्रीभूगर्भ गोस्वामी, श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी से अभिन्न हृदय-सुहृद् थे।

भूगर्भठक्कुरस्यासीत् पूर्वाख्या प्रेममञ्जरी। (गो.ग.दी. 187)

साधन दीपिका में श्रीभूगर्भ गोस्वामी को श्रीलोकनाथ गोस्वामी का चाचा बताया गया है। शाखा निर्णयामृत ग्रन्थ में भूगर्भ गोस्वामी के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है –

गोस्वामिनंच भूगर्भं भूगर्भोत्थं सुविश्रुतम्।

सदा महाशयं वन्दे कृष्णा प्रेम प्रदं प्रभुम्॥

श्रील गोविन्द देवस्य सेवासुख विलासिनम्।

दयालुं प्रेमदं स्वच्छं नित्यामानन्द विग्रहम्॥

भूगर्भ गोस्वामी के दीक्षा गुरु श्रील गदाधर पण्डित गोस्वामी थे। इस कारण वे गदाधर पण्डित की शाखा में गिने जाते हैं। श्रीगदाधर पण्डित की शाखा के श्रीभागवत दास श्रीभूगर्भ गोस्वामी के साथी थे।

भूगर्भ गोसाईं, आर भागवत दास।

येइ दुइ आसि' कैल वृन्दावने पास॥ (चै.च.आ. 12/81)

१४३१ शकाब्द के आग्रहायण मास में श्रीलोकनाथ गोस्वामी संसार-आश्रम को त्याग करके श्रीनवद्वीप धाम में श्रीमन्महाप्रभु के पास पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभु ने उनको साथ-साथ ही वृन्दावन जाने का आदेश दिया। महाप्रभु जी की लोकनाथ गोस्वामी को वृन्दावन भेजने की अभिलाषा इसलिए हुई क्योंकि उनका संकल्प था कि वे स्वयं शीघ्र ही संन्यास लेंगे और संन्यास लेकर वृन्दावन जाएँगे।

लोकनाथ गोस्वामी भी महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहण की बात सोचकर, उनके घुंघराले केशों के दोबारा दर्शन न होने और भक्तगण महाप्रभु के संन्यास ग्रहण को किस प्रकार सहन कर पायेंगे, इस चिन्ता से व्याकुल होकर रोने लगे तो श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीलोकनाथ गोस्वामी के विरह-व्याकुलता देखकर, उनको आलिंगन करके गुप्त रूप से अनेक ढाढ़स भरे वाक्यों द्वारा उन्हें समझाया। उसके बाद लोकनाथ गोस्वामी अत्यन्त दुःखी होकर श्रीभूगर्भ गोस्वामी को साथ लेकर वृन्दावन यात्रा पर निकल पड़े। पैदल राज महल, ताजपुर, पूर्णिया, अयोध्या व लखनऊ आदि बहुत से स्थानों और तीर्थों का पर्यटन करके श्रीलोकनाथ जी श्रीव्रजधाम में पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा से व्रज में आकर वे हर समय महाप्रभु जी के विषय में चिन्ता करके आँसु बहाते और उनके दर्शनों के लिए बहुत व्याकुल रहने लगे। परन्तु जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु जी संन्यास ग्रहणकरके नीलाचल गए हैं और वहां से वे दक्षिण भारत की यात्रा पर जाएंगे तो लोकनाथ जी भी उनके दर्शनों की आकांक्षा से दक्षिण की ओर दौड़ पड़े। दक्षिण भारत पहुँचकर उन्होंने सुना कि महाप्रभु जी दक्षिण भारत को नहीं, वृन्दावन गये हैं। तब फिर व्याकुल होकर वृन्दावन की ओर दौड़ पड़े। वृन्दावन पहुँचकर कर उन्होंने फिर सुना कि महाप्रभु जी वृन्दावन में नहीं बल्कि प्रयाग में है। हताश होकर वे फिर प्रयाग की यात्रा पर जाने की तैयारी करने लगे। इस पर महाप्रभु जी ने स्वप्न में दर्शन देकर उन्हें इस प्रकार की दौड़ा-दौड़ी करने के लिए मना किया और वृन्दावन में रहकर भजन करने के लिए कहा। कुछ दिन बाद श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी आदि महाप्रभु जी के पार्षदों के साथ मिलकर श्रीलोकनाथ गोस्वामी को परमानद की प्राप्ति हुई। श्रीरूप गोस्वामी जी की वृद्धावस्था में गोवर्धन में गोपाल जी के सौन्दर्य दर्शन के लिए जाने की इच्छा होने पर, श्रीगोपाल जी श्रीरूप गोस्वामी पर कृपा करने के लिए म्लेच्छों के भय से गुप्तरूप से, मथुरा नगर के विट्ठलेशवर के घर में एक मास रहे थे, तब अन्य भक्तों के साथ श्रीलोकनाथ गोस्वामी को भी गोपाल जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी को अपने साथी भूगर्भ गोस्वामी जी अति प्रिय थे। इस प्रसंग में भक्ति रत्नाकर में लिखा है–

भूगर्भेते स्नेह येछे जगते प्रचार।

लोकनाथ सह देह भिन्न मात्र तांर॥ (भ.र. 1/317)

[श्रीभूगर्भ जी के प्रति श्रीलोकनाथ जी का इतना स्नेह था कि दुनियाँ में ऐसा प्रचार था कि लोकनाथ जी के साथ इनकी देह ही केवल भिन्न है, बस।]

गोस्वामी गोपाल भट्ट अतिदयामाय।

भूगर्भ, श्रीलोकनाथ गुणेर आलय॥ (ए. 6/510)

[श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी अति दयामय हैं तथा श्रीभूगर्भ एवं श्रीलोकनाथ जी गुणों के घर हैं।]

लोकनाथ गोस्वामी व्रज में विरह-विह्वल होकर तीव्र वैराग्य के साथ भजन करने लगे। वे ख्याति की गन्ध मात्र से ही बहुत डर जाते थे। उन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ लिखने के लिए भी कविराज गोस्वामी को मनाही की थी। इसलिए श्रीचैतन्य चरितामृत में केवल उनके नाम का ही उल्लेख है। श्रीसनातन गोस्वामी जी ने हरि भक्ति विलास के मंगलाचरण में लोकनाथ गोस्वामी जी का नाम लिया है। श्रीवैष्णव तोषनी ग्रन्थ के मंगलाचरण में श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी का स्मरण किया गया है, जैसे-–

वृन्दावन प्रियान् वन्दे श्रीगोविन्द पदाश्रितान्।

श्रीमद् काशीश्वरं लोकनाथं श्रीकृष्णदासकम्॥

[वृन्दावन प्रिय श्रीगोविन्द के चरणों में आश्रित श्रीमद् काशीश्वर, श्रीमद् लोकनाथ गोस्वामी तथा श्रीमद् कृष्ण दास कविराज गोस्वामी प्रभु जी की मैं वन्दना करता हूँ।]

श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी भी हमेशा व्रज-मडण्ल का भ्रमण करके श्रीकृष्ण लीला स्थलियों का दर्शन करके परमानन्द प्राप्त करते थे। एक बार वे व्रज-मण्डल का भ्रमण करते-करते खदिर वन में आए। छत्रवन के पार्श्व में उमराओ गाँव के श्रीकिशोरी कुण्ड की शोभा का दर्शन करके पुलकित हो गए। कुछ दिन निर्जन स्थान में भजन करते-करते मन में प्रबल इच्छा हुई कि वे राधाकृष्ण के विग्रह की सेवा करें। लोकनाथ गोस्वामी की इस उत्कण्ठा की बात जानकर भक्तों के अधीन रहने वाले भगवान् स्वयं आकर, विग्रह समर्पण करके विग्रह का नाम 'राधा विनोद' है, यह बताकर अदृशय हो गये। श्रीलोकनाथ गोस्वामी राधाविनोद जी के विग्रह का आविर्भाव देखकर आश्चर्यान्वित हो गये और इस चिन्ता से व्याकुल हो गये कि कौन इन विग्रहों को दे गया है? तब श्रीराधाविनोद जी विग्रह लोकनाथ जी पर मधुर नज़र डालकर हँसते हुए बोले-"मैं इसी उमराओ गाँव के किशोरी कुण्ड के किनारे रहता हूँ। तुम्हारी व्याकुलता देकर मैं स्वयं ही तुम्हारे पास आया हूँ—मुझे और कौन लायेगा? मुझे भूख लगी है। शीघ्र मुझे भोजन कराओ। " यह सुनकर लोकनाथ गोस्वामी के दोनों नेत्रों से आँसू बहने लगे। तब उन्होंने स्वयं खाना बनाकर श्रीराधाविनोद जी को परितृप्ति के साथ भोजन कराया तथा बाद में पुष्प शैया बनाकर उनको सुलाया। नवीन पत्तों द्वारा उन्होंने हवा की तथा मन लगाकर उनके चरणों की सेवा की। लोकनाथ गोस्वामी जी ने तब मन और प्राण प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिये। राधाविनोद जी को कहाँ रखेंगे, यह सोचकर उन्होंने एक झूले का निर्माण कर लिया तथा वही राधाविनोदजी का सुन्दर मन्दिर हुआ। वे आराध्य देव को कण्ठमाला की भान्ति सदा वक्ष में रखते थे। व्रजवासी लोकनाथ गोस्वामी जी के प्रति बहुत आकर्षित थे। वे उनको कुटिया बनाकर देना चाहते थे, पर उन्होंने ग्रहण नहीं की। परम विरक्त लोकनाथ गोस्वामी सेवोपयोगी द्रव्य को छोड़कर अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे।

किशोरी कुण्ड पर कुछ दिन रहने के बाद लोकनाथ गोस्वामी वृन्दावन आ गये। सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी के विछोह की ज्वाला से वे रोने लगे। उस समय राजशाही ज़िले के गोपालपुर परगना के अधिपति राजा कृष्णनन्द दत्त के पुत्र श्रीनरोत्तम ठाकुर आकर लोकनाथ गोस्वामी के साथ मिले। श्रीमान्महाप्रभु की इच्छा से श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने नीलाचल से जाते हुये जो प्रेमविलाप किया था, वह प्रेम नरोत्तम ठाकुर को देने के लिए पद्मावती के तीर पर संरक्षित किया था। उस समय से वह स्थान प्रेमतलि नाम से प्रसिद्ध है। नरोत्तम ठाकुर पद्मावती के किनारे प्रेमतली पर स्नान करने के साथ-साथ कृष्ण के प्रेम में मतवाले हो गये और सारे संसार के सम्बन्धों को तोड़कर वृन्दावन की ओर दौड़ पड़े। वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने श्रीरूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामी के दर्शन किये और लोकनाथ गोस्वामी की कृपा प्राप्त की। श्रीलोकनाथ गोस्वामी के एकमात्र शिष्य थे- श्रीनरोत्तम ठाकुर।

श्रीलोकनाथ गोस्वामी ने परम विरक्त की लीला कि थी। किसी को शिष्य नहीं बनायेंगे, ऐसा संकल्प था उनका। श्रीनरोत्तम ठाकुर का भी लोकनाथ गोस्वामी जी से ही दीक्षा ग्रहणकरने का संकल्प था। इधर नरोत्तम ठाकुर जी द्वारा अनेक बार प्रार्थना करने पर भी लोकनाथ गोस्वामी जी दीक्षा प्रदान करने के इच्छुक नहीं थे। श्रीनरोत्तम ठाकुर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी जिस स्थान पर शौचादि के लिए जाते थे, प्रतिदिन मध्य रात्रि में वहाँ जाकर नरोत्तम ठाकुर जी उस स्थान की सफाई करते थे। लोकनाथ ठाकुर प्रतिदिन प्रातः काल शौच के स्थान को साफ और दुर्गन्ध-मुक्त देखकर हैरान हो जाते थे। कौन इस प्रकार का काम करता है, यह जानने के लिए, वे एक रात को उस स्थान के निकट किसी स्थान पर छिपकर बैठकर हरि का नाम जप करने लगे। आधी रात को एक व्यक्ति को यह काम करते देखकर, उनका परिचय पाने के लिए पूछने पर,वे जान पाये कि वह व्यक्ति नरोत्तम ठाकुर है।

लोकनाथ गोस्वामी जी ने राजा के पुत्र नरोत्तम ठाकुर को ऐसा घृणित कार्य करते देखकर बहुत संकुचित होकर पूछा उनका ऐसा कार्य करने का उद्देश्य क्या है?

नरोत्तम ठाकुर, लोकनाथ गोस्वामी जी के चरण कमलों में गिरकर, रोते-रोते बोले, "आपकी कृपा प्राप्त किये बिना मेरा जीवन बेकार है।"

लोकनाथ गोस्वामी जी ने नरोत्तम ठाकुर जी को इस प्रकार दीन और आर्त देखकर, स्नेह से द्रवित होकर, उनको दीक्षा प्रदान कर दी।

शुद्ध निष्कपट सेवा द्वारा आराध्य देव को वश में किया जाता है, यह इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है। श्रावण मास की पूर्णिमा को श्रीनरोत्तम ठाकुर जी ने लोकनाथ गोस्वामी जी से वृन्दावन में दीक्षा ग्रहण की। श्रीनरोत्तम ठाकुर वृन्दावन में गुरुदेव की निष्कपट दीनता सहित सेवा करते हुए रहने लगे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी ने जगतवासियों की शिक्षा के लिए और उत्तर बंगाल के आधिवासियों के मंगल के लिए एक अद्भुत लीला की। विरक्त लोकनाथ गोस्वामी जी ने सामाजिक रीतियों-नीतियों के अनुकूल दानादि देने, व्यवहार आदि में नरोत्तम ठाकुर जी की रुचि और उत्साह देखकर उनको घर वापस जाकर वे सब कार्य करने की आज्ञा दी। श्रीहरि के अनन्यशरण व्यक्तियों की अप्राकृत भूमिका में, श्रीहरि की अन्तरंग सेवा करते समय, संसारिक, स्थूल व तात्कालिक कल्याण करने वाले कार्यों में उत्साह और रूचि नहीं होती। उपरोक्त भाव में कमी होने पर ही जगत के कल्याण के कार्य बहुमाननीय होते हैं। गुरुदेव के आदेश से नरोत्तम ठाकुर उत्तरी बंगाल में आकर शुद्ध प्रेम भक्ति की वाणी का प्रचार करके उस देश के निवासियों का उद्धार करने लगे। नरोत्तम ठाकुर ने स्वरचित प्रार्थना गीति में बड़े दुख के साथ लिखा था–

अनेक दुःखेर परे, लयेछिले व्रजपुरे।

कृपाडोर गलाय बान्धिया॥

दैव-माया बलात्कारे खसाइया सेइ डोरे।

भवकूपे दिलेक डारिया॥

[अर्थात् गले में कृपा डोरी बान्धकर, बहुत दुःखों के पश्चात् आप मुझे व्रज ले गये थे; परन्तु दैवी माया ने ज़बरदस्ती वह डोरी गले से निकाल दी और फिर मुझे भव-सागर में डाल दिया।]

श्रीलोकनाथ गोस्वामी ने अनुमानतः 1510 शक सम्वत् में आषाढ़ी कृष्ण अष्टमी को तिरोधान लीला की। वृन्दावन में श्रीराधा गोकुलानन्द मन्दिर में उनका समाधि मन्दिर है। श्रीलोकनाथ गोस्वामी जी द्वारा सेवित श्रीराधाविनोद जी का विग्रह भी आजकल श्रीगोकुलानन्द मन्दिर में सेवित होता है।

****

श्रील नरहरि सरकार ठाकुर

पुरा मधुमती प्राणसखी वृन्दावने स्थिता।

अधुना नरहर्याख्यः सरकारः प्रभो प्रियः॥ (गौ. ग. दी. 117 श्लोक)

[पूर्व जन्म में जो वृन्दावन की मधुमती प्राणसखी थी, वे ही इस जन्म में नरहरि सरकार प्रभु हुये।]

श्रील नरहरि सरकार ठाकुर श्रीचैतन्य महाप्रभु की शाखा में गिने जाते हैं। श्रीकृष्ण लीला में जो वृन्दावन की मधुमती प्राण सखी थीं, वे नरहरिदास सरकार के रूप में प्रकट हुये थे। महाप्रभुजी की इच्छा के अनुसार उन्होंने वैद्यकुल में जन्म लेकर उस कुल को धन्य किया था। ये श्रीखण्डवासी भक्तों में महाप्रभु के प्रधान पार्षद थे।

वर्द्धमान ज़िला में काटोया के निकट श्रीखण्ड रेलवे स्टेशन है। श्रीखण्ड स्टेशन से एक मील दूर नरहरि सरकार ठाकुर का पीठ स्थान था। श्रीखण्डवासी भक्तों में श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के अतिरिक्त श्रीमुकुन्द, श्रीरघुनन्दन, श्रीचिरंजीव, श्रीसुलोचन, श्रीदामोदर कविराज, श्रीरामचन्द्र कविराज, श्रीगोविन्द कविराज, श्रीबलराम दास, श्रीरतिकान्त, श्रीरामगोपालदास, श्रीपिताम्बरदास, श्रीशचीनन्दन तथा श्रीजगदानन्द मुख्य थे। नरहरि ठाकुर के वैद्यकुल में आविर्भाव के सम्बन्ध में महोपाध्याय भरत मल्लिक ने 'चन्द्रप्रभा' में इस प्रकार लिखा है—

श्रीखण्ड नाम नगरी राढ़े बंगेषु विश्रुता।

सर्वेषामेव वैद्यानामाश्रयो यत्र विद्यते॥

यत्र गोष्ठीभूता वैद्या यः खण्डोऽभूद् भिषकप्रियः।

विशेषतः कुलीनानां सर्वेषमेव वासभूः॥

खण्डवासी मुकुन्द दास, श्रीरघुनन्दन।

नरहरिदास, चिरंजीव, सुलोचन॥

एइ सब महाशाखा—चैतन्य-कृपाधाम।

प्रेम-फल-फूल करे याँहा ताँहा दान॥ (चै.च.आ. 10/78-79)

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में नरहरि सरकार का आविर्भाव सन् 1401 शकाब्द, एक भिन्न मत के अनुसार 1402 शकाब्द लिखा है। इनके पिता का नाम श्रीनारायण दास और माता का नाम श्रीगोयी था। श्रीमती गोयी, श्रीमुरारी सेन की पुत्री थीं। नारायण दास जी के तीन पुत्र थे—श्रीमुकुन्द, श्रीमाधव और श्रीनरहरि।

भाग्यवन्त नारायण दासेर नन्दन।

मुकुन्द, माधव, नरहरि—तिन जन॥

मुकुन्देर पुत्र रघुनन्दन ठाकुर।

ईंहार दर्शने सब ताप हय दूर॥ (भक्तिरत्नाकर 11/730-731)

झामटपुर के निकट स्थित 'को' ग्राम के निवासी, श्रीचैतन्य मंगल के रचयिता, श्रील लोचन दास ठाकुर इनके शिष्य थे। इसीलिए श्रीलोचन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्यमंगल में श्रीगदाधर दास और श्रीनरहरि दास ठाकुर का, श्रीमन्महाप्रभु जी के अत्यन्त प्रिय के रूप में उल्लेख किया है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवत में श्रीखण्डवासी भक्तों की महिमा विस्तार पूर्वक वर्णित हुई है। श्रील लोचन दास ठाकुर जी ने अपने गुरुदेव के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

श्रीनरहरिदास ठाकुर आमार।

वैद्यकुले महाकुल प्रभाव यांहार॥

अनर्गल कृष्ण प्रेम कृष्णमय तनु।

अनुगत जने ना बुझान प्रेम बिनु॥

वृन्दावने मधुमति नाम छिल यार।

राधा प्रिय सखी तिंहो मधुर भण्डार॥

एवे कलिकाले गौर संगे नरहरि।

राधा कृष्ण प्रेमेर भण्डारे अधिकारी॥

[मेरे गुरुदेव श्रीनरहरि दास ठाकुर जी का वैद्यकुल में बहुत प्रभाव था। उनका शरीर कृष्णमय था। वह निरन्तर कृष्ण प्रेम में मग्न रहते थे। कृष्ण प्रेम के बिना कोई दूसरी बात नहीं करते थे, श्रीवृन्दावन में जिनका मधुमती नाम था, जो राधा जी की प्रिय सखी थे, वे ही अब कलिकाल में गौरांग महाप्रभु जी के साथी नरहरि के रूप में है; जोकि श्रीराधा- कृष्ण प्रेम भण्डार के अधिकारी हैं।]

पिता श्रीनारायण दास के अवसान के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमुकुन्द ने नवद्वीप में श्रीनरहरि दास के अध्ययन की व्यवस्था की थी। ऐसा सुना जाता है की श्रीमुकुन्द ने सांसारिक खर्च पूरा करने के लिए बादशाह के निजी चिकित्सक के रूप में काम किया था। नरहरि सरकार बहुत कम समय में ही सुपण्डित और भक्ति रसज्ञ हो गये थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के सम्पर्क में आने से पहले ही इन्होंने श्रीराधा गोविन्द की लीला सूचक पदावाली की रचना कर ली थी। श्रीगदाधर पण्डित जिस समय निरन्तर महाप्रभु जी के पास रहकर उनकी सेवा करते थे, उसी समय श्रीनरहरि सरकार ठाकुर जी ने भी श्रीमन्महाप्रभु जी की सेवा में लगने का सौभाग्य प्राप्त किया था। नरहरि सरकार द्वारा की जाने वाली निर्दिष्ट अन्तरंग सेवा थी—"चामर ढुलाना"।

श्रीगौराङ्ग महाप्रभु जी के निजी व्यक्ति श्रील भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा रचित "श्रीगौरआरती" कीर्तन में नरहरि सरकार ठाकुर आदि खण्डवासी भक्तों की नियत सेवा "चामर ढुलाना" का उल्लेख है। जैसे—

नरहरि-आदि करि' चामर ढुलाय।

सञ्जय-मुकुन्द-वासुघोष-आदि गाय॥

[अर्थात् श्रीनरहरि आदि आरती में चामर ढुलाते है तथा संजय, मुकुन्द तथा वासुघोष आदि गाते हैं।]

इनके द्वारा रचित ग्रंथों में "भक्ति चन्द्रिका पटल" 'श्रीकृष्ण भजनामृत',' श्रीचैतन्य सहस्रनाम ', 'श्रीशचीतनयाष्टक ', 'श्रीराधाष्टक'—आदि ग्रन्थ भक्त समाज में ज्यादा आदरित हैं व प्रसिद्ध हैं। इनके जीवन चरित्र में जो अद्‌भुत घटना सुनने को मिलती है वह ये कि एक दिन श्रीगौरांग महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीखण्ड में श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के श्रीपाट पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने नरहरि जी से मधुपान करने की इच्छा प्रकाश की। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए वे पास के तालाब के पास गये और अपनी शक्ति के प्रभाव से उन्होंने तालाब के जल को शहद के रूप में बदल दिया तथा उससे श्रीगौरांग महाप्रभु जी व नित्यानन्द जी की प्यास बुझायी। आज भी वह तालाब मधुपुष्करिणी के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीमन्महाप्रभु जी के स्वप्न में दिये गये आदेश से श्रीनरहरि सरकार ठाकुर ने जो तीन गौर विग्रह प्रकट किये थे वे आजकल श्रीखण्ड, काटोया और गंगानगर में सेवित हो रहे हैं। श्रीनरहरि सरकार ठाकुर पुरुषोत्तम धाम में श्रीमन्महाप्रभुजी की लीला के साथी बने थे—

नरहरि दास आदि जत खण्डवासी।

शिवानन्दसेन-सङ्गे' मिलिला सबे आसि'॥ (चै.च.म. 1/132)

श्रीमन्महाप्रभु जी द्वारा दक्षिण भारत वासियों का कृष्ण-प्रेम दान द्वारा उद्धार करके पुरुषोत्तम धाम में वापस आने पर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने काला कृष्णदास को महाप्रभु जी की पुरी में वापिसी का समाचार गौड़ देश के भक्तों को देने के लिए नवद्वीप भेजा था। पुरी में महाप्रभु की वापसी का समाचार पाकर गौड़ देश के भक्त पुरी जाने की तैयारी करने लगे तो खण्डवासी भक्त उनके साथी बन गये थे—

मुकुन्द, नरहरि, रघुनन्दन खण्ड हैते।

आचर्येर ठाईं आईला नीलाचल याइते॥ (चै.च.म. 10/90)

श्रीजगन्नाथ देव जी की स्नान यात्रा के बाद जगन्नाथ जी के अनवसर काल में महाप्रभुजी श्रीभागवद्-दर्शनों के विरह में, आलालनाथ में जाकर रहने लगे। पुनः गौड़देश के भक्तों का पुरी में आने का सन्देश पाकर, भक्तों को दर्शन देने के लिए वे वापस पुरी आए। उस समय सार्वभौम भट्टाचार्य की इच्छा से गोपीनाथ आचार्य ने भक्तों का परिचय दिया। परिचय देने के समय, उन्होंने खण्डवासी भक्तों का भी परिचय दिया था—

मुकुन्ददास, नरहरि, श्रीरघुनन्दन।

खण्डवासी, चिरञ्जीव, आर सुलोचन॥

कतेक कहिब, एइ देख जत जन।

चैतन्येर गण, सब-चैतन्यजीवन॥ (चै.च.म. 11/92-93)

[श्रीमुकुन्ददास, श्रीनरहरि, श्रीरघुनन्दन और श्रीसुलोचन यह सब चिरंजीवी खण्डवासी हैं। कितनों के नाम लूँ, आप सबको देख लीजिये। यह सब चैतन्य महाप्रभु के जीवन स्वरूप हैं और उनके गण हैं।]

पुरुषोत्तम धाम में, श्रीजगन्नाथ देव के रथ के आगे गौड़देशीय भक्तों ने जो सात मण्डलियों में बंटकर नृत्य किया था, उनके बीच में सातवीं मण्डली में खण्डवासी भक्त थे। सातवीं मण्डली के संकीर्तन में नरहरि सरकार ठाकुर और रघुनंदन ने भी नृत्य किया था—

खण्डेर सम्प्रदाय करे अन्यत्र कीर्तन।

नरहरि नाचे ताँहा श्रीरघुनन्दन॥ (चै.च.म. 13/46)

श्रीमन्महाप्रभु जी ने मुकुन्द, रघुनन्दन और नरहरि के बीच सेवा कार्यों के बांटने के समय, नरहरि सरकार को भक्तों के साथ रहने की सेवा प्रदान की थी।

अनेक लोग भ्रमवश भक्ति रत्नाकर के रचयिता नरहरि चक्रवर्त्ती और नरहरि सरकार ठाकुर को एक ही मानते हैं। श्रीनरहरि चक्रवर्त्ती, जो घनश्याम दास से प्रसिद्ध थे, एक पृथक व्यक्ति थे। उनका जन्म स्थान मुर्शिदाबाद ज़िले में था। इनके पिता श्रीजगन्नाथ चक्रवर्त्ती पाद के शिष्य थे। ये गोविन्द जी के आदेश से, रसोईये के रूप में सेवा के लिए नियुक्त हुए थे। बाद में ये रसोईया पुजारी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। निम्नलिखित गीति नरहरि सरकार ठाकुर द्वारा रचित कही जाती है—

आओल गौर, पुनहि नदिया पुर

होयत मनहि उल्लास।

ऐछे आनन्द कन्द किये हेरव,

करवहि कीर्तन विलास॥

हरि-हरि कब हाम हेरव, सो मुख सो मुख चान्द।

विरह पयोधि कवहु दिन पांग वर

टूटक हृदयक बान्ध॥

कुन्दन कनक पांति, केव हेरव

यज्ञ कि सूत्र विराज॥

बाहु युगल तुलि, हरि-हरि बोलव,

नटन भक्तगण माझ॥

एत कहि नयन मुदि, बहु सब जन,

गौर प्रेम भेल भोर।

नरहरि दास आश, कव पुरव।

हेरव गौर किशोर॥

नरहरि सरकार ठाकुर, अनुमानतः सन् 1540 में अग्रहायण मास की कृष्णा एकादशी तिथि को अप्रकट हुए थे। उस समय नरहरि ठाकुर जी का जो तिरोभाव हुआ था, उस तिरोभाव उत्सव की सारी व्यवस्था श्रीनिवासाचार्य जी ने बड़े सुन्दर रूप से की थी। श्रीनित्यानन्द प्रभु के पुत्र श्रीवीरभद्र गोस्वामी और उस समय के श्रेष्ठ वैष्णवों ने इस उत्सव में योगदान किया था—

केहो कहे "आहे भाई! शीघ्र ना याइव।

श्रीखंडे ते प्रेमेर समुद्र उथलिव॥

अग्रहायणे कृष्णा एकादशी-सर्वोपरि।

याते अदर्शन श्रीठाकुर नरहरि॥

सेइ एकादशीके आछये दिन चारी।

हवे ये उत्सव ता देखिवा नेत्र भरि॥" (भ. र. 9/512-514)

****

श्रील रघुनन्दन ठाकुर

व्यूहस्तृतीयः प्रद्युम्नः प्रियनर्मसखोऽभवत्।

चक्रे लीलासहायं यो राधा-माधवयोर्व्रजे

श्रीचैतन्याद्वैत तनुः स एव रघुनन्दनः। (गौ. ग. दी. 70 श्लोक)

प्रद्युम्न जी तृतीय व्यूह के हैं। इन्होंने कृष्ण के प्रियनर्म सखा होकर व्रज में श्रीराधामाधव जी की लीला में सहायता की थी। वे प्रद्युम्न जी ही इस समय श्रीचैतन्य के अभीन्न देह रघुनन्दन बने हैं।

ये वैद्यकूल में पैदा हुये थे। किसी के मत में इनका आविर्भाव 1432 शकाब्द में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमुकुन्द दास जी है, जबकि इनकी माता का नाम ज्ञात नहीं हो पाया। रघुनन्दन ठाकुर के पिता श्रीमुकुन्द दास, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के बड़े भाई थे। श्रीचैतन्यचरितामृत की मध्य लीला के पन्द्रहवें परिच्छेद में यह स्पष्ट तौर पर लिखा है कि रघुनन्दन के पिता श्रीमुकुन्द दास राजवैद्य थे।, जैसे कि—

बाह्ये राजवैद्य इँहो, करे राज-सेवा।

अन्तरे प्रेम इँहार जानिबेक केबा॥

एक बार श्रीमुकुन्द दास, बादशाह की चिकित्सा करने गये तो वे वहाँ मोर पंखों से बने पंखे को देखकर मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे।इस प्रसंग का वर्णन श्रीचैतन्यचरितामृत में हुआ है।वर्द्धमान ज़िले के अन्तर्गत श्रीखण्ड में इनका पीठ स्थान था। वर्द्धमान काटोया रेललाईन पर है। काटोया से पहिले ही इनका पीठ स्थान व श्रीखण्ड है और उसके बाद श्रीखण्ड का रेलवे स्टेशन है। श्रीखण्ड स्टेशन से पीठस्थान* की दूरी लगभग एक मील है।

श्रील रघुनन्दन ठाकुर बसन्त पंचमी के दिन प्रकट हुए थे। रघुनन्दन के चाचा श्रीनरहरि सरकार ठाकुर ने श्रीरघुनन्दन ठाकुर का बचपन से ही बहुत स्नेह के साथ पालन-पोषण किया था।

जहाँ कृष्ण भक्ति होती है, वहीं गुरुत्त्व का प्रकाश होता है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने ऐसा कहकर रघुनन्दन जी को मुकुन्द दास जी के पिता रूप से निर्देश किया था।—

खण्डेर मुकुन्ददास, श्रीरघुनन्दन।

श्रीनरहरि,-एइ मुख्य तिन जन॥

मुकुन्द दासेरे पूछे शचीर नन्दन।

"तुमि-पीता, पुत्र तोमार-रघुनन्दन??॥

किबा रघुनन्दन-पिता, तुमि-तार तनय?

----

* श्रीपीठस्थान श्रीखण्ड निवासी भक्तों के नाम:- श्रीनरहरि सरकार ठाकुर, श्रीमुकुन्द ठाकुर, श्रीरघुनन्दन, श्रीचिरंजीव, श्रीसुलोचन, श्रीदामोदर कविराज, श्रीरामचन्द्र कविराज, श्रीगोविन्द कविराज, श्रीबलराम दास, श्रीरतिकान्त, श्रीरामगोपाल दास, श्रीपीताम्बर दास, श्रीशचीनन्दन दास, श्रीजगदानन्द आदि।

निश्चय करिया कह, याउक संशय॥"

मुकुन्द कहे,-"रघुनन्दन आमार 'पिता' हय।

आमि तार 'पुत्र',-एइ आमार निश्चय॥

आमा सबार कृष्णभक्ति रघुनन्दन हैते। "

अतएव पिता-रघुनन्दन, आमार निश्चिते॥

शुनि' हर्षे कहे प्रभु,-"कहिले निश्चय।

जाँहा हैते कृष्णभक्ति सेइ गुरु हय॥"

(चै. च.म. 15/112-117)

[श्रीखण्ड के तीन मुख्य जन है—श्रीमुकुन्द दास, श्रीरघुनन्दन और श्रीनरहरि। एक दिन श्रीशचिनन्दन गौरहरि श्रीमुकुन्द दास से पूछते हैं-आप पिता हो और आपका पुत्र श्रीरघुनन्दन है या रघुनन्दन पिता है और तुम उसके पुत्र हो? आप यह निश्च्य रूप से बताइये ताकि मेरा संशय दूर हो जाये।

श्रीमुकुन्द जी कहते हैं कि रघुनन्दन मेरा पिता है, मै उनका पुत्र हूँ, यही मेरा निश्च्य है, चूँकि हम सबकी कृष्णभक्ति श्रीरघुनन्दन से हुई है। अतः निश्चित रूप से रघुनन्दन ही मेरा पिता है।

यह सुनकर प्रभु प्रसनन्ता से कहने लगे कि अपने ठीक बात कही है, जिससे कृष्ण भक्ति मिले, वही महान है, बड़ा है।]

श्रीमन्महाप्रभुजी ने रघुनन्दन ठाकुर को सेवा के रूप में श्रीविग्रह सेवा का आदेश दिया था।

रघुनन्देर कार्य—कृष्णेर सेवन।

कृष्ण-सेवा बिना इँहार अन्य नाहि मन॥

(चै. च.म. 15/131)

(अर्थात श्रीरघुनन्दन का कार्य तो श्रीकृष्ण की सेवा ही है। कृष्ण सेवा छोड़कर उनका मन और कुछ नहीं चाहता।)

रघुनन्दन ठाकुर ने शिशुकाल में अपने कुल देवता श्रीगोपीनाथ को लड्डू खिलाये थे। उद्धवदास की गीति में उसका इस प्रकार वर्णन है—

प्रकट श्रीखण्डवास, नाम श्रीमुकुन्ददास,

धरे सेवा गोपीनाथ जानि।

गेला कोन कार्यान्तरे, सेवा करिवार तरे,

श्रीरघुनन्दने डाकि आनि॥

घरे आछे कृष्ण सेवा, यत्न करे खवाइबा,

एत बलि मुकुन्द चलिला।

पितार आदेश पाया, सेवार सामग्री लैया,

गोपीनाथेर सम्मुखे आइला॥

श्रीरघुनन्दने अती, वयः क्रम शिशुमती,

खाओ बले कांदिते कांदिते।

कृष्ण से प्रेमेर वशे, ना राखिया अवशेषे,

सकल खाइला अलक्षिते॥

आसिया मुकुन्ददास, कहे बालकेर पाश,

प्रसाद नैवेद्य आन देखि।

शिशु कहे नाथ शुन, सकलि खाइल पुनः,

अवशेषे कछु न राखि।

शुनि अपरूप हेन, विस्मित हृदये पुनः,

आर दिने बालके कहिया।

सेवा अनुमति दिया, बाड़ीर बाहिर हैया,

पुनः आसि रहे लुकाइया॥

श्रीरघुनन्दन अति, हइया हरिषमति,

गोपीनाथे लाडू दिया करे।

खाओ खाओ बले घन, अर्धेक खाइते हेन,

समये मुकुन्द देखी द्वारे॥

ये खाइल रहे हेन, आर ना खाइला पुनः,

देखिया मुकुन्द प्रेमे भोर।

नन्दन करिया कोले, गद् गद् स्वरे वोले,

नयने वरिषे घन लोर॥

अद्यपि श्रीखण्डपुरे, अर्द्ध लाडू आछे करे।

देखे यत भाग्यवन्त जने॥

श्रीरघुनन्दन यांरे लाडू खाओवाइल।

तांरे देखी मने महा कौतुक वाड़िल॥

(भ.र. 9/525)

(अर्थात् श्रीखण्ड में श्रीमुकुन्द दास नाम वाले भक्त प्रकट हुए। वह घर में ही श्रीगोपीनाथ जी की सेवा करते थे। एक बार उनको किसी कार्य के लिए बाहर जाना था। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र रघुनन्दन को बुलाकर कहा कि घर में श्रीगोपीनाथ जी की सेवा है,यत्न करके ठाकुर जी को भोग लगाना-ऐसा कहकर श्रीमुकुन्द जी चले गए। पिता जी के आदेशानुसार रघुनन्दन जी सेवा की सामग्री लेकर श्रीगोपीनाथ जी के पास आये। श्रीरघुनन्दन अभी बाल्य अवस्था में ही थे, सो सरल भाव से गोपीनाथ जी को रोते-रोते कहने लगे कि आप खाओ। गोपीनाथ जी तो प्रेम के वश में हैं, उन्होंने गुप्त रूप से सारी सामग्री खा ली। जब श्रीमुकुन्द दास लौटे तो बालक को कहा कि जाकर नैवेद्य प्रसाद लाओ तो बालक ने कहा कि वह तो गोपीनाथ जी ने सारा खा लिया, कुछ भी तो नहीं छोड़ा, यह सुनकर श्रीमुकुन्द विस्मित हो गये। फिर किसी और दिन बालक को सेवा करने के लिए कहकर स्वयं घर से बाहर जाकर और फिर घर में आकर छिप गये। इधर श्रीरघुनन्दन ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने हाथ में श्रीगोपीनाथ जी को लड्डू दिया और लो खाओ, लो खाओ-ऐसा कहने लगे। श्रीगोपीनाथ जी ने जब आधा लड्डू खा लिया तो उसी समय श्रीमुकुन्द जी कमरे में देखने के लिए आ गये। आधा लड्डू जो बच गया था, उसे श्रीगोपीनाथ जी ने नहीं खाया। यह देखकर मुकुन्द प्रेम में विभोर हो गये उनके नयनों से अश्रुधारा चलने लगी, कण्ठ गद् गद् हो गया और अति प्रसन्न होकर उन्होंने रघुनन्दन को गोद में उठा लिया।

आज भी श्रीखण्डदेश में आधा लड्डू लिये श्रीगोपीनाथ जी विराजमान हैं। कोई भाग्यवान् ही उनके दर्शन पा सकता है। श्रीरघुनन्दन जी मदनमोहन से अभिन्न हैं, रसिक उद्धव दास यह कहते हैं कि श्रीरघुनन्दन ने जिनको लड्डू खिलाया था, उनके दर्शन करने का मनमें महाकौतुक बढ़ गया।)

श्रीनरहरि सरकार ठाकुर ने पीठस्थान के निकटवर्त्ती जलाशय से, श्रीगौरांग महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु की सेवा के लिए पूर्णरूपेण परिपक्व शहद प्राप्त किया था। यह किम्वदन्ती भी सुनी जाती है कि रघुनन्दन के अलौकिक प्रभाव से, उस जलाशय के तटवर्ती कदम्ब वृक्ष पर हमेशा दो फूल खिलते थे।

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में श्रीरघुनन्दन ठाकुर के सम्बन्ध में एक अन्य अलौकिक घटना का उल्लेख भी है।–

श्रीअभिराम ठाकुर ने किसी समय श्रीखण्ड में आकर श्रीरघुनन्दन को प्रणाम किया। श्रीरघुनन्दन उनका आलिंगन करके प्रेम में सराबोर हो गए थे। उस समय रघुनन्दन बड़ डांगा में प्रचण्ड कीर्तन कर रहे थे, उनके चरणों का नूपुर टूट कर दो कोस दूर आकाइहाट में उनके शिष्य श्रीकृष्ण दास के घर जा गिरा। बाद में उस स्थान की स्मृति का संरक्षण करने के लिए वहाँ एक कुण्ड बनाया गया, जिसकी नूपुर कुण्ड के नाम से प्रसिद्धि हुई।

संकीर्तन पिता श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने स्वीकृत पुत्र श्रीरघुनन्दन को संकीर्तन यज्ञ के अधिवास दिवस में माला-चन्दन और यज्ञ की शेष आहुति प्रदान करने का अधिकारी बनाया था।

श्रीरघुनन्दन ठाकुर चातुर्मास्य के समय गौड़देश के भक्तों के साथ पूरी जाते थे। श्रीजगन्नाथ जी के रथ के आगे जो सात सम्प्रदायों का नृत्य कीर्तन होता था, उसमें खण्डवासी भक्तों की सातवीं मण्डली के नर्त्तक थे, श्रील नरहरि सरकार ठाकुर और श्रीरघुनन्दन।

श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीनिवासाचार्य प्रभु द्वारा आयोजित खेतरि पीठस्थान महोत्सव में, काटोया में दास गदाधर जी के और श्रीखण्ड में श्रीनरहरि सरकार के तिरोभाव उत्सव में श्रीरघुनन्दन ठाकुर ने योगदान दिया था। –

केह केह-श्रीरघुनन्दने प्रीत यार।

जन्मे जन्मे श्रीकृष्ण चैतन्य वश तार॥

केह केह-कि दयालु श्रीरघुनन्दन।

प्रीत दीन हीन, दुः ख जनेर जीवन॥

केह केह-कि दैन्य! विनय नाइ हेन।

केह केह-कंदर्पे प्राय शोभा येन॥

इत्यादि (भक्तिरत्नाकर के नवम् तरंग में देखा जा सकता है)

[कोई कहता है कि जिसकी श्रीरघुनन्दन से प्रीति है, जन्म-जन्म में श्रीकृष्णचैतन्य उसके वश में हैं। कोई कहता है कि अहा! श्रीरघुनन्दन जी कितने दयालु हैं, वे दीन-हीन तथा दुःखी जीवों के तो जीवन स्वरूप हैं। कोई कहता है कि

उनमें इतनी दीनता व विनय भाव था कि उनका वर्णन ही नहीं हो सकता। कोई कहता है कि उनकी शोभा कामदेव के समान है।.........इत्यादि]

श्रील रघुनन्दन ठाकुर का श्रीनिवासाचार्य के प्रति असीम वात्सल्य स्नेह था। उन्होंने तिरोधान से पाहिले "वैष्णव धर्म का भविष्य आशाप्रद नहीं" -ऐसा कहकर श्रीनिवासाचार्य प्रभु को आश्वासन देकर आशीर्वाद प्रदान किया था –

आईसे समय इथे विषम हइव।

सवाकार मने नाना संदेह जन्मिव॥

कृष्ण चैतन्य-चन्द्रेण नित्यानन्देन संहृते।

अवतारे कलावस्मित् वैष्णवाः सर्वे एव हि॥

भविष्यन्ति सदोद्विगनाः काले काले दिने दिने।

प्रायः संदिग्ध हृदया उत्तमेतर मध्यमा॥

(श्रीकृष्ण भजनामृत)

अर्थात रघुनन्दन जी ने श्रीनिवास जी को कहा कि श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु और नित्यानन्द प्रभु द्वारा अपनी लीला संवरण करने पर इस कलिकाल में सारे वैष्णव सदा उद्विग्न-चित्त रहेंगे। उत्तम, मध्यम और कनिष्ट सभी समय के प्रभाव से सब समय पर प्रायः संदिग्ध-चित्त से रहने लगेंगे।

नहिव चिंतित इथे-प्रभु गौरराय।

साधिव अनेक कार्य तोमार द्वाराय॥

चिरंजीवी हइया रहिवे पृथ्वीते।

राखीवे प्रभुर धर्म स्वगण सहिते॥

तोमार प्रभावे कृष्णावहिर्मुख गण।

हइव उन्मुख लैया तोमर शरण॥

(भक्तिरत्नाकर 13/174 -179)

[रघुनन्दन जी कहते हैं-परन्तु चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं श्रीनिवास, क्योंकि श्रीगौरराय तुम्हारे द्वारा अनेक कार्य करवायेंगे।आप पृथ्वी पर लम्बे समय तक जीवित रहो और अपने साथियों के साथ महाप्रभु जी के धर्म का प्रचार करो। जो लोग श्रीकृष्ण से विमुख है, वे सब आपके प्रभाव से आपकी शरण लेकर श्रीकृष्ण के उन्मुख हो जायेंगे।]

अपने पुत्र कानाई ठाकुर को, गौर-गोपाल के चरणों में समर्पित करके, श्रील रघुनन्दन ठाकुर ने श्रावण मास की शुक्ला चतुर्दशी वाले दिन इस संसार की लीला संवरण की। श्रीकानाई ठाकुर ने पिता का तिरोभाव उत्सव किया।

श्रीकृष्णचैतन्यनाम लैया पुनः-पुनः।

हैला संगोपन देखि लोक चमत्कार॥

धन्य से श्रावण शुक्ला चतुर्थी दिवस।

केवा नाहि गाय रघुनन्दनेर यश॥

(भ.र. 13/183-184)

[अर्थात् पुनः-पुनः श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी का नाम लेकर श्रीरघुनन्दन जी अदृश्य हो गये। यह चमत्कार देखकर लोग विस्मित हो गये।वह श्रावन की शुक्ला चतुर्थी का दिन धन्य है जिस दिन रघुनन्दनजी ने आप्रकट लीला की। कौन ऐसा है जो उस दिन श्रीरघुनन्दन का यश नहीं गायेगा।]

****

श्रीगोविन्द घोष, श्रीमाधव एवं श्रीवासुदेव घोष

“कलावती रसोल्लासा गुणतुङ्गा व्रजे स्थिता।

श्रीविशाखाकृतं गीतं गायन्ति समाद्य ता मताः॥

गोविन्द-माधवानन्द-वासुदेवा यथाक्रमं।” (गौ. ग. दी. 288 श्लोक)

व्रजलीला में जो 'कलावती' हैं वे गौरलीला में 'श्रीगोविन्द घोष' हैं। ये उत्तर राढ़ीया शौक्रकायस्थ कुल में आविर्भूत हुए थे। अग्रद्वीप में इनका श्रीपाठ है। श्रीमाधव और श्रीवासुदेव घोष इनके ही भाई हैं।ये प्रसिद्ध सुकण्ठ कीर्तनीया थे—

सुकृति माधव घोष—कीर्तने तत्पर।

हेन कीर्तनीया नाहि पृथिवी-भितर॥

याहारे कहेन-वृन्दावनेर गायन।

नितयानन्द-स्वरूपेर महाप्रियतम॥

माधव, गोविन्द, वासुदेव—तिन भाइ।

गाइते लागिला, नाचे ईश्वर-निताइ॥

(चै.भा.अ. 5/257-259)

(सुकृतिशाली माधव घोष संकीर्तन में तत्पर रहते हैं। इन जैसा कीर्तन करनेवाला पृथ्वी में नहीं है। आप श्रीनित्यानन्द और स्वरूप दामोदर के बहुत प्रिय है, सभी आपको वृन्दावन का गायक कहते हैं। श्रीमाधव, श्रीगोविन्द और श्रीवासुदेव यह तीनों भाई गाते हैं और नित्यान्द प्रभु नृत्य करते हैं।)

गोविन्द, माधव, वासुदेव—तिन भाइ।

याँ-सबार कीर्तने नाचे चैतन्य-निताइ॥

(चै.च.आ. 10/115)

(अर्थात् श्रीगोविन्द, श्रीमाधव और श्रीवासुदेव इन सब के कीर्तन में श्रीमहाप्रभु और श्रीनित्यान्द नृत्य करते हैं।)

गौड़ देश में प्रचार में आने के समय श्रीमन् नित्यान्द प्रभु के साथ श्रीवासुदेव घोष तथा श्रीमाधव गोष आए थे किन्तु गोविन्द घोष उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी के पास नीलाचल में ही थे—

"प्रभु-संगे रहे गोविन्द पाइया सन्तोष"

(चै.च.आ 10/118)

ये श्रीगौरांग महाप्रभु जी की शाखा में गिने गए हैं।

श्रीवासुदेव घोष जी का तमलूक में , श्रीमाधव गोष जी का दांइहाट में एवं श्रीगोविन्द गोष का अग्रद्वीप में श्रीपाट (निवास स्थान) है। अग्रद्वीप के नज़दीक काशीपुर विष्णुतला में घोष ठाकुर का वास था। किसी-किसी का कहना है कि वैष्णवतला में इनका आविर्भाव स्थान है। श्रीगोविन्द घोष श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ श्रीवास आंगन में, काज़ी दलन वाले दिन नगर संकीर्तन में तथा राघव भवन में हुए कीर्तन में संगी थे। इसके अतिरिक्त पूरी में रथ के आगे संकीर्तन कर रही सात-मण्डलियों में से चौथी मण्डली में ये मूल कीर्तनीया थे। तब मूल कीर्तनीया के पीछे गाने वाले अर्थात दोहार करने वाले थे-हरिदास (छोटे), विष्णुदास, राघव, माधव , तथा वासुघोष। इस मण्डली में श्रीवक्रेश्वर पण्डित जी ने नृत्य किया था।

इन्होंने श्रीमन्महाप्रभु जी के निर्देश से प्राप्त कृष्ण-शिला से अग्रद्वीप में श्रीगोपीनाथ विग्रह प्रकटित किए थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के निर्देशानुसार श्रीगोविन्द घोष जी ने गृहस्थाश्रम स्वीकार किया था। ऐसा प्रवाद है अर्थात कहा जाता है कि उनकी स्री व पुत्र के स्वधाम गमन से भी बहुत चिन्तित हुए थे कि उनकी मृत्यु के बाद कौन उनका पिण्ड देगा तो उसी समय श्रीगोपीनाथ जी ने स्वप्न में गोविन्द घोष को कहा-"तुम चिन्ता मत करना, मैं पिण्ड दूँगा।"

जब श्रीगोविन्द गोष जी ने तिरोधान लीला की तो उससे अगले दिन श्रीगोपीनाथ जी ने उनका पिण्डदान किया था। आज भी श्रीगोविन्द घोष ठाकुर जी की अप्रकृत में श्रीगोपीनाथ जी पिण्डदान करते हैं।

चैत्र कृष्णद्वादशी तिथि में श्रीगोविन्द घोष ठाकुर जी का तिरोधान हुआ। श्रीवासुदेव गोष का कार्तिक शुक्ला द्वितीया में अप्रकट हुए।

श्रीगोविनद घोष ठाकुर जी द्वारा रचित पदावली –

(1)

प्राणेर मुकुन्द हे! कि आजि शुनिलू आचम्वित,

कहिते पराण याय, मुखे नाहि वाहिराय,

श्रीगौरंग छाड़िवे नवद्वीप॥

इहातो न जानि मोरा, सकाले मिलिनुँ गोरा,

अवनत माथे आच्छे वसि।

निझरे नयन झरे, बुक वहि धारा पड़े,

मलिन हैयाच्छे मुख शशी॥

देखिते तखन प्राण सदा करे आनचान,

सुधाइते नाहि अवसर।

क्षणके सम्वित हैल, तवे मुइ निवेदिल,

शुनिया दिलेन ए उत्तर॥

आमि त’ विवश हैया, तारे किछु ना कहिया,

धाइया, आइलुँ तुया पाश।

एइ त' कहिलुँ आमि, ये करिते पार तुमि,

मोर नाहि जीवनेर आश॥

शुनिया मुकुन्द काँदे, हिया स्थिर नाहि बान्धे

गदाधरेर बदन हेरिया।

ए गोविन्द घोष कय इहा येन नाहि हय,

तवे मुञि याइमु मरिया॥

(2)

हेदे रे नदीयावासी कार मुख चाओ।

बाहु पसारिया गोराचाँदे फिराओ॥

तो सबारे के आर करिबे निज कोरे।

के याचिया दिवे प्रेम देखिया कातरे॥

कि शेल हियाय हाय कि शेल हियाय।

पराण पुतली नवद्वीप छाड़ि याय॥

आर न याइव मोर गोरांगेर पाश।

आर न करिव मोरा कीर्तन विलास॥

काँदये भकतगण बुक विदारिया।

पाषाण गोविन्द घोष ना याय मिलिया॥

****

श्रीस्वरूप दामोदर

१**"प्रभु लेखा करे यारे राधिकार 'गण'।**

जगतेर मध्ये 'पात्र'-साड़े तिन जन।

स्वरूप-गोसाञि, आर राय-रामानन्द।

शिखि माहिति—तिन, तांर भगिनी अर्द्धजन॥" (चै.च.अ. 2/105-106)

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जो साड़े तीन व्यक्ति अन्तरंग भक्त थे, उनमें श्रीस्वरूप दामोदर भी एक थे। एक अन्य स्थान पर स्वरूप दामोदर जी को सर्व प्रधान कहा गया है।

२**"सबार अध्यक्ष प्रभुर मर्म दुइजन।**

परमानन्दपुरी, आर स्वरूप-दामोदर॥" (चै.च. आ. 10/124-125)

३**"अवतरि' प्रभु प्रचालित संकीर्त्तन।**

एहो बाह्य हेतु, पूर्वे करियाछि सूचना॥"

४**अवतारेर आर एक आछे मुख्यबीज।**

रसिकाशेखर कृष्णेर सेई कार्य निज॥

अति गूढ़ हेतू सेइ त्रिविध प्रकार।

दामोदर स्वरूप हैते याहार प्रचार॥

स्वरूप-गोसाञि—प्रभुर अति अन्तरंग।

ताहाते जानेन प्रभुर एसब प्रसंग॥ (चै.च.आ. 4/102-105)

----

१ श्रीमन् महाप्रभु जी सारे जगत् में श्रीराधा जी के गण रूप से जिन साड़े तीन भक्तों को गिनते थे-उनमें श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी, श्रीराय रामानन्द जी तथा श्रीशिखि माहिति-ये तीन तथा आधी गिनती थी शिखि माहिति की बहन की।

२ नीलाचल में श्रीपरमानन्द पुरी तथा श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी-ये दोनों ही महाप्रभु जी के अन्तरंग अध्यक्ष थे।

३ श्रीचैतन्य महाप्रभु ने नाम संकीर्त्तन का प्रचार किया। महाप्रभु जी के अवतार का यह बाहरी कारण है-यह बात पहले कही जा चुकी है।

४ श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार का, नाम संकीर्त्तन के प्रचार के अतिरिक्त एक और मुख्य कारण है-वह जो कारण है, वह कारण रसिक शेखर श्रीकृष्ण का निजी कार्य है और वह अत्यन्त गूढ़ है तथा उसके तीन रूप हैं जिनका स्वरूप दामोदर जी द्वारा प्रचार हुआ था। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी जी महाप्रभु जी के अति अन्तरंग हैं इसलिए तो वह महाप्रभु जी के सब प्रसंगों को जानते हैं।

श्रीगौर लीला में राधा भाव-द्युति सुवलित कृष्ण-स्वरूप गौरसुन्दर के द्वितीय स्वरूप है-श्रीस्वरूप दामोदर जी। चूँकि स्वरूप दामोदर जी श्रीमन्हाप्रभु जी के अति अन्तरंग थे, इसलिये वे श्रीमन्महाप्रभु अवतार के लीला –रहस्यों के गूढ़ कारणों को जानते थे। श्रीस्वरूप दामोदर से ही श्रीमन्महाप्रभु जी की गूढ़ लीला के रहस्य आदि प्रचारित हुए हैं। ब्रज लीला में ये ललिता सखी, राधिका जी की द्वितीय स्वरूप थीं। ये भी ठीक है कि गौर गणोद्देशदीपिका में स्वरूप दामोदर जी को विशाखा सखी के रूप में भी निर्देश किया गया है।

१**"कलामशिक्षयद्राधां या विशाखा व्रजे पुरा।**

साद्य स्वरूपगोस्वामी तत्तद्भावविलासवान्॥" (गौ. ग. दी. 160 श्लोक)

श्रीमन् महाप्रभु जी ने पुरी में अपनी अन्त्यलीला के आखिरी बारह वर्ष निरन्तर राधा भाव में विभावित रहकर जिन दो अन्तरंग भक्तों के साथ गूढ़ प्रेम रस का आस्वादन किया था, वे दो अन्तरंग भक्त थे—श्रीस्वरूप दामोदर और राय रामानन्द।

२**"चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति, कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।**

स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने, गाय, शुने-परम आनन्द॥

पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्धसख्य, गोविन्दाद्येर शुद्धदास्यरस।

गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर (मुख्य) रसानन्द, एइ चारिभावे प्रभु वश॥"

(चै.च. म. 2/77-78)

इन पद्यों के अनुभाष्य में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी लिखते हैं कि श्रीपरमानन्द पुरी जी (जो व्रज के उद्धव जी हैं) का वात्सल्य रस प्रधान है। श्रीराय रामानन्द जी (अर्जुन या विशाखा) का शुद्ध सख्यभाव, श्रीगोविन्द आदि का सेवा परायण शुद्ध दास्य तथा अन्तरंग भक्त गदाधर जी, जगदानन्द जी तथा श्रीस्वरूप दामोदर जी का मधुर रस मुख्य है। श्रीमन् महाप्रभु जी इन भक्तों के पास इन चार भावों से ही भजन-संग-सुख सेवा ग्रहणकरने को बाध्य थे—

---

१ श्रीस्वरूप दामोदर जी का उच्च संकीर्त्तनसुनने मात्र से महाप्रभु जी बाह्य ज्ञान शून्य हो जाते हैं तथा साथ-साथ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। महाप्रभु जी के जितने भी संन्यासी पार्षद हैं, उनमें से कोई भी श्रीस्वरूप दामोदर के समान नहीं है। श्रीईश्वरपुरी गोस्वामी को महाप्रभु जी जितनी प्रीति करते हैं, स्वरूप दामोदर जी को भी उतनी ही प्रीति करते हैं। स्वरूप दामोदर जी का संगीत ऐसा रसमय है, जिसकी ध्वनि महाप्रभु जी के कान में पड़ने से उनका स्वयं ही नृत्य होने लग जाता है।

२ श्रीचण्डीदास एवं विद्यापति जी की पदावली, श्रीराय रामानन्द जी का जगन्नाथ बल्लभ नाटक श्रीबिल्वमंगल रचित श्रीकृष्ण कर्णामृत तथा श्रीजयदेव जी के गीतों और पदों को श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीराय रामानन्द जी को सुनाकर अथवा उनसे सुनकर श्रीमन् महाप्रभु जी (शेष बारह वर्षों में) दिन-रात आनन्दमग्न रहते थे। श्रीपरमानन्द पुरी जी में शुद्ध वात्सल्य भाव था, श्रीराय रामानन्द जी का उनमें शुद्ध सख्य भाव था तथा श्रीगोविन्द आदि भक्तों का शुद्ध दास्यरस था। श्रीगदाधर, श्रीजगदानन्द जी एवं श्रीस्वरूप दामोदर जी का महाप्रभु के प्रति मधुर भाव था। श्रीमन् महाप्रभु जी इन चारों भावों से वशीभूत रहते थे।

३"**चैतन्यलीला-रत्न-सार, स्वरूपेर भाण्डार, तेंहो थुइल रघुनाथेर कण्ठे।**

ताहाँ किछु जे शुनिलुँ, ताहा इहा विस्तारिलुँ, भक्तगणे दिलुँ एइ भेटे॥"(चै.च. म. 2/84)

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्य लीला के द्वितीय परिच्छेद के इन उपरोक्त पयारों के अमृत प्रवाह भाष्य में लिखा है कि स्वरूप दामोदर जी के कड़चा (निजी डायरी) की अलग से कोई पुस्तक नहीं मिलती। श्रीचैतन्य चरितामृत ही स्वरूप दामोदर जी के कड़चा का निष्कर्ष है। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि श्रीमन् महाप्रभु जी की शेष लीला को स्वरूप दामोदर जी ने सूत्र रूप से अपनी व्यक्तिगत डायरी में नोट करके रघुनाथ दास गोस्वामी जी को कण्ठस्थ करवाकर कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी के माध्यम से जगत में प्रचारित करवाया। श्रीस्वरूप दामोदर व श्रीराय रामानन्द जी श्रीमन् महाप्रभु जी के कितने प्रिय थे, इसका श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के पन्द्रहवें परिच्छेद में वर्णन किया है—

एत कहि' गौरहरि, दुइजनार कण्ठ धरि',

कहे शुन, स्वरूप-रामराय।

काँहा करों, काँहा जाउ, काहाँ गेले कृष्ण पाउ,

दुँहै मोरे कह से उपाय॥"

एइमत गौरप्रभु प्रति दिन-दिने।

विलाप करेन स्वरूप-रामानन्द-सने॥ (चै.च.अ. 15/24-25)

इतना कहकर श्रीगौर हरि दोनों अर्थात् श्रीस्वरूप दामोदर व राय रामानन्द के गले में बाहें डाल कर कहते हैं-हे स्वरूप! हे रामानन्द!! मैं क्या करूँ? मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ जाने से मुझे श्रीकृष्ण मिलेंगे? आप दोनों मिलकर मुझे ऐसा कोई उपाय बताओ। इस प्रकार श्रीमन् महाप्रभु जी प्रतिदिन श्रीकृष्ण विरह में श्रीस्वरूप एवं राय रामानन्द जी दोनों को लेकर विलाप करते रहते थे। श्रीस्वरूप दामोदर व श्रीराय रामानन्द जी श्रीकृष्ण कर्णामृत, श्रीविद्यापति के पदावली-ग्रन्थ एवं श्रीगीत गोविन्द के श्लोक सुना कर उन्हें आनन्द प्रदान करते थे तथा उन्हें आश्वासन देते रहते थे –

सेई दुईजन प्रभुरे करे आश्वासन।

स्वरूप गाय, राय करे श्लोक पठन॥

कर्णामृत, विद्यापति, श्रीगीतगोविन्द।

इहार श्लोक-गीते प्रभुर कराय आनन्द॥ (चै.च.अ. 15/26-27)

---

३ श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की लीलायें उत्तम रत्नों के सामान हैं और रत्नों का भण्डार श्रीस्वरूप दामोदर जी के पास है। उन्होंने उन सभी की माला गूंथ कर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के गले में पहनायी। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी से जो सुना उन सभी का वर्णन मैंने यहाँ (श्रीचैतन्य चरितामृत में) कर दिया है और उसी को भेंट के रूप में भक्तों को समर्पण करता हूँ।

पुनः श्रीचैतन्य चरितामृत अन्त्य लीला के बीसवें परिच्छेद (3-4) में—

"एइमत महाप्रभु वैसे नीलाचले।

रजनी-दिवसे कृष्ण-विरहे विह्वले॥

स्वरूप, रामानन्द—एइ दुईजन सने।

रात्रिदिने रस-गीत- श्लोक आस्वादने॥"

इस प्रकार नीलाचल में महाप्रभु जी दिन-रात कृष्ण-विह्वल रहते, श्रीस्वरूप दामोदर तथा राय जी के साथ सारी रात गीतों व श्लोकों का आस्वादन करते थे।

श्रीचैतन्य भागवत में श्रीवृन्दावनदास ठाकुर जी ने भी श्रीस्वरूप दामोदर जी को महाप्रभु जी के पार्षदों में अग्रगण्य तथा उनके अप्राकृत प्रेम रसमय कीर्त्तन के श्रवण से प्रभु जी के बाह्य ज्ञान शून्य होने की कथा का इस प्रकार वर्णन किया है—

"दामोदर स्वरूपेर उच्च-संकीर्तन।

शुनिले ना थाके बाह्य, पड़े सेइक्षण॥

संन्यासी-पार्षद यत ईश्वरेर हय।

दामोदर स्वरूप-समान केहो नय॥

यत प्रीति ईश्वरेर पुरीगोसाञिरे।

दामोदर स्वरूपेर तत प्रीति करे॥

दामोदर स्वरूप—संगीत रसमय।

याँ'र ध्वनि श्रवणे प्रभुर नृत्य हय॥"

(चै. भा. अ. 10/40-43)

अर्थात स्वरूप दामोदर जी के द्वारा उच्च संकीर्तन सुनने से श्रीमन् महाप्रभु जी इतने प्रेम में विह्वल हो जाते थे कि वे उस संकीर्तन ध्वनि में अपनी सारी बाहरी सुध-बुध खो जाते थे।

श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी श्रीचैतन्य भागवत में लिखते हैं कि महाप्रभु जी के जितने भी संन्यासी पार्षद हैं, उनमें स्वरूप दामोदर जी के समान कोई भी नहीं है, श्रीमन् महाप्रभु जी जितनी प्रीति श्रीईश्वर पुरी जी से करते हैं, उतनी ही प्रीति वे स्वरूप दामोदर जी से करते हैं। स्वरूप दामोदर जी का संगीत बड़ा रसमय होता था। जिसकी ध्वनि सुनने मात्र से महाप्रभु जी भाव विभोर होकर नृत्य करने लगते थे।

इस जगत की लीला में श्रीस्वरूप दामोदर जी का जो परिचय मिलता है, उससे मालूम है कि ये पूर्वाश्रम में पुरुषोत्तम आचार्य या पुरुषोत्तम भट्टाचार्य के नाम से प्रसिद्ध थे। 'श्रीगौड़ीय वैष्णव-अभियान' में पुरुषोत्तम आचार्य के पिता-माता का व उनके जन्म स्थान का परिचय इस प्रकार से है-इनके पिता का नाम श्रीपद्मगर्भाचार्य है। माता जी के नाम का उल्लेख नहीं है। हाँ, इनके नाना जी के नाम का उल्लेख अवश्य पाया जाता है। इनके नाना का नाम श्रीजय चक्रवर्ती था। आपका आदि निवास था, भिटादिया (पूर्व बंगाल में ब्रह्मपुत्र नदी का तटवर्ती इलाका)।

जयराम चक्रवर्ती नवद्वीप में वास करते थे। आपने अपनी कन्या के साथ पद्मगर्भाचार्य का विवाह करके उन्हें भी नवद्वीप में वास करवाया था। कुछ दिन के बाद पुरुषोत्तम आचार्य का आविर्भाव हुआ। पद्मगर्भाचार्य जी ने अपनी पत्नी को पुत्र के साथ उसके मायके में रख दिया और स्वयं मिथिला, काशी इत्यादि स्थानों पर शास्त्र अध्ययन के लिए प्रस्थान कर गये। श्रीपुरुषोत्तम आचार्य ननिहाल में लालित-पालित होने लगे। बाद में जब महाप्रभु जी ने संन्यास ग्रहणकर लिया, तब महाप्रभु जी के विरह में पुरुषोत्तम आचार्य नवद्वीप में न रह सके। वह भी वाराणसी में जाकर संन्यासी बन गये।

प्रेम विलास में इस प्रकार लिखा है –

"मातामह पुरुषोत्तम हइल नवद्वीपवासी।

चैतन्येर प्रिय भक्त हैल गुणराशि॥

चैतन्येर संन्यास देखी' पागल हइया।

संन्यास ग्रहण कैल वाराणसी गिया॥

संन्यास आश्रमेर नाम-स्वरूप दामोदर।

प्रभु अति मर्मी भक्त रसेर सागर॥"

(श्रीपुरुषोत्तमाचार्य अपने नाना के पास नवद्वीप में रहते थे। वह श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के प्रिय भक्त एवं असंख्य गुणों की खान थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का संन्यास देखकर वह पागल से हो गये एवं स्वयं भी वाराणसी में जाकर संन्यास ग्रहणकर लिया। संन्यासाश्रम में आपका नाम हुआ श्रीस्वरूप दामोदर। आप महाप्रभु जी के अति मर्मी भक्त थे और रस के सागर थे।)

श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्य लीला के दशम परिच्छेद (102-117) में श्रीस्वरूप दामोदर जी के संन्यास-ग्रहण तथा उनके वैशिष्ट्य और महिमा का सुन्दर रूप से वर्णन हुआ है। यथा—

"आर दिने आइला स्वरूप दामोदर।।

प्रभुर अत्यन्त मर्मी, रसेर सागर॥

'पुरुषोत्तम आचार्य' ताँर नाम पूर्वाश्रमे।

नवद्वीपे छिला तेंह प्रभुर चरणे॥

प्रभुर संन्यास देखि' उन्मत्त हञा।

संन्यास ग्रहण कैल वाराणसी गिया॥

'चैतन्यानन्द' गुरु ताँर, आज्ञा दिलेन ताँरे।

वेदान्त पड़िया पडाओ समस्त लोकेरे॥

परम विरक्त तेंह परम पण्डित।

कायमने आश्रियाछे श्रीकृष्ण-चरित॥

निश्चिन्ते कृष्ण भजिब' एइ त' कारणे।

उन्मादे करिल तेंह संन्यास ग्रहणे॥

संन्यास करिला शिखा-सूत्रत्याग-रूप।

योगपट्ट ना निल, नाम हैल 'स्वरूप'॥

गुरु-ठाञि आज्ञा मागि' आइला नीलाचले।

रात्रिदिने कृष्णप्रेम आनन्दे विह्वले॥

पाण्डित्येर अवधि, वाक्य नाहि कारो सने,

निर्जने रहये, लोक सब नाहि जाने॥

कृष्णरस-तत्त्व-वेत्ता, देह—प्रेमरूप।

साक्षात् महाप्रभुर द्वितीय स्वरूप॥

ग्रन्थ, श्लोक, गीत केह प्रभु-पाशे आने।

स्वरूप परीक्षा कैले, प्रभु पाछे शुने॥

भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध, आर रसाभास।

शुनिले ना हय प्रभुर चित्तेर उल्लास॥

अतएव स्वरूप गोसाञि करे परीक्षण।

शुद्ध हय यदि, प्रभुरे करा'न श्रवण॥

विद्यापति, चण्डीदास, श्रीगीत गोविन्द।

एइ तिन गीते करा'न प्रभुर आनन्द॥

संगीते गन्धर्व-सम, शास्त्रे—बृहस्पति।

दामोदर-सम आर नाहि महामति॥

अद्वैत-नित्यानन्देर परम प्रियतम।

श्रीवासादि भक्तगणेर हय प्राण-सम॥"

सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने इस प्रसंग के अनुभाष्य में लिखा है-वैदिक दशनामी संन्यासियों में श्रीशंकाराचार्य जी द्वारा प्रवर्तित विधि इस प्रकार देखी जाती है कि 'तीर्थ' तथा 'आश्रम'-इन दोनों दण्डी संन्यासियों से यदि संन्यास लिया जाये तो गुरु-महाशय नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के नियमानुसार अपने शिष्य को 'ब्रह्मचारी' की संज्ञा प्रदान करते हैं। इसलिए

नवद्वीपवासी श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी ने भी 'दामोदर स्वरूप' नाम तथा ब्रह्मचारी की प्रसिद्धि प्राप्त की। संन्यास में योगपट्ट की प्राप्ति होने से ब्रह्मचारी ही ' स्वरूप' उपाधि के बदले 'तीर्थ' संन्यास-उपाधि प्राप्त करते हैं।

अष्ट श्राद्ध, विरजा होम, शिखा-मुण्डन तथा सूत्र-त्याग इत्यादि संन्यास कृत्य समाप्त करके गुर्वाहवान, योगपट्ट, संन्यास नाम तथा दण्डादि की अपेक्षा न करने के कारण इनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य सूचक नाम "दामोदर-स्वरूप" ही रह गया। (परन्तु एक बात यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि त्रिदण्डि संन्यासी के शिष्य का शिखा, सूत्र व गेरुवे वस्त्र धारणकरना शास्त्रसम्मत है। यथा स्कन्द पुराण-"शिखी यज्ञेपवीती स्यात् त्रिदण्डि सकमण्डलुः। स पवित्रश्च काषायी गायत्रीन्च जपेत् सदा।।" (अर्थात्-त्रिदण्डि शिखा रक्षा, यज्ञोपवीत धारण तथा कमण्डलु ग्रहण करेंगे। वे गेरुवे वस्त्र धारणकरते हुए पवित्र रह कर सर्वदा गायत्री का जाप करेंगे।)

श्रील सच्चिदानन्द भक्ति विनोद ठाकुर जी ने अमृत प्रवाह भाष्य में लिखा है-पुरुषोत्तम आचार्य ने जब महाप्रभु जी का संन्यास देखा तो 'शिखा-सूत्र त्याग-रूप संन्यास ग्रहणकर लिया, तब उनका संन्यास नाम हुआ-'स्वरूप दामोदर'। योगपट्ट लेने का जो प्रकरण है, वह उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कारण, उनका संन्यास तो किसी भी प्रकार के आश्रमाहंकार को बढ़ाने के लिए नहीं था। उन्होंने तो निश्चिन्त होकर कृष्ण-भजन करने के उद्देश्य से संन्यास ग्रहण किया था।"

श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के चतुर्थ परिच्छेद के अनुभाष्य में श्रीमन्हाप्रभु जी के संन्यास लेने से पूर्व ही श्रीस्वरूप दामोदर के संन्यास ग्रहण के संकल्प की बात जानी जाती है—

श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्य नवद्वीपवासी थे। वे महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहणकरने से पहले ही संन्यास ग्रहण की अभिलाषा से वाराणसी जाकर दशनामी दण्डियों के दल के ब्रह्मचारी बने। इससे उनका नाम पड़ा 'श्रीदामोदर स्वरूप'। बाद में संन्यास की सभी रस्मों की तरफ अधिक ध्यान न देकर अर्थात् उनकी अपेक्षा न करते हुए आजीवन श्रीमन्महाप्रभु जी के पादपद्मों में ही रहे। हमेशा महाप्रभु जी के साथ रह कर आप उनके उपदिष्ट भजन आदि गाकर उन्हें आनन्द प्रदान करते थे। महाप्रभु जी के हृदय के गूढ़ भावों की उनकी कृपा से ही भक्तों को उपलब्धि हो पाती है –

"आदिलीला-मध्ये प्रभुर यतेक चरित।

सूत्ररूपे मुरारी गुप्त करिला ग्रथित॥

प्रभुर ये शेष-लीला स्वरूप-दामोदर।

सूत्र करि' ग्रन्थिलेन ग्रन्थेर भितर॥

एक दुइ जनेर सूत्र देखिया शुनिया।

वर्णना करेन वैष्णव क्रम ये करिया॥" (चै. च.आ.-13/15-17)

आखिरी के इस पयार के भाष्य में श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी लिखते हैं-"श्रीमुरारी गुप्त जी द्वारा लिखित आदि लीला के सूत्र अब भी हैं, उन्हें देखकर तथा श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी जी की नोट-बुक को श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी से सुनकर सभी वैष्णव लोग महाप्रभु जी की लीलाओं को वर्णन करते हैं।"

श्रीमन् महाप्रभु जी माघ मास के शुक्लपक्ष में संन्यास ग्रहण के बाद फाल्गुन मास में नीलाचल आये थे तथा वहाँ श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार करने के बाद वैशाख मास में दक्षिण यात्रा की ओर गये श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी ने महाप्रभु को कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण सेवक प्रदान किया था। दक्षिण के लोगों को कृतार्थ करने व उन्हें कृष्ण-प्रेम प्रदान करने के पश्चात् जब महाप्रभु जी वापिस नीलाचल आये तो महाप्रभु जी की दक्षिण के लोगों पर कृपा का संवाद इस काले कृष्णदास जी के माध्यम से ही गौड़ देश नवद्वीप में भेजा गया। उस शुभ संवाद को पाकर शचीमाता, श्रीअद्वैत आचार्य तथा श्रीवास आदि भक्तों को महा-आनन्द हुआ जिससे सभी गौड़ीय वैष्णवों ने एक साथ नीलाचल की ओर यात्रा की। उसी समय श्रीपरमानन्द पुरी जी, नदिया में शचीमाता जी से उक्त संवाद सुनकर महाप्रभु जी के भक्त, द्विज कमलाकान्त के साथ नीलाचल में आकर महाप्रभु जी से सबसे पहले मिले। उसके बाद नवद्वीप से श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्य वाराणसी में श्रीचैतन्यानन्द भारती से संन्यास लेने के बाद "स्वरूप दामोदर" नाम प्राप्त करके नीलाचल आये और यहाँ महाप्रभु जी के दर्शन करके परमानन्द को प्राप्त किया। श्रीस्वरूप दामोदर जी ने महाप्रभु जी को दण्डवत् प्रणाम करते हुए निम्नलिखित प्रणाम मन्त्र को उच्चारण किया था—

"हेलोद्वलितखेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया,

शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया।

शश्वद्भक्तिविनोदया स-मदया माधुर्यमर्यादया,

श्रीचैतन्य दयानिधे, तव दया भूयादमन्दोदया॥" (चै.च.म. 10/119)

"हे दयानिधे श्रीचैतन्य महाप्रभु! जो अनायास में ही तमाम सन्तापों को दूर कर देती है, जिसमें सम्पूर्ण निर्मलता है, जिससे (सभी विषय –आच्छादन करते हुए) परमानन्द प्रकाशित होता है, जिसके रस-वर्षण के द्वारा चित्त में उन्मत्तता आती है, जिनकी भक्ति, निवेदन क्रिया के द्वारा सर्वदा शमता प्रदान करती है, माधुर्य मर्यादा के द्वारा अति विस्तारिणी आपकी वही शुभदायिनी दया मेरे मन में उदित हो।"

श्रीस्वरूप दामोदर ने महाप्रभु जी की प्रेमालिंगन रूप कृपा प्राप्त करने के बाद श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु व श्रीपरमानन्द पुरी जी की चरण-वन्दना की तथा श्रीजगदानन्द आदि भक्तों के साथ मिले।

श्रीपुरुषोत्तम धाम में, श्रीनरेन्द्र सरोवर में (चन्दन –सरोवर में) चन्दन-यात्रा के समय एवं इन्द्रद्युम्न सरोवर में श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ भक्तों की जो जलकेलि लीला हुई, में भी श्रीस्वरूप दामोदर जी उपस्थित थे। वहाँ पर श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के मध्य एक दूसरे के ऊपर जल फेंकने की लीला भी हुई थी—

"दुइ सखा-विद्यानिधि, स्वरूपदामोदर।

हासिया आनन्दे जल देन परस्पर॥"

(चै.भा.अ. 8/124)

श्रील गदाधर गोस्वामी जी जब टोटा गोपीनाथ में प्रेमाविष्ट होकर भागवत पाठ करते थे, तब उनके श्रोता थे-स्वयं भगवान कृष्णचैतन्य महाप्रभु, श्रील नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु एवं श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीमुरारीगुप्त तथा श्रीदास गदाधर आदि गौरांग महाप्रभु जी के मुख्य पार्षद।

"गदाधर-प्राणनाथ प्रभु गौरहरि।

एथा वसि शुनित से व्याख्या माधुरी।

एइखाने वैसे प्रभु नित्यानन्द राय।

श्रीअद्वैताचार्य प्रभु वसितो एथाय॥

एथा स्वरूप दामोदर, वक्रेश्वर।

श्रीमुरारी गुप्त, एथा दास गदाधर॥" (भक्ति रत्नाकर 8/278-280)

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी द्वारा श्रीमद् भागवत से प्रह्लाद-चरित्र व ध्रुव चरित्र की सौ बार श्रवण –लीला की। श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी से भागवत पाठ तथा श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी जी से कीर्तन सुनकर महाप्रभु जी को अष्टसात्विक विकार होते थे—

भागवत—पाठे गदाधर महाशय।

दामोदर स्वरूपेर कीर्तन विषय॥

एकेश्वर दामोदर स्वरुप गुण गाय।

विह्वल हइया नाचे श्रीगौरांगराय॥

अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार।

यत किछु आछे प्रेमभक्तिर विकार॥

मूर्तिमन्त सबे थाके ईश्वरेर स्थाने।

नाचेन चैतन्यचन्द्र इँहा-सबा'-सने॥

दामोदर स्वरूपेर उच्च-संकीर्तन।

शुनिले ना थाके बाह्य, पड़े सेइक्षण॥

संन्यासी-पार्षद यत ईश्वरेर हय।

दामोदर स्वरूप-समान केहो नय॥

यत प्रीति ईश्वरेर पुरी गोसाञिरे।

दामोदर स्वरूपेरे तत प्रीति करे॥

दामोदर स्वरूपेर—संगीत-रसमय।

याँ’र ध्वनि श्रवण प्रभुर नृत्य हय॥ (चै. भा. अ. 10/36-43)

उड़नषष्ठी के समय श्रीजगन्नाथ जी की एक अलग प्रकार की लीला होती है। उस समय जगन्नाथ जी के सेवक जगन्नाथ जी को माण्डयुक्त वस्त्र पहनाते हैं। सदाचारनिष्ठ श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी श्रीजगन्नाथ जी के सेवकों का ये आचरण सहन न कर सके और उन्होंने उनके इस प्रकार के कार्य की भर्त्सना की। तत्पश्चात श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी ने इस सम्बन्ध में स्वरूप दामोदर जी का मत जानना चाहा तो स्वरूप दामोदर जी ने पुण्डरीक विद्यानिधि जी को समझाते हुए कहा- ईश्वर का आचरण स्वतन्त्र है, वे लौकिक स्मृतियों के शासन के अधीन नहीं हैं।

साथ-साथ में उत्तर देते हुये श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी ने कहा-ठीक है, जगन्नाथ जी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं परन्तु वे (सेवक लोग) भी क्या ब्रह्म बन गये हैं? माण्ड युक्त वस्त्र को स्पर्श करके हाथ धोना पड़ता है, क्या इतना भी वे नहीं जानते?

सेवकों को कटाक्ष करने के कारण रात्रि में श्रीजगन्नाथ जी व श्रीबलराम जी विद्यानिधि जी के स्वप्न में आये और विद्यानिधि जी के दोनों गालों में दोनों भाईयों ने इस प्रकार चपतें लगाई कि उनके दोनों गाल फूल गये। इस लीला के द्वारा जगन्नाथ जी ने यह शिक्षा दी कि उनके सेवकों के आचरण में दोष नहीं देखना चाहिये। (कर्मजड़स्मार्ती लोग शुद्ध भक्तों के आचरण में इस प्रकार दोष दर्शन करके असुविधाओं से घिर जाते हैं।) श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि जी श्रीजगन्नाथ जी एवं श्रीबलरामजी के श्रीहस्तों का स्पर्श पाकर परमानन्दित हो उठे। स्वरूप दामोदर जी भी उनके इस प्रकार के सौभाग्य को देखकर उल्लसित हो उठे –

विद्यानिधिप्रति देखि’ स्नेहेर उदय।

आनन्दे भासेन दामोदर महाशय॥

सखार सम्पदे हय सखार उल्लास।

दुइ जने हासेन परमानन्दहास॥

दामोदर स्वरूप बलेन,-“शुन भाइ!

एमत अद्‌भुत दण्ड देखि शुनि नाइ॥

स्वप्ने आसि’ शास्ति करे आपने साक्षाते।

आर शुनि नाइ, सब देखिलुँ तोमाते॥“

हेनमते दुइ सखा भासेन सन्तोषे।

रात्रि-दिने ना जानेन कृष्णकथा रसे॥ (चै. भा. अ. 10/173-177)

राजा प्रतापरुद्र के साथ जब राय रामानन्द जी पुरी आये थे और श्रीमन् महाप्रभुजी से मिलकर जब उन्होंने राजा के व्यवहार की बात महाप्रभुजी को बताकर उनका राजा के प्रति चित्ताकर्षण किया था, उस समय ही स्वरूप दामोदर जी के साथ उनका (राय रामानन्दजी का) प्रथम मिलन हुआ था। राय रामानन्द प्रभु जी ने परमानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, स्वरूप दामोदर तथा नित्यानन्द प्रभु –सभी की चरण वन्दना की थी।

श्रीपुरुषोत्तम धाम में श्रीरथ यात्रा के एक दिन पहले जब महाप्रभु जी भक्तों को लेकर गुण्डिचा मन्दिर को मार्जन करने की लीला कर रहे थे, तब भी उस लीला में मुख्य पार्षदों के रूप में उपस्थित थे-श्रील स्वरूप दामोदर प्रभु जी –

"नित्यानन्द, अद्वैत, स्वरूप, भारती, पुरी।

इँहा बिना आर सब आने जल भरि॥" (चै. च. म. 12/109)

श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जन के समय वैष्णवों के भक्ति-कौशल को न समझकर एक बुद्धिमान सरल गौड़ीय-वैष्णव ने श्रीमन्दिर के अन्दर ही अचानक सबके सामने श्रीमन् महाप्रभुजी के पादपद्मों में जल डालकर पान कर लिया। यद्यपि महाप्रभु जी के पादपद्मधौत जल को पान करने से पारमार्थिक विचार से कोई दोष नहीं हुआ किन्तु लोकशिक्षक चैतन्य महाप्रभु जी ने इस पर असन्तोष व्यक्त किया, जैसे अन्य कोई व्यक्ति इसका अनुकरण करके भगवद्-चरणों में अपराधी न हो जाये। महाप्रभु जी ने स्वरूप दामोदर जी को जब इस दूषित कर्म की बात बतायी तो स्वरूप दामोदर जी ने उक्त गौड़ीय वैष्णव को डाँटा तथा उसकी गर्दन पकड़कर, उसे धक्का देकर मन्दिर से बाहर कर दिया। परन्तु, अगले ही क्षण स्वरूप दामोदर जी महाप्रभु जी के निकट आकर उस सरल व्यक्ति को क्षमा कर देने की प्रार्थना करने लगे। वैष्णव लोग बाहर से कठोर व्यवहार दिखाने पर भी हृदय से सर्वजीवों के प्रति करुणार्द्रचित्त होते हैं।

श्रीपुरुषोत्तम धाम में श्रीबलदेव, श्रीसुभद्रा एवं श्रीजगन्नाथ जी की रथयात्रा के समय श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने स्वयं अपने हाथों से भक्तों को चन्दन लगाया तथा माला पहनायी। भक्तों को माला व चन्दन अर्पण करते हुये उन्होंने संकीर्तन को जिन चार मण्डलियों में बाँटा था, उनमें पहली मण्डली के कीर्तनीया थे-श्रीस्वरूप दामोदर तथा नर्तक थे श्रीअद्वैताचार्य जी। चारों मण्डलियों के साथ कुलीन ग्राम, शान्तिपुर व श्रीखण्ड की मण्डलियों के जुड़ जाने पर संकीर्तन की सात मण्डली बन गईं। प्रत्येक मण्डली में दो-दो मृदंग थे, इसलिये सातों मण्डलियों के कुल चौदह मृदंग हो गये–

सात सम्प्रदाये बाजे चौद्द मादल।

यार ध्वनि शुनि' वैष्णव हैल पागल॥ (चै.च.म. 13/48)

इस सम्बन्ध में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि सातों मण्डलियों का कीर्तन आरम्भ होने पर श्रीमन् महाप्रभु जी ने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रकाश किया। "रास लीला के समय तथा महिषी-विवाह के समय जिस प्रकार श्रीकृष्ण एक साथ अनेक स्वरूपों से प्रकाशित हुये थे, उसी शक्ति को प्रकाशित करते हुए श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने भी अपने आप को हरेक मण्डली में प्रकाशित किया | प्रत्येक मण्डली के लोगों ने समझा कि महाप्रभु हमारी ही मण्डली में हैं, औरों की मण्डली में नहीं।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की जब उदण्ड नृत्य करने की इच्छा हुई तो उन्होंने सातों मण्डलियों को एकत्रित कर दिया तथा उनमें से नौ व्यक्तियों को कीर्तन के लिए चुना, जिनमें मुख्य कीर्तनीया के रूप में नियोजित किया गया श्रीस्वरूप दामोदर जी को। जब भक्त लोग उच्च संकीर्तनन्द में प्रमत्त हो उठे तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर बहुत देर तक ताण्डव नृत्य किया। इसके पश्चात महाप्रभु जी के हृदय में भावान्तर उपस्थित हो गया। श्रीमन् महाप्रभु जी के निर्देशानुसार गा रहे श्रीस्वरूप दामोदर जी श्रीमन् महाप्रभु जी के हृदयगत भावों को समझ गये व गाने लगे—

"सेइ त' पराण-नाथ पाइनु।

जाहा लागि' मदन-दहने झुरि' गेनु॥" (चै.च.म. 13/113)

तभी ताण्डव नृत्य की जगह महाप्रभु जी के हृदय में कुरुक्षेत्र मिलन के समय वाला श्रीराधा-भाव उदित हो गया। बहुत दिनों के विच्छेद के बाद, वहाँ यह गान स्वाभाविक ही आकर उपस्थित हो गया। विच्छेद के बाद मिलन का भाव जब उदित हुआ तो श्रीमन् महाप्रभु जी इस श्लोक का उच्च स्वर से पाठ करने लगे –

"यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा –

स्ते चौन्मीलितमालतीसुरभयः प्रोढ़ाः कदम्बनिलाः।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ।

रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥"*

(काव्यप्रकाश)

इस श्लोक के बारे में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा है कि ये श्लोक नितान्त हेय नायिक-नायिकाओं के सम्बन्ध में रचित हुआ था। ऐसे श्लोक को भी श्रीमन् महाप्रभु जी ने जो इतने आदर के साथ पाठ किया इसके तात्त्पर्य को सिर्फ स्वरूप दामोदर जी ही समझ पाये, अन्य कोई नहीं –

"एइ श्लोक महाप्रभु पड़े बार बार।

स्वरूप बिना अर्थ केह ना जाने इहार॥" (चै. च. म. 13-122)

श्रीमन् महाप्रभु जी के श्रीमुख से काव्य-प्रकाश के श्लोक को सुनकर श्रील रूप गोस्वामी प्रभु जी ने उक्त श्लोक के गूढ़ अर्थ को प्रकाशित करनेवाला एक श्लोक ताल पत्र पर लिखकर उसे कुटिया की छत पर फँसाकर रख दिया। दैववश श्रीमन् महाप्रभु जी ने उक्त ताल पत्र को देख लिया तथा श्लोक पढ़कर प्रेमाविष्ट हो गये –

१**"दैवे आसि' प्रभु जबे ऊर्ध्वेते चाहिल।**

चाले गोंजा तालपत्रे सेइ श्लोक पाइल॥

---

*जिन्होंने कुमारावस्था में रेवा नदी के किनारे मेरा चित्त हरण किया था, अब वे ही मेरे पति बन गये हैं, मधुमास की वह रात्रि भी है, उन्मीलिनी मालती पुष्प की सुगन्ध भी है, कदम्ब कानन से मधुर-मधुर वायु भी बह रही है तथा सुरत व्यापार लीला कार्य में वही नायिका भी मैं उपस्थित हूँ, तब भी मेरा चित्त इस अवस्था से सन्तुष्ट न होकर रेवा नदी के तट पर लगे वेतसी वृक्ष के नीचे जाने के लिये नितान्त उत्कण्ठित हो रहा है।

१ दैवयोग से अचानक महाप्रभु जी ने कुटिया में ऊपर की तरफ देखा तो पाया कि कुटिया की छत पर वही श्लोक एक ताल पत्र पर लिखकर घुसा रखा है। श्लोक पढ़कर महाप्रभु जी प्रेमाविष्ट हो गये, तभी रूप गोस्वामी जी उनके श्रीचरणों में गिरकर दण्डवत् करने लगे। दण्डवत् करने के बाद जैसे ही रूप गोस्वामी जी उठे तो महाप्रभु जी ने प्यार से उनकी गाल पर थप्पड़ मारा तथा उन्हें अपने पास बिठाकर कहने लगे-अरे! मेरे श्लोक का अभिप्राय तो कोई भी नहीं जानता परंतु तूने मेरे मन की बात कैसे जान ली?-इतना कहकर महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी पर खूब कृपा की तथा उक्त लिखा श्लोक स्वरूप दामोदर जी को दिखाने लगे। स्वरूप दामोदर को श्रीमन् महाप्रभु जी विस्मित होकर पूछते हैं कि रूप ने मेरे मन की बात कैसे जान ली, तो इसके उत्तर में स्वरूप दामोदर जी कहते हैं कि प्रभो! इन्होंने आपके मन की बात को जान लिया है तो इससे समझ पाया हूँ कि ये आपके कृपा पात्र हो गये हैं।

श्लोक पड़ि' आच्छे प्रभु आविष्ट हइया।

रूप गोसाञि आसि' पड़े दण्डवत् हञा॥

उठि' महाप्रभु ताँरे चापड़ मारिया।

कहिते लागिला किछु कोलेते करिया॥

मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने।

मोर मनेर कथा तुञि जानिलि केमने?

एत बलि' ताँरे बहु प्रसाद करिया

स्वरूप-गोसाञिरे श्लोक देखाइल लइया॥

स्वरूपेर पुछेन प्रभु हइया विस्मिते।

मोर मनेर कथा रूप जानिले केमते॥

स्वरूप कहे,—जाते जानिल तोमार मन।

ताते जानि,—हय तोमार कृपार भाजन॥" (चै. च. म. 1/66-72)

श्रीरूप गोस्वामी कृत श्लोक-

'प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरी कुरुक्षेत्रमिलित –

स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।

तथाप्यान्तः-खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे

मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥'* (चै.च.म. 1/76)

श्रीमन् महाप्रभु जी ने जगन्नाथ मन्दिर को कुरुक्षेत्र एवं गुण्डिचा मन्दिर को वृन्दावन के रूप में दर्शन करके तथा गोपीभाव में विभाजित होकर रथ को खींचा था। रथ को खींचते समय श्रीमन् महाप्रभु जी के हृदय में जो भाव प्रकाशित हुये थे उन्हें स्वरूप दामोदर जी ही अनुभव कर पाये थे—

एइ सब अर्थ स्वरूपेर सने।

रात्रि-दिने घरे बसि' करे आस्वादने॥

---

* "हे सहचरी! मेरे अतिप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्र में मिल गये, मैं भी वही राधा हूँ तथा ये भी ठीक है कि हमारा मिलन सुख भी वही है तथापि मेरा चित्त इन कृष्ण की वन में क्रीड़ा करते हुये मुरली के पंचम सुर में आनन्दप्लावित कालिन्दी के पुलिन के लिये स्पृहा करता है।" (ठाकुर भक्ति विनोद)

नृत्यकाले सेइभावे आविष्ट हञा।

श्लोक पड़ि' नाचे जगन्नाथ-मुख चाञा।

स्वरूप-गोसाञिर भाग्य ना जाय वर्णन।

प्रभुते आविष्ट यार काय, वाक्य, मन॥

स्वरूपेर इन्द्रिये प्रभुर निजेन्द्रियगण।

आविष्ट हञा करे गान-आस्वादन॥

(चै. च. म. 13/161-164)

श्रीजगन्नाथ जी द्वारिका में विहार करते हैं। वे वर्ष में एक बार वृन्दावन जाने की इच्छा करते हैं, इसलिये श्रीजगन्नाथ-देव जी की रथयात्रा श्रीजगन्नाथ मन्दिर (द्वारिका) से श्रीगुण्डिचा मन्दिर (वृन्दावन) तक होती है। वृन्दावन यात्रा के समय जगन्नाथ जी लक्ष्मी जी को साथ में नहीं ले जाते। कारण, वृन्दावन लीला में लक्ष्मी जी का अधिकार नहीं है। वहाँ अधिकार है-गोपियों का तथा गोपी-श्रेष्ठ राधा जी का—

"स्वरूप कहे,—शुन, प्रभु, कारण इहार।

वृन्दावन क्रीड़ाते लक्ष्मीर नाहि अधिकार॥

वृन्दावन लीलाय कृष्णेर सहाय गोपीगण।

गोपीगण बिना कृष्णेर हरिते नारे मन॥"

(चै. च. म. 14/122-123)

"कल ही आ जाऊँगा" ऐसा कहकर श्रीजगन्नाथ देव जी रथ यात्रा के लिये बाहर आ जाते हैं, परन्तु वापस लौटने में देर हो जाने के कारण लक्ष्मी जी को क्रोध हो जाता है और वे अपने तमाम ऐश्वर्य को एकत्रित करके अपने प्रिय के ऊपर आक्रमण करने के लिये जाती हैं तथा लक्ष्मी जी के सेवक जगन्नाथ देव जी के सेवकों को लक्ष्मी जी के चरणों में लाकर डाल देते हैं। इस प्रकार का अद्भुत मान त्रिलोक में कहीं भी नहीं सुना जाता।

लक्ष्मी जी के मान की अपेक्षा गोपियों के मान से भी श्रीराधा जी के मान की सर्वोत्तमता है। श्रीमन् महाप्रभु जी ने जब गोपियों के मान व राधिका के मान की कथा सुननी चाही तो स्वरूप दामोदर जी ने विस्तृत भाव से उक्त कथा सुनायी, जिसे सुनकर श्रीमन् महाप्रभु जी को परम सुख हुआ। चूँकि स्वरूप दामोदर जी श्रीमन् महाप्रभु जी के हृदय के भावों को जानने वाले थे इसलिये उन्होंने हर समय व हर प्रकार से श्रीमन् महाप्रभु जी का सन्तोष विधान किया।

हालि शहर के वासी खंज श्रीभगवान आचार्य के साथ स्वरूप दामोदर का सख्यभाव था—

"पुरुषोतमे प्रभु-पाशे भगवान्-आचार्य।

परम वैष्णव तेंहो सुपण्डित आर्य॥

सख्यभावाक्रान्त-चित्त, गोप-अवतार।

स्वरूप-गोसाञि-सह सख्य व्यवहार॥

एकान्तभावे आश्रियाछेन चैतन्यचरण।

मध्ये मध्ये प्रभुरे तेंहो करेन निमन्त्रण॥"

(चै. च. अ. 2/84-86)

श्रीभगवान आचार्य अत्यन्त उदार सरल वैष्णव होने पर भी उनके पिता शतानन्द खाँ, अत्यन्त विषयी थे एवं उनके छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य मायावादी थे। गोपाल भट्टाचार्य के पुरी में आकर अपने बड़े भाई से मिलने पर सरल वैष्णव भगवान आचार्य ने स्वरूप दामोदर जी को गोपाल भट्टाचार्य से वेदान्तभाष्य सुनने के लिये आग्रह प्रकाश किया। किन्तु स्वरूप दामोदर प्रभु ने प्यार भरी डाँट मारते हुये मायावाद-शांकरभाष्य को सुनने के लिये मना कर दिया—

स्वरूप गोसाञिरे आचार्य कहे आर दिने।

"वेदान्त पड़िया गोपाल आइसाछे एखाने।

सबे मिलि' आइस, शुनि 'भाष्य' इहार स्थाने।"

प्रेम-क्रोध करि' स्वरूप वलय बचने॥

"बुद्धि भ्रष्ट हैल तोमार गोपालेर सङ्गे।

मायावाद शुनिवारे उपजिल रङ्गे॥

वैष्णव हञा येवा शारीरिक-भाष्य शुने।

सेव्य-सेवक-भाव छाड़ि' आपनारे 'ईश्वर' माने॥

महाभागवत जेई, कृष्ण प्राणधन जाँर।

मायावाद-श्रवणे चित्त अवश्य फिरे ताँर॥"

आचार्य कहे—"आमा-सबार कृष्णनिष्ठ-चित्ते।

आमा-सबार मन भाष्य नारे फिराइते॥"

स्वरूप कहे,—तथापि मायावाद-श्रवणे।

'चित् ब्रह्म, माया मिथ्या'-एइमात्र शुने॥

जीवज्ञान—कल्पित, ईश्वर—सकल अज्ञान।

जाहार श्रवणे भक्तेर, फाटे मन-प्राण॥ (चै. च. अ. 2/92-99)

बंगाल के विप्र ने जैसे-तैसे एक नाटक लिखकर भगवान् आचार्य को सुनाया तो भगवान् आचार्य ने उसके सम्बन्ध में स्वरूप दामोदर को अनुरोध किया। कारण, स्वरूप दामोदर की अनुमति होने पर ही कोई महाप्रभु के निकट उपस्थित होता था, अनेक वैष्णवों ने उक्त नाटक की प्रशंसा की। भगवान् आचार्य के पुनः-पुनः प्रार्थना करने पर स्वरूप दामोदर उक्त लेख सुनने में सहमत हो गये। किन्तु उक्त नाटक के मंगलाचरण के श्लोकों में ही स्वरूप दामोदर ने भक्तिसिद्धान्त के विरुद्ध दोषों का प्रदर्शन किया जिसे सुनकर सभी चमत्कृत हो उठे। वैष्णव होने पर भी सभी को भक्ति सिद्धान्त का बोध नहीं होता है। स्वरूप दामोदर ने उस विप्र-कवि का दुःख देखकर उसके प्रति दयापूर्वक उपदेश दिया—

"जाह भागवत पड़ वैष्णव स्थाने।

एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे॥

चैतन्येर भकतगणेर नित्य कर 'सङ्ग'।

तबे त' जानिबा सिद्धान्तसमुद्र-तरङ्ग॥"

(चै.च.अ. 5/131-132)

जाओ, वैष्णवों के पास जाकर श्रीमद् भागवत का अध्ययन करो तथा एकान्त भाव से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के चरणों का आश्रय ग्रहण करो। आप चैतन्य महाप्रभु जी के भक्तों का नित्य संग करो तब जाकर आपको भक्ति के सिद्धान्त रूप समुद्र की तरंगों के बारे में पता चलेगा अर्थात तुम भक्ति के सिद्धान्त को जान पाओगे।

श्रीभगवान् आचार्य के घर से ही छोटे हरिदास ने माधवी देवी से चावलों की भिक्षा की थी। चावलों की भिक्षा के समय छोटे हरिदास जी ने स्त्री से जो बातचीत की थी, उसकी सज़ा के तौर पर ही महाप्रभु जी ने छोटे हरिदास का परित्याग कर दिया था तथा छोटे हरिदास ने इस दुःख से खाना पीना छोड़ दिया था। महाप्रभु जी के वज्र की भाँति कठोरता प्रकाश करने पर स्वरूप दामोदर जी ने ही बहुत समझा –बुझाकर छोटे हरिदास को अन्न ग्रहणकरवाया था। परन्तु महाप्रभु की कृपा न होने पर (अर्थात् उसे माफ न करने पर) छोटे हरिदास ने उसी वर्ष के अन्त में प्रयाग में जाकर प्राण त्याग कर दिये।

जब श्रीसनातन गोस्वामी मथुरा से अकेले झारिखण्ड के रास्ते से पुरुषोत्तम धाम आये तो पुरुषोत्तम धाम में आने पर उनके शरीर में कुण्डुरसा नामक खुजली का रोग हुआ था और पुरी में आकर वे श्रीहरिदास ठाकुरजी की कुटिया में ठहरे थे। महाप्रभु द्वारा उनके कुण्डुरसा वाले शरीर को बार –बार छूने पर उन्होंने शरीर त्यागने का संकल्प किया था परन्तु महाप्रभु जी ने उनके (सनातन के) शरीर को अपना निज धन कहकर, उनको आत्महत्या करने के लिये मना किया था। तब चातुर्मास्य के समय अन्यान्य गौड़ीय वैष्णवों और स्वरूप दामोदर जी के साथ उनका मिलन हुआ था।

श्रीगोवर्धन मजूमदार के पुत्र श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभु अपने गुरु और पुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य से छल द्वारा अनुमति लेकर भाग गये तथा पैदल ही बारह दिन लगातार चलकर श्रीपुरुषोत्तम धाम में जाकर श्रीमन् महाप्रभु से मिले। श्रीमन्महाप्रभु जी ने उनके प्रति विशेष कृपा का प्रदर्शन किया एवं उनको श्रीस्वरूप दामोदर के श्रीहाथों में समर्पित कर दिया था। तब से वे 'स्वरूप के रघु' के नाम से विख्यात हुये—

"रघुनाथेर क्षीणता-मालिन्य देखिया।

स्वरूपेरे कहेन प्रभु कृपार्द्र चित्त हञा॥

"एइ रघुनाथे आमि सँपिलु तोमारे।

पुत्र-भृत्य-रूपे तुमि कर अङ्गीकारे॥

तिन 'रघुनाथ'-नाम हय मोर स्थाने।

'स्वरूपेर रघु'—आजि हैते इहार नामे॥"

एत कहि' रघुनाथेर हस्त धरिला।

स्वरूपेर हस्ते ताँरे समर्पण कैला॥

(चै. च. अ. 6/201-204)

रघुनाथ दास गोस्वामी ने साक्षादभाव से महाप्रभु के निकट कुछ निवेदन नहीं किया। महाप्रभु जी से कभी भी कुछ निवेदन करने की इच्छा होने पर स्वरूप दामोदर या गोविन्द के माध्यम से निवेदन किया करते थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के श्रीमुखपद्मनि:सृत उपदेशवाणी सुनने को पुनः-पुनः स्वरूप दामोदर जी को आग्रह करने पर स्वरूप दामोदर जी ने एक दिन महाप्रभु को उस विषय में निवेदन किया। तब महाप्रभु ने कहा—

हासि' महाप्रभु रघुनाथेरे कहिल।

"तोमार उपदेष्टा करि' स्वरूपेरे दिल॥

'साध्य'-'साधन' तत्त्व शिख' इँहार स्थाने।

आमि तत नाहि जानि, इँहो जत जाने॥

तथापि आमार आज्ञाय श्रद्धा यदि हय।

आमार एइ वाक्ये तुमि करिह निश्चय॥

ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्त्ता ना कहिबे।

भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे॥

अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे।

व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे॥

एइ त' संक्षेप आमि कैलुँ उपदेश।

स्वरूपेर ठाञि इहार पाबे सविशेष॥ (चै. च. अ. 6/233-238)

अर्थात् मुस्कराते हुये महाप्रभु जी कहते हैं कि रघुनाथ! तुम्हारे उपदेशक के रूप में मैंने स्वरूप दामोदर को रखा है, जो भी साध्य-साधन की बात तुम्हें जाननी हो, तुम इनसे सीखना, क्योंकि जितना ये जानते हैं उतना मैं भी नहीं जानता हूँ। यदि तुम्हारी मेरे प्रति श्रद्धा हो तो दृढ़ता से मेरी इस बात को मान लो कि तुम्हें जो भी साध्य-साधन की बात जाननी हो, वह स्वरूप दामोदर से जानना। हाँ, ग्राम्य वार्ता (स्त्री-पुरुष सम्बन्धी काम चर्चा) न तो सुनना और न ही बोलना। अच्छा-अच्छा खाना भी नहीं और अच्छा-अच्छा पहनना भी नहीं। खुद सम्मान न चाहकर, दूसरों को यथायोग्य सम्मान देते हुये श्रीकृष्ण नाम करना तथा व्रज में मानसिक रूप से श्रीराधाकृष्ण की सेवा करना। ये थोड़ा संक्षिप्त सा उपदेश मैंने तुम्हें दिया, बाकी विस्तृत भाव से तमाम प्रकार के उपदेश तुम्हें स्वरूप दामोदर जी से मिलेंगे।)

पुरी में नामाचार्य हरिदास ठाकुर के नित्यलीला में प्रवेश करने के समय महाप्रभु जी ने जब महासंकीर्तन आरम्भ किया था, तब हरिदास ठाकुर को घेरकर श्रीवक्रेश्वर पण्डित ने नृत्य और श्रीस्वरूप दामोदर जी ने भक्तों के साथ नाम-संकीर्तन किया था। स्वरूप दामोदर जी ने श्रीहरिदास ठाकुर के नित्यलीला में प्रवेश करने के समय, महोत्सव के लिये जगन्नाथ मन्दिर से महाप्रसाद लाने की व्यवस्था की थी तथा श्रीजगदानन्द आदि के साथ परिवेशन (प्रसाद बाँटने की सेवा) भी किया था।

तपनमिश्र के पुत्र श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी काशी से जब गौड़देश होते हये पुरी में पहुँचे, तो उस समय महाप्रभु जी ने उनका आलिंगन किया तथा स्वरूप दामोदर और अन्याय भक्तों के साथ उन्हें मिला भी दिया।

काशीमिश्र के भवन में एक बार महाप्रभुजी ने कठोर वैराग्य भाव प्रकट किया। श्रीमन् महाप्रभु हा कृष्ण! हा कृष्ण!! कहते हुये रोते-रोते कृष्णविरह कातरावस्था में दिन-प्रतिदिन कमजोर होने लगे। तीव्र वैराग्य के भाव होने के कारण वे केले के पत्तों पर सोते थे। हड्डी में चुभने से शरीर में वेदना होने पर भी यद्यपि वे इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे परन्तु यह सब देखकर भक्तों को बड़ा दुःख होता था। श्रीजगदानन्द पण्डित इसे सहन न कर पाये और उन्होंने पतले गेरुआ वस्त्र में शिमूल की रुई भरके सुन्दर एक गद्दा तैयार कर दिया। स्वरूप दामोदर ने उसी दिन उक्त गद्दे के द्वारा बिस्तर तैयार कर दिया। श्रीमन् महाप्रभु सुन्दर बिस्तर देखकर गुस्सा हो उठे और गोविन्द से पूछा -'किसने यह बिस्तर लगाया?

गोविन्द ने धीरे से जगदानन्द जी का नाम बताया। गोविन्द से जगदानन्द जी का नाम सुनकर महाप्रभु थोड़ा भयभीत से हो गये। कारण, जगदानन्द जी सत्यभामा के अवतार थे तथा भयंकर अभिमानी की लीला कर रहे थे। तथापि श्रीमन् महाप्रभु जी गोविन्द के द्वारा वह गद्दा दूर करवाकर केले के पत्तों की बनी चटाई पर ही सो गये।

स्वरूप दामोदर जी को जब ये पता लगा कि श्रीमन् महाप्रभु जी गद्दे पर नहीं सोये तो वे महाप्रभु जी को मिले। बात-बात में उन्होंने महाप्रभु जी को पूछा कि गद्दे को व्यवहार न करने की बात सुनकर यदि जगदानन्द जी बुरा मानेंगे तो? जवाब में महाप्रभु ने कहा कि ठीक है फिर तो एक खटिया भी ले आओ, अरे, जगदानन्द तो मुझे विषयी बनाना चाहता है। आप ही सोचो क्या संन्यासी को ये व्यवहार करना चाहिए? अरे, संन्यासी तो भूमि पर शयन करेगा, संन्यासी के लिए खाट, इस तरह का बिस्तर व तकिया-ये सब शर्म की बात है।

बहुत कुछ सोचने के बाद सेवा में अत्यन्त कुशल स्वरूप दामोदर जी ने केले के सूखे पत्तों को चीर-चीर कर उन्हें महाप्रभु जी के ही पहनने वाले कपड़े भरकर दूसरे तरीके से तकिया और गद्दा तैयार किया। जिसे श्रीमन् महाप्रभु जी ने इच्छा न होने पर भी ग्रहणकर लिया। स्वरूप दामोदर जी के बनाये केले के पत्तों की चीरों से बने गद्दे पर महाप्रभु के शयन

करने से भक्तों को सुख प्राप्त हुआ, किन्तु जगदानन्द अत्यन्त दुःखी ही रहे। अत: प्यार भरे गुस्से में जगदानन्द जी ने महाप्रभु से वृन्दावन जाने का आदेश माँगा। महाप्रभु जी ने कहा, जगदानन्द को अभिमान हो गया है, इसलिये मैंने उन्हें वृन्दावन जाने का प्रस्ताव दिया है। स्वरूप दामोदर जी की सेवाकुशलता का यह एक अपूर्व दृष्टान्त है।

एक दिन श्रीमन् महाप्रभु दिव्योन्माद में दरवाजे बन्द करके अन्दर गम्भीरा में सोये हुये थे। कुछ क्षण पश्चात् स्वरूप दामोदर जी और गोविन्द जी ने देखा कि तीनों दरवाजे पूरी तरह से बन्द हैं परन्तु महाप्रभु अन्दर नहीं है। तब अत्यन्त उद्विग्न और व्याकुल होकर वे महाप्रभु जी की सर्वत्र खोज करने लगे तो पता चला कि श्रीजगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार की उत्तर दिशा में वे अचेतन से पड़े हुये हैं। उनका शरीर बिल्कुल शिथिल पड़ा हुआ है। उनकी हड्डियों के जोड़ खुल से गये हैं। दिखने में शरीर बड़ा दीर्घाकार सा हो गया है। तब स्वरूप दामोदर जी भक्तों के साथ महाप्रभु के कानों के सामने जाकर उच्च स्वर से कृष्ण नाम करने लगे, उसे सुनते ही महाप्रभु 'हरिबोल ' ' हरिबोल' की ध्वनि से गरजते हुए उठ पड़े तथा साथ-साथ ही उनका ढीला-ढाला शरीर पहले की भाँति हष्ट-पुष्ट हो गया। महाप्रभु जी की बाह्य स्मृति होने पर स्वरूप दामोदर जी उन्हें पुनः गम्भीरा में ले आये।

एक दिन महाप्रभु चटक पर्वत को गोवर्धन पर्वत जानकर दौड़ पड़े। स्वरूप दामोदर जी तथा जगदानन्द आदि उनके पीछे-पीछे चल दिये। जब महाप्रभु जी चल रहे थे तब उनके श्रीअंगों में अष्टसात्विक विकार दिखाई दे रहे थे। चलते-चलते वे अचानक मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर सभी भक्त रोने लगे। भक्तों के उच्चसंकीर्तन से महाप्रभु जी को होश आया तो वे अर्द्ध बाह्य-दशा में प्रलाप करने लगे,- 'मैं गोवर्धन में था, श्रीकृष्ण गायों को चरा रहे थे कि तभी श्रीकृष्ण ने वंशीध्वनि की, जिसे सुनकर गोपियां व राधा ठाकुरानी वहाँ आ गईं। राधा को साथ लेकर श्रीकृष्ण एक कन्दरा में चले गये, इसी समय आप मुझको यहाँ ले आये, किसलिये आप मुझे लाये यहाँ, क्या दुःख देने के लिये –यह कहकर महाप्रभु जी व्याकुल होकर रोने लगे। महाप्रभु को रोता देख भक्तगण भी रोने लगे।

उसके बाद एक दिन गम्भीरा में श्रीमन् महाप्रभु ने दिव्योन्माद अवस्था में स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द के साथ कृष्ण कथा करते –करते आधी रात बिता दी। अनेक यत्न से महाप्रभुजी को सुलाकर स्वरूप दामोदर जी और राय रामानन्द जी अपने-अपने स्थानों पर चले गये। गम्भीरा के घर में गोविन्द सो गये। आधी रात के समय महाप्रभुजी ने उच्च-संकीर्तन करते-करते हठात् श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि सुनी और भावावेश में गम्भीरा से बाहर निकल कर चल दिये, जबकि कमरे में सभी दरवाजे बन्द ही पड़े थे। चलते-चलते वे सिंहद्वार के दाहिनी ओर तैलंगी गायों के बीच अचेतन होकर गिर पड़े। उनके सेवक श्रीगोविन्द ने जब महाप्रभु जी की कोई भी आवाज़ इत्यादि न सुनी तो वे उठे और जैसे-तैसे उन्होंने अन्दर झाँका। अन्दर कहीं भी महाप्रभु जी को न देखा तो तुरन्त स्वरूप दामोदर जी को यह खबर दी। स्वरूप दामोदर अन्यान्य भक्तों के साथ दीपक लेकर महाप्रभु की खोज करने लगे। सिंहद्वार में गायों के बीच उन्होंने देखा कि महाप्रभु जी ने जाँघों के बीच हाथों को घुसाकर कूर्माकार रूप धारण किया हुआ है। भक्तों ने देखा कि उनके मुख में फेन, श्रीअंगों में पुलक व नेत्रों में अश्रुधारा-कुष्माण्डफल की भाँति वे पड़े हुये हैं। उनके बाहर में विष ज्वाला है जबकि भीतर में आनन्द ही आनन्द है। भक्तों ने देखा कि गाये चारों ओर से महाप्रभु के अंगों की गन्ध को सूंघ रही हैं, हटाने पर भी गायें मुड़-मुड़कर फिर से आ रही हैं।

अनेक चेष्टा करने पर भी जब महाप्रभुजी को होश न आया तो भक्तगण महाप्रभु जी को उठाकर गम्भीरा में ले आये। बहुत देर तक महाप्रभु जी के कानों के पास उच्चसंकीर्तन करने पर महाप्रभु जी होश में आ गये और उनके श्रीअंग दोबारा वैसे ही ठीक-ठाक हो गये। महाप्रभु जी ने भावाविष्ट होकर स्वरूप दामोदर से पूछा,-'तुम मुझको कहाँ से ले आये? मैं वंशीध्वनि सुनकर वृन्दावन में गया था। ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण गोष्ठ में वेणु बजा रहे थे। वेणु का संकेत समझकर राधाराणी कुंजकुटीर में आयी, मैं भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मैं तो उनकी भूषण-ध्वनि, गोपियों की कण्ठध्वनि, हास्य-परिहास

सुनकर आनन्द से विह्वल पड़ा हुआ था। तुम मुझे जबरदस्ती यहाँ ले आये। अब मैं वह अमृत के समान वाणी व भूषण-ध्वनि व मुरली-ध्वनि नहीं सुन पा रहा हूँ।' स्वरूप दामोदर ने महाप्रभु जी का भाव समझकर मधुर कण्ठ से भागवत के इस श्लोक का पाठ किया –

"का स्त्रांग ते कलपदायतवेणुगीत-

सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।

त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं

यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥"*

(भाः 10/29/40)

श्रीमन् महाप्रभुजी ने जैसे ही इस श्लोक को सुना तो सुनने मात्र से गोपीभाव में विभावित होकर श्रीकृष्ण के प्रति जो गोपियों का भाव है, उस भाव में वे चित्रजल्प** की भाँति बोलने लगे।

श्रील कविराज गोस्वामी ने और भी एक अलौकिक घटना की कथा लिखी है। वह ये कि एक दिन रासलीला की उद्दीपनामय शारदीय ज्योत्सना रात्रि में श्रीमन् महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर के पास के उद्यान आइटोटा में भक्तों के साथ रासलीला के गीतों का आस्वादन कर रहे थे कि भ्रमण करते-करते अचानक समुद्र देखते ही यमुना के भ्रम से वे उसमें कूद पड़े। महाप्रभु जी के श्रीअंग तैरते-तैरते कोणार्क की ओर जाने लगे कि तभी एक व्यक्ति ने जाल में बड़ी मछली आयी समझकर जाल द्वारा उसे उठाया तो देखा कि हाथ-पैर फैले हुए एक विशाल आदमी का शरीर जाल में फँसा है। महाप्रभु जी को स्पर्श करते ही वह मछियारा प्रेमाविष्ट होकर हा कृष्ण! हा कृष्ण!! कहते हुये क्रन्दन करने लगा। इधर स्वरूप दामोदर जी महाप्रभु जी को न देखकर कुछ भक्तों के साथ ढूँढने लगे। बहुत ढूँढने के बाद उन्होंने जाल वाले के कन्धे पर महाप्रभु को देखा। स्वरूप दामोदर ने प्रेमविकारयुक्त जाल वाले को महाप्रभु का तत्व समझाया तथा तीन बार अपने हाथ की हथेली से अपने माथे को ठोका। भक्तगण द्वारा उच्च-संकीर्तन करते रहने से महाप्रभु हुंकार करते हुये उठे। श्रीमन् महाप्रभु की अर्द्धबाह्य दशा में चित्रजल्पोक्ति सुनकर भक्तगण महाप्रभु के दिव्योन्माद की उपलब्धि करके पुलकित हो उठे-गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला और जलक्रीड़ा लीला में महाप्रभु प्रविष्ट हुये थे। पश्चात् भक्तगण महाप्रभु को गम्भीरा में ले आये।

श्रीजगदानन्द पण्डित के माध्यम से श्रीअद्वैताचार्य की पहेली में श्रीमन् महाप्रभु के अन्तर्धान का संकेत पाकर स्वरूप दामोदर मायूस से हो उठे तथा इधर श्रीमन् महाप्रभु का विरह उन्माद और भी बढ़ गया।

नाम संकीर्तन ही कृष्णप्रेम प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है—यह श्रीमन् महाप्रभु जी ने स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द के माध्यम से हमें सुस्पष्ट और सुदृढ़ रूप से समझाया—

---

* "हे कृष्ण! आपके कलपदामृत वेणुगीत द्वारा सम्मोहित होकर त्रैलोक्य में कौन सी ऐसी स्री है जो आर्य रचित (धर्म) से विचलित न होती हो? त्रैलोक्य का सौभाग्यस्वरूप आपका यह रूप देखकर सभी गायें, सभी पक्षी, सभी लतायें व सभी मृग पुलकित हो उठते हैं।" (ठाकुर भक्ति विनोद)

** "प्रियतम के किसी खास रिश्तेदार को देखने से प्यार के गुस्से में जो बड़बड़ाया जाता है उसे चित्रजल्प कहते हैं अथवा पागल की भान्ति विभिन्न विषयों पर एक साथ बोलना भी चित्रजल्प कहलाता है

हर्षे प्रभुन कहेन—"शुन, स्वरूप-रामराय।

नामसङ्कीर्त्तन—कलौ परम उपाय॥

सङ्कीर्त्तनयज्ञे कलौ कृष्ण-आराधन।

सेई त' सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥

नाम-सङ्कीर्त्तने हय सर्वानर्थ-नाश।

सर्व-शुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास॥"

(चै. च. अ. 20/8-9, 11)

तत्पश्चात् श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वरचित शिक्षाष्टक के आठ श्लोकों का आस्वादन करते-करते क्रमशः दैन्य से कृष्ण-विरह बढ़ने के कारण राधाभाव विभावित प्रेम में आविष्ट होकर गिर पड़े।

श्रीमन् महाप्रभु की दिव्योन्माद दशा में स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द ने ही हर वक्त उनके साथ रहकर उनके विप्रलम्भ भाव की पुष्टि की थी।

श्रीश्रीजगन्नाथ देव की रथयात्रा तिथि में श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी प्रभु अप्रकट हुये थे।

****

श्रीराय रामानन्द

प्रियनर्मसखः कश्चिदर्जुनः पाण्डवोऽर्जुनः।

मिलित्वा समभूद्रामानन्दरायः प्रभोः प्रियः॥

अतो राधाकृष्णभक्तिप्रेमतत्त्वादिकं कृती।

रामानन्दो गौरचन्द्रं प्रत्यवर्णयदन्वहम्॥

ललितेत्याहुरेके यत्तदेकेनानुमन्यते।

भवानन्दं प्रति प्राह गौरो यत्त्वं पृथापतिः॥

गोप्यऽर्जुनीयया सार्द्धमेकीभूयापि पाण्डवः।

अर्जुनो यद्रायरामानन्द इत्याहुरुत्तमाः॥

अर्जुनीयाभवत्तूर्णमर्जुनोऽपि च पाण्डवः।

इति पद्मोत्तरे खण्डे व्यक्तमेव विराजते।

तस्मादेतत्त्रयं रामानन्दराय-महाशयः॥

(गौ. ग. दी. 120-124)

प्रियनर्म सखा अर्जुन, पाण्डु पुत्र अर्जुन और अर्जुनीया सखी राय रामानन्द में प्रविष्ट हैं, यह ऊपर लिखित प्रमाण से विदित होता है। पद्म पुराण में इस प्रकार लिखा है –

अर्जुन को गोपीदेह धारणकरने पर अर्जुनीया नाम मिला था। कोई-कोई कहते हैं कि कृष्णलीला में जो ललिता थीं, वे ही गौरलीला पुष्टि के लिए, राय रामानन्द के रूप में प्रकट हुई थीं। पुनः कई बोलते हैं कि वे अभिन्न विशाखा के स्वरूप थे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने चैतन्यचरितामृत के आठवें परिच्छेद के 23वें पयार का इस प्रकार अर्थ किया है –

"राधाकृष्ण का विशाखा सखी के प्रति और विशाखा सखी का राधाकृष्ण के प्रति जो स्वाभाविक प्रेम था, वही उदित हुआ।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी ने राय रामानन्द जी का अभिन्न विशाखा स्वरूप में दर्शन किया था। राय रामानन्द जी के पिता का नाम, राय भवानन्द था। राय भवानन्द शौक्र करण कुल में पैदा हुये थे। पूर्व जन्म में ये राजा पाण्डु थे। इनके पाँच पुत्रों में राय रामानन्द सबसे बड़े थे। अन्य चार पुत्रों के नाम थे-गोपीनाथ पट्टनायक, कलानिधि, सुधानिधि और वाणीनाथ पट्टनायक।"

साक्षात् पाण्डु तुमि, तोमार पत्नी कुन्ती।

पञ्चपाण्डव तोमार पञ्चपुत्र महामति॥ (चै. च. म. 10/53)

पुरी के पश्चिम में लगभग छः कोस दूरी पर ब्रह्मगिरि अथवा आलाल नाथ में राय भवानन्द का निवास था। राय रामानन्द जी की वंश परम्परा से आये मनोहर राय की लेखनी से राय रामानन्द के वंश का संक्षिप्त परिचय मिलता है। श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत अनुभाष्य में श्रीराय रामानन्द जी के बारे में लिखा है कि उत्कल देश के समाज में करणजाति शौक्र शूद्र कहकर प्रसिद्ध है तथा श्रीरामानन्द जी इसी करण जाति में पैदा हुये थे। इसलिये लौकिक दृष्टि से वे शूद्र जाति के थे परन्तु शौक्रशूद्र होने पर भी वस्तुतः वे ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण-गुरु वैष्णव परमहंस थे। इसके अतिरिक्त जातिकुल सब निरर्थक हैं, ये बताने के लिये ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी गौर लीला की पुष्टि के लिये यवनकुल में नामाचार्य हरिदास ठाकुर के रूप में प्रकट हुये थे –

'जाति, कुल, सब-निरर्थक' बुझाइते।

जन्मिलेन नीचकुले प्रभुर आज्ञाते॥

'अधम-कुलेते यदि विष्णुभक्त हय।

तथापि सेइ से पूज्य'– सर्वशास्त्रे कय॥

"उत्तम-कुलेते जन्मि' श्रीकृष्णे ना भजे।

कुले ता'र कि करिवे, नरकेते मजे॥"

एइ सब वेद-वाक्येर साक्षी देखाइते।

जन्मिलेन हरिदास अधम कुलेते॥

(चै. भा. आ. 16/237-240)

[अर्थात हरिदास जी ने जाति, कुल आदि सब निरर्थक हैं, ये समझाने के लिये ही अपने प्रभु की आज्ञा से नीच कुल में जन्म ग्रहण किया। नीच कुल में यदि कोई विष्णुभक्त जन्म लेता है तो तब भी वह पूज्य है- ऐसा सभी शास्त्रों का मत है तथा उत्तम कुल में जन्म लेकर भी यदि कोई श्रीकृष्ण का भजन नहीं करता है, तो उत्तम कुल भला उसका क्या करेगा क्योंकि उसे तो नरक में जाना ही होगा। इन सब वेद वाक्यों का साक्षात् प्रमाण दिखाने के लिये श्रीहरिदास जी ने अधम कुल में जन्म लिया।]

वैष्णव गुणातीत और निर्गुण होते हैं। उनमें जातिबुद्धि करने पर नरक गति होती है –

"अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि –

विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।

श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि –

विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः"॥

(पद्मपुराण)

श्रीमन्महाप्रभु के साढ़े तीन अंतरंग भक्तों में राय रामानन्द भी एक थे—

प्रभु लेखा करे जाँरे—राधिकार 'गण'।

जगतेर मध्ये 'पात्र'-साड़े तिन जन॥

स्वरूप-गोसाञि, आर राय-रामानन्द।

शिखि-माहिति-तिन, ताँर भगिनी-अर्ध्दजन॥

(चै. च. अ. 2/105-106)

[अर्थात् श्रीमन् महाप्रभु जी जिनकी राधिका जी के गणों में गिनती करते हैं, वह जगत में साढ़े तीन पात्र ही हैं जिनमें एक स्वरूप गोस्वामी, दूसरे हैं श्रीराय रामानन्द जी और तीसरे हैं शिखि माहिति और आधी हैं उसकी बहन।]

राय रामानन्द, राजा प्रतापरुद्र के अधीन विद्यानगर के अधिकारी और प्रधान कर्मचारी थे। किन्हीं के मत में राय रामानन्द राजा प्रताप रुद्र के मंत्री थे।

माघ मास के शुक्ल पक्ष में महाप्रभु जी संन्यास ग्रहणकरके, फाल्गुन मास में, शांतिपुर होकर नीलाचल गये थे। नीलाचल में दोल यात्रा के दर्शन के बाद चैत्रमास में, सार्वभौम उद्धार लीला हुई। वैशाख मास में महाप्रभु जी ने दक्षिण भारत की यात्रा की थी। दक्षिण भारत भ्रमण के लिये अकेले जाना तय होने पर, नित्यानन्द प्रभु जी ने कृष्णदास नामक

विप्र को महाप्रभु जी के साथ दक्षिण भारत भेजा था। दक्षिण भारत की यात्रा में जाने से पहले सार्वभौम भट्टाचार्य जी ने महाप्रभु जी को चार कौपीन भेंट की थी तथा साथ ही दक्षिण भारत में राय रामानन्द जी के साथ गोदावरी नदी के तट पर मिलने के लिये अनुरोध किया था—

तबे सार्वभौम कहे प्रभुर चरणे।

अवश्य पालिबे, प्रभु, मोर निवेदन॥

'रामानन्द राय' आछे गोदावरी-तीरे।

अधिकारी हयेन तिंहो विद्यानगरे॥

शूद्र विषयी-ज्ञाने उपेक्षा ना करिबे।

आमार वचने ताँरे अवश्य मिलिबे॥

तोमार संङ्गेर योग्य तिंहो एकजन।

पृथिवीते रसिक भक्त नाहि ताँर सम॥

पाण्डित्य आर भक्तिरस,—दुँहेर तिंहो सीमा।

सम्भाषिले जानिवे तुमि ताँहार महिमा॥

अलौकिक वाक्य चेष्टा ताँर ना बुझिया।

परिहास करियाछि ताँरे 'वैष्णव' जानिया॥

तोमार प्रसादे एबे जानिनु ताँर तत्त्व।

सम्भाषिले जानिबे ताँर जेमन महत्त्व॥

(चै. च.म. 7/61-67)

[अर्थात तब श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी श्रीमन् महाप्रभु जी के चरणों में निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! मेरा निवेदन अवश्य स्वीकार करें। निवेदन यह है कि श्रीरामानन्द राय गोदावरी के किनारे विद्यानगर में रहते हैं। वे विद्यानगर में अधिकारी हैं। उनको शूद्र तथा विषयी समझकर उनकी उपेक्षा नहीं करना। मेरी प्रार्थना है कि आप उनको अवश्य ही मिलना। वही एक व्यक्ति है जो आपके संग के योग्य है क्योंकि इस पृथ्वी पर उसके समान रसिक भक्त नहीं है। वह पाण्डित्य और भक्तिरस की तो सीमा है। आप जब उनके साथ बातचीत करेंगे तो उनकी महिमा को जान जायेंगे। उसकी अलौकिक बातों को न समझने के कारण मैं उसे 'वैष्णव' कहकर उसका परिहास कर देता था। अब आपकी कृपा से मैं उसका तत्त्व समझ सका हूँ। आप जब उनके साथ बातचीत करेंगे तो उसकी क्या महिमा है-आप स्वयं समझ जाएंगे।]

दुनियावी दृष्टि से श्रीरामानन्द कोपीन पहनने वाले संन्यासी नहीं थे। वे तो लौकिक दृष्टि से राजभृत्य और विषयी थे। परन्तु यदि आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाये तो वे एक उच्च कोटि के विद्वान और श्रेष्ठ संन्यासी थे।

इधर सार्वभौम भट्टाचार्य पहले वैष्णव नहीं थे परन्तु तब भी वे जब राय रामानन्द जी को मिले थे तो उन्हें अनुभव हुआ था कि ये रामानन्द राय जी वैष्णव हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य जी को राय रामानन्द जी की स्वाभाविक वैष्णवता की भी उपलब्धि हुई थी। जब सार्वभौम भट्टाचार्य जी को महाप्रभु जी की कृपा प्राप्त हो गई तब उन्हें समझ में आ गया कि रायरामानन्द जी एक उच्च कोटि के 'अधिकारी रसिक भक्त हैं।"

(श्रील प्रभुपाद जी का अनुभाष्य)

बृहस्पति के अवतार व राजा प्रताप रुद्र के सभा पण्डित थे-श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य। ये प्रसिद्ध वेदान्तिक पण्डित गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी संन्यासियों के गुरु थे। परन्तु इतना होते हुए भी वे न तो श्रीमन्महाप्रभु जी की स्वयं भगवत्ता को समझ पाये थे और न ही उनके अंतरंग भक्तों का पार्षदत्त्व। इतने बड़े वेदांतिक पण्डित व संन्यासियों के गुरु भी जब महाप्रभु जी को व उनके पार्षदों को न समझ पाये तो और-और साधारण व्यक्तियों की तो बात ही क्या है। यह बात सर्वथा सत्य है कि भक्त व भगवान की कृपा को छोड़कर उनका तत्व व उनकी महिमा समझने की सामर्थ्य किसी की नहीं हो सकती है –

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वरतत्त्व-ज्ञाने।

कृपा बिना ईश्वरेरे केह नाहि जाने॥

ईश्वरेर कृपा-लेश हय त' याहारे।

सेइ त ईश्वर-तत्त्व जानिबारे पारे॥

(चै. च. म. 6/82-83)

[अर्थात भगवद् तत्त्व को समझने के लिये अनुमान-प्रमाण ठीक नहीं है। भगवान् की कृपा के बिना कोई भी उन्हें नहीं जान सकता है। जिसके ऊपर भगवान् की लेश मात्र कृपा हो गयी, वही भगवत् तत्त्व को समझ सकता है।]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने कृष्ण भक्ति बाँटते हुए दक्षिण भारत के लोगों को वैष्णव बनाया तथा कूर्मक्षेत्र में कूर्मदेव जी के दर्शन किये, कूर्म विप्र पर कृपा की और उन्हें सर्वत्र कृष्णभक्ति का प्रचार करने के लिए आदेश दिया। यही नहीं उन्होंने वहां गलित कुष्ठी वासुदेव विप्र का उद्धार किया, सिंहाचल में जियड़ नृसिंह के आगे बहुत नृत्यकीर्तन किया तथा नृत्य कीर्तन में प्रमत्त होकर उन्होंने गोदावरी को यमुनाजी तथा उसके आसपास के जंगलों को वृन्दावन के रूप में दर्शन किया और बड़े आनन्दित हुए।

गोदावरी के पार जाकर राय रामानन्द के साथ मिलने की इच्छा से, स्नान का काम समाप्त करके श्रीमन् महाप्रभु प्रतीक्षा करने लगे। ऐसे समय में रामानन्द राय ने बाजों वगैरह के साथ वहां आकर महाप्रभु जी के दिव्यरूप के दर्शन किए तथा उनके दर्शनों से आकृष्ट होकर, पालकी से ही झुककर प्रणाम किया। महाप्रभु जी ने भी उन्हें पहचान लिया परन्तु फिर भी उनका परिचय पूछा।

परिचय पूछने पर राय रामानन्द जी ने अपने आप को एक साधारण दास, शूद्र और बुरा व्यक्ति बताकर परिचय दिया। महाप्रभु जी ने रामानन्द राय जी की दीनता भरी बात सुनकर तुरन्त उन्हें आलिंगन कर लिया, जिससे प्रभु और सेवक में स्वाभाविक प्रेम की उत्पत्ति हुई। उनके सात्विक प्रेम-विकार देखकर ब्राह्मणों ने हैरान होकर विचार किया –

एइ त' संन्यासीर तेज देखी ब्रह्मसम।

शूद्रे आलिङ्गिया केने करेन क्रन्दन॥

एइ महाराज-महापण्डित, गम्भीर।

संन्यासीर स्पर्शे मत्त हइला अस्थिर॥

(चै. च.म. 8/26-27)

[अर्थात् ब्राह्मण लोग मन-मन में विचार करते हैं कि इस संन्यासी का तेज तो ब्रह्म के समान है परन्तु शूद्र को आलिंगन करके ये भला क्यों इस प्रकार रो रहा है और ये राय रामानन्द जी महाराज हैं, गम्भीर राज पण्डित हैं, परन्तु ये भी संन्यासी का स्पर्श प्राप्त करके चंचल और मत्त हो गये है]

विजातीय लोगों को देखकर महाप्रभु जी ने अपने भाव को संवरण कर लिया। राय रामानन्द जी को महाप्रभु जी ने बताया कि जब वे इधर दक्षिण भारत आने की तैयारी कर रहे थे तो जगन्नाथ पुरी के राज पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्य जी ने आपसे अवश्य मिलने को कहा था। महाप्रभु जी द्वारा राय रामानन्द जी को, उनके साथ मिलने के लिये, वासुदेव सार्वभौम जी के अनुरोध की बात बतलाये जाने पर, राय रामानन्द जी बड़ी दीनता के साथ बोले –

सार्वभौमे तोमार कृपा,—तार एइ चिह्न।

अस्पृश्य स्पर्शिले हञा ताँर प्रेमाधीन॥

काँहा तुमि—साक्षात् ईश्वर नारायण।

काँहा मुञि—राजसेवक विषयी शूद्राधम॥

मोर स्पर्शे ना करिले घृणा, वेदभय।

मोर दर्शन तोमा वेदे निषेधय॥

तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्दयकर्म।

साक्षात् ईश्वर तुमि, के जाने तोमार मर्म॥

(चै. च.म. 8/34-37)

[अर्थात श्रीसार्वभौम पर आपकी कृपा है, उसकी यही पहचान है कि मुझ जैसे अस्पृश्य को स्पर्श करके आप उसके प्रेमाधीन हो गये हैं। कहां आप साक्षात् भगवान् नारायण और कहां मैं, राज्य-सेवक, विषयी और अधम शूद्र। मेरा

स्पर्श करने में आपने घृणा भी नहीं की है और न ही वेद का भय किया है, क्योंकि वेद तो आपको मुझ जैसे शूद्र का दर्शन करने को मना करते हैं। मैं तो समझता हूँ कि आपकी कृपा ने ही आप से यह निन्दनीय कार्य करवाया है। आप तो साक्षात् भगवान् हो, आपका मर्म भला कौन जान सकता है?]

महाप्रभु जी के दर्शनों से उपस्थित ब्राह्मण इत्यादि सब के सब गद्गद् भाव से कृष्णनाम जपने लगे। हैरानी की बात यह थी कि इससे पहले उनको कभी भी कृष्ण नाम करते नहीं देखा गया था। आज महाप्रभु जी का दर्शन करके वे जीवन में पहली बार इस प्रकार श्रीकृष्ण नाम कर रहे थे। आकृति और प्रकृति दोनों से महाप्रभु जी साक्षात् ईश्वर हैं, राय रामानन्द जी की इस उक्ति पर महाप्रभु जी भक्त की महिमा बढ़ाने के लिये बोले –

प्रभु कहे,—तुमि महा-भागवतोत्तम।

तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन॥

अन्येर कि कथा, आमी—'मायावादी संन्यासी'।

आमिह तोमार स्पर्शे कृष्ण-प्रेमे भासि॥

(चै. च. म. 8/44-45)

[अर्थात श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि आप तो उत्तम महाभागवत हो आपके दर्शनों से सबका मन द्रवित हो गया है। दूसरों के विषय में क्या कहना है, मैं, मायावादी संन्यासी होते हुये भी, तुम्हारे स्पर्श से कृष्ण प्रेम में आविष्ट हो गया हूँ।]

महाप्रभु जी ने राम रामानन्द जी से कृष्ण कथा सुनने की इच्छा प्रकट की तो जवाब में राय रामानन्द जी ने महाप्रभु जी से अपने दुष्ट मन की सफाई करने के लिये वहाँ 5-7 दिन रहने का अनुरोध किया। इसके बाद महाप्रभु जी व राय रामानन्द जी अपनी-अपनी दिशाओं को चल दिये और अपने-अपने कार्यों की समाप्ति पर संध्या के समय आकर पुन: उसी स्थान पर मिलते हैं।

देखा जाये तो साधारणतयः भक्त प्रश्न करते हैं और भगवान् उत्तर देते हैं, लेकिन यहां क्रम उल्टा था। यहाँ महाप्रभु जी प्रश्नकर्त्ता होते हैं और राय रामानन्द जी उत्तर देने वाले। ये बात अलग है कि श्रीमन् महाप्रभु जी की शक्ति से ही राय रामानन्द उत्तर देते हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने, उक्त परिच्छेद के स्वरचित श्लोक में इस विषय को स्पष्ट करने के भाव से, समझाते हुए लिखा-

संचार्य रामाभिध-भक्तमेघे स्वभक्तिसिध्दान्तचयामृतानि।

गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णे स्तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति॥

(चै. च.म. 8/1)

अर्थात सिद्धान्तामृत समुद्र रुप श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने रामानन्द जी नामक भक्ति रूपी मेघ में, अपनी भक्ति के सिध्दान्त के अमृत का संचार करके व उस भक्ति सिध्दान्त के द्वारा स्वयं दुबारा भक्ति तत्त्वरूपी समुद्रता प्राप्त की। अनेक बार अशरणागत व्यक्ति आध्यात्मिक विचार को अपनी बुद्धि से समझने जाते हैं और परिणाम स्वरूप भ्रम में पड़ जाते हैं तथा भगवद्वाक्य के वास्तविक तात्पर्य को समझ नहीं पाते।

श्रीमन् महाप्रभु जी द्वारा राय रामानन्द जी को शास्त्र प्रमाण के साथ साध्य निर्णय करने के लिये कहे जाने पर, राय रामानन्द जी ने विष्णु भक्ति को ही साध्य निर्णय करके आस्तिक विचारों की क्रमोन्नति का प्रदर्शन किया। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म से आरम्भ करके कृष्ण में कर्मार्पण, कर्म त्याग, ज्ञानमिश्रा भक्ति तक शास्त्र प्रमाण के साथ दूसरी-दूसरी उन्नत स्तरों की बातें भी कहीं। महाप्रभु जी ने सबको बाह्य कहा अर्थात महाप्रभु जी ने इन्हें बाहर की बात कहा, क्योंकि महाप्रभु जी द्वारा दी जाने वाली वस्तु 'शुद्धभक्ति' इन सब साधनों में नहीं थी। महाप्रभु जी के राय रामानन्द जी के साथ हुए प्रसंग में जो वेद निषिद्ध विकर्म और अकर्म* थे, उनको एक बार ही रद्द करके अर्थात बिल्कुल खत्म करके वर्णाश्रम धर्म से जवाब देना आरम्भ किया। वर्णाश्रम धर्म आदि को महाप्रभु जी ने 'ये तो कुछ नहीं है,' ऐसा नहीं कहा, उन्होंने कहा कि ये तो 'बाह्य' है अर्थात बाहर की बात है। कहने का तात्पर्य कि जो वेद निषिद्ध कर्म करते हैं, उनको पहले वेद प्रसिद्ध कर्मों में प्रतिष्ठित होना होगा। वर्णाश्रम धर्म में प्रतिष्ठित होकर उसके बाद के स्तर कर्मार्पण पर अधिकार होगा। इस प्रकार क्रमोन्नति की बात बताई, परन्तु दूसरी ओर क्योंकि भक्ति निरपेक्ष है इसलिए भक्त का संग होने पर वह क्रम की अपेक्षा नहीं करती और जीव को भक्ति प्राप्त हो जाती है। राय रामानन्द जी ने जब 'ज्ञानशून्या' भक्ति की बात कही तब महाप्रभु जी ने 'यह है' कहा। यहीं से महाप्रभु जी की शिक्षा का प्रारम्भ है। यहां 'ज्ञान शून्य' शब्द के द्वारा निर्भेद ब्रह्म चिन्तन रूपी, ज्ञान चिन्तन का खण्डन किया है, परन्तु महाप्रभु जी ने शुद्धभक्ति की प्राप्ति के लिये जो अनुकूल सम्बन्ध ज्ञान है, उसका खण्डन नहीं किया।

तात्पर्य यह है कि केवल वर्णाश्रम धर्म का पालन करने की अपेक्षा कर्मार्पण श्रेष्ठ है। केवल कर्मार्पण की अपेक्षा स्वधर्म त्याग अर्थात अपने वर्णाश्रम धर्म का त्याग करके संन्यास ग्रहणकरना श्रेष्ठ है, उसकी अपेक्षा ब्रह्म अनुशीलन रूपी ज्ञान मिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है, इतना होने पर भी वह समुदाय ही बाह्य है, क्योंकि साध्यवस्तु जो शुद्धभक्ति है वह उपरोक्त चारों सिद्धान्तों में नहीं है।

'आरोपसिद्धा' के 'संगसिद्धा' भक्ति कभी भी शुद्धभक्ति के रूप में परिचित नहीं होती। स्वरूप सिद्धा भक्ति एक पृथक तत्त्व है, वह कर्म, कर्मार्पण, कर्म त्याग रूप संन्यास तथा ज्ञानमिश्रा भक्ति से नित्य अलग है। उस शुद्धभक्ति

---

* वेद-शास्त्र में जो करने के लिए कहा गया है, उन्हें करने को कर्म तथा उन्हें न करने को अकर्म कहते है। इसी प्रकार वेद-शास्त्र में जो करने का निषेध किया गया है, उसे करने को विकर्म कहते है।

का लक्षण यह है कि वह अन्याभिलाषिता शून्य, ज्ञान कर्मादि द्वारा अनावृत और अनुकूल भाव से कृष्णानुशीलनीय है। वह ही साध्यवस्तु है क्योंकि साध्य अवस्था में इसे देख पाने पर भी सिद्ध अवस्था में यह निर्मल रूप से लक्षित होती है।

साधु के मुख से निकली हुई हरिकथा के श्रवण की बात जिस समय तक कही नहीं गयी, तब तक महाप्रभु जी ने यह 'बाहर की बात है' कहा था। इसलिये शुद्धभक्त के मुख से प्रवाहित हरिकथा सुनने से ही शुद्धभक्ति आरम्भ होती है। इस पर राय रामानन्द भक्ति के अलग-अलग स्तर की बात कहने लगे तो उन्होंने प्रेम भक्ति में शांत प्रेम, दास्य प्रेम, सख्य प्रेम, वात्सल्य प्रेम व कांत प्रेम की बात कही। अंत में उन्होंने राधा के प्रेम की कथा और कृष्ण के स्वरूप व राधा के स्वरूप के बारे में कहा।

'कोन् विद्या विद्या मध्ये सार', 'कीर्ति गुण मध्ये जीवेर कोन बड़ कीर्ति' इत्यादि जो विषय कहे, वे श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ के मध्यलीला के अष्टम् परिच्छेद में विस्तृत रूप से चर्चित हुये हैं। चरित्र वर्णन में अस्वाभाविक विस्तार के भय से उन प्रसंगों की परिचर्चा यहां नहीं हो सकेगी अर्थात ये विस्तृत भाव से हम इसलिए नहीं दे रहे हैं, क्योंकि ऐसा करने से ये चरित्र बहुत लंबा हो जाएगा। इच्छुक भक्त इस प्रसंग को श्रीचैतन्य चरितामृत में देख सकते हैं।

भक्तों के निकट भगवान् का स्वरूप छिपा नहीं रहता। अतः राय रामानन्द जी महाप्रभुजी के स्वरूप की उपलब्धि करके बोले –

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी-स्वरूप,

एवे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप।

तोमार सन्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका,

ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका॥

(चै. च.म. 8/267-268)

[अर्थात राय रामानन्द जी महाप्रभुजी को कहते हैं कि पहले मैंने आपका संन्यासी स्वरूप देखा था। परन्तु अब मैं आपका श्याम वर्ण का गोप-रूप देख रहा हूँ। उस श्यामवर्ण के बाहर सोने की पुतलि देख रहा हूँ। उसकी गौर कांति से आपके सब अंग ढके हुये हैं।]

महाप्रभु जी राय रामानन्द को महाभागवत् रूप से देखते थे, इसलिये उन्होंने रामानन्द जी के आगे अपने को छुपाने की चेष्टा की तो राय रामानन्द जी ने महाप्रभु जी के आविर्भाव के मुख्य कारण की बात स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दी। महाप्रभु जी ने खुश होकर रामानन्द जी को रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपिणी श्रीमति राधिका दोनों से मिश्रित निज स्वरूप दिखाया, जिसे देखकर राय रामानन्द जी को प्रेम-मूर्छा आ गयी और तत्क्षण राय रामानन्द जी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। कुछ समय पश्चात महाप्रभु जी के स्पर्श से राय रामानन्द जी को होश आया। दस रात तक, राय रामानन्द जी के साथ सुख पूर्वक रहने के बाद महाप्रभु जी तीर्थ पर्यटन करके, नीलाचल लौट जायेंगे, यह कहकर उन्होंने राय रामानन्द जी को विषय कार्य परित्याग करके नीलाचल में मिलने के लिये आदेश दिया।

महाप्रभुजी जब दक्षिण भारत गये तो वहाँ से लौटते हुए वे राय रामानन्द के लिए भक्ति सिध्दान्त और रस विचार के लिए प्रमाण स्वरूप 'कृष्ण कर्णामृत' और 'ब्रह्म संहिता' नामक दो ग्रन्थ लेकर आये। रायरामानन्द जी ने जब ये ग्रन्थ देखे तो उन्होंने लिख कर उनकी नकल अपने पास रख ली। लगभग एक सप्ताह तक महाप्रभुजी वहां ठहरे तथा उन्होंने दिल खोलकर राय रामानन्द जी से कृष्णकथा चर्चा की और एक सप्ताह के बाद उन्होंने राय रामानन्द जी को अपने साथ पुरी चलने के लिए कहा तो रामानन्द जी ने कहा कि मैं पुरी अवश्य आऊँगा परन्तु पहले थोड़ी राजा से आज्ञा ले लूँ तथा राज्य के ये हाथी, घोड़े व सेनादि का ठीक-ठाक प्रबंध कर लूँ।

महाप्रभु जी पुरी में वापिस आकर काशी मिश्र के भवन में रहने लगे। राजा प्रतापरुद्र, महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये बहुत व्यग्र थे। सार्वभौम भट्टाचार्य ने राजा प्रतापरुद्र को आश्वासन दिया था कि महाप्रभु जी के दक्षिण भारत से लौट आने के बाद किसी न किसी प्रकार दर्शन करवा देंगे। किन्तु सार्वभौमजी की जी जान से कोशिश करने के बाद भी महाप्रभु जी ने यही संकल्प दोहराया कि वे राजा के दर्शन नहीं करेंगे। राजा प्रतापरुद्र जी के महाप्रभु जी के साथ मिलाने के सारे प्रयास व्यर्थ हो गये।

पुरी में महाप्रभु जी के साथ राय रामानन्द जी की साक्षात् समीपता के विषय में जानकर महाराज प्रतापरूद्र जी ने प्रसन्नचित्त से राय रामानन्द जी के पुरी में रहने के लिये जरूरी खर्च का प्रबन्ध करके, राजकार्य से भी उन्हें छुट्टी दे दी। राय रामानन्द जी महाराज प्रतारुद्र जी के साथ पहले कटक में और बाद में पुरी में पहुँचे। महाप्रभु जी के दर्शनों के लिये

सबसे पहले रामानन्द जी काशीमिश्र जी के घर हाज़िर हुए। इसी बीच पतित पावन नित्यानन्द प्रभु जी ने, राजा प्रतापरुद्र जी की दर्शन आकांक्षा और महाप्रभु जी की दर्शन देने के लिये अस्वीकृति की अवस्था में राजा को सांत्वना देने के लिये, महाप्रभु जी द्वारा व्यवहार में लाया हुआ एक बाहिरी वस्त्र, राजा के पास भेजा था। महाप्रभु जी द्वारा इस्तेमाल किया हुआ बाहिरी वस्त्र प्राप्त करके महाराज को कुछ सीमा तक सांत्वना मिली। साक्षात् दर्शनों के लिये व्याकुल होने की राजा की दिली इच्छा की बाकी बात, राय रामानन्द जी ने महाप्रभु जी के सामने व्यक्त कर दी। राय रामानन्द जी के अनुरोध की पूरे तौर पर अनदेखी न कर सकने के कारण, महाप्रभु जी ने राजा के गुण व उसकी महिमा स्वीकार करने पर भी एक राजा नाम की मलिनता के कारण, उनको न बुलाकर उनके अभिन्न रूप, पुत्र को बुलाने की आज्ञा की–

यद्यपि प्रतापरुद्र-सर्व गुणवान्।

ताँहारे मलिन कैल एक 'राजा' नाम॥

तथापि तोमार यदि महाग्रह हय।

तबे आनि' मिलाह तुमि ताँहार तनय॥

"आत्मा वै जायते पुत्रः"—एइ शास्त्रवाणी।

पुत्रेर मिलने जेन मिलिबे आपनि॥"

तबे राय जाइ' सब राजारे कहिला।

प्रभुर आज्ञाय ताँर पुत्र लञा आइला॥

(चै. च. म. 12/54-57)

[अर्थात यद्यपि प्रतापरुद्र सब तरह से गुणवान है, परन्तु वह एक राजा है-इस राजा नाम ने उसे मलिन कर रखा है। तब भी यदि आप लोगों का अति-आग्रह हो तो उसके पुत्र को लाकर मुझसे भेंट करा दें। शास्त्र की वाणी है, "आत्मा वै जायते पुत्रः", पुत्र से मिलना पिता को ही मिलना हुआ। तब राय ने जाकर सब बात राजा को कह दी और श्रीमहाप्रभु जी की आज्ञा से उनके पुत्र को ले आये।]

विशाखा या ललिता जी से अभिन्न स्वरूप राय रामानन्द जी श्रीरूप मंजरी के अनुगत थे। राय रामानन्द जी के साथ, 'विदग्ध माधव' और 'ललित माधव' नामक दो नाटकों की विषय वस्तु के सम्बन्ध में रूप गोस्वामी जी की चर्चा हुई थी। राय रामानन्द जी ने जब श्रीरूप गोस्वामी जी से इष्टदेव के सम्बन्ध में सुनने की इच्छा प्रकट की तो श्रीरूप गोस्वामी जी ने विदग्ध माधव के प्रथम अंक के मंगलाचरण के दो श्लोकों का पाठ करके राय रामानन्दजी को सुनाया था –

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ।

समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्॥

हरिः पुरटसुन्दरद्युति कदम्ब सन्दीपितः।

सदा हृदय कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥ (चै.च.अ. 1/132)

राय रामानन्द जी ने उक्त श्लोकों की सहस्रगुणी प्रशंसा की और कहा कि महाप्रभु जी की कृपा से ही, ब्रह्मा जी के समझ में न आने वाले विषय भी दिल में घर कर जाते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने राय रामानन्द जी के अलौकिक चरित्र की विशिष्टता और उनके अप्राकृत स्वरूप की प्रसिद्धि के लिये ही अशौक्र ब्राह्मण कुल में पैदा हुये महाभागवत् राय रामानन्द जी से शौक्र ब्राह्मण कुल में जन्मे प्रद्युम्न मिश्र को हरि कथा सुनाने की लीला दिखाई थी। श्रीहट्ट निवासी, (बाद में उड़िया निवासी) श्रीप्रद्युम्न मिश्र द्वारा महाप्रभु जी से कृष्ण कथा सुनाने के लिये दीनता पूर्वक इच्छा प्रकट करने पर, महाप्रभु जी ने उनको राय रामानन्द जी के पास कृष्ण कथा सुनने के लिये भेजा था।

श्रीजगन्नाथ जी के मन्दिर में जगन्नाथ जी के आगे दो देव दासियाँ नृत्य गीतादि करके जगन्नाथ जी को प्रसन्न करती हैं। उस समय उन देवदासियों को श्रृंगार करवाना व उन्हें नृत्य-गीतादि की शिक्षा देने की सेवा श्रीराय रामानन्द जी करते थे। श्रीप्रद्युम्न मिश्र जब राय रामानन्द जी से कृष्ण कथा सुनने के लिए आये तो उस समय राय रामानन्द जी उपरोक्त सेवा में नियुक्त थे इसलिए राय रामानन्द जी के सेवकों ने प्रद्युम्न मिश्र जी को बाहर बिठाकर रखा। श्रीराय रामानन्द हर दिन जगन्नाथ जी की इस प्रकार की गूढ़ सेवा में नियोजित रहते थे। उनके इस सेवा कार्य के समय, राय रामानन्द जी के सेवक किसी को भी उन्हें मिलने नहीं देते थे ताकि सेवा कार्य बिना किसी बाधा को सुचारु रूप से चल सके।

सेवा समाप्ति पर राय रामानन्द जी बाहर आकर प्रद्युम्न मिश्र के आने का समाचार जान पाये। बहुत विलम्ब हो जाने के कारण राय रामानन्द जी ने श्रीमिश्र को यथोचित्त सम्मान प्रदान किया व अपने अपराध के लिए क्षमा प्रार्थना की। समय अधिक हो जाने पर श्रीप्रद्युम्न मिश्र अपने घर वापिस आ गये। कई दिन बाद महाप्रभु जी से मिलन होने पर व महाप्रभु जी द्वारा यह पूछने पर कि राय रामानन्द जी के साथ, कृष्ण कथा किस प्रकार रही तो श्रीमिश्रा ने सब वृत्तांत पूर्णतः वर्णन कर दिया। प्रद्युम्न मिश्र जी के संशय युक्त मन का शक निवारण करने के लिये महाप्रभुजी ने राय रामानन्दजी की अलौकिक चरित्र विशिष्टता के विषय में कहा –

"आमि त' सन्यासी, आपनारे विरक्त करि' मानि।

दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृतिर' नाम यदि शुनि॥

तबहिँ विकार पाय मोर तनु –मन।

प्रकृति-दर्शने स्थिर हय कोन् जन??"॥

रामानन्द-रायेर कथा शुन, सर्वजन।

कहिवार नहे, जाहा आश्चर्य-कथन॥

एके देवदासी, आर सुन्दरी तरुणी।

ताहादेर सब सेवा करेन आपनि॥

स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण।

गुह्य अङ्ग जत, तार दर्शन-स्पर्शन॥

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन।

नाना भावोद्गम तारे कराय शिक्षण॥

निर्विकार देह-मन—काष्ठ-पाषण सम।

आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्शे निर्विकार मन॥

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार।

ताते जानि अप्राकृत-देह ताँहार॥

(चै. च. अ. 5/35-42)

[अर्थात महाप्रभु जी कहते हैं-मैं तो सन्यासी हूँ, अपने को विरक्त मानता हूँ। दर्शन की बात दूर रही, स्री का नाम सुनने मात्र से मेरे मन और शरीर में विकार होने लगते हैं। स्री के दर्शन से किसका मन स्थिर रह सकता है?-आप सभी राय रामानन्द की बात सुनिये। बात इतनी आश्चर्यजनक है कि इसे कहने के लिये शब्द ही नहीं है-देखो न, एक तो वह देव दासी है, दूसरे वह तरुण अवस्था की है। उनकी सब सेवा वे स्वयं करते हैं। उनको स्नान आदि कराते हैं, वस्र, आभूषण पहनाते हैं। उनके गुह्य अंगों का दर्शन स्पर्शन होता ही है, तब भी श्रीराय रामानन्द का मन, विकार शून्य रहता है; और तो और, वे उन्हें नाना प्रकार के भावों को उत्पन्न करने की शिक्षा देते हैं। उनके देह व मन ऐसे ही विकारी नहीं होते जैसे वे लकड़ी या पत्थर के बने हों। कमाल की बात है कि युवती का स्पर्श करने पर मन निर्विकार रहे। वास्तव में एक रामानन्द का ही ऐसा अधिकार है। इससे मालूम पड़ता है कि उसका देह अप्राकृत है।]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने प्रद्युम्न मिश्र और उनके माध्यम से जगत के वासियों को राय रामानन्द जी के अप्राकृत स्वरूप से अवगत कराया। श्रीमन्महाप्रभु जी ने यह कहकर कि वे स्वयं भी राय रामानन्द जी से कृष्ण कथा सुनते हैं, प्रद्युम्न मिश्र को दोबारा राय रामानन्द जी से कृष्ण कथा सुनने के लिये भेजा। प्रद्युम्न मिश्र राय रामानन्द जी से अपूर्व कृष्ण कथा सुनकर हैरान रह गये और आनन्द से नाचने लगे।

राय रामानन्द जी ने जगन्नाथ बल्लभ नामक एक नाटक की रचना की थी। उस नाटक का श्रीजगन्नाथ देव के सामने मंचन करने के लिये उन्होंने दो देवकन्याओं अर्थात् दो नव उम्र की देवदासियों, जिनको आजकल माहारी कहते हैं, को लाकर, उस नाटक में अभिनय योग्य गोपी भाव की शिक्षा दी थी। दोनों कन्याएं प्रधान गोपियों का अभिनय करेंगी इसलिए उनके प्रति सेव्य भाव रखकर व अपने प्रति उनकी अनुगता सेविका बुद्धि रखकर उन्होंने उन्हें गीतादि की शिक्षा दी थी। रामानन्द जी अपने आप को राधाजी की दासी व राधाजी का अभिनय करने वाली देव दासियों को सेव्य मानकर उन्हें स्नानादि करवाते व उनका श्रृंगार आदि करते थे।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

'गृहस्थ' हञा नहे राय षड्वर्गेर वशे।

'विषयी' हञा सन्यासीरे उपदेशे॥

एइसब गुण ताँर प्रकाश करिते।

मिश्रेरे पाठाइला ताँहा श्रवण करिते॥

भक्तगुण प्रकाशिते प्रभु भाल जाने।

नाना-भङ्गीते प्रकाशि' निज-लाभ माने॥

आर एक 'स्वभाव' गौरेर शुन, भक्तगण।

गूढ़ ऐश्वर्य-स्वभाव करे प्रकटन॥

सन्यासी पण्डितगणेर करिते गर्व-नाश।

नीच-शूद्र-द्वारा करेन धर्मेर प्रकाश॥

'भक्ति', 'प्रेम', 'तत्त्व' कहे राये करि' 'वक्ता'।

आपनि प्रद्युम्नमिश्र-सह हय 'श्रोता'॥

(चै. च. अ. 5/80-85)

[महाप्रभु जी कहते हैं—गृहस्थ होते हुये भी राय काम-क्रोधादि छः रिपुओं के वश में नहीं हैं। वे बाहर से विषयी होते हुये भी संन्यासियों को उपदेश देते हैं। उनके इन सब गुणों को प्रकाश करने के लिये ही मैंने मिश्र जी को उनसे हरि कथा श्रवण करने के लिये भेजा था।

भक्तों के गुणों को प्रकाश करना श्रीमहाप्रभु जी भली-भांति जानते हैं। नाना प्रकार की लीला द्वारा भक्तों के गुणों को प्रकाश करने को वे अपना लाभ मानते हैं। हे भक्तगण! महाप्रभु जी का एक और स्वभाव सुनो! वे अपना गूढ़ –ऐश्वर्य स्वभाव प्रकट करते हैं। महाप्रभु जी प्रेम व भक्ति तत्त्व कहते हैं श्रीराय जी को वक्ता बनाकर और स्वयं श्रीप्रद्युम्न मिश्र के साथ श्रोता बनते हैं।]

श्रीराय रामानन्द जी के सम्बन्ध में श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी ने लिखा है कि श्रीराम रामानन्द प्रभु प्राकृत लोक दृष्टि में प्रवृत्ति मार्गी गृहस्थ, संयतेन्द्रिय ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या भिक्षु के रूप में देखे नहीं जाते। प्राकृत गृहस्थ लोग इन्द्रियों को वश होकर गृहव्रत धर्म को ग्रहणकरते हैं, किन्तु घर में स्थित अप्राकृत वैष्णव, अवैष्णव गृहस्थों की भांति, लम्पट व इन्द्रियों के गुलाम होकर बिल्कुल षड़वर्ग के अधीन नहीं होते। गृहस्थाश्रम लीला में श्रीरामानन्द प्रभु प्राकृत लोगों की भोगमयी दृष्टि से विषयी होने पर भी अप्राकृतिक देह वाले हैं, अप्राकृत कृष्ण लीला ही

उनके शुद्ध सत्त्व अप्राकृत मन का हर समय विषय होता है, वे भगवान् के चिद् विलास के विरोधी निर्विशेषवादी तार्किक नहीं थे। वे विषयों को त्याग देने वाले निर्गुण संन्यासियों को भी कृष्ण बोधहीन जड़ विषयों से छुड़ाकर, श्रीकृष्ण के विषय में चिंतन कराने में समर्थ थे।

श्रीबल्लभ भट्ट पुरुषोत्तम धाम में आकर महाप्रभु जी से मिले। बल्लभ भट्ट के पाण्डित्य अभिमान के कारण उनके सामने अपने तत्व को गोपन रखकर, श्रीमन्महाप्रभु जी ने, भक्तों की महिमा कीर्तन के समय, राय रामानन्द जी का परिचय सम्बन्ध-प्रयोजन और व्रज के शुद्ध रस वेत्ता के रूप में बताया था—

रामानन्द-राय-कृष्ण-रसेर 'निधान'।

तेंहो जानाइला, कृष्ण-स्वयं भगवान्॥

कहन ना जाय रामानन्देर प्रभाव।

राय-प्रसादे जानिलुँ व्रजेर 'शुद्ध' भाव॥

(चै. च. अ. 7/23, 37)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं कि रामानन्द राय जी कृष्णरस के भण्डार हैं। उन्हीं ने बताया है कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। श्रीरामानन्द जी का प्रभाव वर्णन नहीं किया जा सकता, राय की कृपा से ही मैं व्रज का शुद्ध भाव जान सका हूँ।]

सुबल यैछे पूर्वे कृष्णसुखेर सहाय।

गौरसुखदान-हेतु तैच्छे रामराय॥ (चै. च. अ. 6/9)

[अर्थात् श्रीकृष्ण लीला के सुबल जैसे श्रीकृष्ण की सहायता करते थे, वैसे ही श्रीरामानन्द राय जी श्रीगौरांग महाप्रभु जी को सुख देते थे।]

पुरी में, हरिदास ठाकुर जी के महाप्रयाण के समय, राय रामानन्द जी भी उपस्थित थे, यह चैतन्यचरितामृत में कविराज गोस्वामी के वर्णन से पता चलता है –

रामानन्द, सार्वभौम, सबार अग्रेते।

हरिदासेर गुण प्रभु लागिला कहिते॥ (चै. च. अ. 11/50)

श्रीमन् महाप्रभु जी के दिव्य-उन्माद की अवस्था में तीनों दरवाजे बंद होना और महाप्रभु जी का अपनी कोठरी में न होना, सिंह द्वार की उत्तर दिशा में हड्डियों के जोड़ों की शिथिलता की अवस्था में बहुत बड़ी अवस्था की प्राप्ति, कृष्ण नाम के कीर्तन में ज्ञान लौटने पर दोबारा घर में लाया जाना, किसी समय चटक पर्वत को ही गोवर्धन पर्वत समझने पर भावों की विह्वलता, हरिनाम कीर्तन द्वारा ही शान्त करके उन्हें घर लाया जाना इत्यादि-इन सब लीलाओं में स्वरूप दामोदर जी के साथ, राय रामानन्दजी भी रहे। महाप्रभु जी के दिव्य उन्माद की दसों दशाओं में ही राय रामानन्द जी ने, समय के अनुरूप, भावोपयोगी श्लोकों का पाठ करके महाप्रभु जी को सुख दिया था –

रामानन्देर कृष्णकथा, स्वरूपेर गान।

विरह-वेदनाय प्रभुर राखये-पराण॥

(चै.च.अ. 6/6)

एत कहि' गौरहरि, दुइजनार कण्ठ धरि',

कहे,-"शुन स्वरूप-रामराय।

काँहा करों, काँहा जाउ, काँहा गेले कृष्ण पाउ,

दुँहे मोरे कह से उपाय॥"

एइमत गौरप्रभु प्रति दिने-दिने।

विलाप करेन स्वरूप-रामानन्द-सने॥

सेई दुइजन प्रभुरे करे आश्वासन।

स्वरूप गाय, राय करे श्लोक पठन॥

कर्णामृत, विद्यापति, श्रीगीतगोविन्द।

इहार श्लोक-गीते प्रभुर कराय आनन्द॥

(चै. च. अ. 15/24-27)

[अर्थात् श्रीरामानन्द जी की कृष्ण कथा तथा श्रीस्वरूप जी का गान ही महाप्रभु जी की विरह पीड़ा में प्राणों की रक्षा करते हैं। एक दिन श्रीगौरहरि जी ने दोनों के गले में अपनी बाहें डाल दीं और कहने लगे-हे स्वरूप! हे रामराय! सुनो, आप मुझे यह बताओ कि मैं क्या करूँ, कहां जाऊँ, कहां जाकर श्रीकृष्ण को पाऊँ?

जब श्रीगौर प्रभु प्रतिदिन श्रीस्वरूप और राय रामानन्द के साथ इस प्रकार विलाप करते, तब वे दोनों श्रीमहाप्रभु जी को आश्वासन देते तथा श्रीस्वरूप गीत गाते और श्रीरामानन्द श्लोक पढ़ते। कर्णामृत, विद्यापति, श्रीगीत गोविन्द के गीत तथा श्लोकों को सुनाकर राय रामानन्द जी व स्वरूप दामोदर जी महाप्रभु जी को सुख देने का चौबीसों घण्टे प्रयास करते रहते थे।]

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति।

कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द॥

स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने।

गाय, शुने-परम आनन्द॥

(चै. च. म. 2/77)

राय रामानन्द जी का भजन स्थान "श्रीजगन्नाथ बल्लभ उद्यान" महाप्रभु जी को अतिप्रिय था। जगन्नाथ बल्लभ उद्यान में प्रवेश करके महाप्रभु अत्यन्त भावाविष्ट हो पड़ते थे। एक दिन महाप्रभु जी ने श्रीजगन्नाथ बल्लभ बाग में अशोक वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण दर्शन और उसके बाद उनके अदृश्य होने के कारण मूर्च्छित होने की लीला की थी—

'जगन्नाथवल्लभ' नाम उद्यान-प्रधाने।

प्रवेश करिला प्रभु लञा भक्तगणे॥

प्रफुल्लित वृक्ष –वल्ली,-येन वृन्दावन।

शुक, शारी, पिक, भृङ्ग करे आलापन॥

(चै. च. अ. 19/79-80)

[अर्थात श्रीमहाप्रभु भक्तों को साथ लेकर श्रीजगन्नाथ बल्लभ नामक प्रधान उद्यान में गये जहां वृक्ष तथा लतायें ऐसी प्रफुलित थीं जैसे वृन्दावन हो। वहां शुक, शारी, पिक, भृंग सब गुंजार कर रहे थे।]

प्रतिवृक्षवल्ली ऐछे भ्रमिते भ्रमिते।

अशोकेर तले कृष्णे देखेन आचम्बिते॥

कृष्ण देखी' महाप्रभु धाञा चलिला।

आगे देखि' हासि' कृष्ण अन्तर्धान हइला॥

आगे पाइला कृष्णे, ताँरे पुनः हाराञा।

भूमेते पड़िला प्रभु मूर्च्छित हञा॥

(चै. च. अ. 19/85-87)

[श्रीमन् महाप्रभु जी प्रत्येक वृक्ष लताओं के आस-पास घूम रहे थे कि घूमते-घूमते, अचानक अशोक वृक्ष के नीचे उन्होंने श्रीकृष्ण को देखा। श्रीकृष्ण को देखकर महाप्रभु जी उनकी ओर दौड़ने लगे। फिर क्या देखा कि श्रीकृष्ण हँस रहे हैं तथा इसके पश्चात् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। मैंने कृष्ण को पा लिया था परन्तु, फिर वे खो गये मुझसे-इसी भाव में महाप्रभु मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।]

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने स्वरूप दामोदर जी और राय रामानन्द जी के माध्यम से बताया कि कलियुग में श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्ति का श्रेष्ठ उपाय है—श्रीनाम संकीर्तन।

हर्षे प्रभु कहेन,—"शुन, स्वरूप-रामराय।

नामसंङ्कीर्त्तन—कलौ परम उपाय॥

(चै. च. अ. 20/8)

अर्थात् आनन्द के साथ श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीराय रामानन्दजी से कहते हैं कि कलियुग में श्रीहरिनाम संकीर्तन ही परम उपाय स्वरूप है।

'भजन निर्णय' ग्रंथ के अनुसार राय रामानन्द जी राघवेन्द्र पुरी जी के शिष्य थे और राघवेन्द्र पुरी जी श्रीमाधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे।

ज्येष्ठ मास की कृष्ण पंचमी को (अन्य मत के अनुसार वैशाखी कृष्णा पंचमी को) श्रीराय रामानन्द का तिरोधान हुआ।

****

शिखि माहिति

'रागलेखा-कलाकेल्यौ राधादास्यौ पुरा स्थिते।

ते ज्ञेये शिखिमाहिती तत्स्वसा माधवी-क्रमात्॥

(गौ. ग. दी. 189)

'रागलेखा और कलाकेली नाम से ये दोनों जो पहले श्रीराधा की दासियां थीं, उन दोनों को ही यथाक्रम से शिखि माहिति एवं उनकी बहन माधवी रूप से जानना।'

उत्कलवासी शिखि माहिति महाप्रभु जी के अन्तरंग भक्त थे। यह श्रीचैतन्यशाखा में गिने जाते हैं और ये श्रीपुरुषोत्तमधाम में रहते थे। यह शुद्ध हृदय, परम दयालु व महान् आत्मा थे। इनके भाई का नाम श्रीमुरारि माहिति (महन्त) तथा इनकी छोटी बहन शुद्ध बुद्धिमान माधवी देवी थी। मुरारि माहिति और माधवीदेवी दोनों ही भगवान श्रीगौरसुन्दर जी के प्रति गाढ़ प्रीति रखने वाले थे। श्रीगौरसुन्दर जी के प्रति इनकी स्वाभाविक ही निश्चला भक्ति थी। आश्चर्य यह था कि कभी भी इनके चित्त में गौरसुन्दर जी की विस्मृति नहीं घटी। गौरसुन्दर जी ने भी इनके प्रति असीम स्नेह वर्षण किया था। इतना होन पर भी ये बहुत यत्न करके भी अपने बड़े भाई शिखि माहिति को गौरभजन में न लगा सके। तब शिखि माहिति श्रीजगन्नाथ जी के श्रीमन्दिर के लिखनाधिकारी थे—

"कृष्णदास नाम एइ सुवर्ण-वेत्रधारी।

शिखि माहाति-नाम एइ लिखनाधिकारी॥

मुरारि माहाति इँह-शिखि माहातिर भाइ।

तोमार चरण बिना आर गति नाइ॥"

(चै.च.म. 10/42, 44)

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में वर्णन किया है कि किस प्रकार से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की कृपा के द्वारा शिखि माहाति अभिषिक्त हुए थे।

प्रसंग का सारमर्म यह है कि एक दिन अपने छोटे भाई मुरारि माहिति और अपनी छोटी बहन माधवीदेवी का उपदेश सुनते-सुनते और विचार करते-करते शिखि माहिति को अचानक नींद आ गई। रात्रि के अन्तिम पहर में उन्होंने एक स्वप्न देखा कि गौरपादपद्म दर्शनकारी उनके छोटे भाई बहन उनको नींद से उठने के लिये कह रहे हैं। इस आश्चर्य स्वप्न को देखने के बाद उनका शरीर पुलकित और रोमान्चित हो उठा। आँखें खोलने के साथ-साथ वे यह देखकर अत्यन्त

विस्मित हो उठे कि उनके दोनों भाई बहन उनके सामने ही थे। उनके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। दोनों को सम्मुख देखते ही आनन्दातिशय से उन्होंने उनका आलिंगन कर लिया।

बड़े भाई ने हठात् इस प्रकार आलिंगन क्यों किया, यह न समझ सकने के कारण वे अत्यन्त विस्मित से हो उठे। उनकी विस्मयान्वित अवस्था देखकर उनका संशय दूर करने के लिये इन्होंने कहा—'मैंने आज एक अद्‌भुत स्वप्न देखा है। श्रीशचीनन्दन गौरसुन्दर जी की अचिन्त्य महिमा पर आज मुझे विश्वास हुआ है। स्वप्न में मैंने देखा कि श्रीगौरसुन्दर जी श्रीजगन्नाथ को दर्शन करके पुनः-पुनः उनमें प्रविष्ट हो रहे हैं और उनमें से बाहर आ रहे हैं। मैं अभी भी गौरसुन्दर को वैसे ही देख रहा हूँ। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या यह मेरी दृष्टि का भ्रम है या कुछ और? असीम कृपामय गौरहरि जी ने मुझे श्रीजगन्नाथदेव जी के सामने देखकर मेरा नाम उच्चारण करते हए दीर्घ व तुलनारहित सुन्दर-सुन्दर भुजाओं में मुझे आलिंगन कर लिया।'

शिखि माहिति इस प्रकार कहते-कहते प्रेमाविष्ट हो गये। मुरारि माहाति और माधवीदेवी ने उनको जगन्नाथ जी के दर्शन करने के लिये जाने का निवेदन किया तथा बाद में तीनों ही नीलाचलपति जगन्नाथ जी के दर्शन करने के लिये चल दिये। जगन्नाथ जी के दर्शन करके मुरारि माहाति और माधवीदेवी प्रेमानन्द से अश्रु विसर्जन करने लगे। शिखि माहिती ने स्वप्न में जो कुछ देखा था वे वहाँ भी वही देखने लगे। महावदान्य महाप्रभु जी ने 'तुम मुरारि के अग्रज' यह कहकर शिखि माहिति को अपनी दोनों भुजाओं में आलिंगन कर लिया। शिखि माहिति श्रीगौरसुन्दर जी का स्पर्श पाते ही आनन्द सागर में निमज्जित हो उठे। तब से शिखि माहिति जी सब कुछ भूल गये और श्रीगौर पादपद्म को ही अपना एकमात्र अभीष्ट जानकर उनकी सेवा में नियोजित हो गये। शिखि माहिति श्रीमन्महाप्रभु के कितने प्रिय थे, वह श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीवृन्दावन दास ठाकुर द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवत और श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ के पाठ से जाना जाता है—

"दामोदरस्वरूप-मिलने परम आनन्द।

शिखिमाहिति-मिलन, राय भवानन्द॥"

(चै.च.म. 1/130)

"आनन्दित भक्तगण आसिया मिलिला।

प्रेम-आलिङ्गन प्रभु सबारे करिला॥

काशीमिश्र,रामानन्द,प्रद्युम्न,सार्वभौम।

वाणीनाथ, शिखि-आदि यत भक्तगण॥"

(चै.च.म. 16/253-54)

"अद्वैतेर ज्येष्ठपुत्र-श्रीअच्युतानन्द।

वाणीनाथ, शिखिमाहिति आदि भक्तवृन्द॥"

(चै.भा.अ. 8/60)

"श्रीशिखि माहिति आदि गोपीनाथे कय।

श्रीजगन्नाथेर हैल दर्शन-समय॥"

(भक्तिरत्नाकर-8/237)

शिखि माहिति श्रीमन्महाप्रभु के अन्तरंग साढ़े तीन जन भक्तों में से एक थे—

"प्रभु लेखा करे जाँरे-राधिकार 'गण'।

जगतेर मध्ये 'पात्र'-साड़े तिन जन॥

स्वरूप-गोसाञि, आर राय-रामानन्द।

शिखि-माहिति-तिन, ताँर भगिनी-अर्द्धजन॥"

(चै.च.अ. 2/105-106)

अर्थात् महाप्रभु जी जिन्हें राधा जी का गण मानकर गिनते थे, वे सारे जगत में मात्र साड़े तीन व्यक्ति ही हैं जिनमें स्वरूप दामोदर जी एक, दूसरे राय रामानन्द जी तथा दूसरे होते हैं—**शिखि माहिति** तथा आधी गिनती होती है इनकी बहिन माधवी जी की।

****

श्रीप्रद्युम्न मिश्र

आविर्भावो गौरहरेर्नकुल-ब्रह्मचारिणि॥73

आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्नसंज्ञके॥ 74

(गौर गणोद्देश दीपिका)

नकुल ब्रह्मचारी में गौरहरि जी का आविर्भाव और प्रद्युम्न मिश्र जी में भी उनका आवेश जानना होगा। श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के दशम परिच्छेद के अपने अनुभाष्य में महाप्रभु जी के पार्षद श्रीप्रद्युम्न मिश्र को उड़ीसा निवासी लिखा है। श्रीवृन्दावनदास ठाकुर जी ने भी श्रीचैतन्य भागवत् में श्रीप्रद्युम्न मिश्र को उड़ीसा निवासी कहा है-

ये ये पार्षदेर जन्म उत्कले हइला।

ताहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला॥

मिलिला प्रद्युम्न मिश्र-प्रेमेर शरीर।

परमानन्द, रामानन्द—दुइ महाधीर॥

(चै. भा. अ. 3/183-84)

[अर्थात जिस-जिस पार्षद का जन्म उत्कल में हुआ था, वे भी धीरे-धीरे आकर महाप्रभु जी से मिले। प्रद्युम्न मिश्र, परमानन्द और रामानन्द जो तीनों महाधीर हैं, महाप्रभु जी से मिले।]

गौड़ीय वैष्णव अभिधान के वर्णन के अनुसार ये पहले श्रीहट्टवासी थे तथा बाद में उड़ीसा निवासी हो गये थे। श्रीप्रद्युम्न मिश्र चैतन्य शाखा में गिने जाते हैं। ये महाप्रभु जी को कितने प्यारे थे, यह श्रीचैतन्यचरितामृत में कविराज गोस्वामी के और श्रीचैतन्य भागवत् में श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के वर्णन से जाना जाता है—

प्रद्‌युम्नमिश्र इँह वैष्णव प्रधान।

जगन्नाथेर महा-सोयार इँह 'दास' नाम॥

(चै. च. म. 10/43)

[अर्थात् प्रद्‌युम्न मिश्र जी प्रधान वैष्णव हैं। यह श्रीजगन्नाथ जी के लिये रसोई बनाने वालों में प्रधान हैं]

श्रीप्रद्‌युम्नमिश्र-कृष्ण-प्रेमेर सागर।

आत्म-पद याँ'रे दिला श्रीगौरसुन्दर॥

(चै. भा. अ. 5/211)

[श्रीप्रद्‌युम्न मिश्र श्रीकृष्ण प्रेम के सागर हैं। श्रीगौरसुन्दर जी ने इन्हें आत्मपद प्रदान किया।]

काशीश्वर-पण्डित, आचार्य-भगवान्।

श्रीप्रद्‌युम्नमिश्र-प्रेमभक्ति प्रधान॥

(चै. भा.अ. 8/57)

[श्रीकालेश्वर पण्डित, श्रीभगवान् आचार्य व श्रीप्रद्‌युम्न मिश्र—ये सभी प्रेम-भक्ति के प्रधान हैं।]

काशीमिश्र, प्रद्‌युम्नमिश्र, राय भवानन्द।

याँहार मिलने प्रभु पाइला आनन्द।

(चै.च.आ.10/131)

[ये श्रीकाशी मिश्र, और प्रद्‌युम्न मिश्र, श्रीराय भवानन्द, ऐसे भक्त हैं, जिनको मिलने से श्रीमहाप्रभु जी को बहुत आनन्द होता है।]

जय जय श्रीप्रद्‌युम्न-मिश्रेर जीवन।

जय श्रीपरमानन्दपुरी-प्राण-धन॥

(चै. भा. आ. 14/2)

[श्रीप्रद्‌युम्न मिश्र के जीवन की जय हो जय हो। श्रीपरमानन्द पुरी के प्राणधन की जय हो जय हो।]

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी जब दक्षिण भारत से पुरी धाम में वापस आये तो श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जी ने महाप्रभु जी को एक-एक करके सभी पुरीवासी भक्तों का परिचय दिया। परिचय देते समय भट्टाचार्यजी ने श्रीप्रद्‌युम्न मिश्र का एक प्रधान वैष्णव के रूप में परिचय दिया था।

श्रीमन्महाप्रभु जी की आज्ञा से श्रीप्रद्युम्न मिश्र जी ने राय रामानन्द जी से श्रीकृष्ण कथा सुनी थी। इस प्रसंग का श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के पाँचवें परिच्छेद में विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीचैतन्य भागवत् की आदि लीला के चौथे परिच्छेद के दूसरे पयार के गौड़ीय भाष्य में इस प्रकार लिखा है –

उड़ीसा के ही एक ब्राह्मण कुल में श्रीप्रद्युम्न मिश्र जी का जन्म हुआ था। इनका एक आदर्श गृहस्थोचित पुण्यमय जीवन था। साथ ही समाज में भी इनकी अच्छी मर्यादा थी। ब्राह्मण कुल में जन्म, आदर्श गृहोचित पुण्यमयजीवन व इनकी सामाजिक उच्च मर्यादा को देखकर अथवा ये सब सफल करने के उद्देश्य से ही महाप्रभुजी ने इन्हें भगवान् श्रीहरि व उनके भक्तों की सेवा में नियुक्त किया था तथा इसी उद्देश्य से महाप्रभुजी ने इन्हें अशौक्र विप्रकुल में अवतीर्ण कृष्णभक्तिरस शिक्षक चूड़ामणि महाभागवतवर- वैष्णवाचार्य श्रील रायरामानन्द जी के पास भेजा था। इन्होंने भी एक शिष्य रूप में वैष्णवाचार्य श्रीरायरामानन्द जी से श्रीकृष्ण कथा व कीर्त्तन श्रवण करके उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्त की थी।

घटना इस प्रकार है कि श्रीप्रद्युम्न मिश्र श्रीमन्महाप्रभु जी से श्रीकृष्ण कथा सुनने के लिये व्याकुल हो उठे तो महाप्रभुजी ने उनको राय रामानन्दजी के पास भेज दिया। श्रीराय रामानन्द जी पुरी में श्रीजगन्नाथ बल्लभ उद्यान में रहते थे। श्रीजगन्नाथ देव की प्रसन्नता के लिये जो कार्य श्रीराय रामानन्द जी करते थे वे मनुष्यों की तो बात क्या ऋषि– मुनियों के लिये भी दुर्लभ था। वे श्रीजगन्नाथ देव के निकट नृत्य और गीत आदि के द्वारा सुख विधान करने के लिए दो युवतियों (देवदासियों) को सुसज्जित करके उन्हें नृत्य-गीत आदि की शिक्षा देते थे। जिस समय वे इस कार्य में लगे होते थे, उस समय बाहर के लोगों को वहाँ दाखिल होने का अधिकार नहीं होता था।

एक दिन जब वे इस सेवा में लगे थे कि उसी समय महाप्रभु जी के निर्देश से श्रीप्रद्युम्न मिश्र श्रीकृष्ण कथा सुनने के लिए वहाँ उपस्थित हुये। राय रामानन्दजी के सेवा कार्य में व्यस्त होने के कारण सेवकों ने श्रीप्रद्युम्न मिश्र को थोड़ी प्रतीक्षा करने के लिए कहा। अन्दर का सारा सेवा कार्य जब समाप्त हो गया तब राय रामानन्द जी बाहर आए। काफी देर बाद बाहर आने पर उन्हें मालूम पड़ा प्रद्युम्न मिश्र के बारे में कि वे काफी देर से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

उन्होंने श्रीप्रद्युम्न मिश्र महोदय का यथोचित्त सम्मान करते हुये, देर से आने के कारण हुए अपराध के लिए क्षमा चाही। क्योंकि प्रतीक्षा करते-करते प्रद्युम्न मिश्र को काफी समय हो गया था इसलिए उस दिन उन्हें बिना कथा सुने ही वापस जाना पड़ा। फिर कुछ दिन बाद, श्रीप्रद्युम्न मिश्र की महाप्रभु जी से भेंट होने पर महाप्रभु जी ने श्रीरामानन्द राय की कृष्ण कथा किस प्रकार रही, इस विषय में जिज्ञासा की। श्रीप्रद्युम्न मिश्र के सन्देह पूर्ण मन से व मौनभाव से खड़े रहने पर, सर्वान्तर्यामी महाप्रभु जी सब कुछ जान गये।

श्रीमिश्र का संशय दूर करने के लिये उन्होंने श्रीरामानन्द जी राय के अलौकिक चरित्र का जो वर्णन किया, श्रील कृष्ण दास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की अन्त्यलीला के पांचवें परिच्छेद में उसे लिखा है, वह प्रसंग इस प्रकार से है—

"आमि त' सन्यासी, आपनारे विरक्त करि' मानि।

दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृतिर' नाम यदि शुनि॥

तबहिँ विकार पाय मोर तनु –मन।

प्रकृति-दर्शने स्थिर हय कोन् जन??"॥

रामानन्द-रायेर कथा शुन, सर्वजन।

कहिवार नहे, जाहा आश्चर्य-कथन॥

एके देवदासी, आर सुन्दरी तरुणी।

ताहादेर सब सेवा करेन आपनि॥

स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण।

गुह्य अङ्ग जत, तार दर्शन-स्पर्शन॥

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन।

नाना भावोद्गम तारे कराय शिक्षण॥

निर्विकार देह-मन—काष्ठ-पाषण सम।

आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्शे निर्विकार मन॥

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार।

ताते जानि अप्राकृत-देह ताँहार॥

(चै. च. अ. 5/35-42)

महाभागवत श्रीराय रामानन्द कृष्ण कथा कीर्तन के अधिकारी हैं। ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने प्रद्युम्न मिश्र को राय रामानन्द के पास कृष्ण कथा सुनने के लिए दोबारा भेजा। तब प्रद्युम्न मिश्र जगन्नाथ बल्लभ उद्यान में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने राय रामानन्द को दण्डवत् प्रणाम करके उनका सम्मान किया तथा रामानन्द राय जी को श्रीकृष्ण कथा सुनाने के लिए महाप्रभु जी के आदेश से अवगत कराया। दक्षिण के विद्यानगर में सम्बन्ध अभिधेय व प्रयोजनात्मक विषय में कृष्ण कथा प्रसिद्ध हुई थी अर्थात् जब महाप्रभु जी दक्षिण भारत की यात्रा में गये थे, उस समय उनकी रामानन्द जी से भेंट हुई थी व उस भेंट में जीवों के सम्बन्ध, अभिधेय व प्रयोजन के विषय में कथा हुई थी। महाप्रभु जी से सुनी हुई वही सब कथा राय रामानन्द जी ने प्रद्युम्न मिश्र को पूरी की पूरी सुना दी। कृष्ण कथा के श्रवण कीर्तन में प्रेमाविष्ट होकर वक्ता और श्रोता दोनों आत्मविस्मृत हो गये। इस प्रकार कृष्ण कथा में सारा दिन बीत गया। बाद में प्रद्युम्न मिश्र जब महाप्रभु जी से मिले तो उन्होंने कृतकृतार्थ होकर अपूर्व कृष्ण कथा श्रवण करने के सौभाग्य के विषय में परमोल्लास से भरकर सारी बात महाप्रभु के चरण-कमलों में निवेदन की थी।

इस प्रसंग में श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में इस प्रकार लिखा है—

ब्राह्मण तीनों वर्णों के गुरु हैं जबकि संन्यासी ब्राह्मण के भी गुरु हैं।

प्रद्युम्न मिश्र जी के दुनियावी अभिमान को तोड़ने की इच्छा से ही श्रीमन् महाप्रभु जी ने लौकिक दृष्टि से सबसे निम्न, जिसे शूद्र कहा जाता है, से प्रद्युम्न मिश्र को उपदेश प्रदान करवाया अर्थात महाप्रभु जी ने शौक्र ब्राह्मण कुल के प्रद्युम्न मिश्र को शूद्र कहलाने वाले गृहस्थ राय रामानन्द जी से उपदेश दिलवाया तथा स्वयं संन्यासी होकर भी महाप्रभु जी ने राय रामानन्द जी द्वारा प्रचारित धर्म को अंगीकार किया था।

****

श्रीरूप गोस्वामी

श्रीरूपमञ्जरी ख्याता यासीद् वृन्दावने पुरा।

साद्य रूपाख्य-गोस्वामी भूत्वा प्रकटतामियात्॥

(गौ. ग. दी. 180 श्लोक)

जो पूर्व काल में वृन्दावन में श्रीरूप मंजरी नाम से प्रसिद्ध थे, वे ही गौरलीला की पुष्टि के लिए अब श्रीरूप गोस्वामी रूप में प्रकट हुए हैं।

राधारानी की अनुगता सखियों में प्रधाना-ललिता सखी व ललिता की अनुगता मंजरियों में प्रधाना-श्रीरूप मंजरी थीं। इसलिए गौरलीला में छः गोस्वामियों में प्रधान हैं-श्रीरूप गोस्वामी। श्रीआशुतोष देव के नूतन बंगला कोष में श्रीरूप गोस्वामी का प्रकट काल सन् 1489 ई. से 1559 ई. अथवा 1410 शकाब्द से 1479 शकाब्द दिया गया है। श्रीरूप गोस्वामी गौर लीला में भरद्वाज गोत्रीय कर्नाट देशीय ब्राह्मण राजवंश में प्रकट हुए थे। उनके पिता थे-श्रीकुमार देव जी। श्रीजननी देवी का परिचय मालूम नहीं हो पाया। श्रील नरहरि चक्रवर्ती ठाकुर (श्रील घनश्याम दास) द्वारा रचित श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्रीजीव गोस्वामी जी की श्रेष्ठ सात पीढ़ियों का परिचय दिया हुआ है।

(भक्ति रत्नाकर 1/540-568)

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में इनके वंश परिचय के सम्बन्ध में लिखा है कि भरद्वाज गोत्र के जगदगुरु 'सर्वज्ञ' नामक एक महात्मा बारहवीं शक शताब्दी में कर्नाटक में ब्राह्मण राजवंश में पैदा हुए थे। उनके रूपेश्वर और हरिहर नामक दो पुत्र पैदा हुए। लेकिन वे दोनों ही राज्य से वन्चित हो गये। ज्येष्ठ

रूपेश्वर जी ने शिखरभूमि पर वास स्थापित किया। रूपेश्वर के पुत्र पद्मनाभ जी ने गंगा किनारे स्थित नैहाटी नामक ग्राम में निवास किया। उन के पाँच पुत्र हुए-उन में सब से छोटे मुकन्द के पुत्र थे- महा सदाचारी कुमार देव जो श्रीसनातन, श्रीरूप और श्रीअनुपम के पिता थे। कुमार देव ने वाक्ला चन्द्रद्वीप में निवास किया। यशोहर प्रदेश के अन्तर्गत फतेहाबाद नामक स्थान में उन का घर था।

उनके पुत्रों में से मात्र तीन ने वैष्णव धर्म ग्रहण किया। श्रीबल्लभ अथवा श्रीअनुपम ने चन्द्रद्वीप में अपने ज्येष्ठ भाई श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ गौड़देश में रामकेलि ग्राम में नौकरी पेशे के काम के सम्बन्ध में निवास किया था। इसी स्थान पर श्रीजीव गोस्वामी जी का जन्म हुआ। नवाब सरकार के लिए अच्छा काम करने पर तीनों को मल्लिक की उपाधि मिली। श्रीमन्महाप्रभु जिस समय रामकेलि गाँव में गये थे, उस समय अनुपम के साथ उनका पहली बार मिलन हुआ। श्रीरूप गोस्वामी जी द्वारा विषय कार्य त्याग कर के महाप्रभु जी की आज्ञा पालन के लिये श्रीवृन्दावन जाने के समय बल्लभ उनके साथी बने थे। (चै. च. आ 10/84 अनुभाष्य)

रामकेलि ग्राम में श्रीकेलि कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के नीचे श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का पहला मिलन हुआ था। वहाँ श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित रूप सागर नामक एक बड़ा सरोवर अब भी विद्यमान है। उस समय के गौड़देश के बादशाह हुसैन शाह के अधीन श्रीरूप,श्रीसनातन और श्रीअनुपम राजकार्य करते थे। श्रीसनातन गोस्वामी ने प्रधान मन्त्री और श्रीरूपगोस्वामी ने शासन विभाग में विशेष दायित्त्वशील वजीर (मन्त्री) की पदवी प्राप्त की थी। श्रीरूप गोस्वामी के बादशाह द्वारा दिया हुआ नाम दबिर खास और सनातन गोस्वामी का नाम साकर मल्लिक था। जिस समय श्रीमन्महाप्रभु रामकेलि ग्राम में श्रीरूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी के साथ मिले थे, उस समय महाप्रभु जी के साथ असंख्य हिन्दुओं को देखकर बादशाह हुसैन शाह ने चिन्तित होकर रूप गोस्वामी जी से महाप्रभु जी का परिचय जानना चाहा था। रूप गोस्वामी जी द्वारा महाप्रभु जी की महिमा बादशाह को बड़े कौशल के साथ समझा देने पर बादशाह निश्चिन्त हो गये थे—

श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्यलीला के प्रथम परिच्छेद में हुसैन शाह द्वारा श्रीसनातन गोस्वामी को जो दबिर खास के नाम से सम्बोधित किया था, उस का प्रमाण पाया जाता है—

दबिर खासेरे राजा पूछिल निभृते।

गोसाञिर महिमा तिंहो लागिल कहिते॥

(चै. च. म 1/175)

शेषखण्डे, श्रीगौरसुन्दर महाशय।

दबिरखासेरे प्रभु दिला परिचय॥

प्रभु चिनि' दुइभाइर बन्ध-विमोचन।

शेषे नाम थुइलेन 'रूप'-'सनातन'॥

(चै.भा. आ. 2/171-172)

हेनइ समये दुई महाभाग्यवान्।

हइलेन आसिया प्रभुर विद्यमान॥

साकर-मल्लिक, आर रूप-दुइ भाई।

दुई प्रति कृपादृष्ट्ये चाहिला गोसाञि।

(चै. भा. अ. 9/238-239)

श्रीवृन्दावन ठाकुर द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवत के ऊपर लिखित प्रमाण द्वारा सुनिश्चित रूप से यह प्रमाणित हो जाता है कि रूप गोस्वामी का बादशाह द्वारा दिया गया नाम दबिर खास और सनातन गोस्वामी को बादशाह द्वारा दिया गया नाम साकर मल्लिक था।

श्रीकृष्ण लीला के दोनों पार्षद-श्रीरूप और सनातन के द्वारा संसार त्याग कर श्रीगौरलीला की पुष्टि के समय, परमेश्वर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी अपने भक्त वृन्द के साथ रामकेलि ग्राम में आकर, उन दोनों से मिले थे। भौमलीला में संसार-वासियों की शिक्षा के लिए भक्त और भगवान ने अपने स्वरूपगत भावों को गुप्त रखने की चेष्टा की और पारस्परिक सान्निध्य में स्वरूप भाव में प्रकट हुए। इस कारण रूप-सनातन, महाप्रभु जी के दर्शन मात्र से ही स्वाभाविक भाव से उनके प्रति आकृष्ट हुए और महाप्रभु जी भी उन दोनों (रूप-सनातन) के प्रति आकृष्ट हुए। सांसारिक लोगों की शिक्षा के लिए उन्होंने सांसारिक व्यक्तियों की भाँति व्यवहार किया था। महाप्रभु जी के अनगणित भक्तों के साथ रामकेलि ग्राम में जाने से उस समय के बंगाल के बादशाह हुसैन डर गये और उन्होंने महाप्रभु जी पर शक किया था। केशव नामक एक क्षत्रिय भक्त महाप्रभु जी को तत्त्व से जानते थे। अतः उन्होंने बादशाह को समझाया कि एक फकीर संन्यासी तीर्थ यात्रा के लिए निकले हैं, साथ दो चार लोग हैं, उसके कारण भयभीत होने की कोई वजह नहीं है।

बादशाह ने जब रूप गोस्वामी जी से इस विषय में पूछा तो रूप गोस्वामी जी ने भी महाप्रभु जी की महिमा बताकर उन का सन्देह दूर किया। बाद में आधी रात को रूप व सनातन दोनों भाई, महाप्रभु जी के साथ मिलने की आशा से पहिले नित्यानन्द और हरिदास के साथ मिले। वे ही रूप-सनातन को महाप्रभु जी के निकट लाये | रूप-सनातन दोनों ही तिनके के गुच्छे दान्तों में दबाकर अर्थात दीनता के साथ गले में कपड़ा डालकर महाप्रभु जी के चरण-कमलों में दण्डवत् प्रणाम करके बड़ी दीनता के साथ रोने लगे। उन्होंने कहा—

जागाई-माधाई हैते कोटि कोटि गुण।

अधम पतित पापी आमि दुइ जन॥

म्लेच्छजाति, म्लेच्छसङ्गी, करि मलेच्छकर्म।

गो-ब्राह्मण-द्रोही-सङ्गे आमार सङ्गम॥

मोर कर्म, मोर हाते-गलाय बान्धिञा।

कुविषयविष्ठा-गर्ते दियाछे फेलिया॥ (चै. च. म. 1/196-198)

[अर्थात—रूप सनातन कहने लगे—प्रभो! जगाई मधाई से भी हम दोनों करोड़ करोड़ गुना अधम हैं, पापी हैं, तथा पतित हैं। हम म्लेच्छ जाति के हैं, म्लेच्छों का संग करते हैं व म्लेच्छों का ही कर्म करते हैं। हमारा मेलजोल गो ब्राह्मण के द्रोहियों के साथ है। मेरे कर्मों ने तो मेरी गर्दन को पकड़ कर मुझे विष रूपी कुविषय के खड्डे में फेंक दिया है।]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप सनातन जी के बहुत से दीनता पूर्ण वाक्यों को सुनकर आर्द्र मन से, रूप सनातन के सम्बन्ध में जो सब बातें कहीं, उनसे मालूम पड़ता है कि रूप-सनातन बद्धजीवों की तरह साधारण मनुष्य नहीं थे, वे भगवान के नित्यपार्षद थे—

गौड़-निकट आसिते नाहि मोर प्रयोजन।

तोमा-दुँहा देखिते, मोर इँहा आगमन।

एइ मोर मनेर कथा केह नाहि जाने।

सबे बले, केने आइला, रामकेलि-ग्रामे।

भाल हैल, दुइ भाई आइला मोर स्थाने।

घरे याह, भय किछु ना करिह मने॥

जन्मे जन्मे तुमि दुइ-किङ्कर आमार।

अचिराते कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥

एत बलि दुँहार शिरे धरिल दुइ हाते।

दुइ भाई धरि' प्रभुर पद निल माथे॥

(चै. च. म. 1/212-16)

[महाप्रभु जी अपने भाव में रूप-सनातन जी को कहते हैं कि गौड़ देश में आने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं था। आप दोनों को देखने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। यह मेरे मन की बात है जिसे दूसरा कोई नहीं जानता है। सब कहते हैं कि रामकेलि ग्राम में आप क्यों आये? बहुत अच्छा हुआ कि आप दोनों भाई मेरे पास आ गये। अच्छा अब आप घर जाओ, मन में किसी प्रकार का भय नहीं करना। तुम दोनों जन्म-जन्मान्तर से मेरे दास हो। श्रीकृष्ण शीघ्र ही आप दोनों का उद्धार करेंगे। इस प्रकार कहकर महाप्रभु जी ने अपने दोनों हाथ दोनों के सिर पर रख दिये और दोनों भाइयों ने महाप्रभु जी के चरण अपने शिर पर धारणकर लिये। अर्थात् अपने सिर उन्होंने महाप्रभु जी के चरणों में रख दिये।]

भक्तों की कृपा के द्वारा ही जीव का उद्धार होता है, जगतवासियों को यह शिक्षा देने के लिए, श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द, श्रीहरिदास, श्रीवास, श्रीगदाधर, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीमुरारी तथा श्रीवक्रेश्वर आदि भक्तवृन्द के द्वारा रूप-सनातन जी को आशीर्वाद दिलवाया। बातों-बातों में श्रीरूप गोस्वामी व श्रीसनातन गोस्वामी जी ने महाप्रभु जी से वृन्दावन जाने की परिपाटी के सम्बन्ध में कुछ कहा जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने वृन्दावन जाना स्थगित करके कानाई की नाटशाला से वापिस जाने का संकल्प कर लिया—

"याँहा सङ्गे चले एइ लोक लक्षकोटि।

वृन्दावन-जाइबार ए नहे परिपाटी *"॥ (चै. च. म. 1/224)

अर्थात-सनातन गोस्वामी जी ने कहा कि जिनके साथ लाख करोड़ मनुष्य चल रहे हों, वृन्दावन जाने की यह रीति नहीं है।

रूप-सनातन के द्वारा महाप्रभु जी जगत् को शिक्षा देंगे, उसका पहला प्रमाण ही है रामकेलि ग्राम में। श्रीमन्महाप्रभु जी का रूप-सनातन के साथ ये प्रथम साक्षात्कार था। श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा से रूप सनातन के हृदय में तीव्र वैराग्य पैदा हो गया और संसार त्याग करने का महाप्रभु जी का इशारा भी वे समझ गये। दोनों भाईयों ने विषय त्याग करने के तरीके के बारे में सोचकर बहुत सा धन देकर दो ब्राह्मणों से कृष्ण-मन्त्र का पुरश्चरण* करवाया।

श्रील रूप गोस्वामी राजकार्य से अवकाश ग्रहणकरके, अपने बड़े भाई श्रीसनातन गोस्वामी जी के लिए गौड़देश में एक करयाने की दुकान में दस हज़ार मुद्राएँ रखकर बाकी सारा धन लेकर नौका द्वारा वाकला चन्द्रद्वीप में आ गए। यहाँ आकर उन्होंने सारा धन ब्राह्मणों व वैष्णवों को बाँट दिया। मात्र एक चतुर्थ अंश कुटुम्ब के भरण पोषण के लिए व एक चौथाई हिस्सा आपात्कालीन समय के लिए एक विश्वासी ब्राह्मण के पास सुरक्षित रख दिया।

---

* पुरश्चरण-प्रातः, मध्यान्ह और सायं-इन तीनों समय में पूजा, नित्यजाप, नित्य तर्पण, नित्य होम और नित्य ब्राह्मण भोजन-इस पंचाग्ना को पुरश्चरण कहते हैं। मन्त्र-सिद्धि के लिए ही पुरश्चरण की व्यवस्था है। श्रीनाम महामन्त्र के साथ पुरश्चरण विधि की तुलना नहीं करनी चाहिए। एक बार नाम के उच्चारण के फलस्वरूप ही पूरे पुरश्चरण का फल मिल जाता है, इसके लिए हरिनाम के पुरश्चरण की कोई अपेक्षा नहीं होती।

महाप्रभु जी वन-पथ से कब वृन्दावन की यात्रा करेंगे, यह जानने के लिए उन्होंने दो दूतों को पुरुषोत्तम क्षेत्र में भेजा। इधर सनातन गोस्वामी जी ने भी बीमारी का बहाना बनाकर प्रधान मन्त्री का कार्य छोड़ दिया और विद्वानों को लेकर अपने घर में श्रीमद् भागवत की चर्चा करते रहते। बादशाह हुसैन शाह ने पहले अपने वैद्य को भेजकर व बाद में स्वयं जाकर सनातन जी को काफी समझाया और पुनः-पुनः उन्हें अपना पद संभालने के लिए कहा, परन्तु सनातन जी के कार्य करने की अनिच्छा को देखकर गुस्से से अथवा इस शंका से कि मेरे इधर-उधर जाने पर ये मेरा तख्ता पलट डाले, इसलिए उसने सनातन जी को कारागार में डाल दिया। स्वयं बादशाह को उड़ीसा की ओर युद्ध के लिए जाना था, सो वह सनातन जी को कारागार में डालकर युद्ध के लिए चला गया।

महाप्रभु जी वन-पथ से वृन्दावन यात्रा पर निकल पड़े हैं, यह समाचार आने पर ही रूप गोस्वामी जी ने घर छोड़कर अपने भाई अनुपम के साथ महाप्रभु जी से मिलने के अभिप्राय से यात्रा शुरु की श्रीरूप गोस्वामी जी ने पत्र के माध्यम से श्रीसनातन गोस्वामी जी को किसी भी प्रकार से मुक्त होकर वृन्दावन की ओर यात्रा करने का संकेत दिया।

श्रीरूप गोस्वामी जी प्रयाग में जा पहुँचे। क्योंकि महाप्रभु वहाँ पर हैं, यह मालूम हुआ था उन्हें एक दक्षिण भारतीय ब्राह्मण से। महाप्रभु जी के दर्शन करके प्रेमाविष्ट होकर दोनों ही गिर पड़े और दान्तों में तिनके लेकर, श्रीरूप और अनुपम ने अनेक श्लोक बोलकर तथा बड़ी दीनता पूर्वक महाप्रभु जी को बार बार दण्डवत् प्रणाम किया और उनके सन्मुख बैठे रहे। महाप्रभु जी भी प्रेमाविष्ट होकर बोले—

कृष्ण-करुणा किछु न जाय वर्णने।

विषय कूप हैते तोमा काढ़िल दुई जने॥

भगवान को अभक्त चतुर्वेदी ब्राह्मण की अपेक्षा, डोम कुलमें पैदा हुए भक्त प्यारे हैं। जिस प्रकार भगवान पूज्य हैं उसी प्रकार भक्त भी पूज्य हैं—इसी प्रकार की भक्त-महिमा सूचक श्लोकों को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु ने दोनों को आलिंगन किया और दोनों के मस्तक पर श्रीचरण कमल रखने की कृपा की। श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा प्राप्त कर के कृत-कृतार्थ हुए, दोनों ने हाथ जोड़कर महाप्रभुजी को प्रणाम किया—

"नमो महावदान्याय, कृष्णप्रेमप्रदाय ते।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी से, सनातन गोस्वामी जी के कारावास में बन्द होने का समाचार पाकर, ये भविष्य वाणी की कि श्रीसनातन गोस्वामी तुरन्त कारावास से मुक्त होकर तुम से मिलेंगे। दक्षिण भारतीय ब्राह्मण के निमन्त्रण पर श्रीरूप गोस्वामी और श्रीअनुपम गोस्वामी ने उसके घर जाकर महाप्रभु जी का शेष बचा हुआ प्रसाद खाया। यमुना पार आड़ाईल ग्राम में श्रीवल्लभ भट्ट के पास महाप्रभु जी के शुभागमन का समाचार पहुँचने पर उन्होंने दौड़कर महाप्रभु जी को दण्डवत् प्रणाम किया। महाप्रभु जी ने भी वल्लभ भट्ट को आलिंगन किया।

महाप्रभु जी के साथ कृष्ण-कथा की चर्चा में महाप्रभु जी की प्रेमाविष्ट अवस्था देखकर कर वल्लभ भट्ट विस्मित हो गये। वल्लभ भट्ट को देखकर श्रीरूप और अनुपम दोनों ने उनको दूर से प्रणाम किया। वल्लभ भट्ट ने उनको छूने की इच्छा की परन्तु दोनों भाई यह कह कर दूर हट गये कि वे पापी और अछूत हैं, उनको छूना उचित नहीं। रूप और अनुपम की दीनता देखकर महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हुए परन्तु भट्टजी को विस्मय हुआ। अतः महाप्रभु जी ने मुस्कराते हुए बल्लभ भट्ट को कहा—

आप तो वैदिक कुलीन ब्राह्मण हैं तथा उम्र में भी बड़े हैं जबकि ये रूप और अनुपम तो आपके स्पर्श के योग्य भी नहीं है, क्योंकि ये दोनों तो छोटी जाति के हैं।

वल्लभ भट्ट समझ गये कि महाप्रभु जी की इस बात में जरूर कुछ रहस्य है। जो सदा कृष्ण नाम करते हैं वे भला क्या अधम हो सकते हैं?

वल्लभ भट्ट ने महाप्रभु जी को भक्तों सहित अपने घर आने को आमन्त्रित किया। महाप्रभु जी भट्ट जी का निमन्त्रण स्वीकार करते हुए नाव में चढ़ उनके घर गये। वहाँ वे यमुना जी के जल का दर्शन करके प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगे जिससे सब सहम से गये। महाप्रभु जी के यमुना में छलांग लगा देने पर, सब ने मिल कर उन्हें पानी से निकाला और पुनः नौका में बिठा लिया। वल्लभ भट्ट ने महाप्रभु जी को अपने घर में लाकर उनके चरण कमल धोकर उनके चरणों की धोवन को अपने मस्तक पर धारण किया और अनेक प्रकार से उनकी पूजा की। वल्लभ भट्ट ने महाप्रभु जी को विविध प्रकार के तरीकों से भोजन करवाया।

महाप्रभु जी के बचे हुए प्रसाद से भट्ट जी ने श्रीरूप और अनुपम को तृप्त करवाया। उसके बाद मुख शुद्धि के लिए वल्लभ भट्ट ने महाप्रभु जी को कुछ दिया तथा महाप्रभु जी की सोने की व्यवस्था करके उनके पाँव दबाने आदि की सेवा करके कृत-कृतार्थ हुए। महाप्रभु जी के निर्देश से वल्लभ भट्ट ने भी भोजन किया और दोबारा महाप्रभु जी के पास आए ही थे कि तभी त्रिहुत देश के वैष्णव-पण्डित रघुनाथ उपाध्याय वहाँ उपस्थित हुए। रघुनाथ उपाध्याय से कृष्ण की महिमा वर्णन सूचक, उन द्वारा रचित अपूर्व श्लोक सुनकर महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो कर गिर पड़े। महाप्रभु जी के श्रेष्ठ रूप, श्रेष्ठ त्याग, श्रेष्ठ उम्र एवं श्रेष्ठ आराध्य के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उत्तर में, उपाध्याय के ये बोलने पर कि श्याम रूप ही सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है, मधुपुरी (मथुरा) ही श्रेष्ठ पुरी है, किशोर उम्र ही श्रेष्ठ उम्र है और श्रृंगार रस ही सर्वश्रेष्ठ रस है-महाप्रभु

जी ने बहुत प्रसन्न होकर उनका आलिंगन कर लिया। आड़ाइल ग्राम के निवासी महाप्रभु जी का दर्शन करके, श्रीकृष्ण भक्त हो गए। वल्लभ भट्ट महाप्रभु जी को नौका द्वारा गंगा के रास्ते से पुनः प्रयाग ले आए। लोगों की भीड़ जुड़ने के भय से श्रीमहाप्रभु जी ने प्रयाग के दशाश्वमेघ घाट के एकान्त स्थान में कृष्ण-तत्त्व, भक्ति-तत्त्वं, रस-तत्व, सर्व-तत्व और काल धर्म से लुप्त वृन्दावन की रस केलिवार्ता की चर्चा की व उनका रूप गोस्वामी जी में संचार किया। यही रूप शिक्षा नाम से प्रसिद्ध है। श्रीशिवानंद सेन के पुत्र कवि कर्णपूर ने तो अपने ग्रन्थ में महाप्रभु जी के साथ रूप गोस्वामी जी से मिलने की बात का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है—

कालेन वृन्दावन केलि वार्ता लुप्तेति ख्यापयितुं विशिष्य।

कृपामृते नाभिषेषेच देवस्तत्रैव रूपन्च सनातनन्च।

(चै. च. नाटक 9/38)

समय के प्रभाव से जो वृन्दावन क्रीड़ा वार्ता लुप्त हो गई थी, उसी लीला का प्रचार करवाने के लिए श्रीगौरांग देव जी ने कृपा करके श्रीरूप व श्रीसनातन को नियुक्त किया था।

प्रिय स्वरूपे, दयित स्वरूपे प्रेम स्वरूपे सहजाभिरूपे।

निजानुरूपे, प्रभु रेकरूये, ततान रूपे स्वविलास रूपे॥

(चि. च. नवम् अंक)

अपने प्रियस्वरूप, दयितस्वरूप, प्रेमस्वरूप, स्वाभाविक मनोज्ञ विशिष्ट मुख्यरूप तथा अपने अनुरूप,-इस प्रकार भगवान ने अपने विलास रूपों को श्रीरूप गोस्वामी में संचारित किया।

श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को श्रीस्वरूप दामोदर जी के हाथों में सौंप दिया था। इसी समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी स्वरूप दामोदर जी के साथ पुरुषोत्तम धाम में सोलह वर्ष रहे थे। श्रीमन् महाप्रभु व श्रील स्वरूप दामोदर जी द्वारा अन्तर्धान लीला करने पर रघुनाथ दास गोस्वामी उनके विरह से व्याकुल हो उठे। विरह व्याकुल अवस्था में ही वे वृन्दावन में श्रीरूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामी जी से मिले और मिलने पर उन्होंने श्रीरूप – सनातन जी को अपने दिल की बात बतायी कि वे गोवर्धन पर्वत के ऊपर चढ़कर वहाँ से छलांग लगा कर अपने देह को त्याग देंगे। रघुनाथ दास जी के हृदय के अभिप्राय को समझकर श्रीरूप गोस्वामी जी व श्रीसनातन गोस्वामी जी ने स्नेहपरवश होकर उन्हें काफी कुछ समझाया और अपने तीसरे भाई के रूप में अपने पास ही रख लिया। श्रीरूप गोस्वामी जी के साथ रघुनाथ दास जी की वृन्दावन में ये पहली मुलाकात थी।

षड़गोस्वामियों में से एक थे-श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी जब वाराणसी धाम में ठहरे हुए थे तो वे इन्हीं रघुनाथ जी के पिता श्रीतपन मिश्र के घर भोजन करते थे। उन्हीं दिनों रघुनाथ भट्ट जी को श्रीमन् महाप्रभु जी की जूठी थाली इत्यादि धोना व चरण दबाना इत्यादि सेवा मिली थी। रघुनाथ भट्ट जी जब बड़े हो गए तो एक बार वे नीलाचल गये। वहाँ जाकर वे श्रीमन् महाप्रभु जी के लिए नाना प्रकार के व्यन्जन बनाते थे व पूर्ण तृप्ति के साथ उन्हें (महाप्रभु जी को) भोजन करवाते थे। लगभग आठ मास उन्होंने महाप्रभु जी की ये सेवा की। एक दिन महाप्रभु जी ने रघुनाथ भट्ट जी को कहा कि अब तुम काशी जाओ व अपने वृद्ध पिता-माता की सेवा करो। महाप्रभु जी के निर्देशानुसार रघुनाथ भट्ट वापस घर चले आये और दत्तचित्त होकर पिता-माता की सेवा करने लगे। ऐसा करते-करते चार साल रघुनाथ भट्ट वहीं काशी में रहे। पिता-माता के अप्रकट होने के बाद रघुनाथ भट्ट जी घर छोड़कर पुनः महाप्रभु जी के पास नीलाचल

आ गये। महाप्रभु जी ने रघुनाथ भट्ट को वृन्दावन जाने का आदेश दिया तथा वहाँ वे श्रीरूप गोस्वामी जी के आनुगत्य में रहने लगे। श्रीरूप गोस्वामी जी की इच्छा से ही ये रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी, श्रीरूप गोस्वामी जी को श्रीमद् भागवत सुनाया करते थे—

"अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्षगण,

एक एक वृक्षेरे तले एक एक रात्रि शयन।

'विप्रगृहे' स्थूलभिक्षा, काँहा माधुकरी।

शुष्क रूटी-चाना चिबाय, भोग परिहरि॥

करोंया-मात्र हाते, काँथा, छिड़ा-बहिर्वास।

कृष्णकथा, कृष्णनाम, नर्तन-उल्लास॥

अष्टप्रहर कृष्णभजन, चारिदण्ड शयने।

नाम-सङ्कीर्तन-प्रेमे, सेह नहे कोन दिने।

कभु भक्तिरसशास्त्र करये लिखन।

चैतन्यकथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन॥ (चै. च. म. 19/127-131)

[अर्थात-रूप सनातन जी की दिनचर्या के बारे में कहते हैं कि वे दोनों बिना घर के रहते हैं, जंगल में जितने वृक्ष हैं, एक-एक वृक्ष के नीचे एक एक रात बिताते हैं। स्थूल भिक्षा किसी विप्र के घर में करते हैं तो कहीं माधुकरी करते हैं। कभी-2 तो सब भोगों को त्याग कर वे चने चबाते हैं और सूखी रोटी खाते हैं। हाथ में मिट्टी का करवा, कन्धे पर गुदड़ी तथा फटा हुआ वहिर्वास-ये ही उनका वेष था तथा हर समय कृष्ण कथा कहना, कृष्ण नाम करना और आनन्द के साथ नृत्य करना-इस प्रकार आठों पहर कृष्ण भजन करना ही उनका कार्य था, मात्र चार दण्ड शयन करते हैं, नाम संकीर्तन के प्रेम में वह भी कभी कभी नहीं करते। कभी भक्ति रस शास्त्र लिखते तो कभी श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की कथा सुनते और हमेशा श्रीचैतन्य महाप्रभु का चिन्तन करते रहते]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी के माध्यम से वृन्दावन की रस क्रीड़ा के सम्बन्ध में और ब्रज प्रेम की प्राप्ति के साधन-विषय की शिक्षा प्रदान की थी –

सनातन कृपाय पाइनु भक्ति सिध्दान्त।

श्रीरूप-कृपाय पाइनु भक्ति रस प्रान्त॥

(चै. च. च. 5/103)

श्रीरुप द्वारा ब्रजेर रस प्रेम लीला।

के कहिते पारे गम्भीर चैतन्येर खेला॥

(चै. च. आ. 5/87)

वृन्दावनीयां रसकेलिवार्तां

कालेन लुप्तं निजशक्तिमुत्कः॥

संञ्चार्य रूपे व्यतनोत् पुनः स

प्रभुर्विधौ प्रागिव लोकसृष्टिम्॥

(चै. व. म 19/1)

सृष्टि के पूर्व में बह्मा जी के हृदय में भगवान द्वारा जिस प्रकार-अभिधेय व प्रयोजनात्मक भगवत्तत्त्व की प्रेरणा की गयी थी, उसी प्रकार भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी द्वारा रूपगोस्वामी जी पर प्रसन्न होकर व अति उत्सुक होकर अपनी शक्ति संचरणपूर्वक काल धर्म में लुप्त वृन्दावन की रसक्रीड़ा वार्ता का उनमें विस्तार किया गया।

'भक्ति –रसामृत-सिंधु' नामक ग्रन्थ के लिखने के लिए श्रीरूपगोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु जी का प्रत्यक्ष निर्देश प्रयाग में ही प्राप्त किया था। भक्ति रसामृत सिन्धु' के पूर्व विभाग के श्लोक 1-2 में श्रील रूप गोस्वामी ने यह व्यक्त किया है –

हृदिर्यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि।

तस्य हरेः पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥

हृदय में जिनकी प्रेरणा द्वारा सामान्य कंगाल रूपी मैं, भक्ति ग्रन्थ की रचना करने में प्रवृत हआ हूँ, उन्हीं चैतन्य देव श्रीहरि के चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ।

षड़गोस्वामियों की चर्चा करते हुए, भक्ति शास्रों को लिखना व पढ़ना रूपी भक्ति-अंगों के साधन के सम्बन्ध में प्रभुपाद श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने जो शिक्षा प्रदान की है वह विशेष ध्यान देने योग्य है। यथा- इस प्रकार वैराग्य से परिपूर्ण जीवन में कभी वे (षड़गोस्वामी) भक्ति रस शास्र लिखकर कृष्ण भजन करते तो कभी नाम संकीर्तन करते, तो किसी समय गौरलीला स्मरण-मनन के द्वारा कृष्ण भजन करते। प्राकृत सहजियाओं में ऐसा विश्वास बड़ा प्रबल है कि भक्ति शास्र लिखना व पढ़ना परित्याग करके अपने आपको मूर्ख बनाने के लिए शास्रादि की चर्चा से छुट्टी ले लेना ही भक्ति का साधन है। परन्तु श्रीरूपानुग भक्तों की इस प्रकार की फालतू बातों में कोई आस्था नहीं है। हाँ, साधकों का शास्र लिखना या पढ़ना आदि रुपया कमाने, जड़ेन्द्रिय तर्पण करने, जड़ी मान-सम्मान या पूजा लाभ अथवा अन्य किसी तुच्छ दुनियावी उद्देश्य के लिए है तो वह गलत है व उसे तो भक्ति लता के साथ उपजी उपशाखा ही कहा जाएगा। इस प्रकार के भ्रष्टाचार-परायण व्यक्ति का कभी भी मंगल नहीं होगा। वास्तविक श्रीमद् रूपानुग भक्तों में इस प्रकार के तुच्छ फलों को प्राप्त करने की कर्मवासना नहीं होती।

(श्रील प्रभुपाद जी के अनुभाष्य से)

श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रील रूप गोस्वामी जी के माध्यम से भक्ति रस के लक्षण वर्णन करते हुए अपार भक्ति रस सिन्धु की बूंद का आस्वादन कराने की शिक्षा प्रदान करते हुए सूत्र रूप में कृष्ण भक्ति की सुदुर्लभता का प्रतिपादन किया है।

जीव अणुचैतन्य स्वरूप है। अनन्त जीव दो प्रकार के होते हैं-स्थावर और जंगम।

जंगम प्राणी उन्हें कहते हैं जो चल फिर सकते हों। ये तीन प्रकार के होते हैं-खेचर (आकाश में उड़ने वाले प्राणी), जलचर (पानी में रहने वाले प्राणी), स्थलचर (भूमि पर विचरण करने वाले प्राणी।)

स्थलचरों में सबसे कम संख्या होती है मनुष्यों की। मनुष्यों में भी जो वेद को नहीं मानते ऐसे (यथा-म्लेच्छ, पुलिन्द, बौद्ध व शबरादि) लोगों को छोड़ देने से मनुष्यों की संख्या और कम हो जाती है। फिर वेद मानने वालों में भी दो प्रकार देखे जाते हैं –

1. धर्माचारी 2. अधर्माचारी। धर्माचारियों में भी अधिकांश संख्या होती हैं कर्मनिष्ठों की। करोड़ कर्मनिष्ठों में एक ज्ञानी होता है तथा करोड़ ज्ञानियों में से कोई एक मुक्त होता है और करोड़ मुक्तों में से दुर्लभ कोई एक कृष्ण भक्त होता है। भक्ति को उत्पन्न करवाने में उपयोगी सुकृति रूपी भाग्योदय ही जीवों को सुदुर्लभ कृष्ण भक्ति प्राप्त करवाता है। इसके अलावा गुरु और श्रीकृष्ण की कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती है। अनुरागमयी शुद्धभक्ति का आश्रय-स्थल ब्रह्माण्ड, विरजा व ब्रह्मलोक में तो है ही नहीं, यहाँ तक कि वैकुण्ठ में भी भक्ति लता का सम्पूर्ण आश्रय स्थल नहीं है। वृन्दावन में श्रीकृष्ण चरण रूपी कल्पवृक्ष ही रागमयी भक्ति का परिपूर्णाश्रय स्थल है। श्रील कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत में ये विषय बड़े सुन्दर रूप से वर्णित हुआ है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।

गुरु-कृष्ण-प्रसाद पाय भक्तिलता-बीज॥

माली हञा करे सेइ बीज आरोपण।

श्रवण-कीर्त्तन – जले करये सेचन॥

उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि' जाय।

'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि' 'परव्योम' पाय॥

तबे जाय तदुपरि 'गोलोक-वृन्दावन'।

'कृष्णचरण'-कल्पवृक्ष करे आरोहण॥

ताँहा विस्तारित हञा फले प्रेम-फल।

इँहा माली सेचे नित्य श्रवण-कीर्तनादि-जल॥

यदि वैष्णव-अपराध उठे हाती माता।

उपाड़े व छिण्डे, तार शुखि य पाता॥

ताते माली यत्न करि' करे आवरण।

अपराध-हस्तीर येछे ना हय उदगम॥

किन्तु यदि लतार सङ्गे' उठे 'उपशाखा'।

भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा, जत असंख्य तार लेखा॥

'निषिधाचार', 'कुटिनाटी', 'जीवहिंसन'।

'लाभ', 'पूजा', 'प्रतिष्ठा' यत उपशाखा गण॥

सेइ जल पाञा उपशाखा बाड़ि' जाय।

स्तब्ध हञा मूलशाखा बाड़िते ना पाय॥

प्रथमेइ उपशाखार करये छेदन।

तबे मूलशाखा बाड़ि' जाय वृन्दावन॥ (चै.च.म. 19/151-161)

[अर्थात ब्रह्माण्ड में घूमते-घूमते कोई भाग्यशाली जीव श्रीगुरु व श्रीकृष्ण की कृपा से भक्ति लता का बीज प्राप्त करता है। माली बनकर वह इस बीज को लगाता है और श्रवण –कीर्तन रूपी जल से इसको सींचता है। तब लता उत्पन्न होकर और बढ़कर ब्रह्माण्ड को भेदकर, विरजा व ब्रह्मलोक ही नहीं, अपितु परव्योम को प्राप्त कर जाती है तथा फिर उससे भी ऊपर गोलोक वृन्दावन में पहुँच जाती है और वहाँ श्रीकृष्ण के चरण, जो कल्पवृक्ष के समान हैं, उन पर आरोहण करती है। वहाँ फैल कर इसमें प्रेमरूपी फल लगता है और इधर माली नित्य प्रति श्रवण-कीर्तन आदि जल से सींचता रहता है। परन्तु हाँ, यदि वैष्णव अपराध हो जाए तो वह अपराधरूपी मत्त हाथी की भांति भक्ति-रूपी बेल को उखाड़ फेंकता है और उसके पत्ते सूख जाते हैं। इस लिए माली बड़े यत्न के साथ लता के चारों ओर ऐसी बाड़ लगा देता है ताकि अपराध रूपी हाथी न आ सके। इसके अतिरिक्त यदि भक्ति लता के साथ-साथ भोगों की इच्छा तथा मुक्ति की इच्छा और इसी प्रकार की असंख्य वासनाओं रूपी घास-फूस (अर्थात निषिद्ध आचार, कपटता व जीव-हिंसा, लाभ-पूजा, प्रतिष्ठा आदि उपशाखाओं रूपी खरपतवार-श्रवण कीर्तन रूप जल सिंचन से बढ़ जायेगी तो मूल शाखा का बढ़ना बन्द हो जाएगा और वह बढ़ने नहीं पायेगी। इस लिए आरम्भ में ही उपशाखाओं को उखाड़ फेंकना चाहिए। तभी मूलशाखा बढ़कर वृन्दावन जायेगी।।]

श्रील प्रभुपाद जी ने उपरोक्त महत्त्वपूर्ण विषय को अपने अनुभाष्य में व्याख्या करके इस प्रकार समझाया है कि श्रवण-कीर्तन आदि जल सिंचन के प्रभाव से उपशाखाएँ मजबूत होती जाती हैं व बढ़ती जाती हैं, जिससे मूल लता बढ़ नहीं पाती। वह अपनी जगह रुक जाती है। अपराधरहित होकर अर्थात् दुःसंग परित्याग न करते हुए अपराधों के साथ अनुष्ठान करते-करते जीव भोग-परायण, बन्धन-मोचनाकांक्षी, सिद्धि लोभी, कपटाश्रित, अवैध स्त्री-लम्पट, झूठी भक्ति करनेवाला या प्राकृत सहजियावाद का परिपोषणकारी, शौक्र-वंश की मर्यादा के छलावे से पारमार्थिक मर्यादा में आग्रह दिखाने वाला, परीक्षित महाराज द्वारा कलि को दिये गये पाँच स्थानों पर रहने वाला, वैष्णवों में जाति बुद्धिकारी, हरिनाम-मन्त्र, विग्रह व भागवत से अपनी जीविका चलाने वाला, अशुल्क वृति द्वारा धन-संग्रह में तत्पर, निर्जन भजनान्दी कहलवाकर प्रतिष्ठाकांक्षी, चिद् व जड़ से समन्वयवाद को पोषण के द्वारा यश प्राप्त करने का इच्छुक अथवा ठग गुरुओं

का दास बनकर विष्णु-वैष्णवों का विरोधी, अदैव वर्णाश्रम के अधीन व उसका पोषण करनेवाला बन जाता है। अर्थात् अपनी इन्द्रियों के तर्पण में प्रमत्त होकर वह शुद्धभक्ति को छोड़कर अन्यान्य नाशवान वस्तुओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से सीधे-सादे लोगों की वन्चना करते हुए दुनियाँ में धार्मिक साधु या महापुरुष कहलाकर अपना परिचय देता है। ऐसा होने से वास्तविक हरिसेवा नहीं हो सकती। यदि पहले कही गयी उपशाखाओं के अंकुरित होते ही सावधानी से उन्हें तुरन्त जड़ से उखाड़ फेंका जाये, तब तो मूल भक्ति लता बढ़ सकती है और बढ़ते-बढ़ते उस लता में अप्राकृत प्रेम रूप फल फलित होने लगेंगे; अन्यथा उप शाखाओं की प्रबलता हरि भजन से साधकों को हमेशा के लिए हटा देगी, अर्थात तब तुम्हें स्वर्गादि उच्चलोक, मर्त्यलोक में अथवा नरक लोक में क्लेश ही मिलेंगे।

रतिभेद से कृष्ण-भक्ति रस पाँच प्रकार के होते हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य व मधुर। इनके अतिरिक्त गौण रस भी सात प्रकार के होते हैं हास्य, अद्‌भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स तथा भय।

पंच रस 'स्थायी' व्यापी रहे भक्तमने।

सप्तगौण "आगन्तुक" पाइये कारण।

पहले कहे हुए पाँच मुख्य रस ही स्थायी भाव से भक्तों के हृदय में रहते है। जबकि हास्य-अद्‌भुत इत्यादि गौण रस, कोई कारण उपस्थित होने से आगन्तुक भाव से भक्तों के हृदय में उदित होकर मुख्य रस को ही पुष्ट करके निवृत्त हो जाते हैं। श्रीरूप शिक्षा में श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी ने पाँच मुख्य रसों में मधुर रस को ही सर्वश्रेष्ठ रूप से स्थापित किया। शान्त रस के भक्त की कृष्ण-निष्ठा व तृष्णा-त्याग, दास्य रस के भक्त में शान्त रस के भक्तों के गुणों के अतिरिक्त सेवा भाव भी होता है, जबकि सख्य रस के भक्त की विश्रम्भ (असंकोच) सेवा और जुड़ जाती है। वात्सल्य रस के भक्त द्वारा पालन तथा मधुर रस के भक्त का अपने अंगों से सेवा, क्रमश: गुणाधिक्य के रूप में विराजमान रहता है। (कहने का तात्पर्य शान्त रस के भक्त का मुख्य लक्षण होता है कृष्ण निष्ठा व सांसारिक तृष्णाओं का त्याग का भाव जबकि दास्य रस में शान्त रस के भक्त के जो लक्षण हैं वे तो होते ही हैं, साथ ही दास्य रस का जो अतिरिक्त सेवा भाव है वह भी जुड़ जाता है, इसी प्रकार वात्सल्य—इसमें शान्त, दास्य के सभी गुण, साथ में वात्सल्य रस का पालन भाव भी जुड़ जाता है। इसी प्रकार मधुर रस के शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य के सभी गुणों के साथ-साथ मधुर रस का अपना गुण जो निजांगों द्वारा सेवा, वह भी जुड़ जाता है। इस प्रकार मधुर रस में शान्त, दास्य, सख्य व वात्सल्य के सभी गुणों के साथ-साथ मधुर रस का अपना गुण भी विद्यमान रहता है। ठीक उसी प्रकार जैसे-मिट्टी में आकाश आदि के सारे गुणों की स्थिति रहती है, मधुर रस में सब रसों की मौजूदगी रहती है। इसी कारण मधुर रस का श्रेष्ठत्त्व है।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने प्रयाग में दस दिन रहकर श्रीरूप गोस्वामी को शिक्षा प्रदान करके, प्रयाग से नीलाचल जाने के लिए तैयारी की, जिस पर श्रीरूप गोस्वामी जी भी श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ जाने के लिए व्याकुल हो गये किन्तु श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रील रूप गोस्वामी जी को वृन्दावन जाने और वृन्दावन से वापिसी के समय गौड़देश होकर नीलाचल में उनके साथ मिलने का आदेश दिया।

श्रील रूप गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा का पालन करने के लिए, प्रयाग से वृन्दावन जाकर एक मास निवास किया था। बाद में श्रील सनातन गोस्वामी के साथ मिलने की आकांक्षा से, उनकी खोज में वे गंगा के रास्ते से प्रयाग में आए किन्तु तब श्रील सनातन गोस्वामी काशी से प्रयाग आकर राजपथ से मथुरा की यात्रा के लिए निकल पड़े थे, जिस कारण उनके साथ श्रीरूप और अनुपम का मिलन न हो सका। सनातन गोस्वामी जी को मथुरा में आकर सुबुद्धि राय से श्रील रूप और अनुपम के सारे हाल का पता चला। श्रील रूप गोस्वामी अनुपम के साथ गंगा किनारे के रास्ते से गौड़देश

में आ पहुँचे जहाँ गंगा किनारे श्रीअनुपम को श्रीरामचन्द्र जी के धाम की प्राप्ति हुई। वृन्दावन में रहने के समय ही श्रील रूप गोस्वामी ने स्वरचित नाटक चन्द्रिका अर्थात कृष्ण लीला नाटक के नान्दी श्लोकों की रचना की थी*।

अनुपम की गंगा प्राप्ति के कारण श्रीरूप गोस्वामी का गौड़देश के गौड़ीय वैष्णवों के साथ पुरी जाने का सुयोग न हुआ और इसी कारण उनके पुरी में पहुँचने में बहुत देरी भी हो गई थी। गौड़देश से पुरी आते समय उन्होंने उड़ीसा के सत्यभामापुर में एक रात निवास किया था। उस सत्यभामापुर ग्राम में ही उन्हें अपने सत्यभामा नाटक को अलग से लिखने के लिए आदेश हुआ था—

स्वप्न देखि' रूप-गोसाञि करिला विचार।

सत्यभामार आज्ञा-पृथक् नाटक करिबार॥

व्रज-पुर-लीला एकत्र कैराछि घटना।

दुइ भाग करि' एबे करिमु रचना॥

(चै. च. अ. 1/43-44)

[अर्थात स्वप्न देखकर श्रीरूप गोस्वामी जी ने विचार किया कि सत्यभामा, की आज्ञा है—उनके नाटक को अलग से लिखने की। इस लिए ब्रज की और द्वारका की लीलाओं को इकट्ठा लिखने की बजाए अब मैं इनको दो भागों में कर दूँगा।]

श्रील रूप गोस्वामी पुरी में पहुँच कर दीनता से जगन्नाथ मन्दिर में जगन्नाथ जी के दर्शन करने के लिए, यहाँ तक कि काशी मिश्र के भवन में महाप्रभु जी के साथ मिलने भी नहीं गये। यद्यपि इनके जगन्नाथ मन्दिर में और मिश्र –भवन में जाने के लिए कोई रुकावट नहीं थी फिर भी क्योंकि उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें पैदा होकर भी, म्लेच्छ के अधीन

---

*ग्रन्थ के आरम्भ में, आशीर्वचन, नमस्कार व वस्तुनिर्देश आदि के श्लोकों को नान्दी श्लोक कहा जाता है।

नौकरी की थी, अतः म्लेच्छ बोध भाव से वे वहाँ नहीं गए। वे सिद्ध बकुल में हरिदास ठाकुर के साथ रहने लगे। श्रीमन् महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी को सर्वोत्तम अधिकारी जानते हुए भी रूप गोस्वामी जी द्वारा जगतवासियों को भक्ति में अनुकूल दीनता की शिक्षा दिलाने के लिए, रूप गोस्वामी जी को जगन्नाथ मन्दिर में जाने का आदेश नहीं किया—

हरिदास द्वारे सहिष्णुता जानाइल।

सनातन-रूप द्वारे दैन्य प्रकाशिल॥ (भक्ति रत्नाकर 1/631)

[अर्थात—श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी के द्वारा सहिष्णुता का मार्ग दिखाया तथा श्रीरूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामी जी के द्वारा दीनता को प्रकाशित किया।]

एक दिन अचानक श्रीमन् महाप्रभु जी श्रीरूप गोस्वामी जी को मिलने हरिदास ठाकुर जी के स्थान पर पधारे। वहाँ रूप गोस्वामी के दैन्य रस के शुद्ध प्रेम से आकर्षित होकर, महाप्रभुजी ने उन का आलिंगन किया। हरिदास ठाकुर और रूप गोस्वामी के साथ बैठ कर श्रीमन्महाप्रभु ने सबसे पहले उनकी कुशल क्षेम पूछी तथा उसके बाद श्रीसनातन आदि के बारे में बातचीत की और इष्ट गोष्ठी भी कुछ समय तक की। उसके बाद एक दिन जब महाप्रभु जी सब भक्तों को लेकर वहाँ आए तो रूप गोस्वामी जी ने सभी भक्तों के चरणों की वन्दना की। श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्नेह से सराबोर होकर श्रीअद्वैत प्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के द्वारा उनको आशीर्वाद दिलवाया। श्रील रूप गोस्वामी महाप्रभु जी के निजी सेवक गोविन्द जी के माध्यम से प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु जी का अवशेष प्रसाद पाकर कृत-कृतार्थ होते थे।

कृष्णेर बाहिर नाइ करिह व्रज हैते।

व्रज छाड़ि कृष्ण कभु ना यान काहाते॥

[श्रीकृष्ण को व्रज से बाहर न ले जाना क्योंकि कृष्ण व्रज छोड़कर कभी भी कहीं नहीं जाते।]

श्रीमन्महाप्रभु जी से इस प्रकार निर्देश प्राप्त होने पर रूप गोस्वामी जी की विदग्ध माधव नामक रचना का मूल सूत्रपात हुआ। श्रीमन्महाप्रभु जी और श्रीसत्यभामा देवी की इच्छा जानकर श्रील रूप गोस्वामी जी ने ललित माधव और विदग्ध माधव-इन दो अलग नाटकों की रचना की। श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से श्रील रूपगोस्वामी महाप्रभु के हृदय के गूढ़ भावों से अवगत हो गए थे। रथ यात्रा के समय श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के लिए रथ के आगे श्रीमन्महाप्रभु जी ने राधा भाव से विभावित हो कर काव्य प्रकाश के एक सामान्य श्लोक का उच्चारण करके प्रेमाविष्ट होकर नृत्य किया था। उस श्लोक का गूढ़ अर्थ समझना स्वरूप दामोदर के अलावा सब के लिए कठिन था किन्तु श्रील रूपगोस्वामी ने एक स्वरचित श्लोक* में उसका गूढ़ अर्थ सुमधुर भाषा में एक ताल पत्र में लिख लिया। वे उस तालपत्र को छप्पर में खोंसकर

---

*प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचारि कुरुक्षेत्र मिलित –

स्थाहं सा राधा तदिदमुभयोः संगम् मुखम्।

तथाप्यतः खेलन्मधुर मुरली पंच मंजूषे,

मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृहयति (पद्यावली में श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित श्लोक।)

समुद्र स्नान करने के लिए चले गए। उनकी इस अनुपस्थिति में श्रीमन्महाप्रभु जी ने छप्पर में खोसा हुआ वह ताल पत्र खोल कर पढ़ा और आश्चर्य चकित हो गए।

श्रील रूप गोस्वामी के स्नान करके वापिस आने पर श्रीमन्महाप्रभु ने कहा-"हमारे हृदय के गूढ़ अर्थ को तुमने कैसे समझ लिया"-इतना कहने के साथ-साथ महाप्रभु जी ने बड़े प्यार से श्रीरूप गोस्वामी जी के गालों को थपथपाया तथा मुस्कराते हुए उन का दृढ़ आलिंगन कर लिया—

सेई श्लोक लञा प्रभु स्वरूपे देखाइला।

स्वरूपेर परीक्षा लागि' ताँहारे पुछिला॥

"मोर अन्तर-वार्ता रूप जानिल केमने?"

स्वरूप कहे,-जानि, कृपा कैराछ आपने॥ (चै. च. अ. 1/85-86)

[वह श्लोक लेकर महाप्रभु जी ने श्रीस्वरूप को दिखाया और उनकी परीक्षा के लिए उनसे पूछा कि मेरे हृदय की बात श्रीरूप ने किस प्रकार जान ली? तब स्वरूप जी ने उत्तर दिया कि मैंने जान लिया है कि श्रीरूप पर आपकी कृपा हो गयी है।]

एक दिन श्रील रूप गोस्वामी जी विदग्ध माधव नाटक की रचना कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने श्रीरूप गोस्वामी जी के मोतियों जैसे लेख की बहुत तारीफ की। वे ताल पत्र पर लिखे श्रीकृष्ण नाम की महिमा सूचक अपूर्व श्लोक* को पढ़कर, प्रेम विभोर हो गए।

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, रूप गोस्वामी द्वारा रचे श्लोक में श्रीकृष्ण नाम की अत्यद्भुत महिमा सुनकर परमोल्लास से नाचने लगे—

कृष्ण नामेर महिमा शास्त्र साधुमुखे जानि।

नामेर माधुरी ऐछे, काहा नाहि शुनि॥

अर्थात कृष्ण नाम की महिमा शास्त्रों से व साधुओं से सुनी जाती है, हरिनाम की जिस प्रकार मधुरिमा इस श्लोक में है, उस प्रकार की मधुरिमा कहीं भी नहीं सुनी जाती। श्रीमन्महाप्रभु, स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द व

---

*तुण्डे ताण्डविनीरतिं वितनुते तुण्डावली लब्धये।

कर्ण क्रोड़कड़म्बिनी घटयते कर्णार्बुद्धेभ्यस्पृहाम्।

चेतः प्रांगण संगिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं

न जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णतिषैवर्णद्वयी॥ (विदग्धमाधव)

"कृष्ण" ये दो वर्ण कितने अमृत के साथ उत्पन्न हुए है, मैं नहीं जानता हूँ। देखो जब नटी की तरह वे मुख में नृत्य करते हैं, तब बहुत मुख प्राप्त करने के अनुराग को बढ़ाते हैं अर्थात प्रबल इच्छा होती है कि मेरे बहुत से मुख हों। जब कर्ण कुहरों में ये कृष्ण ध्वनि प्रवेश करती है तो अरबों कानों के लिए आकांक्षा पैदा करती है। जब दिल के आंगन में ये कृष्णनाम संगिनी के रूप में उदित होता है तो ये सब इन्द्रियों की सभी क्रियाओं को जीत लेता है।

सार्वभौम भट्टाचार्य आदि भक्तों को लेकर रूप गोस्वामी जी के पास गये तो रूप गोस्वामी द्वारा रचित "प्रियः सोऽयं" श्लोक का पाठ करके स्वरूप दामोदर जी ने सब को सुनाया। "महाप्रभु जी की कृपा के फल से ही ब्रह्मा के लिए दुर्बोध्य सिद्धान्त रूप गोस्वामी जी के हृदयंगम् हो गया है"—ऐसा कह कर राय रामानन्द व सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपना मत प्रकट किया।

श्रीमन्महाप्रभु के निर्देशानुसार श्रील रूप गोस्वामी ने कृष्ण नाम की महिमा से भरपूर श्लोक 'तुण्डे ताण्डविनी ' का पाठ किया, जिस से भक्त लोग आनन्दित व विस्मित हो गए। सब बोले कि नाम की अपार महिमा सुनी है पर ऐसा मधुर वर्णन किसी और ने नहीं किया। राय रामानन्द जी विदग्ध माधव और ललित माधव की विषय वस्तु के सम्बन्ध में श्रीरूप गोस्वामी जी से चर्चा करके विस्मित हो गए। राय रामानन्द जी ने रूप गोस्वामी जी से इष्टदेव के सम्बन्ध में वर्णन सुनने की इच्छा प्रकट की तो रूप गोस्वामी जी ने पहिले महाप्रभु जी के सामने व्याख्या करने में संकोच दिखाया परन्तु

महाप्रभु जी द्वारा बार बार निर्देश देने पर, पाठ करके सुनाया। महाप्रभु जी ने यह अधिक स्तुति है कहकर बाहर से असन्तोष प्रकट किया था किन्तु भगवद्-भक्त लोग श्लोक सुनकर आनन्द सागर में डूब गए। रूप गोस्वामी जी ने दो श्लोक बोले वे विदग्ध माधव के प्रथम अंक के मंगलाचरण के निम्न दो श्लोक* थे।

श्रील रूप गोस्वामी की अप्राकृत प्रेम रस से भरी कविता सुनकर राय रामानन्द जी अपने हज़ारों मुखों से उस की प्रशंसा करने लगे—

एत शुनि' राय कहे प्रभुर चरणे।

रूपेर कवित्व प्रशंसि' सहस्र-वदने।

कवित्व का हय एइ अमृतेर धार।

नाटक-लक्षण सब सिद्धान्तेर सार।

प्रेम परिपाटी एइ अद्‌भुत वर्णन।

शुनि' चित्त-कर्णेर हय आनन्द-घूर्णन॥

(चै. च. अ. 1/192-94)

*** अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ।**

समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्॥

हरिः पुरटसुन्दरद्‌युति कदम्ब सन्दीपितः।

सदा हृदय कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥

स्वर्णकान्ति समूह द्वारा दीप्तमान शचीनन्दन हरि तुम्हारे हृदय में स्फूर्तिलाभ करें। इस संसार को एक लम्बे समय से जिस सर्वोत्कृष्ट उज्जवल रस को नहीं दिया था, उसी अपनी भक्ति रूपी सम्पति का दान करने के लिए ही वे कलिकाल में अवतरित हुए हैं॥

[यह सुनकर श्रीराय रामानन्द जी श्रीमन् महाप्रभु के चरणों में श्रीरूप गोस्वामी जी के कवित्त्व की हज़ारों मुखों से प्रशंसा करते हैं व कहते हैं कि यह कवित्त्व नहीं है, यह तो अमृत की धारा है। इस में नाटक के सभी लक्षण हैं तथा ये सिद्धान्तों का सार है। इस में प्रेम की रीति का अदभुत वर्णन है। इसे सुनकर चित्त को तथा कानों को अति आनन्द मिलता है।]

कालिदास के काव्य की महिमा तब तक ही थी, जब तक रूप गोस्वामी आप्राकृत रस-युक्त काव्य का प्रकाश नहीं हुआ था।

श्रीमन्महाप्रभु जी के निर्देशानुसार पहले सनातन गोस्वामी जी पुरी से झाड़ीखण्ड के रास्ते से वृन्दावन में आ पहुँचे। सनातन गोस्वामी जी के वृन्दावन पहुँचने के लगभग एक वर्ष बाद वे श्रीरूप गोस्वामी जी को मिले क्योंकि तब वे गौड़ देश गये हुए थे। ज़मीन-जायदाद और संचित धनादि—अपने परिवार में व ब्राह्मणों को और मन्दिरों में ठीक प्रकार से बाँटने के लिए ही श्रीरूप गोस्वामी जी वापस गौड़ देश में आए थे। वृन्दावन में श्रील रूप गोस्वामी जी ने श्रीगोविन्द जी की सेवा और श्रील सनातन गोस्वामी जी ने मदनमोहन जी की सेवा का प्रकाश किया था।

श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्रीगोविन्द देव जी के प्रकट होने की कथा इस प्रकार लिखी है –

श्रीमन्महाप्रभु जी के चार निर्देशों-"लुप्त तीर्थों का उद्धार, श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश, शुद्धभक्ति शास्त्रों का प्रचार तथा नाम-प्रेम का प्रचार," का श्रीरूप गोस्वामी ने यथायोग्य पालन किया था। श्रीव्रजेन्द्र नन्दन श्रीगोविन्द जी के विग्रह का सेवा प्रकाश किस प्रकार होगा, इस चिन्ता में श्रीरूप गोस्वामी श्रीव्रजमण्डल में श्रीगोविन्द देव जी की खोज के लिए, गाँव-गाँव और वन- वन में फिरे थे। योग पीठ में, भगवान की मौजूदगी शास्त्र में लिखी है। ब्रज वासियों के घर-घर में खोजने पर भी कहीं भी गोविन्द देव का दर्शन न पाकर, धैर्य खोकर एक दिन वे यमुना के किनारे विरह से व्याकुल हृदय से बैठे थे कि ऐसे समय में व्रजवासी का रूप धारणकर के एक व्यक्ति उनके निकट आ उपस्थित हुआ। उस व्रजवासी ने बहुत मीठी वाणी में रूप गोस्वामी के दुःख का कारण पूछा। रूप गोस्वामी जी ने उनके रूप और वचनों से आकृष्ट होकर हृदय की सारी बात उसके आगे निवेदन कर दी। व्रजवासी रूप गोस्वामी जी को सान्त्वना देकर बोले- चिन्ता का कोई कारण नहीं। वृन्दावन के गोमाटीला नामक योग पीठ में गोविन्द देव गुप्त रूप से रहते हैं। एक सुलक्षणा गाय प्रतिदिन पूर्वाह्न के समय, उल्लास से भर कर वहाँ दूध देती है"—यह बात कह कर व्रजवासी अन्तर्धान हो गया।

कृष्ण आए थे, मैं पहचान न पाया"- यह सोच कर रूप गोस्वामी जी मूर्च्छित हो गए। अन्ततः श्रील रूप गोस्वामी जी ने किसी प्रकार विरह दुःख का संवरण करके व्रजवासियों को गोविन्द देव जी के प्रकट होने के स्थान की बात बताई। व्रजवासियों ने परम उल्लास के साथ गोमाटीला की भूमि की खुदाई की, और वहाँ से करोड़ों कामदेवों को मोहित करने वाले व्रजेन्द्र नन्दन श्रीगोविन्द देव जी का आविर्भाव हुआ। कहा जाता है कि श्रीगोविन्द देव जी के श्रीविग्रह को श्रीकृष्ण के पोते व्रजनाभ जी ने प्रकट किया था। गोमाटीला में गोविन्द देव जी के पुनः प्रकट होने पर पहले पर्णकुटि (पत्तों की झोंपड़ी) में उनकी सेवा होती थी। बाद में श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्यों ने गोविन्द देव जी के मन्दिर और बरामदे आदि का निर्माण किया था। सन् 1590 में अम्बरा के राजा मान सिंह ने लाल पत्थर से मन्दिर का संस्कार करवा कर अद्भुत शिल्पकर्म से चित्रित मन्दिर बनवाया। यह हिन्दु-स्थापत्य का एक अतुलनीय नमूना है। ग्रोज साहिब ने 'मथुरा' नामक ग्रन्थ में गोविन्द जी के मन्दिर के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है –

The temple of Govinda Dev is not only the finest of this particular series, but is the most impressive religious edifice that Hindu art has ever produced at best in upper India.

सात मन्ज़िलों वाला मन्दिर इतना ऊँचा था कि औरंगज़ेब ने आगरे से इस का शिखर (चूड़ा) देखकर, उस की कई मन्ज़िलें तुड़वा दी थीं। गोविन्द देव जी के मूल विग्रह म्लेच्छों के डर से उठाकर पहले भरतपुर में और बाद में जयपुर में ले जाए गये। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा रचित ग्रंथों में से निम्न 15 विशेष ग्रन्थों के नाम भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में लिखे गए हैं-

श्रीहंस दूत काव्य, श्रीमदुद्धव सन्देश, श्रीकृष्ण जन्म तिथि की विधि, वृहद्गणोद्देशदीपिका, लघुगणोद्देशदीपिका, श्रीकृष्ण और उनके प्रियगणों की मनोहर स्तव माला, प्रसिद्ध विदग्ध माधव व ललित माधव नाटक, दान लीला कौमुदी, भक्ति रसामृत सिन्धु, उज्जवलनीलमणि, प्रयुक्ताख्यात् चन्द्रिका, मथुरा महिमा, पद्यावली, नाटक चन्द्रिका, लघु

भागवतामृत। ऊपर लिखित ग्रन्थों के अलावा श्रीलरूपगोस्वामी ने उपदेशामृत, सिद्धान्त रत्न, काव्य कौस्तुभ आदि अनेक ग्रन्थ लिखे थे।

श्रील नरोत्तम ठाकुर ने श्रीरूपमंजरी अर्थात् श्रील रूपगोस्वामी जी के पादपद्म ही उनके सर्वस्वरूप हैं-ऐसा वर्णन किया है:-

श्रीरूप मञ्जरीपद, सेइ मोर सम्पद,

सेइ मोर भजन-पूजन।

सइ मोर प्राण-धन, सेइ मोर आभरण,

सेइ मोर जीवनेर जीवन।

सेइ मोर रसनिधि, सेइ मोर वाञ्छासिद्धि,

सेइ मोर वेदेर धरम।

सेइ व्रत, सेइ तप, सेइ मोर मन्त्र जप,

सेइ मोर धरम-करम।

अनुकूल हबे विधि, सेइ पदे हइबे सिद्धि,

निरखिब एइ दुइ नयने।

से रूप-माधुरी राशि, प्राण-कुवलय-शशी,

प्रफुल्लित हबे निशि-दिने

तुया-अदर्शन-अहि, गरले जारल देहि,

चिर दिन तापित जीवन।

हा हा प्रभु! कर दया, देह मोर पदछाया

नरोत्तम लइल शरण। (नरोत्तम ठाकुर)

[अर्थात-नरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीरूपमंजरी के चरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वही चरण मेरी पूजा हैं, भजन है। वही मेरे प्राण धन हैं। वही मेरे आभरण हैं, वही मेरे जीवनस्वरूप के जीवन हैं, वही मेरे रस के समुद्र हैं, वही मेरी इच्छा की सिद्धि हैं, वही मेरे वेद धर्म हैं, वही व्रत हैं, वही तप हैं, वही मेरे मन्त्र जप हैं, वही मेरे कर्म हैं, धर्म हैं। यदि भाग्य मेरे अनुकूल हो, तो उन्हीं चरणों की मुझे प्राप्ति हो पायेगी और इन दो नयनों से मैं उनको देखूँगा। उस अपार रूप माधुरी रूप चन्द्रमा को देखकर मेरे प्राण रूप कुमुद रात दिन प्रफुल्लित होंगे। आप का अदर्शन रूपी सांप अपने विष से मेरी देह को जला रहा है। बहुत दिनों से मेरा जीवन तप रहा है। हा- हा प्रभु! मुझ पर दया करो,मुझे अपने चरणों के दर्शन दो, नरोत्तम आप की शरण में है।]

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने भी श्रीरूप गोस्वामी जी के चरण कमलों की धूलि को अपना सर्वस्व माना है। रूप गोस्वामी जी के चरण कमलों के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु वान्छनीय नहीं है, उन्होंने कहा था—

आददानस्तृणं दंतैरिदं याचे पुनः पुनः।

श्रीमद् रूप पदांभोज धूलिःस्यां जन्म-जन्मनि॥

वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मन्दिर के पीछे श्रील रूप गोस्वामी का मूल समाधी-मन्दिर और भजन कुटीर स्थित है। इसके अलावा नन्द गाँव के निकट टेरि-कदम्ब में श्रील रूप गोस्वामी की भजन कुटी मौजूद है। टेरि-कदम्ब में ही श्रील रूप गोस्वामी जी की श्रील सनातन गोस्वामी को खीर का प्रसाद देने की इच्छा होने पर राधारानी ने बालिका के वेश में खीर पकाने के लिए रूप गोस्वामी जी को दूध, चावल और चीनी दी थी। श्रीसनातन गोस्वामी खीर प्रसाद चख कर प्रेम विभोर हो गये थे। श्रीराधा रानी को कष्ट दिया गया है, यह जानकर सनातन गोस्वामी ने रूप गोस्वामी को दोबारा खीर बनाने के लिए मना किया था। भाद्र मास की श्रीझूलन एकादशी के अगले दिन अर्थात् शुक्ला द्वादशी के दिन श्रील रूप गोस्वामी जी ने अपनी जागतिक लीला संवरण की थी।

****

श्रीसनातन गोस्वामी

या रूपमञ्जरीप्रेष्ठा पुरासीद्रतिमञ्जरी।

सोच्यते नामभेदेन लवङ्गमञ्जरी बुधैः॥

साद्य गौराभिन्नतनुः सर्वाराध्यः सनातनः।

तमेव प्राविशत् कार्यान्मुनिरत्नः सनातनः॥

(गौ. ग. दी. 181-182)

श्रीकृष्ण लीला में जो रूपमंजरी की प्रिय रतिमंजरी अथवा लवंग मंजरी थी, वे ही गौर लीला में गौरांग महाप्रभु जी के अभिन्न तनु श्रीसनातन गोस्वामी जी के रूप में अवतरित हुये थे। चतु: सन के अन्तर्गत सनातन भी इनमें प्रविष्ट हैं।

गौड़ीय वैष्णव अभिधान में लिखा है कि श्रीसनातन गोस्वामी अनुमानत: शक संवत् 1410 (विक्रमी सम्वत् 1544 और सन् 1488) में आविर्भूत हुये थे। श्रील नरहरि ठाकुर द्वारा रचित ग्रन्थ-'श्रीभक्तिरत्नाकर' से श्रीसनातन गोस्वामी जी की सात ऊर्ध्व पीड़ियों के श्रेष्ठ पुरुषों के विषय में पता चलता है। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में श्रील सनातन गोस्वामी के वंश का परिचय दिया है।*

श्रील सनातन गोस्वामी ने छोटी आयु में ही अध्यापक शिरोमणि विद्यावाचस्पति से शास्त्रों का अध्ययन किया था श्रीमद् भागवत शास्त्र में उनका बहुत ही अधिक अनुराग था। उन्होंने श्रेष्ठ भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर भी, स्वेच्छा से राजा की नौकरी की थी। इसी कारण ये वैष्णवोचित दीनतावश अपने को सदा हीन ही मानते रहे—

श्रीसनातेनर गुरु विद्यावाचस्पति।

मध्ये मध्ये रामकेलि ग्रामे तांर स्थिति॥

सर्वशास्त्र अध्ययन करिला यांर ठांई।

जैछे गुरुभक्ति कहि ऐछे साध्ये नाई॥ (श्रीभक्ति रत्नाकर 1/598-599)

[अर्थात श्रीसनातन जी के गुरु थे-श्रीविद्यावाचस्पति जी। वह कभी-कभी रामकेलि गाँव में आकर ठहरते थे। उनसे ही इन्होंने सब शास्त्रों का अध्ययन किया। इन्होंने ऐसी गुरु भक्ति की, जो कि किसी और से नहीं की जा सकती।]

यवन देखिले पिता प्रायश्चित करय।

हेन यवनेर संग निरन्तर हय॥

---

* इसी ग्रन्थ के श्रील रूप गोस्वामी के पावन चरितामृत वर्णन में, उपरोक्त वंश का परिचय दिया गया है। इसके अलावा और कोई प्रामाणिक वंश परिचय अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो पाया। प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में खोज करने वाले इस विषय में रोशनी डाल सकते हैं।

करि मुखापेक्षा यवनेर गृहे यान।

ए हेतु आपना माने म्लेच्छेर समान॥

यैछे मनोवृत्ति, ताहा किछु नाहि हय।

इथे अतिदीन हीन आपना मानय॥

यबे मग्न हन दैन्य समुद्र माझारे।

म्लेच्छादिक हैते नीच माने आपनारे॥

नीच जाति संगे सदा नीच व्यवहार।

एइ हेतु नीच जात्यादिक उक्ति तार॥

विप्रराज हैया महाखेद युक्तान्तरे।

आपनाके विप्र ज्ञान कभु नाहि करे॥

(भक्ति रत्नाकर 1/609-614)

[अर्थात यवनों को देखकर जिनके पिता जी प्रायश्चित करते थे, इनका निरन्तर उन्हीं यवनों के साथ उठना बैठना होता है। वे उनके सहारे पर ही रहते हैं। यवन के घर जाते हैं। इसी कारण यह अपने आप को म्लेच्छ के समान मानते हैं। जैसी इनकी मनोवृति है, वास्तव में वैसा कुछ नहीं है फिर भी ये अपने-आप को दीन-हीन मानते हैं। जब ये दीनता रूपी समुद्र में रहते हैं तो अपने आप को म्लेच्छ से भी अधिक नीच मानते हैं। उनका कहना है कि नीच जाति का संग करने से व्यवहार भी सदा नीच ही होगा। इसी कारण से वे अपने आप को नीच जाति आदि कहकर पुकारते हैं। विप्रराज होते हुए भी हृदय में महादुःख मानते हैं। मैं विप्र हूँ, ऐसी भावना वे कभी नहीं करते हैं।]

रामानन्द द्वारे कंदर्पेर दर्पनाशे।

दामोदर द्वारे निरपेक्ष परकाशे॥

हरिदास द्वारे सहिष्णुता जानाइल।

सनातन रूप द्वारे दैन्य प्रकाशिल॥

(भक्ति रत्नाकर 1/630-631)

[अर्थात श्रीरामानन्द जी द्वारा महाप्रभु जी ने कामदेव को अभिमान का नाश करवाया, श्रीदामोदर जी के द्वारा निरपेक्षता का प्रकाश किया, श्रीहरिदास जी के द्वारा महाप्रभु जी ने सहिष्णुता का पाठ सिखाया और श्रीरूप– सनातन जी के द्वारा दीनता का प्रकाश किया।]

श्रील सनातन गोस्वामी जी के दादा जी किस प्रकार मुसलमान बादशाह के राज कार्य में नियुक्त हुये थे और श्रीसनातन गोस्वामी कैसे उनके निम्नस्थ क्रम में नियुक्त हुए, इनका निम्नलिखित वर्णन, गौड़ीय वैष्णव अभिधान में मिलता है। सुलतान बारबकशाह के समय में (सन् 1460- 1470 ई.) श्रील सनातन गोस्वामी के दादा मुकुन्द ने गौड़देश की

सरकारी सेवा में प्रवेश किया था। बारबक शाह ने राज्य और अन्तःपुर की सुरक्षा के लिये, अवसीनिया से बहुत से गुलामों और हिंजड़ों को लाकर नौकरी दे रखी थी। तब इन लोगों को हब्शी कहा जाता था। बारबकशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र यूसुफ और यूसुफ की मृत्यु के बाद फतेशाह बादशाह हुये। फतेशाह के समय में हब्शियों ने षड़यन्त्र रचकर, फतेशाह की हत्या करके पाँच-छः साल राज्य किया था। अन्तिम हब्शी राज के वज़ीर और मन्त्री थे-हुसैन शाह। वे ही बाद में गौड़देश के बादशाह हुये। फतेशाह के समय में ही मुकुन्द की मृत्यु हो गई थी और उनके स्थान पर सनातन गोस्वामी नियुक्त हुये थे। हब्शियों के राजत्व काल में, अनेक अत्याचार सहने के बाद, हुसैनशाह के समय में श्रीसनातन गोस्वामी जी ने अपनी योग्यता के बल पर ऊँची राजपदवी प्राप्त की और क्रमशः प्रधानमन्त्री बन गये। श्रीरूप गोस्वामी उपमन्त्री या अर्थमन्त्री बन गये। श्रीसनातन का मुसलमानों द्वारा दिया गया नाम था-साकिर मल्लिक और रूप गोस्वामी का नाम था-दबिर खास।

राजा कहे, शुन, मोर मने येइ लय।

साक्षात ईश्वर, इँहा नाहिक संशय॥

एत कहि' राजा गेला निज अभ्यन्तरे।

तबे दबिर खास आइला आपनार घरे॥

घरे आसि' दुइ भाई युक्ति करिञा।

प्रभु देखिबारे चले वेश लुकाञा॥

अर्द्धरात्रे दुई भाई आइला प्रभु-स्थाने।

प्रथमे मिलिला नित्यानन्द-हरिदास सने॥

तांरा दुइ जन जानाइल प्रभुर गोचरे।

रूप, साकरमल्लिक आइला तोमा' देखिबारे॥

(चै. च. म. 1/180-184)

[अर्थात राजा कहने लगे, सुनो, मेरे मन में यह आता है कि यह साक्षात् ईश्वर हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। इस प्रकार कहकर राजा अन्दर चला गया। तभी दबिर खास घर आये और घर में आकर दोनों भाई युक्ति करते हैं और अपना वेष बदलकर दोनों महाप्रभु जी से मिलने को जाते हैं। आधी रात के समय दोनों भाई महाप्रभु जी के पास पहुँचते हैं। परन्तु हाँ, पहले वे श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदास जी से मिलते हैं। इन दोनों ने ही महाप्रभु जी को बताया कि श्रीदबिर खास और श्रीसाकर मल्लिक आपको मिलने के लिये आये हैं।]

श्रीकृष्ण लीला के पार्षद ही गौर लीला की पुष्टि के लिये अवतरित हुये थे। श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने उन पार्षदों के द्वारा जगतवासियों को विभिन्न विषयों की शिक्षा दी थी—

हरिदास-द्वारा नाम-महात्म्य-प्रकाश।

सनातन-द्वारा भक्ति सिद्धान्त विलास॥

श्रीरूप-द्वारा ब्रजेर रस-प्रेम-लीला।

के कहिते पारे गम्भीर चैतन्येर खेला??॥

(चै. च. अ. 5/86-87)

[अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी द्वारा श्रीनाम की महिमा का प्रकाश कराया तथा श्रीसनातन जी के द्वारा भक्ति सिद्धान्तों का प्रचार कराया और श्रीरूप गोस्वामी जी के द्वारा व्रज की रसमय प्रेम लीला को प्रकाशित करवाया। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की गम्भीर लीला के विषय में कोई भला क्या कह सकता है।]

सनातन-कृपाय पाइनु भक्तिर सिध्दान्त।

श्रीरूप-कृपाय पाइनु भक्तिरस प्रान्त॥

(चै. च. आ. 5/203)

[अर्थात् श्रीमन् महाप्रभु जी कहते हैं कि श्रीसनातन जी की कृपा से भक्ति सिद्धान्त प्राप्त कर पाया हूँ तथा श्रीरूप गोस्वामी जी की कृपा से भक्ति रस की प्राप्ति हुई है।]

श्रील सनातन गोस्वामी श्रीभक्ति सिद्धान्त के आचार्य तथा सम्बन्ध ज्ञान के दाता हैं। विश्वव्यापी चैतन्यमठ और गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, मेरे परम गुरुचरणकमल, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108 श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद ने अपनी कृपा के परवश होकर, 'वैष्णव के' नामक स्वरचित गीत में जो उपदेश अमृत दान किया है, उसमें श्रीचैतन्य चरितामृत का सनातन शिक्षा प्रसंग लिखा गया है। उसमें उन्होंने लिखा है—

ताइ दुष्ट मन, निर्जन भजन।

प्रचारिछ छले कुयोगी वैभव॥

प्रभु सनातने, परम यतने।

शिक्षा दिल याहा, चिन्त सेइ सब॥

[इसलिये हे दुष्ट मन, तू दिल से निर्जन भजन रूपी कुयोगी वैभव का प्रचार कर रहा है। हे मन! श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी ने श्रीसनातन गोस्वामी जी को जो शिक्षा दी तू तो बस परम यत्न के साथ उसी का ही चिन्तन कर।]

श्रीमन्महाप्रभु जी ने सनातन गोस्वामी जी को अवलम्बन करके जगतवासियों को जो शिक्षा दी, उस का परम यत्न के साथ चिन्तन करने के लिये, प्रभुपाद जी का उपदेश है।

श्रीमन्महाप्रभु संन्यास ग्रहणकरके शान्तिपुर होकर पुरी जाने के बाद दक्षिण भारत गये थे। दक्षिण भारत से पुरी में वापिस आकर वे वृन्दावन यात्रा का मन बनाकर पहले गौड़देश गये। उस दौरान जब महाप्रभु जी ने कानाई की नाटशाला से वापिसी की तो उस समय उनके साथ लाखों करोड़ों लोग थे। उनके मालदह के रामकेलि गाँव पहुँचने पर श्रीरूप गोस्वामी जी और श्रीसनातन गोस्वामी के साथ उनका पहला साक्षात्कार हुआ। महाप्रभु जी के साथ असंख्य हिन्दुओं को देखकर यवन बादशाह ने पहिले तो शक किया, परन्तु क्षत्रिय केशव ने उसको ऐसी सीख दी जिससे वह श्रीमन्महाप्रभु के साथ दुश्मनी न बाँध ले। श्रीरूप गोस्वामी ने भी महाप्रभु जी की महिमा का बखान करके बादशाह के सौभाग्य की बात कहकर उनको उत्साहित किया। साथ ही क्षत्रिय केशव ने गुप्त रूप से महाप्रभु जी के पास ब्राह्मण भेजकर, श्रीमन्महाप्रभु को शीघ्र ही कहीं और चले जाने की सलाह दी। श्रीरूप व सनातन दोनों ने युक्ति करके, श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों में उपस्थित होकर बहुत ही दीनता के साथ कहा—

जागाई-माधाई हैते कोटि कोटि गुण।

अधम पतित पापी आमि दुइ जन॥

म्लेच्छजाति, म्लेच्छसङ्गी, करि मलेच्छकर्म।

गो-ब्राह्मण-द्रोही-सङ्गे आमार सङ्गम॥

मोर कर्म, मोर हाते-गलाय बान्धिञा।

कुविषयविष्ठा-गर्ते दियाछे फेलिया॥

आमा उद्धरिते बली नाहि त्रिभुवने।

पतितपावन तुमि-सबे तोमा बिने॥

(चै. च. म. 1/196-199)

[हम दोनों तो जगाई-मधाई से भी करोड़-करोड़ गुणा अधम हैं, पतित हैं व पापी हैं। म्लेच्छ जाति, म्लेच्छ संग व म्लेच्छ कर्म करने वाले हैं हम। हमारा मेल जोल तो गो-ब्राह्मण द्रोहियों के साथ है। हमारे कर्मों ने हमें हमारी गर्दन से पकड़कर विष्टारूपी कु-विषय के गड्ढे में फेंक दिया है। आप पतित पावन हो, सारे त्रिभुवन में आपके बिना और कोई हमारा उद्धार करनेवाला नहीं है।]

आपने अयोग्य देखि' मने पाउ क्षोभ।

तथापि तोमार गुणे उपजाय लोभ॥

वामन हैञा चाँद धरिते इच्छा करे।

तैछे मोर एइ वाञ्छा उठये अन्तरे॥

(चै. च. म 1/204-205)

[अपने को अयोग्य देखकर तो मन में अवश्य क्षोभ होता है परन्तु आपके गुणों के कारण लोभ हो जाता है। मेरे हृदय में भी ठीक वैसी ही इच्छा उठती है जैसे कोई नाटा व्यक्ति चान्द को छूने की चेष्टा करे।]

श्रीमन्महाप्रभु, रूप-सनातन के दीनता पूर्ण वचन सुनकर व कृपा से आर्द्र होकर बोले—तुम मेरे पुराने दास हो। आज से तुम्हारा नाम रूप और सनातन हुआ। गौड़देश के रामकेलि ग्राम में, मैं तुमसे ही मिलने आया हूँ। श्रीकृष्ण तुम्हारा तुरन्त उद्धार करेंगे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने, श्रीचैतन्य चरितामृत के प्रथम परिच्छेद के दो सौ आठवें पयार के अपने अनुभाष्य में लिखा है—"श्रीमान्महाप्रभु जी ने प्रसाद रूप से दबिर खास को 'रूप' और साकर मल्लिक को 'सनातन' नाम दिया। वैध कनिष्ठ अधिकार में नामकरण एक संस्कार है, जो नाम प्रसाद की अवज्ञा करते हैं, उनके लिये हरि भक्ति की सम्भावना नहीं। वे तो जड़ प्रतिष्ठा में ही मस्त रहते हैं"—

शंख चक्राद्यूर्ध्व पुण्ड्र धारणाद्यात्मलक्षणम्।

तन्नामकरणश्चैव वैष्णवत्त्वमिहोच्यते॥

प्राकृत सहजिया लोगों में विष्णुदास्यपरक नामकरण करने की विधि न रहने के कारण अब उन्हें गौड़ीय –वैष्णव नहीं कहा जा सकता। अवैष्णवों को यदि वैष्णव गुरु से नाम न मिले तो उनकी देहात्म बुद्धि नहीं जाती। हरि सम्बन्ध का ज्ञान नहीं फिर ऊपर से देहात्म बुद्धि, इसी कारण वे अपने पहले वाले दुनियावी नामों को ही सम्भाल कर रखते हैं। जब कोई जीव किसी वैष्णव गुरु के चरणों में शरणागत होता है तो वह वैष्णव गुरु उन्हें दीक्षा मन्त्र देने के साथ-साथ उसका दुनियाँ वाला नाम भी परिवर्तन करके कृष्ण दास या गौरहरि दास इत्यादि रख देते हैं ताकि अपना नाम उच्चारण करते ही उसे अनुभव हो या ज्ञान हो कि वह भगवान का नित्य दास है। रामकेलि* में श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने साथियों-नित्यानद प्रभु, हरिदास ठाकुर, श्रीवास पण्डित, गदाधर पण्डित, मुकुन्द दत्त, जगदानन्द पण्डित, मुरारी गुप्त और वक्रेश्वर पण्डित आदि भक्तों के द्वारा, रूप-सनातन को आशीर्वाद दिलवाया था। विदाई के समय अति कुशाग्र बुद्धि वाले सनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु जी के चरणों में यह कहकर निवेदन किया—

---

*श्रीरूप व सनातन गोस्वामी का पीठ स्थान—श्रीरामकेलि (गुप्त वृन्दावन), अंग्रेज़ बाज़ार से लगभग आठ मील दक्षिण में और वर्तमान नगर मालदह स्टेशन से 56 मील दूर स्थित था।

दर्शनीय-(1) वे तमाल और केलि कदम्ब वृक्ष-जिन वृक्षों के नीचे महाप्रभु जी बैठे थे और रूप सनातन के साथ मिले थे। उस स्थान की स्मृति की रक्षा के लिये अब वहाँ पर एक पाद-पीठ मन्दिर का निर्माण हुआ है। यहाँ की ऊँची वेदी पर श्रीमन्महाप्रभु जी के चरण चिन्ह हैं। यहाँ पर महाप्रभु जी ने पार्षदों के साथ भक्तों को प्रेमामृत का दान दिया था।

(2)श्रीमदन मोहन मन्दिर-यहाँ पर सनातन गोस्वामी जी द्वारा सेवित मदन मोहन जी का विग्रह है। इसके अतिरिक्त निताई गौरांग और श्रीअद्वैताचार्य जी की मूर्तियां भी हैं।

(3) श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड, सुरभिकुण्ड, ललिता कुण्ड और विशाखा कुण्ड का प्रकाश।

(4) रूपसागर-श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित वृहद् सरोवर।

(5) सनातन सागर नामक एक जलाशय

श्रीरूप-सनातन ने फतेहाबाद और रामकेलि दोनों स्थानों में विशाल भवन बनवाये थे।

इँहा हैते चल, प्रभु, इँहा नाहि काज।

यद्यपि तोमारे भक्ति करे गौड़राज॥

तथापि यवन जाति, ना करिह प्रतीति।

तीर्थयात्राय एत संघट्ट भाल नहे रीति॥

याँहा सङ्गे चले एइ लोक लक्षकोटि।

वृन्दावन-याइबार ऐ नहे परिपाटि॥

(चै. च. म. 1/222-224)

[सनातन गोस्वामी जी महाप्रभु जी से कहते हैं-'हे प्रभु! अभी आपको यहाँ से चले जाना चाहिए, यद्यपि यह गौड़देश का बादशाह आप से प्रेम करता है, फिर भी यह यवन जाति का है, इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए और फिर इतनी बड़ी भीड़ को लेकर तीर्थ-यात्रा की रीति अच्छी नहीं है। जिसके साथ लाख, करोड़ लोग चलें, इस प्रकार वृन्दावन जाने की कोई परिपाटी नहीं है।']

श्रीमन्महाप्रभु जी ने कानाई की नाटशाला तक जाकर सनातन के परामर्श पर सोच-विचार करके, वृन्दावन न जाकर, शान्तिपुर होकर पुरी की वापसी यात्रा की।

गणसह सनातन रूपे कृपा करि।

रामकेलि हैते यात्रा कैला गौरहरि॥

(भ.र. 1/635)

श्रीकृष्ण लीला के दोनों पार्षदों-श्रील रूप गोस्वामी जी व सनातन गोस्वामी जी ने गौरव लीला की पुष्टि के लिये अवतीर्ण होकर, साधक लीला के अभिनय के समय, रामकेलि में श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने के बाद तीव्र वैराग्य और व्याकुलता प्रकट की। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के चरण कमलों की शीघ्र प्राप्ति के लिये उन्होंने कृष्ण-मन्त्र के दो पुरश्चरण करवाये।

श्रीरूप गोस्वामी नौकरी से अवकाश ग्रहणकरके, श्रीसनातन गोस्वामी के लिये गौड़देश के एक पंसारी की दुकान पर दस हज़ार मुद्रायें रखकर, अपने द्वारा जोड़ा हुआ सारा धन लेकर वाकला चन्द्रद्वीप में चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने ब्राह्मणों, वैष्णवों और कुटुम्ब के लोगों में वह धन बाँट दिया और एक चौथाई हिस्सा विभिन्न विश्वसनीय लोगों के पास रख दिया। इसके बाद यह जानने के लिये कि श्रीमन्महाप्रभु जी कब वन के रास्ते वृन्दावन की यात्रा करेंगे, दो आदमियों को पुरुषोत्तम धाम में भेजा।

बादशाह हुसैन शाह सनातन गोस्वामी जी को छोटे भाई की तरह समझते थे और खूब प्यार करते थे। श्रीसनातन गोस्वामी जी ने सोचा कि राजा का प्यार व विषयी व्यक्ति का प्यार तो बन्धन का कारण होता है। किसी तरह से राजा यदि नाराज़ हो जाये तो इस विषय-बन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है। विषयी व्यक्ति के क्रोध और अनादर से हित ही होता है। इसलिये सनातन गोस्वामी अस्वस्थ होने का बहाना करके, राजकार्य छोड़कर, पण्डितों व विद्वानों को साथ लेकर भगवत चर्चा करने लगे। सनातन गोस्वामी जी द्वारा अचानक राज्य कार्य बन्द कर देने पर, बादशाह चिन्तित हो गये। सनातन गोस्वामी जी की अस्वस्थता का समाचार पाकर उन्होंने उनके पास अपना वैद्य भेजा। वैद्य ने उनको देखकर आने के बाद बादशाह को सनातन के स्वस्थ होने और उनकी पण्डितों के साथ भगवद् चर्चा की बात बतलायी। सारी बात जानकर बादशाह स्वयं उनके पास गये और अनेक प्रीति पूर्ण वचनों से राजा ने उन्हें समझाने-बुझाने की कोशिश की परन्तु सनातन गोस्वामी जी राजकार्य करने के लिये तैयार न हुये और उन्होंने उड़ीसा के बादशाह के साथ युद्ध करने के लिये भी अनिच्छा प्रकट की। सनातन जी के जवाब सुनकर बादशाह चिन्तित हो गया और अन्त में उन्होंने श्रीसनातन को कारागार में डाल दिया व स्वयं युद्ध के लिये चला गया।

उधर यह जानकर कि श्रीमन्महाप्रभु जी वन के रास्ते वृन्दावन यात्रा पर निकल पड़े हैं, रूप गोस्वामी भी अपने छोटे भाई अनुपम मल्लिक को साथ लेकर, वृन्दावन की ओर चल दिये तथा साथ ही उन्होंने सनातन गोस्वामी को किसी प्रकार कारागार से मुक्त होकर वृन्दावन पहुँचने के लिये संकेत युक्त पत्र लिखकर भेजा।

पत्र का संकेत समझकर सनातन गोस्वामी जी बहुत खुश हुये। बुद्धिमान सनातन जी ने यह सोचकर कि वे कारागार से कैसे मुक्त हों, कारागार के रक्षक से (जिसे उन्होंने ही कभी नौकरी पर लगाया था) प्रशंसा पूर्ण शब्दों में उत्साहित करते हुये कहा कि अगर वह एक कैदी को मुक्त कर देगा तो ईश्वर उसका भला करेंगे, लेकिन इस पर यवन का मन न पसीजा। तब उन्होंने उससे प्रति-उपकार करने की प्रार्थना की अर्थात् उन्होंने उसे कहा कि उन्होंने ही तो उसे नौकरी दी थी, इसलिये उस भलाई के बदले वह उनको छोड़ दे। इस पर जब कारागार का रक्षक उन्हें मुक्त करने के लिये तैयार न हुआ तो सनातन गोस्वामी जी ने उसे अपनी रिहाई के लिये पाँच हज़ार मुद्रायें देने का लोभ दिया। मुद्राओं की बात सुनकर कारागार रक्षक का कठोर रुख नर्म हो गया, लेकिन उन्हें मुक्त करने के लिए, बादशाह द्वारा सज़ा दिये जाने की आशंका प्रकट की। सनातन जी ने उसको समझाया कि बादशाह युद्ध के लिये गया है। अगर वापिस आ जाये तो उसे कहना कि साकर मल्लिक जंगल-पानी गया था, गंगा को देखकर उसने गंगा में छलांग लगा दी, ढूँढने पर भी कहाँ

गया, पता नहीं चल पाया। सनातन आगे बोले कि वे यहाँ रहेंगे नहीं, दरवेश होकर मक्का चले जायेंगे, इसलिये उसे चिन्ता नहीं होनी चाहिये कि वह पकड़ा जाएगा। इस प्रकार बहुत प्रकार से झूठे दिलासे देने और मृदु वाक्यों द्वारा समझाए जाने पर भी, यवन का मन प्रसन्न न होने पर, सनातन गोस्वामी जी ने दुकान में सुरक्षित रकम में से सात हज़ार मुद्रायें लाकर उसके (यवन कारागार रक्षक के) सामने रख दीं। मुद्रायें देखकर यवन को लोभ हो गया और उसने बेड़ी काटकर श्रीसनातन को गंगा के पार पहुँचा दिया।

किसी की चापलूसी (खुशामद) करना, किसी से अपने द्वारा किये गये उपकार के बदले कुछ प्रार्थना करना या किसी को लोभ देकर झूठ बुलवाना अथवा किसी को रिश्वत देना, ये सभी अन्याय है लेकिन सनातन गोस्वामी जी ने भगवान् के निकट जाने के लिये, भगवान् की सेवा करने के लिये, यह सब प्रयोग किए। मंगल के उद्देश्य से किये जाने पर सभी को ठीक कहा जाता है। उपेय की शुद्धता या अशुद्धता के ऊपर, उपाय की शुद्धता-अशुद्धता निर्भर करती है। उदाहरण के लिए श्रीराम दास कहलाने वाले हनुमान जी ने परब्रह्म राम जी की सेवा के लिये लंका पुरी को जलाया था तथा कई प्राणियों की हत्या की थी। मंगलमय श्रीहरि की प्रीति के लिये होने के कारण, उनके इन सब कार्यों से सबका ही कल्याण हुआ और आज भी हनुमान जी आदर पाते हैं तथा उनकी पूजा होती है। दूसरी ओर तीनों संध्याओं में स्नान करके मन्दिर में की गई पूजा का उद्देश्य दूसरों का अनिष्ट करना हो, तो तीनों सन्ध्याओं में स्नान करके मन्दिर में की गयी पूजा भी तामसिक हो जाती है। सांसारिक दृष्टि से भी हम देखते हैं कि नरहत्या करने पर हत्यारे को प्राण दण्ड मिलता है किन्तु युद्ध क्षेत्र में देश को बचाने के लिये शत्रुपक्ष के लोगों की हत्या करने पर, प्राणदण्ड नहीं अपितु पुरस्कार मिलता है। इसका कारण यह है कि वह कार्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिये नहीं होता, बल्कि वृहत्तर स्वार्थ के लिये होता है। उसी प्रकार एक क्षुद्र देश अथवा पृथ्वी के लिये नहीं, बल्कि अनन्त-करोड़ों विश्व ब्रह्माण्डों के स्वामी मंगलमय भगवान् के लिये जो कार्य किया जाता है, वही सुसंगत होता है और उसमें सबका हित ही होता है। "मन्निमित्तं कृतं पापामपि धर्माय कल्पते"*-भगवान् के निमित्त किया गया पाप भी धर्म होता है लेकिन कपट का आश्रय लेकर अगर हम अपने दुनियावी उद्देश्य की सिद्धि के लिये भगवान् का नाम लेकर पाप करते हैं तो उसके लिये अवश्य ही नरकगामी होना पड़ेगा। हनुमान जी को दुनियावी अभिमान नहीं था और उनका उद्देश्य भी दुनियावी नहीं था

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।

हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता 18/17)

जब आत्मा की अहैतुकी भक्ति प्रकट होती है और जब यथार्थ रूप से भगवान के लिये हृदय में व्याकुलता आती है, तब संसार के सारे सुख और स्वच्छन्दता के विचार समाप्त हो जाते हैं। प्रधानमन्त्री सनातन गोस्वामी खाली हाथ जेल से आज़ाद होकर, राजपथ को छोड़कर, गाँवों के रास्ते बहुत तेज़ गति से चलते –चलते पातड़ा-पर्वत** पर जा पहुँचे।

पर्वत को पार करने का रास्ता न खोज सकने पर सनातन गोस्वामी जी ने एक ज़मींदार-जो कि डाकुओं का सरदार भी था-से सहायता के लिये प्रार्थना की। श्रीसनातन गोस्वामी के पुराने नौकर ईशान भी तब साथ में थे। ज़मींदार को अपने ज्योतिषी द्वारा पता चल गया था कि ईशान के पास आठ मोहरें हैं। इसलिये वह सनातन गोस्वामी का खूब आदर सत्कार करने लगा। परम बुद्धिमान राजमन्त्री सोचने लगे कि एक अपरिचित व्यक्ति द्वारा इतना आदर सत्कार करने का कारण क्या हो सकता है, सन्देह होने पर उन्होंने ईशान से पूछा कि कहीं उसके पास कुछ है तो नहीं?

ईशान ने एक मोहर छुपाकर, सात मोहरें पास होने की बात स्वीकार की। सनातन गोस्वामी जी ने यह कहकर कि वे उस काल-यम को साथ क्यों ले आये, ईशान को मीठी झिड़की देकर, उससे सात मोहरें लेकर उन्होंने ज़मींदार को दीं और उससे पर्वत पार करवा देने का अनुरोध किया। इस पर ज़मींदार ने ईशान के पास आठ मोहरें होने और रात में उनकी हत्या के संकल्प की बात बताकर, प्रसन्नचित्त से मोहरें वापिस कर देनी चाहीं, पर श्रीसनातन गोस्वामी जी ने वे वापिस नहीं लीं। पारदर्शी-चतुर-दूरदृष्टिवान मनुष्य हमेशा जानता है कि—

अव्यवस्थित चित्तस्य प्रसादपि भयंकरः।

धूर्तस्य वचने क्वास्था, क्वचित् सत्यं क्वचित् मृषा॥

क्वचित् रौद्रं, क्वचित् वृष्टिः, श्रावणस्य घनो यथा।

---

* मन्निमितं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते।

मामनादृत्य धर्मोपि पापं स्यान्मत् प्रभावतः॥ (पद्म पुराण)

[मेरे निमित्त किया गया पाप भी धर्म होता है और मेरा अनादर करके किया गया धर्म भी, मेरे प्रभाव से पाप हो जाता है।]

** पातड़ा-पर्वत—बिहार के छोटा नागपुर अंचल की राजमहल पर्वत श्रेणी के अन्तर्गत।

(गौड़ीय वैष्णव अभिधान)

अर्थात धूर्तों के वचनों की कोई स्थिरता नहीं होती। पर्वत पार कर लेने पर सनातन गोस्वामी जी ने ईशान को बाकी बची एक मोहर लेकर वापस अपने देश चले जाने को कहा। मोहर-धन मेरी रक्षा करेगा—इस प्रकार की दुनियावी वस्तुओं पर निर्भरता करने वाले को संसार त्याग करने का अधिकार नहीं होता। अनाधिकारी व्यक्ति द्वारा संसार त्याग करने से त्यक्त आश्रम दूषित होता है। श्रीसनातन गोस्वामी ने अपने नौकर ईशान के माध्यम से यही शिक्षा दी। ईशान को विदा करके, चलते-चलते वे पटना के दूसरी ओर हाजीपुर में आ पहुँचे। वहाँ वे अपने बहनोई श्रीकान्त से मिले। श्रीकान्त द्वारा कुछ दिन विश्राम करने के लिये अनुरोध करने पर भी महाप्रभुजी से मिलने के लिये व्याकुल श्रीसनातन गोस्वामी जी ने उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया। तब श्रीकान्त ने भेंट के रूप में एक मूल्यवान कम्बल उनको दिया। बनारस पहुँचकर, महाप्रभुजी के श्रीचन्द्रशेखर वैद्य के घर होने की बात जानकर सनातन गोस्वामी जी बहुत ही प्रसन्न हुये। पहले चन्द्रशेखर के घर के अन्दर न जाकर, वे बाहरी दरवाज़े पर बैठे रहे। अन्तर्यामी श्रीमन्महाप्रभु जी ने भक्त के आने के विषय में जानकर, चन्द्रशेखर के माध्यम से, उनको घर के अन्दर आने के लिये कहा जिस पर सनातन गोस्वामी जी अन्दर चले गये। महाप्रभु जी ने दौड़कर उनका आलिंगन कर लिया। भक्त और भगवान् के मिलने पर, दोनों में बहुत प्रेम प्रकट हुआ। श्रीमान्महाप्रभु सनातन को अपने पास बिठाकर, स्नेह से अभिभूत होकर उनके अंगों को सहलाने लगे। सनातन जी द्वारा संकुचित होकर, उनको स्पर्श करने से मना करने पर, श्रीमननमहाप्रभु जी ने कहा –

तोमा स्पर्शि आत्म पवित्रिते।

भक्ति-बले पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते॥

तोमा देखि, तोमा स्पर्शि, गाइ तोमार गुण।

सर्वेन्द्रिय-फल,—एइ शास्त्रेर निरूपण॥

(चै. च. म. 20/56 व 60)

[अर्थात महाप्रभु कहते हैं कि आपको स्पर्श करके मैं अपने आप को पवित्र करता हूँ। भक्ति के बल से आप ब्रह्माण्ड का शोधन कर सकते हो। मैं आपको देखता हूँ, आपका स्पर्श करता हूँ, व आपके गुणगान गाता हूँ—ये ही तमाम इन्द्रियों का फल है, ऐसा ही शास्त्रों का निर्णय है।]

श्रीमन्महाप्रभुजी ने कहा कि वे इस कारण सनातन गोस्वामी को छू रहे थे ताकि वे भी पवित्र हो जायें और ब्रह्माण्डों को भी पवित्र कर सकें। ऐसा कहकर उन्होंने आगे कहा—

"सुनो सनातन! श्रीकृष्ण कृपा के समुद्र हैं, पतित पावन हैं, उन्होंने तुम्हारा महारौरव नरक से उद्धार कर दिया है"-अर्थात श्रीसनातन गोस्वामी जी श्रीकृष्ण के नित्यपार्षद व शुद्ध भक्त हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने जगतवासियों को सनातन जी के माध्यम से शिक्षा दी कि जगत में बहुत फँसना और दुनियावी वैभव की प्राप्ति, सौभाग्य की बात नहीं अपितु अत्यन्त दुर्भाग्य का परिचय है। स्थूल व सूक्ष्म इन्द्रियों के तर्पण के लिये सांसारिक वैभव की प्राप्ति नरक प्रदान कराने वाली है। माया मोह से बंधा जीव न्याय के व अन्याय के उपाय से पैसा और सांसारिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। बहुत कम संख्या में, या यूँ कहें कि कभी-कभी ही इस प्रकार का आदर्श गृहस्थ भक्त पाया जाता है, जो श्रीकृष्ण को ही एक मात्र भोक्ता मानकर उनकी सेवा में ही अपने पूर्ण विषयों को नियोजित करता हो। यदि ऐसा गृहस्थ भक्त मिल जाये तो निश्चय जानना कि वह विषयों को भोग्य रूप में नहीं देखता होगा।

श्रीमन्महाप्रभुजी श्रीचन्द्रशेखर जी के घर में रहते थे और श्रीतपन मिश्र जी के घर पर भोजन करते थे। श्रीमान्महाप्रभु जी के आदेश पर श्रीसनातन गोस्वामी जी, श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपन मिश्र से मिले। तपन मिश्र के निमन्त्रण पर श्रीसनातन गोस्वामी जी भी उनके घर पर श्रीमान्महाप्रभु जी द्वारा छोड़ा हुआ प्रसाद पाने लगे। बहुत दिन जेल में रहने के कारण श्रीसनातन गोस्वामी के केश और दाढ़ी मूँछें बहुत बड़ी-बड़ी हो गयी थीं। श्रीमन्महाप्रभुजी ने उनको हजामत बनवाकर सभ्य बनकर आने के लिये कहा। वैष्णवों के लिये दाढ़ी मूँछ रखने का विधान नहीं है। हाँ, चातुर्मास्य व्रत आदि का पालन करने के लिये, नाखून और बालों की रक्षा करने पर भी और-और समय में हजामत बनवाकर भद्रभाव से रहना ही वैष्णवों का सदाचार है। इसीलिये वैष्णव संन्यासी के लिये हर पूर्णिमा को मुण्डन करवाना उचित है। परन्तु हर रोज़ हजामत द्वारा विलासिता को आश्रय देना भी ठीक नहीं है।

श्रीसनातन जी के मुण्डन करवाने के बाद गंगा स्नान करके वापिस आने पर श्रीचंद्रशेखर जी ने सनातन जी को नये कपड़े देने चाहे लेकिन उन्होंने नहीं लिये। बाद में श्रीतपन मिश्र भी नये कपड़े लेकर आये पर सनातन गोस्वामी जी ने उन्हें भी ग्रहण न करके, उनके पुराने कपड़े लिये। जो हज़ारों लोगों को नये कपड़े दे सकते थे, आज वे ही नये वस्त्र लेने से संकोच कर रहे हैं। भगवद्-भजन के लिये जब निष्कपट दीनता जागृत होती है तो अच्छी पोशाकें और अच्छे भोजन के लिये रुचि नहीं रहती। वैष्णवों द्वारा दिये गये द्रव्य और वैष्णवों द्वारा व्यवहार में लाये गये वस्त्रों को प्रसाद रूप में

ग्रहणकरके विषयों का विष दोष नहीं होता। सनातन गोस्वामी जी के प्रत्येक आचरण में मंगलेच्छु साधकों के लिये अपूर्व शिक्षणीय विषय हैं।

सनातन गोस्वामी का वैराग्य देखकर महाप्रभु जी बहुत ही प्रसन्न हुये—

"महाप्रभु भक्त यत वैराग्य प्रधान।

याहा देखि तुष्ट हन गौर-भगवान्।

अर्थात् महाप्रभु जी के जितने भी भक्त होते हैं सभी का उच्च वैराग्य होता है और सही बात यह है कि वैराग्य को देखकर महाप्रभु जी बड़े सन्तुष्ट होते हैं।" सांसारिक भोगविलास के पागलपन और प्रतियोगिता आने से पारमार्थिक जीवन का पतन होता है।

एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण द्वारा जितने दिन श्रीसनातन गोस्वामी ने काशी में रहना था, उतने दिन अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिये जाने पर श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा—"वे प्रतिदिन एक स्थान पर भोजन न करके, माधुकरी भिक्षा द्वारा जीवन धारण करेंगे।" शुद्ध हरि भजन करने वाले व्यक्ति को देह के आराम की आकांक्षा ही नहीं होती।

सनातन गोस्वामी जी के पुराने वस्त्रों के पहनने पर और उसके साथ कीमती भोट कम्बल पहनने पर महाप्रभु जी पुनः-पुनः उसे देखने लगे। महाप्रभुजी द्वारा पुनः-पुनः नज़र डालने पर, सनातन गोस्वामी जी समझ गये कि महाप्रभुजी को इससे सुख नहीं मिल रहा है। अतः सनातन गोस्वामीजी ने गंगा के तट पर जाकर एक गौड़ीय बाबा जी को वह कम्बल दे दिया और उनके द्वारा व्यवहार में लायी हुई पुरानी गुदड़ी पहन कर आ गये। महाप्रभुजी मंहगे कम्बल की जगह गुदड़ी पहने देखकर बहुत सन्तुष्ट हुए—

प्रभु कहे,—"इहा आमि करियाछि विचार।

विषय-रोग खण्डाइल कृष्ण ये तोमार॥

से केने राखिबे तोमार शेष विषय-भोग?

रोग खण्डि' सदवैद्य ना राखे शेष रोग॥

तिन मुद्रार भोट गाय, माधुकरी ग्रास।

धर्महानि हय, लोके करे उपहास॥"

(चै. च. म. 20/90-92)

[अर्थात महाप्रभु जी कहते हैं कि मैंने यह विचार किया है कि जब श्रीकृष्ण ने आपके विषय रोग को खण्डित कर ही दिया है तो वे थोड़ा सा भी विषय भोग क्यों रखेंगे। कारण, अच्छा वैद्य रोग को खण्डित करने के पश्चात् रोग का शेष भी नहीं रहने देता है। आपके शरीर पर तीन मुद्रा का कम्बल हो और आप माधुकरी भिक्षा करें, इससे तो धर्म की हानि ही होती है और लोग भी हंसी उड़ाते हैं।]

श्रीमन्महाप्रभु स्वयं भगवान् होकर भी सर्वोत्तम आचार्य की लीला कर रहे हैं। उन्होंने जिस प्रकार स्वयं आचरण करके जगत के वासियों को शिक्षा दी, उनके पार्षदों ने भी उसी प्रकार किया—

आपनि करिमु भक्तभाव अंगीकारे।

आपनि आचरि' भक्ति शिखामु सबारे॥

आपने ना कैले धर्म शिखान ना याय।

एइ त' सिद्धान्त गीता-भागवते गाय॥

(चै. च.आ. 3/20-21)

[अर्थात स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं स्वयं भक्ति भाव को अंगीकार करूँगा तथा स्वयं भक्ति का आचरण करके लोगों को शिक्षा दूँगा। धर्म तब तक सिखाया नहीं जा सकता है जब तक स्वयं पालन न किया जाये। यह सिद्धांत ही गीता तथा भागवत गान करती है।]

श्रेष्ठ व्यक्ति जिस प्रकार आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी उसे प्रमाण मानकर, उसका अनुकरण करते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

(गीता. 3/21)

श्रीमन्महाप्रभुजी ने सनातन के प्रति खुश होकर, उनमें शक्ति का संचार किया जिससे उनमें सद् -धर्म के विषय में प्रश्न करने की योग्यता हो गई। भगवद् कृपा के बिना तत्व के विषय में परिप्रश्न और निष्कपट जिज्ञासा का उदय नहीं होता। स्वयं जो जाना है अर्थात स्वयं का जो ज्ञान है वही ठीक है, ऐसा मानकर अथवा अपना पाण्डित्य ज़ाहिर करने के लिये जो प्रश्न हो, उसे तर्क पन्था कहते हैं, उससे किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती। शरणागत होकर तत्व-वस्तु जानने के लिये निष्कपट इच्छा होने से जो प्रश्न किया जाये, उसे परिप्रश्न कहते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता 4/34)

जब मनुष्य का संसार क्षय-उन्मुख होता है अर्थात मनुष्य का जब इस जन्म-मृत्यु रूपी संसार से मुक्ति प्राप्त करने का समय आता है, तब सद्गुरु के चरण कमलों में उसके मन में किस प्रकार के प्रश्न उदित होंगे, उसे नित्यसिद्ध पार्षद श्रीसनातन गोस्वामी जी बताते हैं। श्रीमन्महाप्रभुजी के श्रीचरणों में बैठकर सनातन गोस्वामी जी अज्ञ साधकों की आहत मानसिक स्थिति में प्रश्न करके, संसार-वासियों को उनके उत्तर से अवगत करवाते हैं—

"नीच-जाति, नीच-सङ्गी, पतित अधम।

कुविषय-कूपे पड़ि' गोंवाइनु जनम॥

आपनार हिताहित किछुइ ना जानि।

ग्राम्य-व्यवहारे पण्डित, ताइ सत्य मानि॥

कृपा करि' यदि मोरे करियाछ उद्धार।

आपन-कृपाते कह 'कर्त्तव्य' आमार॥

'के आमि', 'केने आमाय जारे तापत्रय'।

इहा नाहि जानि—'केमने हित हय'॥

'साध्य'-'साधन'-तत्व, पुछिते न जानि।

कृपा करि' सब तत्व कह त' आपनि॥"

(चै. च. म. 20/99-103)

[अर्थात सनातन जी कहते हैं कि मैं नीच जाति, नीचों का संग करनेवाला, पतित हूँ व अधम हूँ। मैंने कु-विषय रूपी कुएँ में गिरकर वृथा जन्म बिता दिया है। मैं अपना हित व अहित कुछ भी नहीं जानता हूँ। साँसारिक व्यवहार में विद्वान हूँ और उसी को सत्य मानता हूँ। आपने कृपा करके जब मेरा उद्धार कर ही दिया है तो अब यह भी कृपा कर मुझे बता दीजिये कि मैं कौन हूँ? मुझे त्रिताप क्यों सता रहे हैं? मैं नहीं जानता कि मेरा हित कैसे होगा। मेरा क्या साधन है व क्या मेरा साध्य है? और तो और मैं तो यह पूछना भी नहीं जानता हूँ। आप ही कृपा करके सब तत्त्व मुझे बताइये।]

सनातन गोस्वामी जी का पहला प्रश्न था "मैं कौन हूँ?" श्रेय की इच्छा रखने वाले साधक के मन में सबसे पहले यही प्रश्न उठेगा। स्वरूप का निर्णय करने में भूल होगी तो, प्रयोजन को निश्चित करने में भी भूल होगी। प्रयोजन निर्धारण करने में भूल होने पर सारा परिश्रम और साधन की चेष्टा बेकार हो जाएगी।

स्वरूप के निर्णय से ही कर्त्तव्य, धर्म और स्वार्थ का निर्णय हो जाता है। देह को व्यक्ति मानकर, अपनी देह के प्रयोजन और देह सम्बन्ध युक्त दूसरी देहों के प्रयोजन में ही स्वार्थ बुद्धि होगी, उससे सम्बन्धित करने योग्य काम को ही कर्त्तव्य मानना होगा और उनके अनुकूल व प्रतिकूल विचारों से ही नीति व दुर्नीति तथा धर्म का निर्णय होगा। सूक्ष्म देह को व्यक्ति मानने से उसकी समृद्धि में ही स्वार्थ बुद्धि और दूसरे व्यक्तियों की इस विषय में सहायता करने को ही कर्त्तव्य तथा धर्म समझना होगा। जो स्थूल व सूक्ष्म दोनों देहों के अतिरिक्त, आत्मा को व्यक्ति मानते हैं, वे आत्मा की समृद्धि को और आत्मा के प्रयोजन की प्राप्ति को ही अपना स्वार्थ तथा दूसरे व्यक्तियों की आत्मा की समृद्धि की दिशा में सहायता करने को ही कर्त्तव्य और धर्म कहकर विवेचना करते हैं। परमार्थ में कुशल व्यक्ति जितने दिन स्थूल और सूक्ष्म देह धारणरूपी अवान्छित अवस्था में रहते हैं उतने दिन वे आत्मा के यथार्थ स्वरूप के स्वास्थ्य के अनुकूल ही उन दो देहों की सुविधा व सुयोग को ग्रहणकरते हैं, उसके प्रतिकूल नहीं।

श्रीमन्महाप्रभुजी ने सनातन जी को शिक्षा देते समय जीव के स्वरूप निर्णय के समय जीव को परमेश्वर कृष्ण का नित्यदास कहा तथा उनकी तटस्था शक्ति और जीव को भगवान से भेदाभेद प्रकाश कहा है। उन्होंने साध्य-साधन के निर्णय में तथा सम्बन्ध, अभिधेय व प्रयोजन निर्धारण में जो उपदेश दिये, उनसे श्रीकृष्ण ही सम्बन्ध, श्रीकृष्ण भक्ति ही अभिधेय या साधन और श्रीकृष्ण प्रेम ही प्रयोजन व साध्य रूप में निर्णीत हुये हैं—

वेदशास्त्र कहे—'सम्बन्ध', 'अभिधेय', 'प्रयोजन'।

'कृष्ण'—प्राप्य-सम्बन्ध, 'भक्ति'-प्राप्येर साधन॥

अभिधेय-नाम—'भक्ति', 'प्रेम'—प्रयोजन।

पुरुषार्थ-शिरोमणि प्रेम-महाधन॥

(चै. च. म. 20/124-125)

[अर्थात वेद –शास्त्र—सम्बन्ध, अभिधेय व प्रयोजन की ही बात कहते हैं, जिससे श्रीकृष्ण प्राप्य-सम्बन्ध हैं तथा उनकी प्राप्ति के लिये भक्ति ही अभिधेय (साधन) है तथा भगवद्-प्रेम ही जीव का प्रयोजन है। ये 'प्रेम ' ही पुरुषार्थों का शिरोमणि व महाधन है।]

उपरोक्त विषय की श्रील कविराज गोस्वामी ने श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ के मध्य लीला खण्ड के बीसवें से तेईसवें परिच्छेद तक बहुत से शास्त्रों से प्रमाण और युक्तियों के साथ विस्तार से चर्चा की है। श्रीसनातन गोस्वामी के चरित्र-वर्णन के बड़ा हो जाने की आशंका से, यहाँ उसका विचार विश्लेषण संक्षिप्त करना होगा।

मूल बात यही है कि ईश्वर व जीव के सम्बन्ध में भेदपरक और अभेदपरक दोनों प्रकार की श्रुति हैं। आचार्यों ने भी अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद आदि मतों का प्रचार किया है। शास्त्रों को मानने से शास्त्रों की पूरी बात माननी होगी; चूंकि सभी तो शास्त्रों की बातें हैं, शास्त्र के भेद और अभेद परक -दोनों प्रकार के ही प्रमाणों को मानना होगा। हाँ, उनका सामन्जस्य करना होगा व उनके बीच न्याय-संगत क्या रहस्य है- ये जानना जरूरी है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने सबका सामन्जस्य व अनुकूलता दिखाने के लिए अचित्यभेदाभेद के सिद्धान्त की स्थापना की, जो पृथ्वी के सभी जगहों पर समादृत हुआ है और यही नहीं, इस सिद्धान्त की स्थापना ने विश्व को हिलाकर रख दिया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रील सनातन गोस्वामी को चार प्रकार की सेवा प्रदान की थी—

1. शुद्धभक्ति शास्त्रों का प्रचार व शुद्धभक्ति के सिद्धान्तों की स्थापना।

2. लुप्त तीर्थों का उद्धार

3. श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण सेवा का प्रकाश।

4. वैष्णव आचार, वैष्णव स्मृति-ग्रन्थों के संकलन पूर्वक वैष्णवों के सदाचार का प्रवर्त्तन तथा प्रचार एवं वैष्णव समाज की स्थापना करना।

तुमि करिह भक्तिशास्त्रेर प्रचार।

मथुराय लुप्ततीर्थेर करिह उद्धार॥

वृन्दावने कृष्णसेवा, वैष्णव-आचार।

भक्तिस्मृतिशास्त्र करि’ करिह प्रचार॥

(चै. च. म. 23/ 97-98)

श्रील सनातन गोस्वामी जी ने शुद्धभक्ति सिद्धान्तों की स्थापना के लिये और वैष्णव सदाचार के प्रवर्त्तन के लिए इन चार ग्रन्थ रत्नों की रचना की: –

1. हरिभक्ति विलास की टीका दिग्दर्शिनी

2. दशम स्कन्ध की टीका और वृहद् वैष्णव तोषणी

3. लीला स्तव या दशम चरित

4. वृहद् भागवतामृत (टीका सहित भागवतामृत के दो खण्ड)

उन्होंने ब्रजमण्डल में लुप्त तीर्थों का उद्धार और वृन्दावन में श्रीराधा मदन मोहन जी के श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश किया। वैष्णव स्मृति-वैष्णवों के लौकिक आचरण से सम्बन्धित व्यवहारिक शास्त्र-'श्रीहरिभक्ति विलास' ग्रन्थ की रचना की। वैसे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में खुद श्रीमन्महाप्रभु जी ने सूत्रों के रूप में सनातन गोस्वामी जी को समझा दिया था।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(भा. 1/7/10)

श्रीमन्महाप्रभुजी ने श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की, वासुदेव सार्वभौम के पास अठारह प्रकार से व्याख्या की थी। श्रीसनातन गोस्वामी जी द्वारा इसी श्लोक की व्याख्या सुनाने के लिए प्रार्थना किये जाने पर श्रीमन्महाप्रभु ने इसी श्लोक की इकसठ प्रकार से व्याख्या की थी।

इस के बाद श्रीमन्महाप्रभुजी ने मायावादी श्रीप्रकाशानन्द आदि काशी निवासी संन्यासियों को वैष्णव बनाकर, श्रील सनातन गोस्वामी को उत्तम रूप से संस्कार देकर वृन्दावन जाने का आदेश दिया तथा स्वयं निर्जन वन के रास्ते पुरी को प्रस्थान किया। श्रीसनातन गोस्वामी का राजकीय मार्ग से वृन्दावन पहुँचने पर सुबुद्धि राय के साथ साक्षात्कार हुआ। उस समय सुबुद्धि राय जी, महाप्रभुजी के उपदेश से हरिनाम संकीर्तन रूपी प्रायश्चित कर रहे थे व सूखी लकड़ियाँ बेच कर, बहुत ही कष्ट से अपना जीवन निर्वाह और वैष्णवों की सेवा की व्यवस्था करते थे। श्रील सनातन गोस्वामी ने सुबुद्धि राय और सनोड़िया ब्राह्मण के साथ श्रीव्रजमण्डल के बारह वनों का भ्रमण किया था। उन्हें, उन (सुबुद्धि राय आदि) से ही पता चला कि श्रीरूप गोस्वामी और अनुपम, बारह वनों की परिक्रमा के बाद, गंगा के किनारे वाले रास्ते से बंगाल को चले गये हैं।

महाप्रभुजी की व्रजमण्डल यात्रा के समय, आरिट ग्राम में, राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की खोज होने के बाद, गोवर्धन में, हरिदेव के दर्शन के पश्चात इच्छा जागृत हुई कि वे गोवर्धन धारी गोपाल देव के दर्शन करेंगे। गोपाल गोवर्धन पर्वत के ऊपर विराजमान हैं। श्रीमन्महाप्रभु गोवर्धन पर्वत के ऊपर चढ़कर दर्शन नहीं करेंगे, वे ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय गोपाल ने म्लेच्छों का भय पैदा कर दिया और भक्तों के माध्यम से गांठोली ग्राम में आ गये, जिससे महाप्रभुजी उनके दर्शन प्राप्त कर सकें। बीच-बीच में गोपाल देव इसी प्रकार गोवर्धन से गांठोली ग्राम जाने की लीला

करते रहते थे। श्रीसनातन गोस्वामी जी को भी, उसी प्रकार गांठोली में गोपाल के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावन से यात्रा आरम्भ करके बंगाल में विलम्ब से पहुँचे जिस कारण वे गौड़ीय भक्तों के साथ नीलाचल न जा पाये। इसलिये वे कुछ दिन बाद नीलाचल पहुँचकर हरिदास ठाकुर जी से मिले और उनके साथ रहने लगे उस समय में श्रीमन्महाप्रभु जी के द्वारा श्रीसनातन गोस्वामी के विषय में पूछने पर, रूप गोस्वामी जी ने उन्हें बताया कि वे प्रयाग से गंगा के किनारे वाले रास्ते से आने के कारण, श्रीसनातन गोस्वामी जी से मिल नहीं पाये।

श्रीसनातन गोस्वामी जी, व्रजमण्डल की परिक्रमा के बाद, मथुरा मण्डल से अकेले ही झारीखण्ड के रास्ते नीलाचल की यात्रा पर निकले। रास्ते में पानी की खराबी के कारण उनको खुजली (कण्डूरसा की बीमारी) हो गई। उन्होंने रास्ते में दीनता और वैराग्य से युक्त होकर सोचा कि उन्होंने तो यवनों के अधीन रहकर नौकरी की है, अतः वे नीच जाति के हैं, उनका शरीर घिनौना है। जगन्नाथजी के दर्शन के लिये और महाप्रभुजी के जगन्नाथ मन्दिर के निकट रहने के कारण उन्हें उनके दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं होगा। अत: जगन्नाथ जी के मन्दिर के आसपास आने जाने व रहने से जगन्नाथ के सेवकों का स्पर्श होने पर भी अपराध होगा। इसलिए, हरिदास ठाकुर जी के पास आकर उन्होंने उनके चरणों की वन्दना की। हरिदास ठाकुर जी ने उनका आलिंगन किया तथा वे वहीं हरिदास ठाकुर जी के साथ रहने लगे।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब हरिदास ठाकुर जी को दर्शन देने आए तो महाप्रभु के दर्शन करके श्रीसनातन गोस्वामी जी कृतकृतार्थ हो गये। महाप्रभुजी विभोर होकर सनातन गोस्वामी जी का आलिंगन करने के लिए आगे बढ़े परन्तु श्रीसनातन गोस्वामी जी अपने को अपवित्र समझकर दूर-दूर सरकने लगे, महाप्रभु जी, सनातन जी के भाव को समझ गये परन्तु अपने भक्त वात्सल्य को वे संवरण न कर पाये और सनातन जी के संकोच करने पर भी महाप्रभु जी ने उनका आलिंगन कर लिया। महाप्रभुजी के श्रीअंगों में खुजली के घावों का मवाद लग गया जिसे देखकर श्रीसनातन का हृदय विदीर्ण हो गया। इसी समय महाप्रभु जी ने सनातन जी को रूप गोस्वामी तथा अनुपम की खबर सुनायी, साथ ही उन्होंने महाप्रभुजी जी को अनुपम की इष्टनिष्ठा और उनकी रघुनाथ धाम प्राप्ति की बात भी बताई।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब भी हरिदास जी की कुटिया पर आते तो सनातन गोस्वामी जी को आलिंगन करते। पुनः उसी प्रकार सनातन जी के शरीर से निकलता मवाद महाप्रभु जी के दिव्य शरीर पर लग जाता। तब सनातन जी ने मन ही मन विचार किया कि महाप्रभु जी तो आलिंगन से रुकेंगे नहीं। मेरा तो अपराध होता है, अतः जगन्नाथ जी के रथ के आगे जब महाप्रभु नृत्य कीर्तन कर रहे होंगे तब मैं रथ के पहिये के नीचे आकर अपने शरीर को त्याग दूँगा। अपने संकल्प को उन्होंने किसी से नहीं कहा परन्तु एक दिन अन्तर्यामी महाप्रभु जी, सनातन गोस्वामी जी के हृदय की बात जानकर,अचानक उनको लक्ष्य करके कहने लगे—

सनातन, देहत्यागे कृष्ण यदि पाइये।

कोटि-देह क्षणेके तबे छाड़िते पारिये॥

देहत्यागे कृष्ण ना पाइ, पाइये भजने।

कृष्णप्राप्त्येर उपाय कोन नाहि 'भक्ति' बिने॥

(चै. च. अ. 4/55-56)

[महाप्रभु जी कहते हैं—सनातन, यदि देहत्याग करने से श्रीकृष्ण प्राप्ति होती तो इसी क्षण मैं करोड़ों देह परित्याग कर सकता हूँ। अतः ये बात समझ लो कि देह त्याग से कृष्ण नहीं मिलते हैं, वे मिलते हैं—भजन से। भक्ति के बिना श्रीकृष्ण को प्राप्त करने का और कोई उपाय नहीं है।]

इस प्रसंग में महाप्रभुजी ने श्रीसनातन गोस्वामी जी के माध्यम से यह शिक्षा दी कि देह त्याग रूपी तमोधर्म से भगवान् की प्राप्ति नहीं होती। एक मात्र शुद्धभक्ति के अनुशीलन द्वारा ही भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है। भजन में श्रेष्ठ है नवविधा भक्ति और उसमें भी सर्वश्रेष्ठ है नाम संकीर्तन। अन्त में यह बतलाने के लिये कि श्रीसनातन गोस्वामी उनको कितने प्रिय हैं, महाप्रभु जी बोले—

प्रभु कहे,—"तोमार देह मोर निज-धन।

तुमि मोरे कैराछ आत्मसमर्पण॥

परेर द्रव्य तुमि केने चाह विनाशिते?

धर्माधर्म-विचार किबा ना पार करिते??

तोमार शरीर—मोर प्रधान 'साधन'।

ए शरीरे साधिमु आमि बहु प्रयोजन॥

(चै. च. अ. 4/76-78)

[अर्थात् महाप्रभुजी कहते हैं कि तुम्हारी देह मेरा निजी धन है। तुमने मुझे आत्मसमर्पण किया है, इसलिये दूसरे की वस्तु आप कैसे नाश कर सकते हो? क्या तुम धर्म तथा अधर्म का विचार नहीं कर पाते हो? तुम्हारा शरीर तो मेरा प्रधान साधन है, तुम्हारे इस शरीर से मैं अपने बहुत से प्रयोजन सिद्ध करूँगा।]

चौमासे में गौड़देश और उड़ीसा के भक्त पुरुषोत्तम धाम में आकर श्रीसनातन गोस्वामी के साथ मिले। रथ यात्रा में रथ के आगे महाप्रभुजी का नृत्य देखकर श्रीसनातन गोस्वामी जी हैरान रह गये। चौमासे के बाद श्रीगौड़ीय वैष्णवों की गौड़देश को वापिसी के बाद, सनातन गोस्वामी जी पुरी में ही रहने लगे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने ज्येष्ठ मास में कुछ दिन टोटा में निवास किया था। श्रीमन्महाप्रभुजी ने मध्याह्न के समय सनातन गोस्वामी जी को वहाँ आने के लिये कहा तो, श्रीसनातन गोस्वामी जी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ, जगन्नाथ मन्दिर के सामने वाले सिंह द्वार के रास्ते से न जाकर, दोपहर के समय समुद्र की गर्म रेत पर चलकर महाप्रभुजी के सन्मुख उपस्थित हुये। देह का ज्ञान न होने के कारण, पाँवों में पड़े हुए फफोलों को भी वे महसूस न कर सके। उनके पैरों में गर्म रेत से जलने के कारण कब फफोले पड़ गये, इसका सनातन जी को भान ही नहीं हुआ। महाप्रभुजी द्वारा सिंहद्वार से न आने का कारण पूछे जाने पर, श्रीसनातन गोस्वामीजी बोले—

सिंहद्वारे याइते मोर नाहि अधिकार।

विशेष-ठाकुरेर ताँहा सेवक प्रचार॥

सेवक गतागति करे, नाहि अवसर।

ताँर स्पर्श हैले, सर्वनाश हबे मोर॥ (चै. च. अ. 4/126-127)

[अर्थात सनातन जी बोले कि सिंहद्वार पर जाने का मुझे अधिकार नहीं है। वहाँ ठाकुर जगन्नाथ जी के विशेष सेवकों का आना-जाना लगा रहता है। वहाँ कोई समय ऐसा नहीं जब वहाँ सेवक इधर-उधर न जा रहे हों। दुर्भाग्य से यदि कभी मेरा उनसे स्पर्श हो जायेगा तो मेरा तो सर्वनाश ही हो जायेगा।]

श्रीमन्महाप्रभु जी, श्रीसनातन के दीनतापूर्ण और मर्यादापूर्ण वचन सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए तथा बोले—

"यद्यपिओ तुमि हओ जगत् पावन।

तोमा स्पर्शे पवित्र हय देव-मुनिगण॥

तथापि भक्त-स्वभाव—मर्यादा-रक्षण।

मर्यादा पालन हय साधुर भूषण॥

मर्यादा-लङ्घने लोक करे उपहास।

इहलोक, परलोक—दुइ हय नाश॥

मर्यादा राखिले, तुष्ट हय मोर मन।

तुमि ऐछे ना करिले, करे कोन् जन??॥"

(चै.च. अ. 4/129-132)

[अर्थात यद्यपि तुम जगत को पवित्र करने वाले हो, आपका स्पर्श पाकर देवता व मुनि भी पवित्र हो जाते हैं, तब भी मर्यादा की रक्षा करना भक्त का स्वभाव है। मर्यादा को पालन करना ही साधुओं का आभूषण है। मर्यादा का उल्लंघन करने पर लोग हंसी उड़ाते हैं। लोक और परलोक दोनों ही नाश हो जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि मर्यादा पालन करने से मेरा मन प्रसन्न होता है। हाँ यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो भला कौन ऐसा करेगा?]

महाप्रभुजी के पुनः-पुनः आलिंगन करने से, सनातन के शरीर की खुजली के घावों का रस (मवाद) बार –बार महाप्रभुजी के श्रीअंगों में लग जाता था, इसलिए एक दिन श्रीसनातन जी ने, जगदानन्द पण्डित से बातचीत करते हुए इस असुविधा के विषय में निवेदन किया तथा इस अपराध से छुटकारे का उपाय पूछा तो जगदानन्द जी ने उनको वृन्दावन चले जाने का परामर्श दिया।

श्रीमन्महाप्रभुजी द्वारा फिर हरिदास ठाकुर के स्थान पर आकर, जोर से श्रीसनातन गोस्वामी का आलिंगन करने पर श्रीसनातन गोस्वामी ने बहुत ही अनिच्छा से महाप्रभुजी को अपना दुःख निवेदित किया। उन्होंने कहा कि "मैंने अपना दुःख जगदानन्द जी के पास व्यक्त किया था। उन्हें मैंने कहा कि मेरा पुरी में आना तो गुरुतर अपराध का कारण ही बन गया है। पुनः-पुनः मेरे गन्दे, खुजली के मवाद से युक्त शरीर का स्पर्श आपके श्रीअंगों से होता है, मेरे निवेदन करने पर, समाधान के रूप में जगदानन्द जी ने आपसे वृन्दावन जाने की आज्ञा लेने की सलाह दी।

यह सुनकर महाप्रभु जी क्रोधित हो गये और क्रुद्ध होकर बोले—

"कालिकार बटुया जगा ऐछे गर्वी हैल।

तोमा सबारेह उपदेश करिते लागिल?

व्यवहारे-परमार्थे तुमि—तार गुरु-तुल्य।

तोमारे उपदेश करे, ना जाने आपन-मूल्य??॥

आमार उपदेष्टा तुमि—प्रामाणिक आर्य।

तोमारेह उपदेशे बालका—करे ऐछे कार्य॥

(चै. च. अ. 4/158-160)

[अर्थात कल का छोकरा जगदानन्द ऐसा घमण्डी हो गया है कि तुमको उपदेश करने लगा है? परमार्थ में तथा व्यवहार में तुम उसके गुरु के समान हो। वह आपको उपदेश करता है, अपना मूल्य नहीं जानता? तुम तो प्रामाणिक सज्जन हो व मेरे भी उपदेष्टा हो, ये बालक ऐसा कार्य करता है कि आपको उपदेश करने लग गया है।]

जगदानन्द के प्रति महाप्रभु जी के ऐसे शासन पूर्ण वाक्य सुनकर श्रील सनातन गोस्वामी जी ने, जगदानन्द के सौभाग्य को सराहते हुये कहा—

जगदानन्दे पियाओ आत्मीयता-सुधारस।

मोरे पियाओ गौरव स्तुति-निम्ब-निशिन्दा-रस॥

(चै. च. अ. 4/163)

अर्थात् तुम जगदानन्द जी को आत्मीयता रूपी अमृत का पान करवाते हो जबकि मुझे सम्मान रूपी कड़वा पिलाते हो। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद जी ने अनुभाष्य में इस प्रकार लिखा है-जिसकी जितनी मर्यादा है, उसका अतिक्रमण करके, अपने को बड़ा समझकर, अपने से श्रेष्ठ सम्माननीय पात्र को परामर्श देने रूपी कार्य को महाप्रभु जी ने उत्साह नहीं दिया। यहाँ तक की उम्र में छोटे जगदानन्द जी जैसे के व्यवहार का भी महाप्रभु जी ने अनुमोदन नहीं किया। श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रीसनातन गोस्वामी के अप्राकृत शरीर को प्राकृत बुद्धि से देखने की भी मनाही की—

तोमार देह तुमि कर वीभत्स-ज्ञान।

तोमर देह आमारे लागे अमृत-समान॥

अप्राकृत-देह तोमार 'प्राकृत' कभु नय।

तथापि तोमार ताते प्राकृत-बुद्धि हय॥ (चै. च. अ. 4/172-173)

[अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं हे सनातन! तुम अपनी देह को घृणित समझ रहे हो परन्तु तुम्हारी देह तो मुझे अमृत के समान लगती है। आपकी देह तो अप्राकृत है, यह प्राकृत कभी भी नहीं हो सकती। तब भी आपकी इस देह के प्रति प्राकृत बुद्धि रही है।]

श्रीसनातन जी के प्रति महाप्रभु जी ने जिन प्रशंसा वाक्यों को कहा उसे सनातन जी ने अस्वीकार कर दिया। सनातन जी द्वारा प्रशंसा वाक्यों को अस्वीकार करने पर, श्रीमान्महाप्रभु ने सनातन जी को दोबारा समझाते हुये कहा–

तोमारे ‘लाल्य’, आपनाके ‘लालक’-अभिमान।

लालकेर लाल्ये नहे दोष-परिज्ञान॥

आपनारे हय मोर अमान्य समान।

तोमा-सबारे करों मुञि –बालक-अभिमान॥

मातार जैछे बालकेर ‘अमेध्य’ लागे गाय।

घृणा नाहि जन्मे, आर महासुख पाय॥

प्रभु कहे,—“वैष्णव-देह ‘प्राकृत’ कभु नय।

‘अप्राकृत’ देह भक्तेर ‘चिदानन्दमय’॥

दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण।

सेईकाले कृष्ण तारे करे आत्मसम॥

सेई देह करे तार चिदानन्दमय।

अप्राकृत-देहे ताँर चरण भजय॥

सनातनेर देहे कृष्ण कण्डु उपजाञा।

आमा परीक्षिते इँहा दिला पाठाञा॥

घृणा करि’ आलिङ्गन ना करिताम यबे।

कृष्ण-ठाञि अपराधी हइताम तबे॥

पारिषद-देहे एइ, ना हय दूर्गन्ध।

प्रथम दिवसे पाइलुँ चतुः सम-गन्ध॥

(चै. च. अ. 4/184-186,191-193,195-197)

[अर्थात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी सनातन जी को कहते हैं—हे सनातन ! मैं आपको लाल्य और अपने को लालक समझता हूँ। लालक कभी भी लाल्य के दोषों के प्रति ध्यान नहीं देता। क्योंकि आपके प्रति मेरा अपनापन है, इसलिए मैं आप सबको अपना बच्चा समझता हूँ। जैसे बालक के शरीर पर यदि कोई अपवित्र वस्तु भी लग जाये तो माता उससे घृणा नहीं करती है, वरन् बच्चे का आलिंगन करके उससे महासुख का अनुभव करती है। महाप्रभु जी कहते हैं कि वैष्णव की देह प्राकृत कभी नहीं होती है। भक्त की देह अप्राकृत तथा चिदानन्दमय होती है। दीक्षा के समय भक्त आत्म समर्पण करता है, आत्म-समर्पण के साथ ही साथ श्रीकृष्ण उसी समय उसको आत्म-सम कर लेते हैं तथा भक्त की उस देह को चिदानन्दमय कर देते हैं। अप्राकृत देह के प्राप्त हो जाने के बाद तब वह भक्त उस अप्राकृत देह से श्रीकृष्ण के चरणों का भजन करता है।

भक्त भाव में विभावित होकर तभी महाप्रभु जी कहने लगते हैं कि श्रीसनातन जी की देह पर श्रीकृष्ण ने कण्डू रस (एक प्रकार की खुजली) को उत्पन्न करके उसे मेरी परीक्षा के लिए यहाँ भेज दिया है। यदि मैं इसे घृणा करके श्रीसनातन का आलिंगन न करता तो मैं श्रीकृष्ण के सम्मुख अपराधी बन जाता। फिर सनातन जी की देह तो पार्षद देह है, इसमें दुर्गन्ध नहीं है। पहले दिन ही इसमें मैंने चतुःसम (चन्दन, कपूर, कस्तूरी और कुमकुम) की गन्ध पायी थी।]

इस बार महाप्रभु द्वारा आलिंगन करने पर, साथ-साथ श्रीसनातन जी के शरीर की तमाम खुजली अदृश्य हो गई और उनका शरीर सोने की भाँति हो गया।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने सनातनजी को उस वर्ष पुरी में रहने का तथा उससे अगले वर्ष वृन्दावन जाने का आदेश दिया। दोल यात्रा की समाप्ति पर श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन् महाप्रभु से विदा लेकर जंगलों के रास्तों से होकर वृन्दावन पहुँच गये। बाद में श्रीरूप गोस्वामी भी वृन्दावन में आ पहुँचे।

परवर्ती काल में श्रीजगजानन्द जी महाप्रभुजी की आज्ञा लेकर मथुरा में सनातन गोस्वामी से मिले। जगदानन्द जी से मिलकर सनातन गोस्वामीजी आनन्दित हुए। उन्होंने जगदानन्द जी को साथ लेकर बारह वनों का भ्रमण किया। गोकुल वास के समय श्रीसनातन गोस्वामी की चेष्टा से, जगदानन्द पण्डित भी वहाँ रहे, पर दोनों अलग-अलग से खाना खाते थे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने अमृत प्रवाह भाष्य में लिखा है कि श्रीसनातन गोस्वामी ने तो तब तक माधुकरी भिक्षा से प्राप्त रोटी का टुकड़ा खाकर जीवन निर्वाह करना सीख लिया था परन्तु जगदानन्द पण्डित जी कहते कि भात (चावल) खाये बिना मेरा गुज़ारा मुश्किल है। अतः वे देवालय में जाकर खाना बनाते। व्रज के देवालयों (मन्दिरों) में दाल-भात का प्रसाद नहीं होता।

एक दिन जगदानन्द पण्डित जी ने श्रीसनातन जी को प्रसाद पाने के लिए निमन्त्रित किया तथा श्रीसनातन गोस्वामी जी, जगदानन्द पण्डित जी की अदभुत चैतन्य निष्ठा प्रकट करवाने के लिए मुकुन्द सरस्वती द्वारा दिये हुए लाल कपड़े को मस्तक पर धारणकरके जगदानन्द जी के पास पहुँचे। जगदानन्द पण्डित जी को जब पता चला कि वह वस्त्र महाप्रभु जी का दिया हुआ नहीं था तब वे भात की हाँडी लेकर सनातन जी को मारने के लिए तैयार हो गये और बोले—

"तुमि महाप्रभुर हओ पार्षद-प्रधान।

तोमा-सम महाप्रभुर प्रिय नाहि आन॥

अन्य सन्यासीर वस्त्र तुमि धर शिरे।

कोन् ऐछे हय,—इहा पारे सहिवारे??"॥ (चै. च. अ.13/56-57)

अर्थात् जगदानन्द जी क्रोधित से होकर सनातन जी से बोले आप महाप्रभुजी के प्रधान पार्षद हो। आप के समान महाप्रभुजी का प्रिय और कोई नहीं है। किसी दूसरे संन्यासी का वस्त्र आप सिर पर धारणकर रहे हो, कौन ऐसा है जो इस को सहन कर सकेगा?

श्रीसनातन गोस्वामी जी जगदानन्द पण्डित जी की गौर-प्रेम निष्ठा की प्रशंसा करते हुए बोले—

सनातन कहे,—"साधु पण्डित-महाशय।

तोमा-सम चैतन्येर प्रिय केह नय॥

ऐछे चैतन्य निष्ठा योग्य तोमाते।

तुमि ना देखाइले इहा शिखिमु केमते??॥

याहा देखिबारे वस्त्र मस्तके बान्धिलुँ।

सेइ अपूर्व प्रेम एइ प्रत्यक्ष देखिलुँ॥

रक्तवस्त्र 'वैष्णवेर' परिते ना युयाय।

कोन प्रवासीरे दिमु, कि काज उहाय??"॥

(चै. च. अ. 13/58-60)

श्रीसनातन जी कहते हैं-हे साधु पण्डित महाशय! आप के समान श्रीचैतन्य का प्रिय कोई नहीं है। ऐसी श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के प्रति निष्ठा तो आपके ही योग्य है। यदि आप ऐसी निष्ठा नहीं दिखाओगे तो मैं कैसे सीखूँगा? जिस निष्ठा को देखने के लिए मैंने यह वस्त्र सिर पर बान्धा था, वह अपूर्व प्रेम मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है। खून की तरह लाल रंग के वस्त्र को कोई वैष्णव पहने तो उसे उपयुक्त नहीं लगता। किसी प्रवासी को मैं ये दे दूँगा, मेरे भला ये क्या काम आयेगा?

इस प्रकार व्रज में दो महीने रह कर श्रीमन्महाप्रभु जी का विरह न सह सकने पर श्रीजगदानन्द पण्डित सनातन गोस्वामी जी से विदा लेकर पुरी वापिस चले आये। श्रीसनातन गोस्वामी जी से विदा लेते समय जगदानन्द जी व्याकुल हो गए। महाप्रभु जी को देने के लिए सनातन जी ने जगदानन्द जी को व्रज की रास स्थली की बालु, गोवर्धन की शिला, शुष्क पके हुए पीलू फल और गुंजा माला दी। श्रीजगदानन्द पण्डित ने पुरी में पहुँच कर श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा दिए हुए पदार्थ महाप्रभुजी को दिए। श्रीमन्महाप्रभु और भक्तों ने वृन्दावन के पीलू फल बड़े आदर के साथ खाये।

श्रीसनातन गोस्वामी जी ने वृन्दावन में द्वादश आदित्य टीले पर मठ की स्थापना करने का निश्चय किया तथा वहाँ पर बाद में श्रीराधा मदनमोहन जी के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। ऐसा कहा जाता है कि सुलतान के धनवान क्षत्रिय श्रीकृष्णदास कपूर ने श्रीमदन मोहन मन्दिर और रसोई घर आदि वगैरह का निर्माण और रोज़ाना सेवा की व्यवस्था कर दी थी। वे बाद में श्रील सनातन गोस्वामी के चरणाश्रित भी हो गए थे।

श्रीमन्महाप्रभु के निर्देश के अनुसार, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी वृन्दावन में आकर श्रीरूप गोस्वामी व श्रीसनातन गोस्वामी जी के साथ ठहरे थे और अपने मधुर कण्ठ से उनको प्रतिदिन श्रीमद्भागवत सुनाते थे। गोकुल महावन में उनके प्रवास के समय श्रील सनातन गोस्वामी ने रमणरेति पर अन्यान्य गोप बालकों के साथ मदन गोपाल जी को क्रीड़ा करते हुए देखा था। श्रील नरहरि चक्रवर्ती ठाकुर जी ने श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में उस का बहुत सुन्दर रूप से वर्णन किया है—

अहे श्रीनिवास! स्थान करह दर्शन।

एइखाने छिलेन गोस्वामी सनातन॥

महावन वासी यत लोक भाग्यवान।

सनातने देखिले सबे पाय प्राण॥

सनातन मदन गोपाल दर्शने।
महासुखे पाइया रहये महावने॥
रमणक बालु एइ यमुनार तीरे।
एथा रंगे मदन गोपाल क्रीड़ा करे॥
एक दिन महावन वासी शिशु सने।
गोप शिशु रूप आइला एइ दिव्य पुलिने॥
नाना खेला खेलये ता देखि सनातन।
मने विचारये ए सामान्य शिशु नन॥
खेल, सांग करि शिशु गमन करिते।
सनातन चलिलेन ताहार पश्चाते॥
मन्दिर प्रवेशे शिशु, तथा सनातन।
शिशु न देखिया! देखे मदन मोहन॥
सनातन मदन गोपाल प्रणमिया।
आइलेन वासा घरे किछु ना कहिया॥
गोस्वामीर प्रेमाधीन मदन गोपाल।
व्यापिल जगते याँर चरित्र रसाल॥

(भक्ति रत्नाकर ५/१७२-१८६)

अर्थात हे श्रीनिवास! इस स्थान के दर्शन करो, यहां पर श्रीसनातन गोस्वामी जी थे। महावन में रहने वाले जितने भी भाग्यवान लोग थे वह सभी सनातन जी को देखकर नव जीवन प्राप्त करते थे। श्रीसनातन जी महावन में रहकर मदन गोपाल जी के दर्शन करके महासुख प्राप्त करते थे, यहाँ पर श्रीमदन गोपाल जी आनन्द से क्रीड़ा करते हैं। एक दिन महावनवासी बालकों के साथ एक शिशु गोपशिशु के रूप में इस दिव्य पुलिन पर आया और यहाँ पर नाना प्रकार के खेल खेलने लगा। ये सारा कुछ सनातन जी देख रहे थे और मन में विचार कर रहे थे कि यह कोई साधारण बालक नहीं है। खेल खेलने के पश्चात् वह बालक चल पड़ा। श्रीसनातन जी भी उसके पीछे पीछे चल पड़े। बालक ने मन्दिर में प्रवेश किया, श्रीसनातन जी ने भी प्रवेश किया। परन्तु वहाँ बालक को न देखकर श्रीमदन गोपाल जी को ही देखा। श्रीसनातन जी ने भगवान मदनगोपाल जी को प्रणाम किया और बिना कुछ कहे ही अपने घर आ गये। मदन गोपाल जी तो श्रीसनातन गोस्वामी जी के प्रेम के आधीन हैं, उन्होंने ही सारे जगत में उनके रसमय चरित्र का प्रचार किया है]

श्रीसनातन गोस्वामी जब गोवर्धन में थे तो अयाचित भाव से प्रतिदिन गिरिराज की परिक्रमा करते थे। धीरे – धीरे वृद्ध होनेपर, वे गोवर्धन की परिक्रमा करते हुए थक जाते थे। उन की थकावट देखकर एक दिन गोपीनाथजी ने

गोप बालक के रूप में उन के पास आकर उनको हवा करके, उनकी थकावट दूर की। उसी गोप बालक ने गोवर्धन पर चढ़ कर श्रीकृष्ण के चरणों से चिन्हित एक शिला लाकर श्रील सनातन गोस्वामी को दी और यह कह कर अन्तर्धान हो गए कि आप बूढ़े हो गए हैं, इतना परिश्रम क्यों करते हैं, मैं आपको यह गोवर्धन शिला दे रहा हूँ। इस की प्रतिदिन परिक्रमा करने से ही आप की गिरिराज जी की परिक्रमा हो जाया करेगी।" गोप बालक को न देख पाकर सनातन गोस्वामी जी रोने लगे। यह प्रसंग भक्तिरत्नाकर के पाँचवें तरंग में वर्णित है। इस स्थान का नाम चक्रतीर्थ है। मानसी गंगा के उत्तर तट पर चक्रेश्वर महादेव (चलित भाषा में चाक्लेश्वर महादेव स्थित है। उस के सामने एक प्राचीन नीम का पेड़ है, इसी नीम के वृक्ष के नीचे श्रील सनातन गोस्वामी की भजन कुटीर थी।) उसके उत्तर में एक मन्दिर में गौर नित्यानन्द की मूर्तियाँ है। श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा सेवित गोवर्धन शिला आजकल वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मन्दिर में विराजमान है। इनकी महिमा इस प्रकार भी सुनी जाती है कि श्रीसनातन गोस्वामी जी जब वहाँ रहकर भजन करते थे तब वहाँ मच्छरों का खूब प्रकोप था। मच्छरों के उपद्रव से हरिनाम करने और ग्रन्थ लिखने में बहुत विघ्न होने पर, श्रीसनातन गोस्वामी ने कहीं और चले जाने का निश्चय कर लिया। उसी दिन रात को चक्रेश्वर महादेव ने स्वप्न में उनसे कहा कि उनको कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए। वे निर्विघ्न भजन करें, अब उनको यह मच्छर परेशान नहीं करेंगे। इस अद्‌भुत घटना के दूसरे दिन से वहाँ कोई भी मच्छर नहीं था।

श्रील सनातन गोस्वामी जी ने नन्द ग्राम के पावन सरोवर के तट पर स्थित कुटिया में रह कर भजन किया था। यहाँ पर ही बालक के रूप में श्रीकृष्ण ने उनको दूध दिया था और कुटिया का निर्माण करके रहने का आदेश दिया था। इसी स्थान पर श्रीरूप गोस्वामी द्वारा श्रीसनातन को खीर का भोजन करवाने की इच्छा करने पर, श्रीमति राधारानी ने एक गोप बालिका के वेश में खीर की सामग्री घी, दूध, चावल व चीनी आदि सब कुछ दिया था।

श्रीरूप गोस्वामी जी ने खीर का भोग लगा कर सनातन गोस्वामी जी को प्रसाद रूप से दी। सनातन गोस्वामी जी ने बड़े प्यार से खीर खायी और उसे खाकर बहुत तृप्ति पाई। श्रीसनातन गोस्वामी जी ने श्रील रूप गोस्वामी जी से पूछा कि वे खीर का सामान कहाँ से लाये थे। श्रील रूप गोस्वामी जी द्वारा सारा वृतान्त सुनाने पर श्रील सनातन गोस्वामी जी जान गए कि श्रीमति राधारानी को कष्ट दिया गया है तथा राधा रानी ही रूप गोस्वामी की इच्छा पूरी करने के लिए गोप बालिका के रूप में खीर का सामान लेकर आयी थीं। इसलिए उन्होंने दोबारा ऐसा करने से श्रीरूप गोस्वामी जी को मना कर दिया।

श्रीसनातन गोस्वामी जी से सम्बन्धित एक अन्य घटना की बात भी सुनी जाती है।

एक बहुत ही गरीब शिव भक्त ब्राह्मण थे।* उन्होंने गरीबी के कारण शिवजी से धन के लिए प्रार्थना की— शिवजी ने उसको स्वप्न में आदेश दिया कि वृन्दावन में सनातन गोस्वामी के पास धन है। वह उनके पास जाये, उसे उनके पास जाकर धन मिलेगा। दरिद्र ब्राह्मण स्वप्न के आदेश के अनुसार वृन्दावन गए और श्रीसनातन गोस्वामी के पास पहुँचे, किन्तु सनातन गोस्वामी के मैले कपड़े व उनके कमज़ोर शरीर को देखकर उन्हें यह विश्वास न हो सका कि वे धन दे पायेंगे। फिर भी स्वप्न के आदेश की बात उन्होंने सनातन गोस्वामी जी से निवेदित की। यह बात सुनकर श्रील सनातन गोस्वामी को लगा मानों आकाश से गिर पड़े हों और वे बोले कि वे तो माधुकरी भिक्षा करके किसी प्रकार जीवन धारणकरते हैं। उनके पास भला धन कहाँ है?

गरीब ब्राह्मण दुःखी होकर वापिस चले गए और मन ही मन सोचने लगे कि शिवजी के स्वप्न आदेश में अवश्य ही भूल हो गई होगी। इधर श्रीसनातन गोस्वामी ये सोचकर विस्मित हुए कि शिवजी महाराज जी ने इस ब्राह्मण को उनके पास क्यों भेजा? बहुत सोचने पर उनके मन में एक स्पर्शमणि की बात आई, जो मैली तुच्छ वस्तुओं के नीचे गाढ़ी हुई थी। मन में आने पर उन्होंने लोगों को भेज कर ब्राह्मण को बुलवा भेजा और उन्हें उन वस्तुओं के भीतर से वह स्पर्श

मणि ले लेने को कहा। उसे पाकर वह ब्राह्मण बहुत ही आनन्दित हुआ। उसे लगा कि अब उस जैसा धनवान और कोई सारी पृथ्वी पर नहीं होगा लेकिन कुछ दूर जाने पर ब्राह्मण सोचने लगा कि इतनी बड़ी मूल्यवान वस्तु की बात, श्रीसनातन गोस्वामी जी के मन में नहीं थी, इसका अर्थ उनके पास कुछ और मूल्यवान धन भी होगा जिस से वह वन्चित रह रहा है। उन्होंने कौन से धन से धनी होकर मूल्यवान मणि को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार सोचकर ब्राह्मण ने दोबारा वापिस आकर श्रीसनातन गोस्वामी जी से अपना सन्देह व्यक्त करते हुए पूछा कि तुम्हारे पास अवश्य ही और भी कोई मूल्यवान धन है, जिसके कारण तुम ने स्पर्श मणि त्याग दी है। तब श्रीसनातन गोस्वामी जी ने ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के प्रेम की सर्वोत्तमता और दुनियाँ के पार्थिव धन के दुःखप्रद होने की बात समझायी।

---

*'शिव भक्त ब्राह्मण:- गौड़ीय वैष्णव अभिधान में और भक्त माल ग्रन्थ में ब्राह्मण का परिचय दिया गया है। ये वर्धमान ज़िले के मानकर के निवासी श्रीजीवन चक्रवर्ती थे। बहुत दिन तक काशी धाम में शिवजी की आराधना करके धन प्राप्ति के लिए शिवजी के आदेश से वृन्दावन में श्रील सनातन गोस्वामी के पास गये थे।

ब्राह्मण ने सनातन गोस्वामी जी से इस प्रकार प्रार्थना की "ये धने हइया धनी। मणिरे मान न मणि। तार एक कण मांगि नत शिरे।" श्रीसनातन गोस्वामी जी ने उस पर कृपा करके उसे श्रीकृष्ण प्रेम का धन प्रदान किया। पुराने श्रीराधा मदन मोहन मन्दिर के पिछवाड़े में ही श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुपाद जी का समाधि मन्दिर है। श्रील सनातन गोस्वामी जी ने ब्रज मण्डल में शकाब्द 1480 (सम्वत् 1615 सन् 1558 ईसवी) में आषाढ़ी पूर्णिमा को अपनी जागतिक लीला संवरण की।

श्रीरूप-सनातन ब्रज मण्डल में किस प्रकार भजन करते थे उस का श्रीचैतन्य चरितामृत में इस प्रकार वर्णन है—

"अनिकेत दुँहे, वने यत वृक्षगण,

एक एक वृक्षेरे तले एक एक रात्रि शयन।

'विप्रगृहे' स्थूलभिक्षा, काँहा माधुकरी।

शुष्क रूटी-चाना चिबाय, भोग परिहरि॥

करोंया-मात्र हाते, काँथा, छिड़ा-बहिर्वास।

कृष्णकथा, कृष्णनाम, नर्तन-उल्लास॥

अष्टप्रहर कृष्णभजन, चारिदण्ड शयने।

नाम-सङ्कीर्तन-प्रेमे, सेह नहे कोन दिने।

कभु भक्तिरसशास्त्र करये लिखन।

चैतन्यकथा शुने, करे चैतन्य-चिन्तन॥

(चै. च. म. 19/127-131)

****

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी

"रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमञ्जरी।

कृतश्रीराधिकाकुण्ड-कुटीरवसतिः स तु॥"

(गौ. ग. दी. 185)

श्रीकृष्णलीला में जो रागमंजरी हैं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की लीला की पुष्टि के लिये वे ही षड़गोस्वामी में से एक श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के रूप में प्रकटित हुई हैं। बंगला देशवासी* श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के प्रिय भक्त श्रीतपन मिश्रा जी को अवलम्बन करके आनुमानिक 1425 शकाब्द में श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी (श्रीरघुनाथ भट्टाचार्य) ने आविर्भाव लीला की। श्रीमन् महाप्रभु जी जिस समय बंगला देश में गये थे, उसी समय श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के पिता श्रीतपन मिश्र जी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था। श्रीतपन मिश्रा जी बहुत-से शास्त्रों को पढ़ने व उन पर विचार करने

पर भी साध्य –साधन तत्त्व का निर्णय न कर सकने के कारण विभ्रान्त हो चुके थे तो एक दिन उन्हें स्वप्न में श्रीनिमाई पण्डित के पास साध्य-साधन का निर्णय कराने के लिये जाने का आदेश हुआ। आदेशनुसार श्रीतपन मिश्र जाकर श्रीमन् महाप्रभु जी से मिले और उन्होंने उन्हें अपना स्वप्न वृत्तान्त सुनाया तो श्रीमन् महाप्रभु जी ने श्रीनाम संकीर्तन को ही साध्य व साधन रूप से निर्णय किया। महाप्रभु जी ने बताया कि हरिनाम ही साधन है व हरिनाम ही साध्य है।

श्रीतपन मिश्र जी की श्रीनवद्वीप धाम वास की इच्छा होने पर भी श्रीमन् महाप्रभु जी ने उनको काशी में जाकर रहने के लिये कहा। इसीलिये तो जब महाप्रभु जी काशी में श्रीचन्द्रशेखर वैद्य के घर में रहते थे, तब वे श्रीतपन मिश्र जी के घर में भोजन करते थे—

"वाराणासी-मध्ये प्रभुर-भक्त तिन जन।

चन्द्रशेखर वैद्य, आर मिश्र तपन॥

रघुनाथ भट्टाचार्य—मिश्रेर नन्दन।

प्रभु यबे काशी आइला देखि' वृन्दावन॥"

(चै.च.आ. 10/152-53)

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी लगभग 28 वर्ष तक घर में थे। श्रीमन् महाप्रभु जी जब वाराणसी में दो महीने तक रहे थे, तब श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी को श्रीमन् महाप्रभु जी की साक्षात् सेवा और कृपा प्राप्ति का सुयोग हुआ था –

"चन्द्रशेखर-गृहे कैल दुइमास वास।

तपन-मिश्रेर घरे भिक्षा दुइ मास॥

रघुनाथ बाल्ये कैल प्रभुर सेवन।

---

*किसी किसी का कहना है कि पद्मावती नदी के किनारे जो रामपुर है, ये वहाँ के रहने वाले हैं।

उच्छिष्ट-मार्जन आर पाद-सम्वाहन॥

बड़ हैले नीलाचले गेला प्रभुर स्थाने।

अष्टमास रहिल भिक्षा देन कोन दिने॥" (चै.च. आ. 11/154-56)

श्रीमन् महाप्रभु जी के दर्शनों की आकांक्षा में व्याकुल होकर श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी समस्त सांसारिक कार्य परित्याग करके गौड़देश होते हुये श्रीनीलाचल धाम में श्रीमन् महाप्रभु के साथ मिलने के लिये बड़ी तीव्र गति से चल दिये। उनका सामान उठाने के लिये एक सेवक भी उनके साथ चल दिया। मार्ग में थाना के कायस्थ व रामानन्दी सम्प्रदाय से सम्बन्धित श्रीरामोपासक श्रीरामदास विश्वास के साथ उनका मिलन हुआ जो कि सभी शास्त्रों में प्रवीण थे। श्रीरामदास भी सब कुछ छोड़कर जगन्नाथ जी के दर्शनों की आकांक्षा से व्याकुल होकर पुरी यात्रा पर जा रहे थे। वे सर्वक्षण रामनाम जप करते थे। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी को ब्राह्मण समझकर उनकी रघुनाथ भट्ट जी के प्रति विशेष श्रद्धा हो गई और वे उनकी

अनेक प्रकार से सेवा करने का प्रयास करने लगे, यहाँ तक की उन्होंने पाद सम्वाहन भी किये तथा उनका सामान अपने सिर पर उठाकर चलने लगे। इतने बड़े एक विशिष्ट व्यक्ति को इस प्रकार सेवा कार्य करते देखकर श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी संकुचित हो गये। श्रीरामदास विश्वास ने उनका संकोच भाव दूर करने के लिये कहा—"मैं तो शूद्र अधम व्यक्ति हूँ, आप ब्राह्मण हैं, आपकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। आपकी सेवा का सुयोग पाकर मैं अपने हृदय में उल्लास अनुभव कर रहा हूँ।"

रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी ने नीलाचल पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शन किये तथा दर्शन करते ही वे उनके श्रीपादपद्मों में साष्टंग दण्डवत् प्रणाम करते हुए लेट गये। साथ-साथ ही श्रीमन् महाप्रभु ने भी प्रेमाविष्ट होकर उनको आलिंगन कर लिया। श्रीमन् महाप्रभु जी ने तपन मिश्र जी और चन्द्रशेखर वैद्य का कुशल संवाद पूछा तथा उनको जगन्नाथ जी के दर्शन करके प्रसाद पाने के लिये वापिस आने को कहा। श्रीमन् महाप्रभुजी ने अपने सेवक गोविन्द जी के द्वारा उनके रहने के स्थान की व्यवस्था करा दी तथा स्वरूप दामोदर आदि भक्तों के साथ उनका परिचय भी करा दिया। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी आठ महीने तक श्रीमन्महाप्रभु जी के पास नीलाचल में ही रहे। वह बीच-बीच में श्रीमन्महाप्रभु जी को निमिन्त्रित करके अपने घर में बहुत प्रकार के परम सुस्वादु व्यंजन तैयार करके भोजन कराते थे। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी रसोई बनाने में अत्यन्त सुनिपुण थे। श्रीमन्महाप्रभु जी भक्त के द्वारा प्रेम से दिये अमृत के समान पकाये व्यंजनादि का भोजन करके परम तृप्ति का अनुभव करते थे। तब रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी का श्रीमन्महाप्रभु जी के उच्छिष्ट प्रसाद को पाने का सौभाग्य होता था। श्रीरामदास विश्वास भी श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ मिले, परन्तु सर्वज्ञ महाप्रभु जी ने उनको मुक्तिकामी व घमण्डी जानकर रघुनाथ भट्ट जी की भाँति उसके प्रति वैसी कृपा का प्रदर्शन न किया। आठ महीने के बाद श्रीमन् महाप्रभु जी ने रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी को काशी जाकर वृद्ध वैष्णव पिता-माता की सेवा करने का आदेश प्रदान किया तथा साथ ही उनको विवाह करने के लिये भी मना कर दिया। श्रीमन् महाप्रभु जी ने स्नेहाविष्ट होकर अपनी गले की माला रघुनाथ भट्ट जी के गले में डाल दी एवं फिर से नीलाचल में आने के लिये कहा। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभु जी के विरह में व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे परन्तु महाप्रभु जी की आज्ञा पालन करने के लिए भक्तों के साथ पुनः काशी में लौट आये। जब तक उनके पिता-माता प्रकट थे, तब तक (लगभग चार वर्ष तक) उन्होंने पिता-माता की खूब सेवा की। उस समय उन्होंने एक वैष्णव पण्डित से श्रीमद्भागवत का अध्ययन भी किया था पिता-माता के अप्रकट हो जाने के बाद वे फिर से नीलाचल में आकर श्रीमन्महाप्रभु जी के पास रहने लगे। इस बार भी पुनः रघुनाथ जी का आठ महीने पुरी में वास होने के बाद, महाप्रभु जी ने उनको वृन्दावन में जाकर श्रीरूप गोस्वामी जी और श्रीसनातन गोस्वामी जी के आश्रय में रहने तथा नित्य भागवत् पाठ और कृष्ण नाम करने के लिये कहा। श्रीमन्महाप्रभु जी का प्रेमालिंगन प्राप्त करके उनके हाथों से चौदह हाथ लम्बी जगन्नाथ जी की तुलसी माला एवं प्रसादी पान बीड़ा पाकर श्रीरघुनाथ जी प्रेमोन्नमत्त होकर गिर पड़े। रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी का अपूर्व कण्ठस्वर था। वे भागवत का पाठ करने के समय भागवत का एक-एक श्लोक इतने सुमधुर कण्ठ स्वर में व बहुत-से रागों के साथ पाठ करते थे, जिसे सुनने मात्र से ही भक्तगण उनके प्रति परम आकृष्ट हो उठते—

"भागवत पढ़, सदा लह कृष्णनाम।

अचिरे करिबेन कृपा कृष्ण-भगवान्॥

एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैला।

प्रभु कृपाते कृष्णप्रेमे मत्त हैला॥

चौद्द-हात जगन्नाथेर तुलसीर माला।

छुटा-पान-बिड़ा महोत्सवे पाञाछिला॥

सेई माला, छुटा-पान प्रभु ताँरे दिला।

'इष्टदेव' करि' माला धरिया राखिला॥

प्रभुर ठाञि आज्ञा लञा गेला वृन्दावने।

आश्रय करिला असि' रूप-सनातने॥

रूप-गोसाञिर सभाय करेन भागवत-पठन।

भागवत पढ़िते प्रेमे आउलाय ताँर मन॥

अश्रु, कम्प, गद्गद प्रभुर कृपाते।

नेत्र रोध करे वाष्प, ना पारेन पड़िते॥

पिकस्वर-कण्ठ, ताते रागेर विभाग।

एकश्लोक पड़िते फिराय तिन-चारि राग॥

कृष्णेर सौन्दर्य-माधुर्य जबे पड़े, सुने।

प्रेमेते विह्वल तबे, किछुइ ना जाने॥

गोविन्द-चरणे कैला आत्मसमर्पण।

गोविन्द-चरणारविन्द-जाँर प्राणधन॥

निज शिष्ये कहि' गोविन्देर मन्दिर कराइला।

वंशी, मकर, कुण्डलादि 'भूषण' करि' दिला॥

ग्राम्यवार्ता ना शुने, ना कहे जिह्वाय।

कृष्णकथा-पूजादिते अष्टप्रहर याय॥

वैष्णवेर निन्द्य-कर्म नाहि पाड़े काणे।

सबे कृष्ण भजन करे,-एकमात्र जाने॥

महाप्रभुर दत्त माला मननेर काले।

प्रसाद-कड़ार-सह बान्धि' लेन गले॥

महाप्रभु कृपाय कृष्णप्रेम अनर्गल।

एइ त' कहिलुँ ताते चैतन्य-कृपाफल॥" (चै. च. अ. 13/121-135)

श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी की गुरु महिमा इस प्रकार वर्णित हुई है—

'रघुनाथ भट्ट समाधि निरखिला।

भासये नेत्रेर जले विदरये हिया॥

रघुनाथ भट्ट गोस्वामी गुणगण।

श्रवणमात्रेते कार, ना जुड़ाय मन॥

सर्वशास्त्रे अध्यापक, चर्चा श्रवणेते।

वृहस्पति साधुवाद करे हर्षचिते॥

भागवत-पाठेर उपमा दिते नाइ।

व्यासादि शुनिते साध करे सुख पाई॥

यार भक्तिरीती देखे, देवेर विस्मय।

भट्टेर महिमा श्रीनिवास ऐछे कय॥

श्रीनिवासादिक 'भूमे पड़ि' प्रणमिया।

गोविन्द-मन्दिर गेला विदाय हइया॥"

लगभग 1501 शकाब्द में श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी अप्रकट हुये।

****

श्रीजीव गोस्वामी

गौर गणोद्देश दीपिका के 195-वें श्लोक में इस प्रकार वर्णन है कि श्रीकृष्ण लीला में, जो विलास मंजरी हैं, वे ही गौर लीला की उपशाखा रूप से श्रील जीव गोस्वामी रूप में आविर्भूत हुई हैं। इसी ग्रन्थ के 204-वें श्लोक में लिखा है—

"सुशीलः पण्डितः श्रीमान् जीवः श्रीबल्लभात्मजः।"

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधानानुसार श्रीजीव गोस्वामी जी 1433 से 1518 शकाब्द तक 85 वर्ष इस जगत् में प्रकट रहे। लेकिन कोई -कोई इनका प्रकटकाल 1455 से 1540 शकाब्द तक बताते हैं। श्रील जीव गोस्वामी रामकेलि ग्राम (मालदह) में आविर्भूत हुए थे। इनके प्रकट के समय इनके पिता अनुपम मल्लिक किसी राज-कार्य से विदेश गए हुए थे। यद्यपि श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर (घनश्याम दास) जी द्वारा रचित 'श्रीभक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ (1/540-568) में श्रील जीव

गोस्वामी जी की सात पीढ़ियों का परिचय जाना जा सकता है तथापि इनकी माता के सम्बन्ध में किसी भी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं मिलता। श्रील भक्ति सिद्धान्त ठाकुर जी ने 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थ के अनुभाष्य लिखते समय इनके वंश –परिचय के सम्बन्ध में जो लिखा है वह श्रीरूप गोस्वामी जी के चरित्र में वर्णित है। वैसे जीव गोस्वामी के पिता का नाम श्रीबल्लभ था लेकिन महाप्रभु जी ने उनको नाम दिया था 'अनुपम'। श्रीअनुपम मल्लिक का नाम था- श्रीबल्लभ। ये श्रील रूप गोस्वामी जी के छोटे भाई थे व परम वैष्णव थे। श्रीमन् महाप्रभु जी जब रामकेलि ग्राम गए थे, उसी समय इनकी महाप्रभु जी से प्रथम भेंट हुई थी।

श्रीमन् महाप्रभु जी की इच्छा से जब रूप गोस्वामी जी और सनातन गोस्वामी जी ने समस्त विषयों के धन्धे छोड़-छाड़कर करुणामय श्रीमन् चैतन्य महाप्रभु जी से मिलने के लिए वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया था, उसी समय से ही जीव गोस्वामी जी के हृदय में भी तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया था। इनके वैराग्य के सम्बन्ध में भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है—

"ये हइते गोस्वामी गेलेन वृन्दावने।

सेई हइते श्रीजीवेर किवा हैल मने।

नाना रत्नभूषा परिधेय सूक्ष्मवास।

अपूर्व शयन शय्या भोजन विलास॥

ए सब छोड़िल किछु नाहि भाय चित्ते।

राज्यादि विषय वार्ता ना पारे शुनिते॥"

अर्थात् जब से रूप गोस्वामी जी तथा सनातन गोस्वामी जी श्रीवृन्दावन गए तभी से श्रीजीव गोस्वामी जी के हृदय में भी न जाने क्या हो गया, सांसारिक सुख की कोई भी वस्तु इन्हें अच्छी न लगती। नाना रत्नों से जड़ित सुखमय सुन्दर वस्त्र, आरामदायक बिस्तर, नाना प्रकार की भोजन सामग्री इत्यादि, कुछ भी अच्छा न लगता और राज्य आदि की चर्चा तो इनसे बिल्कुल सुनी ही नहीं जाती थी।

श्रीभक्ति रत्नाकर में ही एक अन्य स्थान पर इस प्रकार लिखा है कि श्रीजीव गोस्वामी जी ने स्वप्न में संकीर्तन के मध्य नृत्य अवस्था में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के दर्शन किए थे। श्रीमन् महाप्रभु जी को अपने भक्तों के साथ, अपने ही प्रेम (कृष्ण-प्रेम) में मस्त होकर नृत्य करते देखकर श्रीजीव गोस्वामी जी भी प्रेम में व्याकुल हो उठे थे। बस, फिर क्या था; श्रीजीव गोस्वामी जी ने एक आदमी को अपने साथ लिया और चल पड़े महाप्रभु जी के दर्शनों के लिए। कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने संगी को भी फतेहाबाद से विदा कर दिया और प्रेम में उन्मत्त होकर अकेले ही श्रीवास-अंगन में पहुँच गए। वहाँ इन्हें नित्यानन्द प्रभु जी के दर्शन हुए व वहीं इन्होंने उनकी कृपा प्राप्त की तथा उसी समय श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी ने इन्हें तत्काल व्रज में जाने का निर्देश दिया—

नित्यानन्द प्रभु महावात्सल्य विह्वल।

धरिल श्रीजीव-माथे चरणे-युगल॥

श्रीजीवेर अनुग्रह सीमा प्रकाशिला।

भूमि हैते तुलि' दृढ़ आलिंगन कैला॥

प्रभु प्रेमावेशे कहे—तोमार निमित्ते।

आइलाम शीघ्र एथा खड़दह हैते॥

ऐछे कत कहि श्रीजीवेर स्थिर कैला।

श्रीवासादि भक्तेर अनुग्रह कराइला॥

निकटे राखिया अति आनन्द हियाय।

श्रीजीवे पश्चिम देशे करये विदाय॥

प्रभु कहे-शीघ्र व्रजे करह प्रयाण।

तोमर वंश प्रभु दियाछेन सेइ स्थान॥

(भक्ति रत्नाकर 1/ 765-769,772)

जब इन्होंने भक्त-वात्सल्य में विह्वल भक्तों के प्राण प्रिय श्रीनित्यानन्द प्रभु के दर्शन किए तो नित्यानन्द जी ने अपने पावन चरण-कमलों को इनके माथे पर रखा। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु ने इन्हें उठाया और दृढ़ आलिंगन प्रदान करते अतिशय कृपा की और कहा—"देखो मैं तुम्हारे लिए ही खड़दह से अतिशीघ्र यहाँ पहुँचा हूँ।" इस प्रकार की कई बातें कह कर नित्यानन्द प्रभु जी ने जीव गोस्वामी जी को सान्त्वना दी तथा श्रीवासादि भक्तों का भी आशीर्वाद दिलाया। अपने पास तुम्हें रखने से यद्यपि हृदय में आनन्द होता लेकिन अभी तुम्हें जाना होगा, ऐसा कहकर नित्यानन्द जी ने इन्हें पश्चिम देश (ब्रज) की ओर जाने के लिए विदा किया............... नित्यानन्द प्रभु जी कहते हैं-श्रीमन् महाप्रभु जी ने तुम्हारे वंश को ब्रज में स्थान दिया है। इसलिए तुम शीघ्र ही ब्रज के लिए रवाना होओ।

श्रीमन् महाप्रभु जी के साथ श्रीजीव गोस्वामी जी के साक्षात् मिलन की बात स्पष्ट रूप से नहीं देखी जाती। तब भी ' श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ' में इनके मिलन के बारे में हल्का सा एक इशारा किया गया है कि जब श्रीमन् महाप्रभु जी इनके जन्म स्थान रामकेलि ग्राम में आए थे तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीजीव गोस्वामी जी को अत्यन्त शिशु अवस्था में देखा था।

"श्रीजीव बालक काले बालकरे सने।

श्रीकृष्ण सम्बन्ध बिना खेला नाहि जाने॥

श्रीकृष्ण-बलराम मूर्ति निर्माण करिया।

करितेन पूजा पुष्प चन्दनादि दिया॥

विविध भूषण वस्त्रे शोभा अतिशय।

अनिमेष नेत्र देखी' उल्लास हृदय॥

कनक पुत्तलि-प्राय पड़ि क्षितितले।

करिते प्रणाम सिक्त हैला नेत्रजले॥

विविध मिष्ठान्न अति यत्ने भोग दिया।

भुंजितेन प्रसाद बालक-गणे लइया॥"

(भक्ति रत्नाकर 1/719-723)

अर्थात श्रीजीव गोस्वामी जी बाल्यकाल से ही बालकों के साथ खेल भी करते तो श्रीकृष्ण से सम्बन्धित खेल खेलते, इसके अतिरिक्त वे कुछ भी नहीं जानते थे।

श्रीजीव का बाल्यकाल से ही भगवद् अनुराग देखा जाता है। ये बचपन में अपने साथी दोस्तों के साथ कृष्ण पूजा सम्बन्धित खेल छोड़कर और कोई खेल ही नहीं खेलते थे। स्वयं कृष्ण -बलराम जी की मूर्ति बना कर उनकी चन्दन, पुष्प इत्यादि से पूजाकर ते, उन्हें रत्न-जड़ित सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अलंकार पहनाते तथा अत्यन्त उल्लासपूर्ण हृदय से बिना पलक झपकाये दर्शन करते तथा जब साष्टांग प्रणाम करते तो इस प्रकार लगता मानो सोने की मूर्ति धूलि में पड़ी हो। इसके अतिरिक्त बहुत प्रकार की मिठाईयाँ कृष्ण-बलराम को भोग लगाते तथा सभी बालकों के साथ प्रेमानन्द में प्रसाद पाते।

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की कृपा से इन्होंने नवद्वीप धाम का दर्शन किया और नवद्वीप परिक्रमा करने के बाद ये काशी चले गए, जहाँ इन्होंने श्रीमधुसूदन वाचस्पति जी से सभी शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद वृन्दावन जाकर श्रीरूप गोस्वामी जी व सनातन गोस्वामी जी का चरणाश्रय ग्रहण किया।

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' जी श्रीजीव गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखते हैं कि श्रीरूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी जी के अप्रकट के बाद श्रीजीव गोस्वामी जी को सोत्कल गौड़ मथुरा मण्डल के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ आचार्य पद पर अधिष्ठित (नियुक्त)किया गया। आचार्य पद पर रहते हुए ये सभी को श्रीगौरसुन्दर की प्रचारित शुद्धभक्ति की बात समझाते व सभी से हरि भजन कराते। बीच-बीच में आप श्रीब्रज धाम की परिक्रमा करते व मथुरा में श्रीविट्ठल देव जी के दर्शन करने को जाते। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने इनके प्रकटकाल में ही 'श्रीचैतन्य चरितामृत' की रचना की थी। 'श्रीचैतन्य चरितामृत' की रचना के बाद ही श्रील जीव गोस्वामी पाद ने गौड़ देश से आए श्रीनिवास, नरोत्तम तथा दुःखी कृष्णदास को प्रचारक के उपयुक्त देखकर, इन तीनों को यथाक्रम आचार्य, ठाकुर तथा श्यामानन्द आदि नाम (उपाधियाँ) देकर स्वरचित व गोस्वामियों के ग्रन्थों के साथ नाम-प्रेम के प्रचार के लिए गौड़ देश में भेजा था। पहले ग्रन्थों की चोरी व बाद में उपलब्धि संवाद भी इन्हें मिला था। श्रील जीव गोस्वामी जी ने श्रीनिवास आचार्य जी के शिष्य श्रील रामचन्द्र सेन को तथा उनके छोटे भाई गोविन्द जी को भी कविराज नाम प्रदान किया था। इनके प्रकटकाल में ही श्रील जाह्नवा देवी (श्रीनित्यानन्द प्रभु की शक्ति) अपने भक्तों के साथ वृन्दावन में आयी थीं। गौड़ देश से भक्त लोगों के आने पर श्रील जीव गोस्वामी ही उनके लिए प्रसाद सेवा व रहने की व्यवस्था करते थे।

भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में जीव गोस्वामी जी के 25 ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है—

1. हरिनामामृत व्याकरण
2. सूत्रमालिका
3. धातु-संग्रह
4. कृष्णार्चन दीपिका
5. गोपाल विरुदावली
6. रसामृत शेष
7. श्रीमाधव-महोत्सव
8. श्रीसंकल्प कल्पवृक्ष
9. भावार्थ सूचक चम्पू
10. गोपाल तापनी टीका
11. ब्रह्म संहिता की टीका
12. रसामृत टीका
13. उज्ज्वल टीका
14. योग सार स्तव की टीका
15. अग्नि पुराणस्थ श्रीगायत्री भाष्य
16. श्रीराधिका कर पदस्थित चिन्ह
17. गोपाल चम्पू पूर्व व उत्तर विभाग
18. क्रम सन्दर्भ
19. तत्त्व सन्दर्भ
20. अग्नि पुराण के अन्तर्गत श्रीगायत्री भाष्य
21. भगवत् सन्दर्भ
22. परमात्म सन्दर्भ
23. कृष्ण सन्दर्भ
24. भक्ति सन्दर्भ
25. प्रीति सन्दर्भ।

श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने—अनभिज्ञ सहजिया सम्प्रदाय के लोग वैष्णव-अपराध जनित कार्य करके कहीं कृष्ण-प्रेम से वंचित रह कर अमंगल को न वर्णन करें—इस विचार से उन्हें सावधान करने के लिए श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में इस प्रकार लिखा है कि अनभिज्ञ प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय में श्रील जीव गोस्वामी प्रभु के विरुद्ध तीन अपराध प्रचलित हैं जिससे उनका निरन्तर हरि-गुरु वैष्णवों के चरणों में अपराध ही होता है—

1. दुनियावी सम्मान चाहने वाला एक दिग्विजयी पण्डित, निष्किंचन भक्त श्रीरूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामी जी से जयपत्र लिखवाकर उनकी (गुरु वर्ग श्रीरूप-सनातन) निन्दा करता हुआ श्रील जीव गोस्वामी के पास आया और उन्हें भी जयपत्र लिखने के लिए कहने लगा। दिग्विजयी की बात सुनकर श्रीजीव प्रभु ने उस दिग्विजयी पण्डित को पराजित करके उनके गुरुदेव के सम्बन्ध में बकवास करने वाले की जिह्वा को चुप करवा दिया तथा ऐसा करके उन्होंने गुरुदेव की पद—नख शोभा की मर्यादा का प्रदर्शन करते हुए वास्तविक "गुरुदेवतात्मा" शिष्य के आदर्श का प्रदर्शन किया।

(श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामी जी ने उसे जयपत्र इसलिए दिया था कि उन्होंने सोचा कि कौन इसके साथ तर्क-वितर्क करके अपना कृष्ण-स्मरण का अमूल्य समय बर्बाद करेगा। लेकिन श्रील जीव गोस्वामी ने देखा कि मूर्ख लोग मेरे गुरुदेव के उच्च भाव को नहीं समझ पाएँगे एवं मूर्ख समझ मेरे गुरुदेव के चरणों में अपराध करेंगे एवं अमंगल का आवाहन करेंगे। इसलिए अपने गुरुदेव की मर्यादा रखने हेतु अपवादकारियों को पराजित कर श्रीजीव गोस्वामी जी ने गुरु-निष्ठ शिष्य का आदर्श स्थापित किया।) लेकिन इन सहजिया लोगों का कहना है कि श्रीरूप गोस्वामी जी ने श्रीजीव को तीव्र भर्त्सना देकर परित्याग कर दिया था तथा पुनः श्रीसनातन गोस्वामी जी के इंगितानुसार श्रीजीव गोस्वामी प्रभु जी को श्रीरूप गोस्वामी जी ने ग्रहण किया।

ये गुरु-वैष्णव विरोधी लोग श्रीकृष्ण की कृपा से जिस दिन अपने आपको गुरु-वैष्णवों का नित्यदास समझेंगे, उसी दिन श्रीजीव गोस्वामी प्रभु की कृपा लाभ करते हुए वास्तविक 'तृणादपि सुनीच' एवं 'मानद' इत्यादि कीर्तन करने की योग्यता प्राप्त करके हरिनाम-संकीर्तन के अधिकारी होंगे।

2. उनमें से ही कोई-कोई अनभिज्ञ कहते हैं कि श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित "श्रीचैतन्य चरितामृत" नामक ग्रन्थ की अद्‌भुत महिमा व कविराज जी द्वारा चरितामृत का रचना सौष्ठव और अप्राकृत रस –माहात्म्य इत्यादि देखकर श्रीजीव गोस्वामी ईर्ष्या से जल उठे तो कहीं उनकी प्रतिष्ठा कम न हो जाए, इसलिए उन्होंने कविराज जी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत नामक ग्रन्थ की मूल लिपि को एक कुएँ में फेंक दिया। श्रील कविराज गोस्वामी जी ने जब ये बात सुनी तो उन्होंने प्राण त्याग दिए। सौभाग्यवश उनके मुकुन्द नामक एक शिष्य ने उस ग्रन्थ को नकल करके अपने पास रखा था। इसलिए "श्रीचैतन्य चरितामृत" ग्रन्थ दोबारा प्रकाशित हुआ, अन्यथा श्रीचैतन्य चरितामृत जैसा अद्वितीय ग्रन्थ इस जगत् से लुप्त हो जाता।

इस प्रकार की घृणित व वैष्णव-विद्वेषमूलक कल्पना नितान्त झूठी और असम्भव है।

कोई-कोई इन्द्रिय तर्पण तत्पर व्यभिचारी कहते हैं कि श्रीजीव गोस्वामी प्रभु ने श्रीरूप गोस्वामी जी के मतानुयायी ब्रज गोपी गुणों का 'पारकीय रस' स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सिर्फ स्वकीय रस का ही अनुमोदन किया, इसलिए उनका आदर्श ग्रहणीय नहीं है।

3. श्रीजीव गोस्वामी जी ने अपने प्रकटकाल में देखा कि उनके कुछ अनुगत भक्त जिनका सर्वोत्तम 'पारकीय रस' में अधिकार नहीं है परन्तु वे स्वकीय रस में रुचि विशिष्ट हैं। ये भी वे जानते थे कि भविष्य में अनाधिकारी लोग परम-चमत्कारमय 'पारकीय रस' की महिमा व सौन्दर्य को समझ नहीं पाएँगे और स्वयं उस प्रकार का अनुष्ठान करके व्याभिचारी बनेंगे। इसलिए वैष्णव -आचार्य—श्रीजीव गोस्वामी जी ने अबोध लोगों के मंगल के लिए ही स्वकीयवाद को स्वीकार किया। परन्तु इसका मतलब ये नहीं कि वे पारकीय रस के विरोधी थे, क्योंकि श्रीजीव गोस्वामी प्रभु स्वयं श्रीरूपानुगवर—साक्षात् श्रील कविराज गोस्वामी जी के शिक्षा -गुरुओं में से एक थे।

श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ की पंचम तरंग में श्रीजीव गोस्वामी के प्रति श्रीरूप गोस्वामी के शासन और कृपा का इस प्रकार वर्णन है—

गर्मियों का समय था, श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावन में ही किसी एकान्त स्थान पर बैठकर ग्रन्थ लिख रहे थे। श्रीरूप गोस्वामी जी का शरीर पसीने से लथपथ देख श्रीजीव गोस्वामी उन्हें पंखे से हवा करने लगे। उसी समय श्रीवल्लभ भट्ट वहाँ पहुँच गए और कहने लगे—"मैं तुम्हारे भक्ति रसामृत ग्रन्थ के मंगलाचरण का संशोधन कर दूँगा"—ऐसा कह कर वे यमुना में स्नान करने चले गए। श्रीजीव गोस्वामी जी, बल्लभ भट्ट जी की इस प्रकार गर्वपूर्ण बात सहन न कर सके और पानी लेने के बहाने वे भी यमुना के किनारे पहुँच गए, जहाँ वल्लभ भट्ट जी पहले ही उपस्थित थे। मौका देखकर श्रीजीव गोस्वामी जी ने श्रीवल्लभ भट्ट जी को पूछा कि तुमने श्रीरूप गोस्वामी जी के लिखे ग्रन्थ भक्ति रसामृत के मंगलाचरण में गलती कहाँ देखी?

श्रीजीव के पूछने पर श्रीवल्लभ ने उन्हें गलती बताई लेकिन श्रीजीव ने उनके मत का, उनकी युक्तियों का ज़ोरदार खण्डन किया और रूप गोस्वामी जी की लिखी बातों को ही भलीभान्ति स्थापित कर दिखाया। श्रीवल्लभ—श्रीजीव गोस्वामी जी का अद्‌भुत पाण्डित्य देखकर आश्चर्यचकित रह गए एवं उन्होंने उत्सुकतावश सारी घटना श्रीरूप गोस्वामी

प्रभु को सुनाई। घटना सुनकर श्रीरूप गोस्वामी जी ने जीव गोस्वामी जी को स्नेह से डाँटते हुए कहा कि तुम शीघ्र ही पूर्व देश चले जाओ। जब तुम्हारा चंचल मन स्थिर हो जाए, तब वृन्दावन आना।

श्रीरूप गोस्वामी जी के निर्देशानुसार श्रीजीव गोस्वामी जी नन्द घाट पर आकर अपने गुरु जी की कृपा प्राप्त करने के लिए कभी भूखे, कभी दिन में थोड़ा सा खाकर तीव्र भजन करते हुए रहने लगे। कुछ दिन में ही इनका शरीर अत्यन्त कमज़ोर हो गया। संयोगवश एक दिन श्रील सनातन गोस्वामी उसी राह से गुज़र रहे थे तो ब्रजवासियों ने उन्हें श्रीजीव गोस्वामी के सम्बन्ध में बताया एवं इनसे भेंट कराई। श्रीजीव की इस प्रकार अवस्था देखकर श्रीसनातन गोस्वामी जी की आँखों में वात्सल्य के आँसु भर आए और उन्होंने श्रीजीव को समझा -बुझाकर श्रीरूप गोस्वामी के चरणों में पहुँचा दिया। इस प्रकार श्रीजीव गोस्वामी जी ने रूप गोस्वामी जी का स्नेह और उनकी कृपा प्राप्त की।

श्रील जीव गोस्वामी जी भाद्र शुक्ल –द्वादशी तिथि को अवलम्बन कर के आविर्भूत हुए थे तथा पौष मास की शुक्ल-तृतीया तिथि को आपने तिरोधान लीला की। श्रीश्रीराधा दामोदर जी के विग्रह, जिनकी श्रीजीव गोस्वामी सेवा किया करते थे, आज भी वृन्दावन में श्रीराधा-दामोदर जी के मन्दिर में विराजमान हैं। मन्दिर के पीछे श्रील जीव गोस्वामी जी का समाधि-स्थान है। इसके अतिरिक्त श्रीराधा-कुण्ड के किनारे तथा श्रीललिता-कुण्ड के पास इनकी भजन कुटी आज भी विद्यमान है।

****

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी

अनङ्गमञ्जरी यासीत् साद्य गोपालभट्टकः।

भट्टगोस्वामिनं केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरी॥

(गौ. ग. दी. 184 श्लोक)

श्रीकृष्ण लीला के समय जो अनंग मंजरी हैं (कुछ लोगों के मतानुसार जो गुण मंजरी हैं) वे ही गौरलीला की पुष्टि के लिए श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी के रूप में अवतरित हुई हैं। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी सम्वत् 1422 में (सन् 1500 ई. में) तथा अन्यमत के अनुसार सम्वत् 1425 में (सन् 1503 ई. में) दक्षिण भारत के श्रीरंग श्रेत्र में, श्रीवैंकट भट्ट के पुत्र के रूप

में आविर्भूत हुये थे। श्रीरंगम के निकट, कावेरी नदी के किनारे, वेलगुण्डीग्राम में उनका निवास स्थान था। श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की कृपा से, स्वप्न में श्रीमन्महाप्रभु जी की सम्पूर्ण नवद्वीप लीला के दर्शन किये थे। इसका हमें भक्ति रत्नाकर के प्रथम तरंग में श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के चरित्रवर्णन से पता चलता है।

कृष्ण लीला के पार्षद होकर भी वे गौर लीला की पुष्टि के लिये, दूर दक्षिण भारत में आविर्भूत हुए। इतनी दूर प्रकट होकर भी, वे यह जान गये थे कि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने, शचीनन्दन गौरहरि के रूप में अवतरित होकर, संन्यास ग्रहणकर लिया है। श्रीमन्महाप्रभु जी का संन्यासी वेष, गोपाल भट्ट जी को अच्छा नहीं लगा और वे बड़े खेद के साथ निर्जन में इसी चिन्तन में एकान्त में रोते रहते। उनके निर्जन स्थान पर रोते रहने पर श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वप्न में उन्हें सम्पूर्ण नदिया लीला के दर्शन करवाये और प्रेम विभोर होकर उनको (गोपाल भट्ट को) गोदी में लेकर, आँसुओं से भिंगो डाला—

एत कहि गोपालेर करि प्रभु कोले।

गोपालेर अंगसिक्त कैल नेत्र जले॥

कहिल ए सब कथा, राखिह गोपने।

हइल परमानन्द गोपालेर मने॥

(भक्तिरत्नाकर 1 /123 -24)

(अर्थात् इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी को गोद में लिया और अपने नेत्रों के जल से गोपाल भट्ट जी का शरीर सींच डाला और कहा कि यह सब किसी से मत कहना—ये सब देखकर व सुनकर गोपाल भट्ट जी परमानन्द में विभोर हो गये।)

शक संवत् 1433 में, श्रीमन्महाप्रभु जी के रंग क्षेत्र में शुभागमन के समय, रामानुजीय वैष्णव श्रीवैंकट भट्ट ने उनसे अपने घर में रहने के लिये प्रार्थना की। उनको एक निष्ठावान वैष्णव जानकर, श्रीमन्महाप्रभु जी ने भी उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वास्तव में श्रीमन्महाप्रभु ने अपने पार्षद श्रीगोपाल भट्ट के आविर्भाव की बात जानकर ही तथा उनके सम्बन्ध से ही उनके सम्बन्धियों पर कृपा करने के लिए ही श्रीरंगम में शुभागमन की लीला की थी तथा साथ ही वैंकट भट्ट के घर में ठहरने की लीला भी की थी।

जिस समय श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीवैंकट भट्ट के घर में निवास किया था, उस समय गोपाल भट्ट जी छोटी आयु के बालक थे। श्रीमन्महाप्रभु जी के चरण-कमलों की साक्षात् सेवा का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने वैंकट भट्ट और उनके परिजनों की सेवा से सन्तुष्ट होने पर भी यह जान लिया था कि श्रीवैंकट भट्ट जी के मन में कुछ अभिमान हैं। वैंकट भट्ट के मनोगत भाव इस प्रकार थे—

श्रीनारायण ही सर्वोत्तम आराध्य हैं। श्रीनारायण अवतारी हैं और श्रीकृष्ण, राम और नृसिंह आदि उनके अवतार हैं क्योंकि नारायण का जन्म नहीं होता। नारायण अनादि(जन्म रहित) हैं, जबकि कृष्ण व राम आदि का जन्म होता है। इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभु जी नारायण के अवतार श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं, जबकि वे स्वयं अवतारी श्रीनारायण की आराधना करते हैं। दर्पहारी भगवान मधुसूदन सबके दम्भ का नाश कर देते हैं। अतः श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने, श्रीवैंकट भट्ट जी का दर्प हरण करने के लिए, एक दिन मज़ाक-मज़ाक में ही उनसे कहा, "देखो भाई वैंकट! तुम्हारे आराध्य श्रीनारायण के समान ऐश्वर्य किसी अन्य का नहीं है। तुम्हारी आराध्य लक्ष्मी देवी के ऐश्वर्य की भी कोई तुलना नहीं है। इसके

विपरीत मेरे आराध्य श्रीकृष्ण का कोई ऐश्वर्य नहीं, वे तो जंगल के फूलों की माला और मोर पंख आदि धारण किए रहते हैं। वे नन्द ग्वाले के पुत्र हैं, ग्वाल-बालकों के साथ जंगल में बछड़े चराते हैं। मेरी आराध्या गोपियों का भी कोई ऐशवर्य नहीं है, वे तो दरिद्रा ग्वालिनें हैं। आपसे मेरा यही प्रश्न है कि तुम्हारी आराध्या लक्ष्मी देवी ने श्रीकृष्ण के संग की लालसा से, कृष्ण की रास लीला में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के लिए वृन्दावन (श्रीवन) में तपस्या क्यों की थी?”

वैंकट भट्ट जी ने साथ-साथ उनके उत्तर में कहा, “इसमें क्या दोष था, जो लक्ष्मीपति नारायण है, वे ही राधापति कृष्ण हैं—

सिध्दान्तस्तवभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरुपयोः।

रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः।" (चै.च.म. 9/146)(भक्तिरसमृतसिन्धु १/२/४९)

श्रीकृष्ण में अधिक रस होने के कारण ही लक्ष्मी देवी जी ने श्रीकृष्ण का संग प्राप्त करने की लालसा से तपस्या की थी।”

श्रीमन्महाप्रभु जी ने कहा, “मैं दोष की बात नहीं करता। श्रीकृष्ण और श्रीनारायण की तत्त्व में कोई भेद नहीं। एक ही तत्त्व में केवल रस का भेद है। माधुर्य लीला में जो श्रीकृष्ण है, ऐश्वर्यलीला में वे ही श्रीनारायण हैं। श्रीकृष्ण लीला में जो श्रीराधिका है,वे ही श्रीनारायण लीला में लक्ष्मी जी हैं।” इसलिये श्रीकृष्ण के संग की लालसा से तपस्या करने पर भी लक्ष्मी देवी जी के सतीत्त्व की हानि नहीं हुई। फिर भी श्रीकृष्ण संग की लालसा से उन्होंने वृन्दावन में तपस्या की थी।

आप से मेरा यह दूसरा प्रश्न है-“श्रीलक्ष्मी देवी जी ने तपस्या करने पर भी श्रीकृष्ण की रास लीला में प्रवेश का अधिकार क्यों नहीं पाया?”

वैंकट भट्ट इसका कोई उत्तर न दे पाये और उत्तर न दे सकने पर बहुत दुःखी हुये।

श्रीमन्महाप्रभु जी वैंकट भट्ट का दुःख दूर करने के लिये तसल्ली देते हुए बोले—“अरे, तुमने खुद ही तो पहले कहा था कि सिद्धान्ततः श्रीलक्ष्मीपति नारायण और श्रीराधापति श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। तब भी श्रीकृष्ण में रसोत्कर्षता अधिक है। नारायण में ढाई रसों की अभिव्यक्ति हैं जबकि नन्दनन्दन श्रीकृष्णा में पांच मुख्य तथा सात गौण रसों—अर्थात् बारह के बारह रसों की परिपूर्ण अभिव्यक्ति है। ऐश्वर्य लीलामाय विग्रह श्रीमन्नारायण जी की लीला पुष्टि के लिये हैं, ऐशवर्यमयी आश्रयविग्रह लक्ष्मी देवी। वे लक्ष्मी देवी जी ही माधुर्य लीला पुष्टि के लीये श्रीमती राधिका जी हैं। श्रीराधिका जी और उनके विस्तार गोपियों (कृष्ण के आश्रय-विग्रह) के अनुगत्य के बिना विषय- विग्रह श्रीकृष्ण के माधुर्य का आस्वादन नहीं हो सकता। लक्ष्मी देवी जी ने गोपियों का आनुगत्य नहीं किया और ऐश्वर्य भाव लेकर तपस्या की, इसीलिये पुनः-पुनः उन्हें भगवान नारायण का ही संग मिला, श्रीकृष्ण संग प्राप्त ना हो सका। इसके विपरीत श्रुतियों ने गोपियों का आनुगत्य करके, राग मार्ग से भगवान कृष्ण की सेवा प्राप्त की थी। ईश्वर बुद्धि होने तक रागानुग व्रज- भजन करना सम्भव नहीं है”—

प्रभु कहे, कृष्णेर एक सजीव लक्षण।

स्वमाधुर्ये सर्व चित्त करे आकर्षण॥

व्रजलोकेर भावे पाइये ताँहार चरण।

ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रजजन॥

केह ताँरे पुत्र-ज्ञाने उदुखले बान्धे।

केह सखा-ज्ञाने जिनि' चड़े ताँर कान्धे॥

'व्रजेन्द्रनन्दन' बलि' ताँरे जाने व्रजजन।

ऐश्वर्यज्ञाने नाहि कोन सम्बन्ध-मनन॥

व्रजलोकेर भावे येई करये भजन।

सेई व्रजे पाय शुद्ध व्रजेन्द्रनन्दन॥

(चै. च. म. 9/127-131)

(अर्थात् महाप्रभु जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण का एक सजीव लक्षण यह है कि वह अपने माधुर्य से सभी जीवों के चित्तों को अपनी और आकर्षित करते हैं। व्रजवासियों के भावानुसार श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है। कारण, व्रजवासी श्रीकृष्ण को ईश्वर के रूप में नहीं मानते। कोई -कोई उनको पुत्र मानकर ऊखल से बान्धते हैं तो कोई उनको अपना सखा समझकर उनके कन्धे पर चढ़ते हैं। ऐश्वर्य ज्ञान से वे उनके साथ कोई सम्बन्द नहीं जोड़ते। जो व्रजवासियों के भाव के अनुसार उनका भजन करेगा, वह ही व्रज में वास्तविक रूप से व्रजेन्द्रनन्दन को प्राप्त करेगा।)

रासलीला के दौरान, श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर, मेरी आराध्या गोपियों ने व्याकुल भाव से श्रीकृष्ण के लिये विलाप किया था, जिस पर श्रीकृष्ण उनके सामने चतुर्भुज नारायण रूप में प्रकट हुये। गोपियाँ, नारायण का संग करने की बात तो अलग, वहाँ ठहरी भी नहीं,उनको प्रणाम करके चली गईं। किन्तु राधा रानी जी के वहाँ उपस्थित होने से श्रीकृष्ण की दो भुजाएँ उनके श्रीअंग में प्रविष्ट हो गयीं और वे चतुर्भुज से द्विभुज मुरलीधर के रूप में प्रकट हुये। उस स्थान को इसी कारण पौसधाम या पैठधाम बोलते हैं। वह गोवर्धन के निकट है। नन्दनन्दन श्रीकृष्णा ही अवतारी हैं तथा नारायण, राम, नृसिंग आदि उनके अवतार हैं —

यांर भगवत्ता हईते अन्येर भगवत्ता।

स्वयं भागवान् बलिते तांहातेइ सत्ता॥

"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

इन्द्रािरिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥"

(भा. 1/3/28)

(जिनकी भगवत्ता से दूसरों की भगवत्ता होती है, उनको ही स्वयं भगवान् कहते हैं क्योंकि उनसे ही सबकी सत्ता है।)

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की कृपा से और उनके संग के प्रभाव से श्रीवैंकट भट्ट, उनके भाई प्रबोधानन्द सरस्वती, वैंकट के पुत्र श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी तथा अन्य परिवार के सदस्य श्रीलक्ष्मीनारायण जी की उपासना छोड़कर सम्पूर्ण रूप से श्रीराधाकृष्ण जी की उपासना में लग गये और राधा कृष्ण जी के एकान्तिक भक्त हो गये।

श्रील गोपाल भट्टजी ने अपने चाचा त्रिदण्डि यति श्रीमद् प्रबोधानन्द सरस्वती पाद से दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीहरि भक्ति विलास ग्रन्थ में इस विषय में प्रमाण मिलता है—

भक्ते विलासांश्चिनुते प्रबोधानन्दस्य शिष्यो भागवत् प्रियस्य।

गोपाल भट्टो रघुनाथ दासं संतोषयन् रूप-सनातनौ च॥

गोपालेर माता-पीता महाभाग्यवान्।

श्रीचैतन्य पदे ये संपिल मनः प्राण॥

वृन्दावने याइते पुत्रे आज्ञा दिया।

दुंहे संगोपन हइला प्रभु संगरिया॥

कत दिने गोपाल गेलेन वृन्दावन।

रूप-सनातन संगे हइले मिलन॥

(भक्ति रत्नाकर प्रथम तरंग)

(श्रीगोपाल भट्ट जी के माता- पिता महाभाग्यवान है जिन्होंने श्रीचैतन्य जी के चरणों में अपने मन तथा प्राण समर्पित कर दिये हैं। यही नहीं, उन्होंने अपने पुत्र को वृन्दावन जाने की आज्ञा दी। जब गोपाल भट्ट जी के माता-पिता महाप्रभु जी का चिन्तन करते हुये अप्रकट हो गये तो उसके कुछ दिनों बाद ही वे वृन्दावन चले गये, जहाँ जाकर वे श्रीरूप गोस्वामी व सनातन गोस्वामी जी से मिले।)

श्रीरूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी द्वारा, श्रीमन्महाप्रभु जी को नीलाचल धाम में, श्रीगोपाल भट्ट जी के वृन्दावन पहुँचने का समाचार पत्र द्वारा भेजने पर, श्रीमन्महाप्रभु जी ने उस पत्र के उत्तर में परमानन्द व्यक्त किया और रूप सनातन को, श्रीगोपाल भट्ट जी से अपने भाई की भान्ति प्रेम करने के लिये लिखा। श्रीसनातन गोस्वामी जी ने श्रीगोपाल भट्ट जी के नाम से "हरि भक्ति विलास" नामक ग्रन्थ प्रणयन किया। श्रीरूप गोस्वामी जी ने भी श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी को अपने प्राणों के समान प्रिय मानकर उन्हें श्रीराधारमन जी की सेवा में नियुक्त कर दिया और इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी,छः गोस्वामियों में से एक बन गये। श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी अपने को बहुत ही दीनहीन मानते थे। उन्होंने श्रील कविराज गोस्वामी जी को श्रीचैतन्य चरितामृत में अपने विषय में लिखने के लिये मना किया था। इसी कारण कविराज गोस्वामीजी ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन ना करते हुए, केवल उनके नाम का ही उल्लेख किया है। श्रील जीव गोस्वामी जी ने भी षड़ सन्दर्भ में यह उल्लेख किया है कि गोपाल भट्ट गोस्वामी जी द्वारा लिखे ग्रंथों की सहायता से ही उन्होंने 'षड़-

सन्दर्भ' लिखा है। गोपाल भट्ट गोस्वामी जी "सत्क्रिया सारदीपिका" नामक ग्रन्थ के रचयिता, तथा 'हरिभक्ति विलास' नामक ग्रन्थ के सम्पादक और षड़-सन्दर्भों के पूर्व लेखक है। इन्होंने बिल्वमंगल के श्रीकृष्णा कर्णामृत नामक ग्रन्थ की टिप्पणी लिखकर वैष्णवों के आनन्द को बढ़ाया है। श्रीनिवास आचार्य जी और श्रीगोपीनाथ पुजारी इनके शिष्य थे। श्रीगोपीनाथ पुजारी के श्रीगोपाल भट्ट जी के शिष्य होने के सम्बन्ध में भी एक वृत्तान्त सुनने में आता है—

"हरीद्वार के नज़दीकी शहर सहारनपुर में श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी के पधारने पर एक सरल भक्तिमान ब्राह्मण ने निष्कपट भाव से गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के चरणों की बहुत सेवा की।वे ब्राह्मण पुत्रहीन थे। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी जी ने उनके हृदय के भावों को जानकर, हरिभक्ति परायण पुत्र प्राप्त होने के लिए उनको आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण ने तब यह वादा किया कि वे अपने पहले पुत्र को श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी जी की सेवा में समर्पित कर देंगे। उस ब्राह्मण को श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी की कृपा से सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई। उस ब्राह्मण के वह पुत्र ही श्रीगोपीनाथ पुजारी थे।"

कहा जाता है कि श्रीमन्महाप्रभु जी ने, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी जी के प्रति स्नेह से भरकर उनको अपनी डोर, कौपीन और काली लकड़ी का आसन भेजा था। वृन्दावन में श्रीराधारमन मन्दिर में महाप्रभु जी के उस डोर, कौपीन और आसन की आज भी पूजा होती है।

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी जब उत्तर भारत में तीर्थ भ्रमण पर थे, तब उन्हें गण्डकी नदी के तट पर एक शालग्राम शिला मिली और वे हमेशा उस शिला की व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के रूप में पूजाकर ते थे। श्रीविग्रह के बायीं और श्रीमति राधा रानी जी के प्रतिभू के रूप में एक चाँदी का मुकुट रखा है।

यह भी कहा जाता है कि श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी जी बारह शालग्रामों की सेवा प्रतिदिन करते थे। एक बार उनके मन में यह इच्छा हुई कि यदि श्रीशालग्राम श्रीविग्रह के रूप में प्रकट होते तो वे और अच्छी प्रकार उनकी सेवा कर सकते थे। अंतर्यामी भगवान् ने उनके हृदय के भावों को जानकर, एक सेठ के माध्यम से अनेक उपकरण और वस्त्र अलंकार उनके पास भिजवाये। श्रीगोपाल भट्ट यह सोचने लगे कि अगर शालग्राम जी श्रीविग्रह के रूप में प्रकट ना हों तो वे वस्त्राभूषणों से उन्हें कैसे सजा सकते हैं? रात को उन्होंने शालग्रामों को सुलाया परन्तु दूसरे दिन सुबह उठकर देखा तो बारह शालग्रामों के बीच, एक शालग्राम श्रीराधारमण के श्रीविग्रह के रूप में प्रकट हो गये जिनकी श्रीवृन्दावन के श्रीराधारमण मन्दिर में नित्यप्रति सेवा -पूजा होती है। श्रीकृष्ण के अद्‌भुत प्रकट्य और करुणा की बात सुनकर श्रीरूप गोस्वामी जी और श्रीसनातन गोस्वामी जी आदि वैष्णव भी श्रीराधारमण जी के श्रीविग्रह के दर्शन के लिये आए और उनके दर्शन करके प्रेम में डूब गये। वैशाखी पूर्णिमा के दिन श्रीराधारमण के अभिषेक का काम सम्पन्न हुआ। वृन्दावन में श्रीराधारमण मन्दिर की विशेष प्रसिद्धि है।

शक संवत् 1507 की आषाढी कृष्णा-पंचमी (अन्य मतानुसार शुक्ला-पंचमी, एक और मतानुसार शक संवत् 1500, सन् 1531 ई. की श्रावण कृष्ण षष्ठी) को श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी ने जागतिक लीला सवंरण की। श्रीराधारमण जी के मन्दिर के पीछे उनका समाधि मन्दिर है। श्रीनिवासाचार्य जी द्वारा रचित "षड़गोस्वाम्याष्टक" के पाठ से हम अपने गोस्वमियों की महिमा भली-भान्ति समझ सकते हैं।

******

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी

दासश्रीरघुनाथस्य पूर्वाख्या रसमञ्जरी।

अमुं केचित् प्रभाषन्ते श्रीमतीं रतिमञ्जरीम्।

भानुमत्याख्या केचिदाहुस्तं नामभेदतः॥

(गौ. ग. दी. 186)

कृष्णा लीला में जो रस मंजरी, मतान्तर में रति मंजरी अथवा भानुमती* हैं, श्रीगौर लीला में वे ही श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई हैं।

अनुमानतः शक सम्वत् 1416 में हुगली ज़िले के अन्तर्गत सप्तग्राम (रेलवे स्टेशन आदि सप्तग्राम) से कुछ दूर, दक्षिण दिशा में, प्राचीन सरस्वती नदी के पूर्वी किनारे पर, श्रीकृष्णपुर ग्राम में, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी का आविर्भाव हुआ। सप्तग्राम से श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी की प्रकट स्थली एक मील से कुछ अधिक है तथा ये त्रिश बीघा रेलवे स्टेशन से लगभग डेढ मील दूर है। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के पिता थे—श्रीगोवर्धन मजूमदार। माता का परिचय ज्ञात नहीं हो पाया। श्रीगोवर्धन मजूमदार के बड़े भाई श्रीहिरण्य मजूमदार पुत्रहीन थे। श्रीहिरण्य मजूमदार और श्रीगोवर्धन मजूमदार सप्तग्राम के एक बहुत बड़े ज़मींदार थे। उस समय सप्तग्राम की सीमा यशोहर भैरव नदी से लेकर लगभग रूप नारायण नदी तक फैली हुई थी। सप्तग्राम के कृष्णपुर में श्रील रघुनाथदास गोस्वामी का, शँखनगर में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के कुल के चाचा श्रीमन्महाप्रभु के भक्त कालिदास जी का, चाँदपुर में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के कुल पुरोहित श्रीबलराम आचार्य का और कुल-गुरु श्रीयदुनन्दन आचार्यजी का निवास था। श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के 'अन्तरंग' शिष्य थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी इन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते थे। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर जी के भी ये विशेष कृपापात्र थे। नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी बलराम आचार्य जी के घर में ठहरते थे। श्रील हरिदास ठाकुर जी जब वेनापोल जंगल में, रामचन्द्र खां द्वारा प्रेरित वेश्या का उद्धार करके व वेनापोल को छोड़कर, चान्दपुर में श्रीबलराम आचार्य के घर में ठहरे थे, उसी समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को, श्रीहरिदास ठाकुर जी के दर्शन करने का सुयोग हुआ था। ये बात अलग है कि उस समय रघुनाथ दास जी छोटे बालक थे। महाभागवत् हरिदास ठाकुर जी के ये दर्शन और कृपा ही श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी के पास फलीभूत हुई और हरिदास ठाकुर जी के उस दर्शन और कृपा ने ही रघुनाथ दास जी को श्रीमन्महाप्रभु जी का सान्निध्य करवाया—

रघुनाथ दास बालक करेन अध्ययन।

हरिदास-ठाकुरेरे जाइ' करेन दर्शन॥

हरिदास कृपा करेन ताँहार उपरे।

सेइ कृपा 'कारण' हैल चैतन्य पाइबारे॥ (चै.च.अ. 3/168-169)

---

* (सखी परिचारिका दुती)

अर्थात् श्रीरघुनाथ दास जी बचपन में जब पढ़ते थे तब ही उन्होंने हरिदास ठाकुर जी के दर्शन किये थे और श्रीहरिदास जी ने भी उन पर कृपा की थी। उसी कृपा के प्रभाव से उनको श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की प्राप्ति हुई थी।

शौक्र कायस्थ कुल में जन्मे श्रीहिरण्य और गोवर्धन मजूमदार की वार्षिक आय तब भी आठ लाख मुद्रा हुआ करती थी। ऐसा सुना जाता है कि उन दिनों एक मुद्रा अथवा एक रुपये से आठ मन चावल मिल जाते थे। अत: उस समय के एक रुपये का मूल्य वर्तमान मूल्य से कई गुणा अधिक था। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी उस विपुल सम्पत्ति के एक मात्र अधिकारी होने पर भी, बचपन से ही विषयों से उदासीन और विरक्त थे। जिस समय श्रीमन्ममहाप्रभु जी संन्यास लेकर शान्तिपुर में आए थे, उस समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का पहला अवसर

मिला था। श्रीमन्महाप्रभु जी के दर्शन करके, उनके चरण कमलों में पड़ने के साथ-साथ ही श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी भाव विभोर हो गए थे। श्रीरघुनाथदास जी के पिता श्रीगोवर्धन मजूमदार, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु जी की सदा श्रद्धा-भक्ति के साथ सेवा करते थे। रघुनाथ जी के पिता श्रीगोवर्धन मजूमदार के सम्बन्ध से श्रीअद्वैताचार्य प्रभु का श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी के प्रति बहुत प्यार था। जितने दिन श्रीरघुनाथ दास जी शान्तिपुर में रहे, उनको वे (श्रीअद्वैताचार्य) श्रीमन्महाप्रभु का बचा हुआ प्रसाद देते थे। श्रीमन्महाप्रभु की शान्तिपुर से नीलाचल की ओर यात्रा करने पर रघुनाथ दास गोस्वामी जी स्थिर न रह पाये और महाप्रभु जी के विरह में प्रेमोन्मत्त हो कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे थे।

श्रीरघुनाथ दास जी की प्रेमोन्मत्त अवस्था देखकर, उन के पिता ने ग्यारह प्रहरियों* की मदद से उन्हें कड़े पहरे में रखा। फिर भी श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिए जैसे-तैसे बार बार घर से भाग जाते थे और उन के पिता प्रहरी भेज कर बार बार पकड़कर लिवा लाते थे। महाप्रभु जी के दर्शनों से वन्चित रहने के कारण, वे सदा दु:खी रहते थे। पुत्र की ऐसी अवस्था देखकर पिता-माता के मन में शान्ति न थी। श्रीमन्महाप्रभु जी वृन्दावन यात्रा के समय, कानाई की नाटशाला से वापिस लौटते हुए दोबारा शान्तिपुर आए हैं, यह जान कर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने उनके पास जाने के लिए पिता से आज्ञा माँगी। पुत्र को व्याकुल देखकर, पिता ने चिन्तित होकर कई लोगों और पदार्थों के साथ, पुत्र को महाप्रभु जी के पास भेज दिया परन्तु शीघ्र वापिस आ जाने के लिए कहा।

श्रीरघुनाथ दास जी ने शान्तिपुर में महाप्रभु जी का दर्शन करके मानो दोबारा प्राण प्राप्त किए हों। उनसे अपने दु:खों की बात निवेदित की और किस प्रकार उनकी संसार के बन्धनों से मुक्ति होगी, उस के लिए भी जिज्ञासा की। सर्वान्तर्यामी गौरांग महाप्रभु जी ने उन के दिल में छिपे भाव जान लिए, लेकिन उनको शिक्षा देने के उद्देश्य से आश्वासन देते हुए बोले—

"स्थिर हञा घरे जाओ' ना हओ वातुल।

क्रमे क्रमे पाय लोक भवसिन्धुकूल॥

मर्कट-वैराग्य ना कर लोक देखाञा।

यथायोग्य विषय भुञ्ज अनासक्त हञा॥

अन्तरे निष्ठा कर, बाह्ये लोक-व्यवहार।

अचिरात् कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥ (चै.च.म. 16/237-239)

---

* (5 सिपाही, 4 सेवक तथा 2 ब्राह्मण की)

अर्थात् रघुनाथ जी को समझाते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं कि आप स्थिर होकर घर जाओ और पागल मत बनो। लोग धीरे-धीरे ही संसार सागर का किनारा प्राप्त करते है। दुनियाँ को दिखाने के लिए बन्दर जैसा वैराग्य मत करो, अनासक्त होकर यथायोग्य विषयों को ग्रहण करो। हृदय में निष्ठा रखो और बाहर से लोकोचित व्यवहार करो—ऐसा करने से जल्दी ही श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार कर देंगे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी ने श्रीमन्महाप्रभु के उपदेश के तात्पर्य में मर्कट वैराग्य के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

बाहरी तौर पर भोगबुध्दि वाला बन्दर,जिस प्रकार घर व वस्त्र आदि रहित होने से वैराग्ययुक्त व्यक्ति की तरह लगता है परन्तु वास्तव में वह इन्द्रिय तर्पण से निवृत नहीं हुआ होता, उसी प्रकार की दिखावटी वैराग्य को ही मर्कट वैराग्य कहते हैं। जो वैराग्य शुध्द भक्ति से उत्पन्न न होकर, कृष्णेतर वस्तुओं के प्रति कामना और वासना में बाधा पड़ने पर पैदा हुआ हो, जो शुध्द-भक्ति के अनुकूल रुप से जीवन भर स्थायी न होकर क्षणिक और निरर्थक हो, वो श्मशान वैराग्य या मर्कट वैराग्य है। कृष्ण-सेवा करत हुये अत्यावश्यक विषयों को स्वीकार करके,उन विषयों में आसक्ति रहित भाव से वास करने पर मनुष्य कर्मों के फल के अधीन नहीं होता।

यावता स्यात् स्वनिर्वाहः स्वीकुर्यात्तावदर्थवित्।

आधिक्ये न्यूनतायांच च्यवते परमार्थतः*॥

(भ. र. सि पूर्व विभाग नारदीय वचन 1/2/108)

श्रीभक्ति रासामृत सिन्धु में फल्गुवैराग्य और युक्त वैराग्य किस को कहते हैं, वह बहुत ही स्पष्ट रूप मे लिखा है, जैसे—

प्रापंचिकतया बुध्दया हरि सम्बधि-वस्तुनः।

मुमुक्षुथि परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

अर्थात-हरि सेवाय याहा अनुकूल।

विषय वलिया त्यागे हय भूल॥

अनासक्ततस्य विषयान् यथार्हमुपयुंजतः।

निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

अर्थात—आसक्ति रहित सम्बन्ध सहित।

विषय समूह सकलि माधव॥

अर्थात भगवान की सेवा के लिए जो-जो भी अनुकूल है, यदि हम विषय समझकर उसे छोड़ेंगे तो यह हमारी भूल होगी। इसके अलावा संसार की आसक्ति से रहित तथा भगवान के साथ सम्बन्ध युक्त होकर देखेंगे तो मालूम पड़ेगा कि सभी विषयों के मालिक तो भगवान माधव ही है।

---

* इस श्लोक में स्वनिर्वाहः शब्द के स्थान पर श्रीजीव गोस्वामी प्रभु जी ने दुर्गम संगमनी टीका में स्व-स्व भक्तिनिर्वाहः कहा है।

श्रीमन्महाप्रभु जी के उपदेशों के अनुसार रघुनाथ दास गोस्वामी जी घर वापिस आ गये और घर आकर बाहरी वैराग्य की सनक छोड़कर तथा अनासक्त हो कर विषय-कार्यों में लग गए। रघुनाथ दास गोस्वामी जी के वैराग्य के चिन्हों

में शिथिलता देखकर व उनकी संसार के प्रति अनुकूल भावना को देखकर उनके माता-पिता के मन मे बड़ा सुख हुआ। घर के कार्यों आदि में पूरी तरह से लगा देख उनके माता-पिता ने रघुनाथ दास जी के लिए पहरेदार रखने की ज़रूरत नहीं समझी।

इस समय राजा और ज़मींदार के बीच एक बिचौलिया होता था , जो प्रजा से कर वसूल करके, उस का एक चौथाई हिस्सा अपने पास रखकर बाकी ज़मींदार के खज़ाने में जमा करवा देता था। उस ज़माने में उसे चौधरी कहा जाता था।* श्रीहिरण्य मजूमदार ने बिचौलिया मुसलमान चौधरी को हटा कर सप्तग्राम के मुकुलपति से सीधा सम्बन्ध स्थापित करके कर लेन-देन की स्थायी व्यवस्था कर दी थी। हिरण्य मजूमदार ने बीस लाख वसूल कर के, राजा को उसका एक चौधाई हिस्सा अर्थात पाँच लाख छोड़कर, पन्द्रह लाख जमा करवाने थे परन्तु हिरण्य मजूमदार ने सिर्फ बारह लाख ही दिये जिससे वह मुसलमान चौधरी अपने को मिलने वाले हिस्से से वन्चित हो गया। अपने हिस्से से मिलने वाले धन से वन्चित होने से वह चौधरी हिरण्य-गोवर्धन का कट्टर विरोधी हो गया।

इधर श्रील रघुनाथ दास जी ने अपने घर वापस आकर, श्रीमन्महाप्रभु जी की शिक्षा स्मरण करके युक्त वैराग्य का सहारा लिया। वे अन्दर से वैराग्य के भाव और बाहर से विषयी की भान्ति काम करने लगे थे। परन्तु यह समाचार पाकर कि श्रीमन्महाप्रभु मथुरा से वापस आ गए हैं, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी उनके पास जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि उन्हीं दिनों म्लेच्छ चौधरी ने लाभांश से वन्चित होने पर राजा के पास हिरण्य मजूमदार के खिलाफ शिकायत कर दी जिसके फलस्वरूप कैद होने के डर से हिरण्य और गोवर्धन मजूमदार भाग खड़े हुए। राजा के वज़ीर ने आकर मुसलमान चौधरी की प्रेरणा से रघुनाथ दास गोस्वामी जी को ही कैद कर लिया। मुसलमान चौधरी प्रतिदिन रघुनाथ दास जी को गाली-गलौच करके डराने व धमकाने लगा और उन के ताऊ और पिता कहाँ है, यह बताने के लिए दवाब डालने लगा।

चौधरी जब क्रोधित होकर रघुनाथ दास गोस्वामी जी को मारने जाता व उनके स्निग्ध कमल के समान चेहरे को देखता तो उन्हें मार न पाता था। बाहर से मात्र गाली- गलौच ही कर पाता, कायस्थ कुल में जन्मे श्रीरघुनाथ जी की बुद्धिमत्ता से वह सदा आतंकित रहता था। कारण, मालूम नहीं कि कायस्थ लोग अपने बुद्धि कौशल द्वारा कब कौन सी मुसीबत खड़ी कर देंगे। मधुरभाषी श्रीरघुनाथ दास जी, मुसीबत से छुटने का उपाय सोच कर बड़े प्यार से चौधरी से कहने लगे– मेरे पिता जी और ताऊ जी तुम्हारे दो भाई है। आप भाई-भाई कब झगड़ा करते हैं और कब प्यार करने लगो ,यह जानना बहुत कठिन है। आज आप झगड़ा करते है, कल देखियेगा आप एक साथ मिल जायेंगे। मैं जैसे अपने पिता का पुत्र हूँ, वैसे ही आप का भी पुत्र हूँ। मैं आप का पाल्य हूँ और आप मेरे पालक है। पालक होकर पालित को बुरी तरह डाँटना उचित नहीं है। आप तो सर्वशास्त्रों के ज्ञाता ज़िंदा पीर है। आप को ज्यादा कहना छोटे मुँह बड़ी बात होगी।

रघुनाथ जी की स्नेहपूर्ण बातें सुनकर प्यार से वह मुसलमान चौधरी रोने लग पड़ा और बोला आज से तुम मेरे पुत्र हो। देखो, जैसे भी हो सकेगा, आज मैं तुमको छुड़ा दूँगा। बस तुम अपने ताऊ से मुझे मिला दो और जिस प्रकार मुझे मेरा हिसाब मिल जाये, उसका इन्तज़ाम कर दो। रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने अपनी मधुर वाणी और चतुराई भरे व्यवहार से पिता और ताऊ के साथ चल रहे उस मुसलमान चौधरी के झगड़े को शान्त करके सबको वश में कर लिया और धीरे-धीरे सब सामान्य हो गया।

---

* (आजकल उसे नायब बोला जाता है)

कुछ समय बाद रघुनाथ जी के पिता ने रघुनाथ को संसार में बान्धने के लिए, एक बहुत ही सुन्दर लड़की के साथ उनका विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक बाहर से सब ठीक ही चलता नज़र आता रहा परन्तु रघुनाथ जी के ह्रदय में तो सांसारिक वैराग्य की आग सुलग रही थी, धीरे-धीरे वह बाहर प्रकट होने लगी। एक साल बीतने पर रघुनाथ दास गोस्वामी

जी फिर श्रीमन्महाप्रभु जी से मिलने के लिए व्याकुल होकर घर से भाग खड़े हुए परन्तु उनके पिता उनको पकड़वा लाये। बीच-बीच में ये क्रम चलता रहा। रघुनाथ दास जी घर से भागते और उनके पिता उन्हें पकड़ कर लिवा लाते। रघुनाथ जी की माता ने पुत्र के दिमाग में दोबारा खराबी देखकर रघुनाथ दास जी के पिता को उन्हें बान्ध कर रखने के लिए कहा। श्रीगोवर्धन उसके उत्तर में बोले—

"इन्द्रसम ऐश्वर्य, स्त्री अप्सरा-सम।

ए सब बान्धिते नारिलेख यार मन॥

दड़िर बन्धने ताँरे राखिबा केमते?

जन्मदाता पिता नारे 'प्रारब्ध' खण्डाइते॥

चैतन्यचन्द्रेर कृपा हञाछे इँहारे।

चैतन्यप्रभुर 'वातूल' के राखिते पारे??"

(चै.च.अ. 6/39-41)

अर्थात् इन्द्र के समान ऐश्वर्य और अप्सरा के समान स्त्री—वह सब जिसके मन को नहीं बान्ध सके, उसे रस्सियो का बन्धन भला कैसे रोक लेगा। सच तो यह है कि जन्मदाता पिता भी अपने पुत्र के प्रारब्ध को नहीं बदल सकता है। इसके ऊपर तो भगवान चैतन्य महाप्रभु जी की कृपा हो गयी है इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के बातुल (पागल-प्रेमी) को भला कौन रोक सकता है।

श्रीरघुनाथ दास जी सोचने लगे कि वे किस प्रकार संसार से मुक्त होंगे। इसी समय समाचार मिला कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु पाणिहाटि में पधारे हैं। पतितपावन—नित्यानन्द प्रभु की कृपा होने पर ही, संसार से मुक्ति सम्भव होगी,यह सोच कर श्रीरघुनाथ दास जी ने पाणिहाटि की ओर यात्रा की और उस स्थान पर पहुँचे जहाँ नित्यानन्द प्रभुजी थे। जिस समय रघुनाथ दास गोस्वामी जी वहाँ पहुँचे, उस समय नित्यानन्द जी गंगा जी के किनारे एक पेड़ के नीचे बने थड़े पर बैठे हुए थे तथा बहुत से भक्त उन्हें घेरे हुए बैठे थे। श्रीमन्नियानन्द प्रभु के दर्शन करके दूर से ही रघुनाथ जी ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।श्रीमन्नियानन्द ने कृपा से आर्द्रचित्त होकर, उनको ज़बरदस्ती खींच कर अपने पास बिठा लिया और उनके सिर पर अपने चरण कमल रख दिए। श्रीरघुनाथ जी के मन का भाव जान कर उनकी इच्छा जैसी भी हो, पूरी हो जाये, ऐसा आशीर्वाद दिया तथा उन्हें अपने पार्षदों अर्थात् वैष्णवों की सेवा करने के लिए सुझाव दिया—

"निकटे ना आइस, चोरा, भाग' दूरे दूरे।

आजि लाग्, पाञाछि, दण्डिमु तोमारे॥

दधि, चिड़ा भक्षण कराह मोर गणे।

सुनिया आनन्द हैल रघुनाथेर मने॥ (चै.च.अ. 6/50-51)

अर्थात् मज़ाक में श्रीनित्यानन्द जी रघुनाथ दास जी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि हे चोर! तुम पास नहीं आते हो, दूर दूर से ही भाग जाते हो। आज पकड़े गये। अतः आज मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। दण्ड ये की आप मेरे गणों को दधि-चिड़वे का उत्सव करवाओ। यह सुनकर श्रीरघुनाथ दास मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी जी ने श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के कृपा निर्देश से पाणिहाटि में जो महोत्सव किया था, वह आज भी" पाणिहाटि का चिड़वा दही महोत्सव" के नाम से प्रसिद्ध है। उस महोत्सव में स्वयं भगवान श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी और उनकी अभिन्न प्रकाश मूर्ति श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी ने अपने पार्षदों के साथ गंगा के किनारे को यमुना पुलिन मान कर भोजन लीला की थी। श्रीमन्महाप्रभु जी व श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी तथा उनके पार्षदों , ब्राह्मणों और असंख्य दूसरे लोगों ने, इस महोत्सव में दूध-चिड़वे का सेवन करके परम सन्तोष प्राप्त किया था। इस प्रकार की सेवा का सुयोग पाना कम सौभाग्य की बात नहीं। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने दूसरे दिन राघव पण्डित के माध्यम से, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु से अत्यन्त कातर भाव से यह जिज्ञासा की थी कि उन्हें संसार के बंधनों से कैसे शीघ्रातिशीघ्र छुटकारा मिलेगा व कैसे शीघ्रातिशीघ्र उन्हें महाप्रभु जी के चरणकमलों की प्राप्ति होगी?

कृपा के सागर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु जी श्रीरघुनाथ दास जी के सिर पर अपने चरणकमलों को रखकर बोले—

तुमि ये कराइला एइ पुलिन-भोजन।

तोमाय कृपा करि' गौर कैला आगमन॥

कृपा करि' कैला चिड़ा-दुग्ध भोजन।

नृत्य देखि' रात्र्ये कैला प्रसाद-भक्षण॥

तोमा उध्दारिते गौर आइला आपने।

छुटिल तोमार जत विघ्नादि-बन्धने॥

स्वरुपेर स्थाने तोमा करिबे समर्पणे।

'अन्तरङ्ग' भृत्य बलि' राखिबे चरणे॥

निश्चिन्त हञा जाह आपन-भवन।

अचिरे निर्विघ्ने पाबे चैतन्य-चरण॥

(चै.च.अ. 6/139-143)

अर्थात् रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने संसार बन्धनों से छुटकारा व महाप्रभु जी के चरणों की प्राप्ति के सम्बन्ध में जो प्रशन्न पूछ था, उसके जवाब में नित्यानन्द जी ने रघुनाथ दास जी को कहा की यह पुलिन भोजन, जो तुम ने आज कराया है, आप पर कृपा के लिए श्रीगौरहरी ने आपके इस पुलिन भोजन में आगमन किया है। आप पर कृपा करने के लिये ही उन्होंने दधि-चिड़वे खाये तथा नृत्य देखकर रात्रि में प्रसाद भी पाया है। आप का उद्धार करने के लिए ही श्रीगौरहरि

स्वयं यहाँ आए हैं। आपके जितने विघ्न या बन्धन थे, वे आज सब समाप्त हो गये हैं। देख लेना श्रीचैतन्य महाप्रभुजी आपको स्वरूप दामोदर जी के चरणों में समर्पण कर देंगे तथा वे अपना अन्तरंग दास बनाकर आपको अपने पास रख लेंगे। अब तुम चिन्ता रहित होकर अपने घर जाओ। अब जल्दी ही निर्विघ्न आप श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के चरणों की प्राप्ति करोगे।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने श्रील राघव पण्डित से परामर्श करके वैष्णवों की यथा योग्य दक्षिणा द्वारा पूजा की। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की कृपा पाकर श्रीरघुनाथ दास जी कृतार्थ हुए। रघुनाथदास जी पाणिहाटि से वापस आकर अन्दर दाखिल नहीं हुए, घर के बाहर ही वाटिका के दुर्गा मण्डप में सो गये। पहरेदार हमेशा जागते हुए श्रीरघुनाथ दास जी का पहरा देने लगे। गौड़ देश के भक्त श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिए नीलाचल जा रहे है, यह सुनकर भी श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी पकड़े जाने के भय से न जा पाये। एक दिन रात्रि के अन्त में यदुनन्दन आचार्य, श्रीरघुनाथ दास के पास आकर बोले कि रघुनाथ! तुमसे मेरा एक ज़रूरी कार्य है।वह ये कि मेरे शिष्य ने ठाकुर जी की सेवा छोड़ दी है, वह तुम्हारी बात मानता है। जैसे-तैसे तुम उसे समझा-बुझाकर ले आओ और उसे पुनः सेवा में लगा दो। उसे सेवा में लगाना ज़रूरी है क्योंकि मुझे और कोई ब्राह्मण पुजारी मिल नहीं रहा है। श्रीरघुनाथ गोस्वामी जी अपने श्रीगुरुदेव के साथ चल पड़े। रात्रि के अन्तिम पहर में पहरेदार सोए हुए थे। श्रीरघुनाथ गोस्वामी ने जब आधे के करीब रास्ता तय कर लिया तो अपने कुलगुरु जी से बोले—आप किसलिए इतनी दूर उस सेवक के पास तक जाएँगे। आपको इतना कष्ट करने की कोई ज़रूरत नहीं, मैं समझा-बुझाकर उसे आपके पास सेवा करने के लिए भेज दूँगा। इतना कहकर रघुनाथ दास जी ने अपने कुलगुरु जी को वापिस भेज दिया और स्वयं उनसे विदा की आज्ञा ली। यहाँ से वे उस पुजारी सेवक के पास न जाकर महाप्रभु जी से मिलने के लिए चल दिये, कोई उन्हें पहचान न ले, इसलिए वे गाँव का रास्ता छोड़कर जंगलों के रास्ते पर चलते रहे। उन्होंने एक दिन में लगभग तीस मील का रास्ता तय किया। शाम को एक ग्वाले की बगीची में ठहरे। रघुनाथ दास जी को भूखा जानकर उस ग्वाले ने उनको दूध दिया।

दूसरे दिन सेवाकों और पहरेदारों से श्रीरघुनाथ दास जी के चले जाने की बात सुनकर, गोवर्धन मजूमदार जी ने शिवानन्द सेन जी के नाम पत्र देकर, दस सेवाकों को पूरी से श्रीरघुनाथ दास जी को वापिस लाने के लिए भेजा। पत्र ले कर जाने वाले सेवक,शिवानन्द सेन से मिले परन्तु उनसे श्रीरघुनाथ दास जी का कोई समाचार न पाकर पुरी से हताश होकर वापिस आ गए। प्रभु प्रेम में आत्महारा होकर श्रीरघुनाथ दास जी भूखे-प्यासे, बिना सोए, बिना विश्राम किए चलते-चलते बारह दिन में पुरुषोत्तम धाम में आ पहुँचे। आश्चर्य यह था कि रास्ते में उन्होंने केवल तीन ही दिन भोजन किया था। श्रीस्वरूप दामोदर के साथ महाप्रभु जी बैठे थे कि इतने में रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने आकर दूर से ही महाप्रभु जी को प्रणाम किया। श्रीमुकुन्द दत्त ने महाप्रभु जी को बताया की श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी आपको प्रणाम कर रहे हैं। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीरघुनाथ जी को बड़े प्यार से अपने पास आने के लिये कहा। नज़दीक आकर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभु जी के चरणों में गिर पड़े। महाप्रभु जी ने कृपा से आर्द्रचित होकर उनका आलिंगन किया और कहा—

कृष्ण कृपा बलिष्ठ सेवा हइते।

तोमारे काड़िल विषय विष्ठा गर्त्त हैते॥

अर्थात् कृष्ण सेवा ही सब से बलवान है, जिसने तुम्हें विषय रूपी विष्ठा के गड्ढे से बाहर निकाल दिया है। श्रीरघुनाथ दास जी उसके उत्तर में मन ही मन बोले—

कृष्ण नाहि जानि।

तब कृपा काड़िल आमा एइ आमि मानि॥

अर्थात् मैं कृष्ण कृपा को तो नहीं जानता हूँ, आपकी कृपा ने ही मुझे निकाला है, मैं तो बस यही मानता हूँ।

श्रीमन्महाप्रभु प्रभु जी के नाना, श्रीनीलान्बर चक्रवर्ती रघुनाथ जी के पिता और ताया को कायस्थ और उमर में छोटा जानकर भैया कह कर बुलाते थे। वे दोनों भी उन (नीलाम्बर चक्रवर्ती) को ब्राह्मण और उम्र में बड़ा जान कर दादा कह कर बुलाते थे। बंगाली भाषा में बड़े भाई को दादा कहा जाता है। महाप्रभु जी ने ये सोचकर कि रघुनाथ दास जी के पिता और ताया , उनके नाना (श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती) के भाई थे, मज़ाक में यों कहा—

तोमार बाप-ज्येठा-विषयविष्ठा गर्तेर कीड़ा।

सुख करि' माने विषय-विषेर महा पीड़ा॥

यघपि ब्राह्मण्य करे, ब्राह्मणेर सहाय।

'शुद्धवैष्णव' नहे, वैष्णवेर प्राय'॥

तथापि विषयेर स्वभाव-करे महा-अन्ध।

सेइ कर्म कराय, याते हय भव-बन्ध॥

हेन 'विषय' हैते कृष्ण उध्दारिला तोमा।

कहन ना याय कृष्ण कृपार महिमा॥"

(चै.च.अ. 6/197-200)

रघुनाथ दास जी को महाप्रभु जी मज़ाक- ही- मज़ाक में कहते हैं—रघुनाथ!

तुम्हारे पिताजी व ताऊजी तो विषय रूपी विष्ठा के गड्ढे के कीड़े हैं। वे विषय की महापीड़ा को ही सुख समझते हैं। यद्यपि वे ब्राह्मण-सेवी है तथा ब्राह्मणों की सेवा-सहायता भी करते हैं तब भी वे शुद्ध वैष्णव नहीं है, वे तो वैष्णव-प्राय हैं। विषयों का स्वभाव है कि वह मनुष्य को अन्धा बना देते हैं तथा उससे यह वही कर्म करवाते हैं जिससे कि भव बन्धन हो। इन विषयों से श्रीकृष्ण ने तुम्हारा उद्धार कर दिया है। श्रीकृष्ण की अपार कृपा की महिमा कही नहीं जा सकती।

श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीकृष्ण कृपा और विषय-विष की महापीड़ा के सम्बन्ध में लिखा है—

पूर्व जन्म के कर्म-फलों की अपेक्षा कृष्ण-कृपा अधिक बलवान होती है। श्रीकृष्ण कि इसी कृपा ने ही श्रीरघुनाथ दास जी का विषय रूपी विष्ठा के गड्ढे से उद्धार किया है। विषयों का अनुरागी होने से जीव अपनी ताकत से उसका त्याग नहीं कर पाता। हाँ,यह बात शत -प्रतिशत सत्य है कि विशुद्ध कृष्ण-दास जीव के लिये विषय, विष्ठा के गड्ढे की तरह है।

श्रीरघुनाथ दास जी को नीर्विषयी मानते हुए भी आर्त्त- विषयी लोगों को शिक्षा देने के लिए, श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने यह कहा कि दुनियाँ के ये विषय भोग अपने भोक्ता को बहुत कष्ट देते हैं, परन्तु फिर भी विषय भोगों में प्रमत्त लोग उन कष्टदायक विषयों में ही सुख मानते हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने आगे लिखा कि जड़ इन्द्रियों के भोग्य विषय टट्टी-पेशाब के गन्दे नाले की तरह है तथा विषयों में फँसा हुआ जीव उस गन्दे नाले के घृणित कीड़े की तरह है। अर्थात परमार्थिक दृष्टि से जड़ीय भोक्ता विषयी व्यक्ति उस गन्दे घृणित कीड़े की तरह बड़े आराम से अत्यन्त घृणित विषय रूपी विष्ठा को आस्वादन करने में लगा हुआ है।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीरघुनाथ जी को बहुत कमज़ोर देखकर उनको अपने पुत्र और सेवक के रूप में स्वीकार किया तथा उनके सब प्रकार के मंगल व अमंगल का सारा दायित्व श्रीस्वरूप दामोदर जी को अपने ऊपर लेने को कहा। श्रीमन्महाप्रभुजी ने श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को स्वरूप दामोदर जी के सुपुर्द कर दिया। वैद्य रघुनाथ, भट्ट रघुनाथ और दास रघुनाथ इन तीन रघुनाथों में ये रघुनाथ दास गोस्वामी जी स्वरूप के रघु के नाम से प्रसिद्ध हुए।

भक्तवत्सल श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीरघुनाथ दास जी के आदर और उनके यत्न के लिए अपने सेवक गोविन्द जी को निर्देश दिया। महाप्रभुजी ने श्रीरघुनाथ जी को भी समुद्र स्नान के पश्चात् श्रीजगन्नाथ जी के दर्शनों के बाद ही प्रसाद पाने के लिए आदेश दिया। गोविन्द उनको श्रीमन्महाप्रभु का बचा हुआ प्रसाद(भोजन) देते थे जिससे श्रीरघुनाथ दास बहुत ही आनन्दित होते। श्रीरघुनाथ दास जी ने केवल पाँच दिन तक स्वरूप दामोदर जी के साथ बैठकर महाप्रभुजी का बचा हुआ प्रसाद ग्रहण किया था। छटे दिन से इस प्रकार प्रसाद ग्रहणकरना छोड़कर वे रात्रि में श्री जगन्नाथ जी की पुष्पांजलि सेवा देखकर, सिंह द्वार पर भिक्षा के लिए खड़े हो जाते। रात में श्रीजगन्नाथ जी की सेवा पूर्ण करके अपने घर जाते समय जगन्नाथ जी के सेवक किसी भूखे वैष्णव को वहाँ खड़ा देखकर, प्रसाद दे देते थे। ऐसी प्रसाद दान करने की प्रथा आज भी जगन्नाथपुरी में है। तब निश्किंचन भक्त लोग इस प्रकार की भिक्षा वृत्ति के द्वारा ही अपना जीवन यापन करते थे। महाप्रभु जी के भक्तों में वैराग्य विशेष रूप से देखा जाता है—

महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान।

याहा देखि प्रीत हन गौर भगवान॥

अर्थात श्रीमन्महाप्रभुजी के भक्तों में वैराग्य प्रधान होता है। उसे देखकर ही श्रीगौर भगवान प्रसन्न होते हैं।

जब महाप्रभु जी के सेवक गोविन्द ने महाप्रभु जी को यहा बताया कि श्रीरघुनाथ जी मेरे द्वारा दिया हुआ प्रसाद का सेवन न करके सिंहा द्वार पर खड़े होकर भिक्षा करते हैं तो महाप्रभु श्रीरघुनाथ जी के वैराग्य से सन्तुष्ट होकर बोले—

शुनि' तुष्ट हञा प्रभु कहिते लागिल।

भाल कैला, वैरागीर घर्म आचरिल॥

वैरागी कारिबे सदा नाम-सङ्कीर्तन।

मागिया खाञा करे जीवन-रक्षण॥

वैरागी हञा जेबा करे परापेक्षा।

कार्यसिद्धि नहे, कृष्णा करेन उपेक्षा॥

वैरागी हञा करे जिह्वार लालस।

परमार्थ याय, आर हय रसेर वश॥

वैरागीर कृत्य-सदा नाम-सङ्कीर्तन।

शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण॥

जिह्वार लालसे जेइ इति-उति धाय।

शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय॥

(चै.च.अ. 6/222-227)

रघुनाथ दास जी के वैराग्य से प्रसन्न होकर महाप्रभुजी कहते हैं कि अच्छा किया, रघुनाथ ने वैरागी धर्म का आचरण किया। वैरागी सदा नाम-संकीर्तन करेगा तथा वह भिक्षा करके जीवन की रक्षा करेगा। वैरागी होकर यदि कोई दूसरों की अपेक्षा करे तो श्रीकृष्ण भी उसकी उपेक्षा कर देते हैं। वैरागी होकर अगर कोई जिह्वा का लोभ करता है तो उसका परमार्थ चला जाता है।

वैरागी का कार्य है सदा नाम-संकीर्तन करना तथा शाक, पत्र, फल-मूल आदि से पेट भरना। जो जिह्वा के लोभ से इधर-उधर भागेगा, तो वह भोगी-कामुक और पेट्टू बन जाएगा। परिणाम स्वरूप वह श्रीकृष्ण को प्राप्त नहीं कर पाएगा।

महाप्रभु जी के भक्तों के वैराग्य और वैरागियों की एक मात्र कृत्य—नाम-संकीर्तन के विषय में श्रिल भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने लिखा है—

महाप्रभु जी के भक्तों को और अभक्त-विषयी लोगों को पक्षपात रहित होकर अच्छी तरह से देखने पर आसानी से देखा जा सकता है की शुद्ध भक्त लोग दुनियावी भोगों से लिपटे हुए नहीं है। वे तो अपना व अपनों का इन्द्रिय तर्पण छोड़कर तथा दुनियावी भोगों की प्राप्ति के लोभ को परित्याग करके हर समय श्रीकृष्ण की सेवा में लगे हुए हैं। श्रीकृष्ण की सेवा में न लगने वाले विषयों के प्रति शुद्ध भक्त बिल्कुल उदासीन है। हाँ, ये अलग है कि उनकी विषय त्यागपूर्वक अहैतुकी व अप्रतिहता आलौकिकी कृष्णसेवा साधारण दुनियावी दृष्टि से समझ में आने वाली नहीं है। भगवान श्रीगौरसुन्दर जी कृष्णेतर विषयों से विरक्त व्यक्ति के शुद्ध भजन को देखकर व उसकी सेवा करने की चतुरता को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं।

'हरि भक्ति विलास ' में लिखी हुई अनुष्ठानावली गृहस्थ व धनी वैष्णवों के लिए है; सर्वपरित्यागि, विरक्त व एकान्तिक भाव से हरिनाम का आश्रय लिए हुए शुद्ध वैष्णवों के लिए नहीं है। सवेरे, मध्य रात्रि को, दोपहर में और शाम को यानि कि आठों प्रहर ही जो व्यक्ति श्रीहरि का संकीर्तन करते हैं, वे भवसागर से पार हो जाते हैं। एकान्तिक शुद्ध भक्त लोग, परम प्रीति के साथ प्रभु का कीर्तन और ध्यान करते हैं। उनके लिए कीर्तन आदि के सिवाय अन्य कोई और अनुष्ठान नहीं है।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी, श्रीस्वरूप दामोदर जी और श्रीगोविन्द जी के माध्यम से ही अपनी कहने योग्य बात, श्रीमन्महाप्रभु जी को बताते थे। एक दिन श्रीरघुनाथ दास जी ने अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में श्रीमन्महाप्रभु जी के श्रीमुख से उपदेश सुनने के लिए, श्रीस्वरूप दामोदर जी से प्रार्थना की। श्रीस्वरूप दामोदर जी ने वह बात श्रीमन्महाप्रभु जी को बताई , जिस पर महाप्रभु जी श्रीरघुनाथ दास जी से बोले कि वे स्वयं जो कुछ जानते हैं उस से अधिक तो श्रीस्वरूप दामोदर जी जानते हैं।इसलिए साध्य व साधन तत्त्व के सम्बन्ध में तुम्हें जो कुछ जानना हो श्रीस्वरूप दामोदर जी से सुनो। श्रीघुनाथ दास जी का श्रीमन्महाप्रभु जी से ही उपदेश सुनने का आग्रह देखकर बाद में श्रीमन्महाप्रभु जी उनसे बोले कि अगर मेरे वाक्यों में ही तुम्हारी श्रद्धा है तो यह उपदेश ग्रहण करो—

ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्त्त ना कहिबे।

भाल ना खाइबे, आर भाल न परिबे॥

अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे।

व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे॥

(चै.च.अ. 6/236-237)

अर्थात स्त्री-पुरुष से संबंधित अश्लील बातों को न तो सुनना और न ही बोलना तथा न अच्छा-अच्छा खाना और न अच्छा-अच्छा पहनना। स्वयं अमानी होकर सदा कृष्ण-नाम करना और व्रज में श्रीराधा कृष्णा जी की मानसिक सेवा करना।

रथ यात्रा के समय गौड़िय भक्तों के पुरी आने पर वे श्रीरघुनाथ दास जी से भी मिले। श्रीअद्वैताचार्य की कृपा पाकर श्रीरघुनाथ दास जी धन्य हुए। शिवानन्द जी ने श्रीरघुनाथ जी को बताया कि उनके पिता ने उनको खोजने के लिए पुरी में कुछ लोग भेजे थे। चौमासे के बाद, भक्तों को गौड़ देश की वापसी पर श्रीशिवानन्द सेन जी ने गोवर्धन मजूमदार को रघुनाथ दास के बारे में सब समाचार दिया और उनके तीव्र वैराग्य के साथ भजन करने की बात भी बताई। श्रीरघुनाथ जी के माता पिता ने बहुत ही दुःखी होकर एक ब्राह्मण, दो नौकर और चार सौ मुद्राएँ शिवानन्दसेन के हाथ पुरी भिजवाई। साल भर बाद श्रीशिवानन्द सेन ने नीलाचल पहुँच कर, रघुनाथ जी को बताया कि उनके पिता ने उनकी सेवा के लिए, ब्राह्मण, नौकर और मुद्राएँ भेजी थीं। श्रीरघुनाथ दास जी ने उन्हें स्वीकार नहीं किया लेकिन फिर अपने पिता के हित के बारे में सोचकर वे पिता द्वारा भेजें कुछ रुपयों के द्वारा महीने में दो दिन महाप्रभु जी को निमन्त्रित करके उनकी भोजन सेवा करते थे। इस प्रकार दो वर्ष तक निमन्त्रण करने के पश्चात्, श्रीरघुनाथ दास जी ने निमन्त्रण देना बन्द कर दिया। श्रीरघुनाथ जी अब क्यों उन्हें निमन्त्रित नहीं करते हैं, महाप्रभु जी द्वारा यह पूछे जाने पर, श्रीस्वरूप दामोदर ने बताया कि श्रीरघुनाथ दास जी ने मन ही मन में यह विचार किया कि उनके पिता विषयी है जिसके कारण उनके रुपयों से भोजन करवाने पर शायद महाप्रभुजी के मन में प्रसन्नता नहीं हो रही है। परन्तु निमन्त्रण स्वीकार न करने से क्योंकि निमन्त्रणकारी—मूर्खतावश दुःख प्राप्त करता है, इस कारण से महाप्रभु जी निमन्त्रण स्वीकार करते आ रहे हैं, हालांकि मन से वे सुख अनुभव नहीं करते हैं। इस पर महाप्रभु जी ने सन्तुष्ट होकर कहा—

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन।

मलिन मन हैले, नहे कृष्णेर स्मरण॥

विषयीर अन्न हय 'राजस' निमन्त्रण।

दाता, भोक्ता-दुँहार मलिन हय मन॥

इँहार सङ्कोचे आमि एत दिन निल।

भाल हैल,-जानिया से आपनि छाड़िल॥*

(चै.च.अ. 6/278-80)

अर्थात महाप्रभु जी कहते है कि विषयी का अन्न खाने से मन मलिन हो जाता है और मन मलिन होने से श्रीकृष्ण का चिन्तन नहीं होता। विषयी का अन्न तो रजोगुण को आमन्त्रित करता है अथवा विषयी व्यक्ति का भोजन के लिए निमन्त्रण राजसिक निमन्त्रण कहलाता है—ये दाता तथा भोक्ता, दोनों का चित्त मलिन कर देता है। इतने दिन मैंने इनके संकोच के कारण ही ये सब ग्रहण किया था, अच्छा हुआ कि वह समझ गया और उसने अपने आप ही मुझे निमन्त्रण करना छोड़ दिया।

श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी के वैराग्य की तीव्रता में क्रमशः वृद्धि होने लगी। वे सिंह द्वार पर भिक्षा छोड़कर छत्र में मांग कर खाने लगे हैं। अपने सेवक गोविन्द से यह बात सुनकर महाप्रभु जी ने स्वरूप दामोदर से इस का कारण पूछा।

---

*श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने उपरोक्त विषय का विश्लेषण करके यह उपदेश दिया—

मैं और मेरे के अभिमान से युक्त प्राकृत विषयी लोग अर्थात दुनियावी भोगी लोग धन द्वारा, जड़ातीत सच्चिदानन्द वस्तु-हरि-गुरु-वैष्णव की सेवा नहीं कर पाते। ऐसी सेवा करने की चेष्टा करके उन्हें केवल मात्र प्रतिष्ठा का ही फल प्राप्त होता है, ऐसे में वास्तविक अप्राकृत हरि-गुरु वैष्णव की सेवा नहीं होती। अत: एकान्त शरणागत होकर अर्थात सम्पूर्ण आत्मनिवेदन पूर्वक तथा सदा अपने मंगल की इच्छा रखकर यदि जीव के स्वयं, अर्जित किए हुए धन के द्वारा हरि-गुरु वैष्णवों की सेवा करे, तब ही उसका मंगल होता है। इसलिए साधकों का अपने मन, वाणी और प्राणों द्वारा अप्राकृत हरि– गुरु-वैष्णवों की सेवा करना कर्तव्य है।

जन्म, ऐश्वर्य, विद्या व सुन्दरता के मद में चूर विषयी आदमी श्रीमूर्ति की तथाकथित सेवा करवा कर, उन श्रीमूर्ति को अर्पित वस्तुओं को प्रसाद मान कर, वैष्णवों को प्रदान करते हैं परन्तु अज्ञानता के कारण वे यह नहीं जानते कि उन की अभक्तिमयी मनो –प्रवृति से दी हुई कोई भी वस्तु अधोक्षज-अजित भगवान, श्रीहरि स्वीकार नहीं करते। इसलिए, कई स्थानों पर वैसे जड़ भोक्ता विषयियों की दुनियावी अभिमान की गन्ध से मिश्रित सहायता विरक्त वैष्णव स्वीकार नहीं करते तथा ऐसे लोगों की गुलामी भी श्रीकृष्ण भजन परायण, निरपेक्ष यानि दुनियावी भोगों से विरक्त वैष्णव लोग स्वीकार नहीं करते। अर्थात जड़ीय भोक्ता विषयियों की दुनियावी अभिमान की गन्ध से युक्त धन-आदि की सहायता भी विरक्त वैष्णव लोग स्वीकार नहीं करते जिसके फलस्वरूप दुनियावी धनवान विषयी लोग, अपनी देह आदि में मैं बुद्धि से पैदा हुई मूर्खता के वशीभूत होकर कभी-कभी वैष्णवों के प्रति विरोध पाल लेते हैं अथवा वैष्णवों के उस व्यवहार से दुःखी होते हैं।

अवैष्णव और प्राकृत सहजिया लोग, विषयी होते हैं। उनके अभक्ति पूर्वक दिए हुए अन्न को ग्रहणकरने और भोजन करने से, साधक वैष्णवों का संगदोष होता है तथा उस के फलस्वरूप साधकों का भी उन्हीं की तरह स्वभाव हो जाता है। अवैष्णव प्राकृत सहजिया लोगों के साथ अगर बिन्दुमात्र भी गुप्त प्रेम के साथ भी कोई छः प्रकार का संग—देना (लेना, खाना-खिलाना, मन की गोपनीय बातें कहना व सुनना) करे तो उस से प्राकृत शुद्ध कृष्ण भक्ति के स्थान पर, जड़ेन्द्रियों के तर्पण-मूलक प्राकृत भोग आकर साधकों को कृष्ण भक्ति से अलग कर देते हैं। इसलिए आत्मेन्द्रिय तर्पण परायण, लोगों की कृष्ण सेवा-विमुख भावनाओं से मैले, अशुद्ध मन वाले मनुष्यों का अर्थात साधकों का अप्राकृत श्रीकृष्ण स्मरण आदि कभी भी सम्भव नहीं हो पाता।

विषयी लोगों के राजस निमन्त्रण के सम्बन्ध में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने लिखा है:

भोजन निमन्त्रण तीन प्रकार के होते हैं-सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक। विशुद्ध वैष्णवों का निमन्त्रण सात्त्विक, विषयी-पुण्यवान व्यक्ति का निमन्त्रण राजसिक और पापी का निमन्त्रण तामासिक होता है।

श्रीस्वरूप दामोदर ने इस के उत्तर में कहा कि सिंह द्वार पर भिक्षा करने पर बहुत समय खर्च होता था, इसलिए रघुनाथ दास जी सिंह द्वार पर भिक्षा करना छोड़कर दोपहर के समय छत्र में मांग कर खाने लगे हैं।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने रघुनाथ दास जी के इस कदम की प्रशंसा करते हुए कहा कि सिंह द्वार पर भिक्षा वृत्ति वेश्या के आचार की भान्ति है। वेश्या जिस प्रकार पुरुष की, धानादि के लोभ से प्रतीक्षा करती है, वैरागी द्वारा उसी प्रकार भिक्षा के लिए प्रतीक्षा करने पर, निरपेक्षता की हानि होती है। छत्र में भिक्षा करने से, वह असुविधा नहीं होती क्योंकि समय पर जाने से, जीवन यापन के योग्य भिक्षा (भोजन) मिल जाती है। इससे सदा कृष्ण-कीर्तन की सुविधा प्राप्त होती है।

एक बार श्रीधाम वृन्दावन के श्रीशंकरानन्द सरस्वती जी ने श्रीमन्महाप्रभु जी को गुंजा-माला और गोवर्धन शिला दी थी। श्रीमन्महाप्रभु जी ने गुंजामाला को साक्षात् राधा रानी और श्रीगोवर्धन शिला को श्रीकृष्ण कलेवर मान कर बड़े आदर के साथ उसे ग्रहण किया व अपने पास बड़े यत्न के साथ रखा। श्रीमन्महाप्रभु गोवर्धन शिला को हृदय, आँखों और सिर पर धारणकरके बहुत ही आनन्दित होते थे। उन्होंने तीन वर्ष तक उस माला और शिला को अपने पास रखा व बड़ी प्रीति के साथ वे उनकी सेवा पूजाकर ते थे परन्तु रघुनाथ दास गोस्वामी जी पर प्रसन्न होकर उन्होंने वह माला और शिला रघुनाथ दास जी को दे दी। श्रीरघुनाथ दास जी महाप्रभु के श्रीहस्तों द्वारा दी हुई गुंजामाला और गोवर्धन शिला प्राप्त होने पर उन्हें साक्षात् गान्धर्विका- गिरिधारी जान कर जल और तुलसी द्वारा परम प्रीति के साथ उनकी सेवा करके परमानन्द में लीन हो जाया करते थे। श्रीदास गोस्वामी के इह लीला संवरण करने के पश्चात् आज भी गोवर्धन शिला की वृन्दावन में श्रीगोकुलानन्द मन्दिर में पूजा होती है।

श्रील रघुनाथ दास जी का वैराग्य मानों पत्थर पर लकीर हो। उनके साढ़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घण्टे) कृष्ण-कीर्तन व स्मरण में बिताते थे। आहार और निद्रा आदि के लिए वे केवल चार दण्ड (डेढ घण्टा) का समय ही रखते थे। वे केवल प्राण रक्षा के लिए ही भोजन करते थे। उनका आजन्म जिह्वा से रस का स्पर्श न हुआ था और पूरे जीवन परिधान में केवल एक फटी हुई गुदड़ी रही। श्रीजगन्नाथ जी के महाप्रसाद विक्रेता दो तीन दिन का किचड़ सना महाप्रसाद सिंह द्वार पर फेंक देते थे जिससे बड़ी सड़ान्ध निकलती थी जिसके कारण तैलंगी गौएं (दक्षिण भारत की गायें) भी उसे नहीं खा पाती थी। लेकिन रघुनाथ दास गोस्वामी रात में सड़े हुए अन्न से कुछ अन्न अपने निवास स्थान पर लाकर तथा उसे जल से धोकर उसमें (अर्थात जो चावल के अंश बासी होने पर भी अभी बिल्कुल गले नहीं है) उनमें नमक डालकर खाते थे। एक दिन तो श्रीस्वरूप दामोदर जी ने रघुनाथ दास जी को ऐसा करते देखकर उस अन्न को मांग कर व ऐसे चावलों को अमृत के सामान जानकर परमानन्द के साथ खा लिया।

श्रीमन्महाप्रभुजी ने भी गोविन्द जी से जब यह सारा विवरण सुना तो वे भी एक दिन रघुनाथ दास जी के पास जा पहुँचे और ज़बरदस्ती उस अन्न का एक ग्रास खा गये परन्तु दूसरा ग्रास खाते समय, स्वरूप दामोदर जी ने उन को रोक दिया—

"खासा वस्तु खाओ सबे, मोरे ना देह' केने?"

एता बलि एक ग्रास करिला भक्षणे॥

आर ग्रास लैते स्वरूप हातेते धरिला।

"तव योग्य नहे" बलि 'बले' काड़ि' निला॥

(चै.च.अ. 6/322-323)

रघुनाथ जी के उन चावलों को देखकर महाप्रभु जी कहते हैं कि आप स्वयं जब बढ़िया खासी वस्तुयें खाते हो तो फिर मुझे क्यों नहीं देते हो और ऐसा कहते-कहते श्रीमन् महाप्रभु जी ने एक ग्रास खा लिया। जब दुबारा ग्रास लेने लगे तो उस समय स्वरूप दामोदर जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और ये कहते हुए कि प्रभो, ये आप के योग्य नहीं है, उनसे ज़बरदस्ती छीन लिया।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने अपने द्वारा लिखे ग्रन्थ 'स्तवावली' के ' चैतन्यकल्पवृक्षस्तव ' में श्रीमन्महाप्रभु जी को करुणा का इस प्रकार वर्णन किया है—

महासम्यद्दावादपि पतितमुद्दत्य कृपया।

स्वरूपे य: स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदित:॥

उरोगंजाहारं प्रियमपि च गोवर्धन शिलां

ददौ मे गौरांगौ हृदय उदयन्मां मदयति॥

इस श्लोक के अर्थ में श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने लिखा कि रघुनाथ जी कहते हैं कि मेरे बहुत बुरा होने पर भी, उन्होंने कृपा कर के मुझे पतित देखकर मेरा धन और स्री (विषय रूपी दावानल) से उद्धार करके मुझे श्रीस्वरूप के हाथों में अर्पण कर दिया व मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त करवाया।वे ही मुझे अपने वक्ष की गुंजा माला और गोवर्धन शिला देकर व मेरे हृदय में उदित होकर मुझे आनन्दित कर रहे हैं।

श्रीस्वरूप दामोदर जी ने अनुगत्य में रह कर, श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी ने श्रीमन्महाप्रभुजी की अन्तरंग सेवा की थी। सोलह साल बाद, श्रीमन्महाप्रभु जी और स्वरूप दामोदर जी के इहलीला संवरण करने के उपरान्त, श्रीरघुनाथ दास जी विरह-संतप्त होकर गोवर्धन पर्वत से कूद कर शरीर त्याग करने का संकल्प लेकर वृन्दावन पहुँचे। वहाँ ये श्रीरूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी से भी मिले। श्रीरूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी ने बहुत प्रकार से समझा-बुझा कर इन को देह त्याग के संकल्प से हटा लिया और अपने तीसरे भाई के रूप में इन्हें अपने पास ही रख लिया। श्रीरघुनाथ दास जी से निरन्तर श्रीमन्महाप्रभु जी की अमृतमयी लीला कथा सुनकर श्रीरूप गोस्वामी व श्रीसनातन

गोस्वामी जी आनन्द प्राप्त करते थे। श्रीदास गोस्वामी जी ने श्रीमन्महाप्रभुजी और राधा कृष्ण के विरह में अन्न और जल त्याग दिया था।वे केवल मात्र थोड़ी सी छाछ पीते थे। रघुनाथ दास गोस्वामी जी प्रतिदिन हज़ार दण्डवत्, एक लाख हरिनाम, रात-दिन राधा कृष्ण की अष्टकालीन सेवा, महाप्रभुजी का चरित्र-कथन तथा तीनों संध्याओं में राधा कुण्ड में स्नान आदि करके, श्रीराधा कृष्ण जी के भजन में साढ़े सात प्रहर व्यतीत करते थे। किसी दिन चार दण्ड नींद लेते तो किसी दिन वह भी नहीं।

सिध्दार्थ के वैराग्य के साथ श्रीरघुनाथ जी के वैराग्य में बाहरी रूप से कुछ सामंजस्य दिखने पर भी श्रीरघुनाथ दास जी के वैराग्य में एक छिपी हुई गम्भीरता और विशिष्टता है। वैराग्य का आम मतलब होता है अनासक्ति किन्तु इसका खास मतलब होता है—परम पुरुष से प्रेम। रघुनाथ दास जी के वैराग्य की विशिष्टता भी श्रीराधा-गोविन्द जी के चरणों में गूढ़ प्रेम के कारण होने वाली विरक्ति थी अर्थात भागवद् प्रेम की अधिकता के कारण उनमें भगवान के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं में स्वाभाविक विरक्ति थी। यही यथार्थ वैराग्य है। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने दीर्घ जीवन पाया था। श्रीनिवास आचार्य प्रभु वृन्दावन से ग्रन्थ आदि लेकर जब बंगाल आए थे तो बंगाल में आने से पहले उन्होंने श्रीदास गोस्वामी जी की कृपा प्राप्त की थी। श्रीदास गोस्वामी जी का तीव्र वैराग्य और उनके अद्भुत-प्रेम की हालत देखकर श्रीनिवास आचार्य तब हैरान से रह गए थे। श्रीरघुनाथ गोस्वामी जी ने तीन ग्रन्थों—स्तवावली, श्रीदान चरित (दान केली चिन्तामणि) और मुक्ता चरित की रचना की थी। उन्होंने राधा कुण्ड पर रहने के समय तीव्र भजन किया था। उस समय उन्होंने श्रीमन्नित्यानन्दन प्रभु की शक्ति जाह्नवा देवी जी की कृपा भी पाई थी।

जिस समय श्रीमन्महाप्रभुजी ने आरिटग्राम के धान के खेत में स्थान में स्नान लीला द्वारा राधा कुण्ड व श्याम कुण्ड को प्रकाश किया था तब श्याम कुण्ड व राधा कुण्ड साफ नहीं थे और उनके घाट पक्के भी नहीं थे। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी ने मन ही मन सोचा कि दोनों कुण्डों की सफाई हो जाती तो अच्छा होता पर फिर दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने आप को इस इच्छा के लिए धिक्कारा। इधर कोई धनी सेठ बद्री नारायण जी को बहुत सा धन भेंट करने के लिए बद्रीनाथ गया था। बद्री नारायण जी ने उसी सेठ को, मथुरा के आरिट ग्राम में श्रीरघुनाथ गोस्वामी जी की इच्छा अनुसार राधा कुण्ड और श्याम कुण्ड के संस्कार के लिए धन देने के लिए, स्वप्न में आदेश दिया। सेठ जी बद्री नारायण जी का यह आदेश पाकर आरिट ग्राम में आ गये और यहाँ आकर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को सारी बात बताई। दास गोस्वामी जी की इच्छा के अनुसार, दोनों कुण्डों से कीचड़ निकलवा कर रीति के अनुसार उनका संस्कार हुआ। श्यामकुण्ड के किनारे पाँचो पाण्डव वृक्षों के रूप में रहते हैं। श्यामकुण्ड को समकोण करने के लिए वृक्षों को काटने का संकल्प होने पर युधिष्ठिर महाराज ने स्वप्न में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी को वहाँ पाँचो पाण्डवों के वृक्षों के रूप में रहने की बात बतलाई। तब श्रील दास गोस्वामी ने वृक्षों को काटने की मनाही कर दी। इसी कारण श्याम कुण्ड समकोण यानि कि चौरस नहीं है।

कहा जाता है कि श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी श्रीरूप गोस्वामी जी द्वारा रचित ललित माधव नाटक का पाठ करके विरह सागर में डूब गए थे। राधा कुण्ड पर राधा रानी के नित्य सान्निध्य में रहने पर भी वे थोड़े समय का विरह भी सहन नहीं कर पाते थे और श्रीराधा जी के विरह मैं बहुत अधिक अस्थिर हो जाते थे और ऐसे में एक दिन विप्रलम्भ रस युक्त ललित माधव ग्रन्थ के पाठ से उनकी विरह अग्नि इतनी बढ़ गई कि उन के प्राणों की रक्षा करनी ही कठिन हो गई। श्रीरूप गोस्वामी जी ने रघुनाथ दास गोस्वामी जी को ऐसी हालत देखकर स्वलिखित व हास परिहास से पूर्व तथा नित्य मिलन करवाने वाला दान केलि कौमुदी ग्रन्थ उन को भिजवा कर ललित माधव ग्रन्थ वापिस मंगवा लिया। दानकेली ग्रन्थ का पाठ करके दास गोस्वामी जी की विरह अग्नि दूर हो गई। राधाकुण्ड पर श्रीदास गोस्वामी जी ने अन्तर्धान लीला की। वहीं पर उनका समाधि मन्दिर भी है।

रघुनाथ दास गोस्वामी जी एक दिन मानसी गंगा में स्नान करके चारों ओर जंगल से घिरे एक वृक्ष के नीचे बैठकर भाव विभोर होकर भजन कर रहे थे कि उस समय एक बाघ वहाँ आया, वहाँ आकर उसने पानी पिया और पानी पीकर चला गया। श्रीसनातन गोस्वामी जी भी उस दिन वहाँ थे। उन्होंने दास गोस्वामी की ऐसी निर्विकार हालत देखकर उन्हें कुटिया में बैठकर भजन करने को कहा। तब से रघुनाथ दास गोस्वामी कुटिया में बैठकर भजन करने लगे। अन्यथा श्रीरघुनाथ दास जी पहले राधा कुण्ड के किनारे, खुले में बिना कुटिया के भजन करते थे। वे मानसी गंगा के तट पर श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी की भजन कुटी में भी कभी कभी जाते थे।

श्रीरघुनाथ दास जी बृज में रहने वाले दास नामक एक आदमी से बहुत स्नेह करते थे, और उसी के हाथों से वे प्रतिदिन एक दोना लस्सी पीते थे। एक बार उस बृजवासी के मन में चिन्ता हुई कि केवल एक दोना लस्सी से रघुनाथ दास जी किस प्रकार अपने जीवन की रक्षा कर सकेंगे। सो, एक दिन उसने ' सखी-स्थली ' पर जाकर पलाश के बड़े –बड़े पत्ते देखें व सोचा कि वह बड़े पत्तों का बढ़ा दोना बनाकर श्रीदासगोस्वामी जी की सेवा में अधिक लस्सी देगा। अतः बृजवासी दास ने उन पत्तों से एक बढ़ा दोना बनाया और उसमें काफी सारी लस्सी लेकर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को दी। श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी इतना बड़ा दोना देखकर आश्चर्य चकित हो गए। उन्होंने पूछा कि इतना बड़ा दोना कहाँ से मिला?

इस पर बृजवासी दास ने 'सखी-स्थली'* की बात बताई। सखी स्थली का नाम सुनते ही श्रीरघुनाथ दास जी क्रुध्द हो गए और गुस्से में उन्होंने वहा दोना दूर फेंक दिया। भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में यह कथा इस प्रकार वर्णित है—

कतक्षणे स्थिर हैया कहे दास प्रति।

से चन्द्रावलीर स्थान ना याइवा तिथि॥

इहा शुनि दास व्रजवासी स्थिर हैया।

जानिलेन साधक देहेते सिध्द क्रिया॥

ए-सवार एइ देह नित्यसिध्द हय।

इथे ये पामर सेइ करये संशय॥

(भक्ति रत्नाकर 5/572-574)

'भक्ति रत्नाकर ' में ऐसी एक और अलौकिक घटना की बात लिखी है। वह ये कि एक दिन श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी को अजीर्ण हुआ अर्थात भोजन का ठीक हाज़मा न होने के कारण कुछ आश्वस्थता हुई। श्रीबल्लभपुर के श्रीविट्ठलदास ने साथ-ही-साथ दो चिकित्सक इलाज के लिए बुलाए। उन्होंने जांच करने के बाद बताया कि दूध भात खाने से इन्हें अजीर्ण हुआ है।श्रीविट्ठलदास चिकित्सकों की बात सुनकर आश्चर्य चकित होकर बोले कि यह कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि रघुनाथ दास गोस्वामी जी तो लस्सी के अतिरिक्त अन्य कुछ-लेते ही नहीं। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी से पूछने पर श्रीलरघुनाथ जी ने सन्देह निवारण करते हुए कहा कि उन्होंने मन ही मन दूध भात खाया था।

श्रील रघुनाथ दास जी आश्विन शुक्ला द्वादशी को अप्रकट हुए थे।

----

* 'सखी- स्थली' चन्द्रावली का स्थान था। चंद्रावली राधा रानी का प्रतिपक्ष है चन्द्रावली की गण अर्थात प्रधाना शैव्या सदा राधा जी के कुंज से श्रीकृष्ण को चन्द्रावली के कुंज में ले जाने की चेष्टा करती रहती हैं। राधा रानी के दुःख से, उन के गणों को भी दुःख होता था। श्रीरघुनाथ गोस्वामी राधारानी के गणों के अनुगत होने के कारण, सदा प्रेममय भूमिका में राधा रानी और उन के गणों के सुख की चेष्टा में ही निमग्न रहते थे। सखी-स्थली का नाम सुनते ही श्रीरघुनाथ दास जी को गुस्सा आ गया। यह प्रेम की पराकाष्ठा की अवस्था का भाव है, जिसे कामातुर, ईर्ष्या परायण लोग समझने में असमर्थ हैं।

****

श्रील जयदेव

श्रील जयदेव जी का आविर्भाव काल 11वीं व 12वीं शक शताब्दी में है। उनके आविर्भाव के स्थान के सम्बन्ध में मतभेद नज़र आता है। अधिकांश के मत में इनका आविर्भाव स्थान वीरभूम ज़िला के अन्तर्गत केन्दुबिल्व ग्राम में हुआ तथा किन्हीं के मत में उत्कल देश में तथा किन्हीं के मत में जयदेव जी का जन्म स्थान दक्षिण में है। केन्दुबिल्व ग्राम, वीरभूम जिला के शीडड़ी से 20 मील दूर दक्षिण में अजय नदी के किनारे स्थित था। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है—

श्रीजयदेव जी को अजय नदी से श्रीराधामाधव जी के श्रीविग्रह प्राप्त हुये थे। इसी में यह भी लिखा है कि अजय नदी के किनारे कुशेश्वर शिव के स्थान पर बैठ कर वे विश्राम करते थे तथा साधन भजन में निमग्र रहते थे। इनके पिता श्रीभोजदेव जी और माता वामदेवी जी थीं। इन्होंने बंग देश के राजा लक्ष्मण सेन के राजत्त्वकाल में राजधानी नवद्वीप नगर में राजा लक्ष्मण सेन के राज प्रासाद के निकट ही किसी स्थान पर अनेक दिन निवास किया था।

आशुतोष के बंगला कोष में इस प्रकार लिखा है—' वे कुछ समय लक्ष्मण सेन की सभा में राजकवि थे।' श्रील भक्ति विनोद ठाकुर रचित ग्रन्थ, ' नवद्वीप धाम माहात्म्य ' के पाठ से ज्ञात होता है कि जिस काल में श्रीजयदेव जी श्रीलक्ष्मण सेन राजा के महल के निकट रहते थे, उस समय श्रीजयदेव जी द्वारा रचित ' दशावतार स्तोत्रम् ' सुनकर राजा लक्ष्मण सेन चमत्कृत हो उठे थे तथा तत्कालीन पण्डित गोवर्धन आचार्य जी से श्रीजयदेव रचित दशावतार स्तोत्र के विषय में जानकर अपना राजवेश त्याग कर श्रीजयदेव को देखने के लिए गए थे। श्रीजयदेव जी के साक्षात् सान्निध्य में आकर राजा उनके महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व का दर्शन करके उनके प्रति और भी अधिक आकर्षित हो गए। राजा ने अपना परिचय उन्हें प्रदान किया तथा कविवर जयदेव जी से अपने राजप्रसाद में चलकर रहने का अनुरोध किया। श्रीजयदेव जी बहुत ही विषय विरक्त व्यक्ति थे। उन्होंने विषयी राजमहल में आने के लिए अनिच्छा प्रकट की तथा उन्होंने राजा से कहा कि उनकी इच्छा है कि वे जगन्नाथ के पास पुरी गंगानगर में रहेंगे। इस पर राजा लक्ष्मण सेन ने मर्माहत होकर कविवर जयदेव

जी से नवद्वीप छोड़कर न जाने की प्रार्थना की और बताया कि नवद्वीप मण्डल में रमणीय चांपाहाटी* ग्राम उनके रहने योग्य स्थान है। उन्होंने वचन दिया कि वे कभी भी उनकी अनुमति के बिना उनसे मिलने नहीं आएँगे। राजा लक्ष्मण सेन की दीनोक्ति से सन्तुष्ट होकर श्रीजयदेव जी चांपाहाटी में रहने के लिए राज़ी हो गये। जयदेव जी की अनुमति मिलने के साथ ही राजा लक्ष्मण सेन ने चांपाहाटी ग्राम में उनके लिए एक कुटिया का निर्माण करवा दिया था।

महाप्रभु के पार्षद द्विज वाणी नाथ ने जैसे महाप्रभुजी का सत्ययुग में चंपक वर्ण के विप्र रूप में दर्शन किया था, भक्तवर श्रीजयदेव ने भी उसी प्रकार पहले श्रीराधा-गोविन्द जी तथा बाद में राधा-गोविन्द जी के संयुक्त शरीर चंपक वर्ण स्वरूप अर्थात् स्वर्णकान्ति स्वरूप श्रीमन्महाप्रभु जी का दर्शन किया था। महाप्रभु जी ने जयदेव जी को दर्शन देकर पुरुषोत्तमधाम में जाने का आदेश दिया। वे महाप्रभुजी के आदेश का पालन करने के लिए नवद्वीपधाम त्याग कर व अत्यन्त विरह से संतप्त होकर पुरुषोत्तम धाम को चले गए। इस प्रकार कहा जाता है कि वे वहाँ उड़ीसा के राजा के महापण्डित भी हुए थे। श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में ही उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया था। उनके द्वारा रचित अप्राकृत विप्रलम्भ रसपूर्ण कविता ग्रन्थ का नाम " श्रीगीत गोविन्द " या "अष्टपदी" है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने जयदेव जी को अपने निजरूप चंपकवर्ण के दर्शन प्रदान करने के समय कहा था कि जब वे नवद्वीप धाम में प्रकट होंगे तब संन्यास ग्रहण

---

* चंपक हट्ट का अपभ्रंश नाम ही चांपाहाटी। वहाँ पहले चंपा के फूलों के बहुत से वृक्ष होते थे और हाट (बाजार) में उन चंपा के फूलों की बिक्री हुआ करती थी। इसलिये उस स्थान का नाम चंप हट्ट हुआ जो कालान्तर में बिगड़ कर चांपाहाटी बन गया।

करने के बाद पुरुषोत्तम धाम में जाकर, उनके द्वारा रचित " गीत गोविन्द " का आस्वादन करेंगे। ऐसा कहा जाता है कि श्रीजगन्नाथ देव जी की आज्ञा से ही जयदेव जी पद्मावती को पत्नी के रूप में ग्रहणकरने पर बाध्य हुए थे।

विश्व कोश में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार हुआ है—" एक ब्राह्मण के कोई भी सन्तान न होने पर बहुत काल तक उन्होंने श्रीजगन्नाथ देव जी की आराधना की। जगन्नाथ जी की आराधना करने पर उन्हें एक कन्या लाभ हुई। उस कन्या का नाम उन्होंने पद्मावती रखा था। विवाह योग्य होने पर वह ब्राह्मण उसे श्रीजगन्नाथ देव जी के श्रीचरणों में उत्सर्ग करने के लिए ले आए। उसे देखकर भगवान् पुरुषोत्तम जी ने प्रत्यादेश दिया कि जयदेव नामक मेरे एक सेवक ने संसार धर्म त्याग कर मेरे नाम को ही सार रूप से ग्रहण किया है। तुम उसी को इस कन्या का दान करो। तब ब्राह्मण अपनी उस कन्या को लेकर श्रीजयदेव के निकट उपस्थित हुए और उसने उस कन्या का पाणिग्रहणकरने के लिए बहुत अनुरोध किया किन्तु श्रीजयदेव ने संसारी होने की इच्छा न होने के कारण ब्राह्मण की बात मानने में असमर्थता प्रकट की। तब ब्राह्मण साक्षात् भगवान् जगन्नाथ जी के आदेश के विषय में बता कर अपनी वाग्दत्ता कन्या को उनके (जयदेव के) निकट छोड़कर चले आए। "

जयदेव जी हक्के-बक्के से रह गए और कन्या से बोले—" बोलो तुम कहाँ जाओगी, जहाँ जाना चाहो उसी स्थान पर मैं तुम को छोड़ आऊँ। तुम्हारा यहाँ रहना तो हो नहीं सकता।" पद्मावती कातर स्वर में बोली—"पिता जी ने जगन्नाथ देव जी के आदेश से मुझे तुम्हारे हाथ में सौंपा है। तुमहीं मेरे स्वामी व हृदय-सर्वस्व हो। तुम अगर मेरा परित्याग करोगे तो मैं तुम्हारे चरणों में ही जीवन विसर्जन कर दूँगी। हे नाथ! तुम्हीं मेरी एकमात्र गति हो।" पण्डित कवि जयदेव जी भला तब क्या करते,वे पद्मावती का परित्याग न कर पाये और संसारी हो गए। एक नारायण विग्रह की भी उन्होंने प्रतिष्ठा कर ली। अब उनके हृदय में कृष्ण प्रेम का स्रोत बहने लगा। उसी स्रोत में बहते-बहते उन्होंने अपूर्व अमृत से पूर्ण ' गीत गोविन्द ' का प्रचार किया। कहा जाता है कि चाहे जयदेव जी ने 'गीत गोविन्द' में सब रसों और भावों को अवतरित कर लिया हो परन्तु मान-प्रकरण में वे, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण खण्डिता नायिका श्रीराधा रानी के पैर पकड़ेंगे, इस बात को लिखने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। दैवयोग से एक दिन जब वे समुद्र स्नान के लिए गए तो उस समय स्वयं जगन्नाथ जी ने श्रीजयदेव

जी के रूप में उनके घर में प्रवेश किया तथा उनकी पोथी खोल कर “**देही पद पल्लवमुदारं** ”—इस वाक्य द्वारा उनके "**स्मरगरल खण्डनं सम शिरसि मण्डनम्** " इस चरण का पद्य पूर्ण कर दिया।

पद्मावती इतना शीघ्र श्रीजयदेवजी को वापस आते देखकर बोली—"अभी-अभी" तो आप स्नान करने के लिए गए थे, इतनी जल्दी वापस कैसे आ गए?"

जयदेव रूपी श्रीकृष्ण जी ने उत्तर दिया—" जाते-जाते एक बात मन में आ गई। बाद में कहीं मैं भूल न जाऊँ, इसलिए आकर लिख दी है।" जयदेव रूपी श्रीकृष्णा यह कहकर जब चले गए तो उससे थोड़ी देर बाद ही श्रीजयदेव जी स्नान करके लौट आए। इस पर पद्मावती बड़ी हैरान हो गयी और बोली—" अभी आप स्नान करने गए थे, वापस आकर अभी कुछ ही क्षण हुए कि कुछ लिख गए और फिर इतने अल्प समय में वापस किस प्रकार आ गए? अब मेरे मन में सन्देह होता है कि जो लिख कर गए वे कौन थे और आप कौन हैं?"

बुद्धिमान् जयदेव तभी अन्दर गए और पोथी खोलकर देवाक्षरों का दर्शन किया। रोमांच हो आया उन्हें तथा प्रेमावेश में उनका हृदय उमड़ आया। उनकी आँखों से अश्रु-धारायें प्रवाहित होने लगीं। वे पद्मावती को सम्बोधित करके बोले—" तुम धन्य हो, तुम्हारा जन्म सार्थक है, तेरे अपने सौभाग्य से तुझे भगवान् के दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। मैं हतभागा हूँ, इसलिए उनके दर्शन न पा सका।"

श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में इस प्रकार की एक कहावत है कि एक मालिनी पुरुषोत्तम धाम में कहीं बैठकर श्रीजयदेव जी द्वारा रचित श्रीगीत गोविन्द का भाव विभोर होकर गान कर रही थी। श्रीजगन्नाथ देव जी उस गान से आकृष्ट होकर वहीं चले गये और जब तक गीत गोविन्द का गान चलता रहा, वहाँ खड़े होकर वे सुनते रहे तथा उसकी समाप्ति पर वापस मन्दिर में आ गये। इसी बीच तत्कालीन उत्कलराज मन्दिर में श्रीजगन्नाथ देव जी के दर्शन करने आए। उन्होंने श्रीजगन्नाथ देव जी के अंगों में धूल और उत्तरीय में काँटे लगे देखें। इस सबका क्या कारण है, यह जानने के लिए उन्होंने पुजारी और पण्डाओं से पूछा, पर वे लोग भी कुछ बता न पाए। जगन्नाथ जी के सेवकगण डर गए।

रात्रि में श्रीजगन्नाथ जी ने राजा को स्वप्न में बतलाया कि उनके अंगों के काँटों और धूल के लिए कोई और ज़िम्मेदार नहीं है। वे स्वयं एक मालिनी के पास 'गीत गोविन्द' सुनने गए थे, जिसके कारण धूल और काँटे लग गए थे।उत्कल राज स्वप्न में इस घटना के मर्म को समझकर विस्मित हो गये तथा प्रातः काल उन्होंने मालिनी को लाने के लिये पालकी भेजी। मालिनी से सब बातें जानकर राजा ने उसे प्रतिदिन श्रीजगन्नाथ जी के सम्मुख 'गीत गोविन्द' का गान करने का आदेश दिया। तबसे आज भी मालिनी की वंश की रमणियाँ जगन्नाथ के सम्मुख जाकर प्रतिदिन 'गीत गोविन्द' का पाठ करके जगन्नाथ जी को सुनाती हैं। पुरषोत्तम धाम के निवासी भक्तगण लोग वर्तमान में उन्हें मालिनी की बजाए देव दासी कहते हैं।

श्रीजयदेव के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अलौकिक प्रसंग सुने जाते हैं। जयदेव जी प्रेमाविष्ट होकर राधा –माधव जी के विग्रह की सेवा करते थे। **भक्त जिस प्रकार भगवान् के प्रति भक्तिमान होते हैं भगवान् भी उसी प्रकार भक्त के प्रति भक्तिमान होते हैं।** जयदेव जी एक दिन अपनी कुटिया को छा रहे थे अर्थात् कुटिया की छत को फूस लगा रहे थे। उस समय बहुत तेज़ धूप थी। भक्त का दुःख देखकर भगवान् से रहा न गया और कार्य शीघ्र पूर्ण हो जाये, यह सोच कर वहाँ जाकर स्वयं फूस को रस्सी के साथ बाँटने (बाँधने) लगे तथा बाँटकर छत पर चढ़े जयदेव जी को पकड़ाने लगे।

जयदेव जी को लगा कि उनकी पत्नी ही इस प्रकार कर रही है। घर को छाने का कार्य शीघ्र पूरा हो गया। नीचे आकर उनको कोई नज़र न आया। पत्नी से जिज्ञासा की तो उसने बताया कि वह तो और-और कार्यों में ही व्यस्त थी। तब वे विस्मित चित्त से अपने ठाकुर घर में गये और देखा राधा-माधव जी के हाथों में धूल व रस्सी के महीन-महीन कण लगे हुए हैं। तब उन्हें समझते देर न लगी कि वह सब राधा- माधव जी का ही कार्य था। जयदेव जी अपने ठाकुर श्रीराधा- माधव जी के चरणों में गिर कर रोने लगे।

जयदेव जी ने अपने जीवन के शेष दिन किसी-किसी के मतानुसार जगन्नाथ क्षेत्र में, किन्हीं के मत में केन्दुबिल्व ग्राम में और किन्हीं के मत में वृन्दावन धाम में व्यतीत किए। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीजयदेव जी का शेष जीवन श्रीजगन्नाथ क्षेत्र में ही बीता, ऐसा बताया।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने अपनी लीला के शेष 12 वर्षों में राधा भाव से विभावित होकर गूढ़ प्रेमरस आस्वादन काल में श्रीजयदेव रचित 'गीत गोविन्द' का आस्वादन किया था -

"श्रीराधार प्रलाप यैछे उद्धव-दर्शने।

सेइमत उन्माद-प्रलाप करे रात्रिदिने॥

विद्यापति, जयदेव, चण्ड़ीदासेर गीत।

आस्वादेन रामानन्द-स्वरूप-सहित॥"

(चै.च.आ. 13/41-42)

भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध, आर रसाभास।

शुनिले ना हय प्रभुर चित्तेर उल्लास॥

अतएव स्वरूप गोसाञि करे परीक्षण।

शुद्ध हय यदि, प्रभुरे करा'न श्रवन॥

विद्यापति चण्डीदास श्रीगीतगोविन्द।

एइ तीन गीते करा'न प्रभु आनन्द॥

(चै.च.म. 10/113-115)

जबे जेई भाव प्रभु करये उदय।

भावानुरूप गीत गाय स्वरूप-महाशय॥

(चै.च. अ. 17/5)

क्षणेके प्रभुर बाह्य हैल, स्वरुपेरे आज्ञा दिल,

"स्वरुप, किछु कर मधुर गान॥"

स्वरुप गाय विद्यापति, गीतगोविन्द-गीति,

शुनि' प्रभुर जुड़ाइल काण॥

(चै.च.अ. 17/62)

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति।

कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द॥

स्वरुप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने।

गाय, शुने-परम आनन्द॥

(चै.च.म. 2/77)

श्रीजयदेव पण्डित जी ने पौषी कृष्णा षष्टी तिथि को तिरोधान लीला की। कलकत्ता वसुमती साहित्य मन्दिर से प्रकाशित 'श्रीगीत गोविन्द' ग्रन्थ के आरम्भ में लिखित "श्रीजयदेव चरित" नामक शीर्षक के लेख में और जो कुछेक प्रसंग पाए गए हम उसको निचे लिपिबद्ध करते हैं।

दिल्ली के मुसलमानों के अधिकार में आने से पहले के राजा माणिक्य चन्द्र के आदेश से रचित "अलंकार शेखर" में लिखा है कि जयदेव जी उत्कल राज के सभाकवि थे। लक्ष्मण सेन के महासामन्त वटुदास के पुत्र श्रीधर दास द्वारा रचित **"सूक्ति कर्णामृत"** में श्रीजयदेव जी का **"अमियाभ काव्य"** उद्धत है। श्रीगीत गोविन्द की एक प्राचीन पुस्तिका के उपसंहार में लिखा है—**"अथ लक्ष्मणसेन-नाम-नृपति समये श्रीजयदेवस्य कविराज- प्रतिष्ठा।"**

महाकवि जयदेव जी व पद्मावती के सम्बन्ध में एक रोमांचकारी अद्‌भुत घटना सुनी जाती है जो इस प्रकार है–

एक समय कविवर को अपने प्राणधन श्रीराधा-माधव की सेवा के लिए और उत्सव के लिए कुछ धन की आवश्यकता पड़ी और वे धन एकत्रित करने के लिए गाँव से बाहर निकले। कई जगहों पर भ्रमण करने के बाद जब उनके पास काफी धन एकत्रित हो गया तो उन्होंने वापिस अपने गाँव लौटने की सोची। परन्तु जब वे भगवान की सेवा के लिए एकत्रित किया हुआ धन वापस लेकर आ रहे थे तो एक दिन रास्ते में उन्हें कुछ डाकुओं ने घेर लिया। उन्होंने उनके हाथ पैर काट कर उन्हें एक कुएँ में फेंक दिया तथा उनका सारा धन लूट लिया। देश-देशान्तर में भ्रमण करके एकत्रित किया हुआ उनका धन जब वापसी के समय डाकुओं ने छीन लिया और उनके हाथ-पावँ काट कर उनको एक कुएँ में फेंक दिया तो भी भक्तवर जयदेव उस कुएँ में पड़े-पड़े दारुण यन्त्रणा में भी उच्च स्वर से हरिनाम करते रहे।

इस प्रकार कुएँ में पड़े-पड़े उन्हें तीन दिन हो गए। दैवयोग से तीसरे दिन एक राजा उधर आखेट करने आया। उस स्थान से गुज़रते समय वह कुएँ में से हरि-ध्वनि सुनकर विस्मित हो गया और कुएँ के पास आकर उसने देखा तो एक

व्यक्ति जिसके हाथ पैर काटे हुए हैं, कुएँ में पड़ा है तथा ज़ोर-ज़ोर से हरिनाम कर रहा है। उन्होंने जय देव जी को क्षत-विक्षत् अवस्था में कुएँ में से निकलवाया एवं उन्हें अपने साथ राजमहल में लाकर विशेष प्रयत्न से उनकी सेवा-शुश्रूषा करवाने में प्रवृत्त हो गया। राजा तथा रानी के प्रयत्न से जयदेव जी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गए। वे जयदेव जी को परम भक्त जानकर और उनके मृदु कण्ठ से सुमधुर 'गीत गोविन्द' सुनकर, उनके चरित्र-माधुर्य पर बहुत मुग्ध हो गए। शीघ्र ही श्रीजयदेव जी की पत्नी पद्मावती को भी राजमहल में लाया गया। राजा-रानी दोनों विष्णु –मन्त्र से दीक्षित होकर, श्रीजयदेव जी के मुखारविन्द से श्रीकृष्ण कथा श्रवण करके और वैष्णव-सेवा से अपना जीवन धन्य करने लगे।

एक दिन जयदेव जी को उत्पीड़ित करने वाले वे डाकू वैष्णव वेश में राजभवन में अतिथि रूप से आये, जयदेव जी ने उनको पहचान लेने पर भी यथायोग्य सम्मान सहित अतिथि सेवा की व्यवस्था की किन्तु दस्यु जयदेव द्वारा पहचान लिए जाने, पकड़े जाने और दण्डित होने के भय से, आतिथ्य ग्रहण न करके वहाँ से भाग जाने की तैयारी करने लगे।

जयदेव जी ने उनका अभिप्राय जानकर, राजा से कहकर उन्हें बहुत सा धन दिलवाया तथा राज-कर्मचारियों को साथ देकर विदा करवाया। दस्युओं ने कुछ दूर जाकर राज्यकर्मचारियों से कहा—' आपको और अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हम आपको एक गुप्त रहस्य बताते हैं। आप इसे गुप्त रूप से राजा को बता देवें। रहस्य यह है कि वैष्णव होने से पहले हम एक राजा के अनुचर थे। राजा ने किसी एक विशेष कारण से उन महन्त बाबाजी (जयदेव जी) की हत्या करने के लिए हमें आदेश दिया। हमने सिर्फ उनके हाथ-पाँव काट कर उन्हें छोड़ दिया। इसी रहस्य के प्रकाशित होने की आशंका से, तुम्हारे उस महन्त ने राजा से अनुरोध करके हम लोगों को बहुत सा धन दिला कर जल्दी-जल्दी विदा करवा दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से गढ़ी हुई मिथ्या कथा कहते-कहते, पृथ्वी देवी इन महापापियों के भार को न सहन कर पायी और राज कर्मचारियों ने देखा कि उनके देखते-देखते पृथ्वी फटी तथा और वे बहुत ही अद्‌भुत रूप से पृथ्वी के गर्भ में समा गये।"

शुक्राचार्य द्वारा वामन देव जी को तीन पग भूमि न देने की सलाह देने पर, बलि महाराज जी ने कहा था—" मैं प्रह्लाद महाराज का पौत्र होकर, एक बार दान देना अंगीकार करके, किस प्रकार एक ब्राह्मण को धन के लोभ से एक वंचक की भान्ति निरादरपूर्वक खाली हाथ लौटा दूँ?"

"न ह्यसत्यात् परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्।

सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥"

(भा. 8/20/4)

अर्थात् असत्य से बढ़कर और कोई अधर्म नहीं है। इसीलिए तो पृथ्वी देवी ने कहा कि असत्यवादी मनुष्य को छोड़ (मन्दार पर्वत आदि) भारी से भारी वज़न को वहन करने में मैं अपने आपको समर्थ समझती हूँ (अर्थात् मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ परन्तु झूठे मनुष्य का भार सहने में मैं असमर्थ हूँ।)

यही कारण था कि पृथ्वी देवी उन पापी दस्युओं का भार और अधिक सहन न कर पाई। वे महापुरुष के विषय में मिथ्या बोलते-बोलते ही भूमि के गर्भ में समा गए। राजा के सेवकों ने जयदेव जैसे महाभागवत के चरणों में अपराधियों के दण्ड को प्रत्यक्ष देखकर राजा ने निकट आकर सारी घटना निवेदित की। राजा द्वारा पूछे जाने पर जयदेव जी ने दस्युओं द्वारा उत्पीड़न की समस्त कथा का पूर्णरूपेण वर्णन करके कहा—" राजन्! साधु लोग दोषियों के दोष का प्रतिशोध लेने

के लिए परहिंसा में प्रवृत्त नहीं होते। वे शिष्ट व्यवहार द्वारा उनको तुष्ट करने की चेष्टा करते हैं किन्तु भगवान् के अमोघ विधान से उनको अपने किए पाप कर्मों का फल भोग करना पड़ा।"

कहा जाता है कि रानी के साथ श्रीजयदेव जी की पत्नी की खूब मित्रता हो गई थी। उन दिनों सती होने की प्रथा प्रचलित थी। रानी अपने भाई की मौत पर भाई की पत्नी के सती होने के लिए विलाप कर रही थी। इस पर पद्मावती ने रानी से कहा—" स्वामी की मृत्यु पर पतिव्रता पत्नी के प्राण शरीर में नहीं रहते।" राजमहिषी ने पद्मावती के इस वाक्य को सुनकर उनके इस "वाक्य" की परीक्षा के लिए, एक दिन उनको, उनके पति जयदेव के आकस्मिक निधन का समाचार दिया। इस दारुण समाचार को सुनते ही पतिव्रता सती पद्मावती ने प्राण त्याग दिये। राजमहिषी इसके लिए अपने को दोषी मानकर, बहुत शोक संतप्त होकर रोने लगी। राजा रोते-रोते जयदेव जी के पास आए और उसके प्राण दान के लिए विशेष भाव से अनुरोध करने लगे। भक्त प्रवर जयदेव जी पद्मावती के कर्ण कुहरों में कृष्ण नामामृत का सिंचन करने लगे। पद्मावती ने नींद से जागे मनुष्य की भान्ति अपने आप को सम्भाला। इस प्रकार दोनों का अति अद्‌भुत महत्व दर्शन करके, राजा-रानी सहित समस्त राज-परिवार श्रीजयदेव व पद्मावती जी के चरणों में पुनः-पुनः प्रणाम करने लगा। तत्पश्चात् श्रीजयदेव जी वृन्दावन दर्शन के लिए बहुत व्याकुल होकर, राजा –रानी से विदा लेकर अपने इष्टदेव श्रीराधा-माधव जी को साथ लेकर, वृन्दावन की यात्रा पर गए। वहाँ पहुँचकर वे केशी तीर्थ के निकट श्रीराधा-माधव की प्रतिष्ठा करके सेवा करने लगे। उनके मधुर कण्ठ से गीत गोविन्द का गान श्रवण करके धाम -वासी अपने सूध-बुध खो बैठते थे।

एक महाजन ने केशी घाट पर उनके राधा-माधव के लिये एक मन्दिर बनवा दीया। सुना जाता है दीर्घकाल तक वृन्दावन में वास करके जयदेव जी अपने जन्मभूमि केन्दूबिल्व ग्राम में वापिस आकर साधन भजन करने लगे। वे प्रतिदिन बहुत दूर जाकर गंगा स्नान करते। एक दिन दैवयोग से वे गंगा स्नान करने न जा पाये। यद्यपि वे गंगा स्नान को नहीं गये परन्तु इसका उनके मन में बड़ा दुःख था। उन्हें अति कातर देख गंगा देवी ने केन्दूबिल्व ग्राम में ही प्रवाहित होकर, उन पर कृपा की। कहा जाता है कि अपनी जन्मभूमि में ही, श्रीजयदेव जी की साधना- लीला की परिसमाप्ति हुई। उनकी पवित्र स्मृति की रक्षा के लिए, अब भी प्रतिवर्ष माघ सक्रान्ति के दिन, केन्दूबिल्व ग्राम में मेला लगाता है।

श्रीजयदेव जी के केन्दूबिल्व ग्राम में वापस आकर शेष जीवन वहाँ व्यतीत करने की कथा सुने जाने पर भी, उनके प्राणधन श्रीराधा-माधव जी की वृन्दावन से केन्दूबिल्व ग्राम में आने की कोई बात नहीं सुनी जाती। जयपुर राजा ने श्रीजयदेव जी के तिरोभाव के पश्चात् उनके राधा-माधव विग्रह को केशीघाट, मथुरा से लाकर जयपुर के घाटि नामक स्थान में प्रतिष्ठित किया। अब भी श्रीराधा-माधव जी जयपुर राज्य में सेवित होते हैं।

******

श्रीवीरचन्द्र प्रभु (श्रीवीरभद्र)

"सङ्कर्षणस्य यो व्यूहः पयोब्धिशायिनामकः।

स एव वीरचन्द्रोऽभूच्चैतन्याभिन्नविग्रहः॥"

(गौ. ग. दी. 67)

पयोब्धिशायी नामक संकर्षण जी के जो व्यूह हैं, वे श्रीचैतन्य के अभिन्न विग्रह हैं तथा वे ही अब श्रीनित्यानन्द जी के पुत्र श्रीवीरभद्र नाम से जाने जाते हैं।* श्रीमननित्यानन्द प्रभु एवं उनकी शक्ति श्रीवसुधा देवी को अवलम्बन करके श्रीवीरचन्द्र प्रभु का आविर्भाव हुआ। श्रील कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के आदिलीला के 11वें परिच्छेद में ऐसा वर्णन किया है कि श्रीमननित्यानन्द प्रभु जी के गणों की जितनी भी शाखायें हैं उनमें इनकी शाखा सर्वश्रेष्ठ है—

"सर्वशाखा-श्रेष्ठ वीरभद्र गोसाञि।

ताँर उपशाखा यत, तार अन्त नाइ॥"

(चै.च.आ. 11/56)

समस्त विष्णु-तत्त्व में श्रीशक्ति, भूशक्ति या भक्ति शक्ति तथा नीला या लीला शक्ति-ये तीन शक्तियाँ विद्यमान हैं। वीरभद्र प्रभु की तीन शक्तियाँ—श्रीमति, श्रीनारायणी और लीला शक्ति थीं। वीरभद्र प्रभु की प्रथम शक्ति श्रीमती, हुगली ज़िला के अन्तर्गत झामटपुर निवासी यदुनाथाचार्य एवं विद्युन्माला (लक्ष्मी) को अवलम्बन करके आविर्भूत हुई थीं—

"यदुनन्दनेर भार्या-लक्ष्मी नाम ताँर।

कहिते कि-अति पतिव्रता धर्म याँर॥

ताँर दुई दुहिता श्रीमती नारायणी।

सौन्दर्येर सीमाद्भुत अंगेर वलनी॥

श्रीईश्वरी इच्छाय से विप्र भाग्यवान्।

प्रभु वीरचन्द्रे दुई कन्या कैल दान॥"

(श्रीभक्ति रत्नाकर 13/251-253)

----

*स्वयं भगवान्, अवतारी श्रीकृष्ण की दूसरी देह मूल संकर्षण श्रीबलदेव जी के अभिन्न स्वरूप श्रीमननित्यानन्द प्रभु हैं। श्रीबलदेव जी के अंश वैकुण्ठ के महा-संकर्षण जी हैं, जिनके अंश प्रथम पुरुषावतार कारणाब्धिशायी विष्णु जी हैं तथा उनके द्वितीय पुरुषावतार गर्भोदशायी महाविष्णु तथा उनके अंश तृतीय पुरुषावतार क्षीरोदकशायी विष्णु जी हैं जो व्यष्टि ब्रह्माण्ड के पालन कर्ता एवं प्रत्येक जीव में अन्तर्यामी पुरुष के रूप में अनिरुद्ध भगवान् हैं अब वे ही वीरचन्द्र प्रभु हैं।

श्रीवीरभद्र प्रभु ने भगवतत्त्व होने पर भी भक्त की लीला की थी—

"श्रीवीरभद्र गोसाञि-स्कन्द-महाशाखा।

ताँर उपशाखा यत, असंख्य तार लेखा।

ईश्वर हइया कहाय महा-भागवत।

वेदधर्मातीत हैञा वेदधर्मे रत॥

अन्तरे ईश्वर –चेष्टा, बाहिरे निर्दम्भ।

चैतन्यभक्ति-मंडपे तेंहो मूल स्तंभ।

अद्यापि याँहार कृपा-महिमा हइते।

चैतन्य-नित्यानन्द गाय सकल जगते॥

सेइ वीरभद्र-गोसाञिर चरण-शरण।

याँहार प्रसादे हय अभीष्ट-पूरण॥"

(चै.च.आ. 11/8-12)

श्रीनरहरि चक्रवर्ती ठाकुर ने स्वरचित श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में श्रीवीरभद्र प्रभु के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

"प्रभु नित्यानन्देर नन्दन वीरभद्र।

भुवन पावन येहों गुणेर समुद्र॥

वर्णिवेक केवा, से यशेर नाहि पार।

नित्यानन्द प्रभु शाखाय ख्याति यार"॥

X X X X

''प्रभु वीरभद्र महा आनन्देर कन्द।

केह वीरभद्र कहे केह वीरचन्द्र॥

हेन वीरचन्द्र ये देखये एकबार।

सब छाड़ि सेइ से चरण करे सार"॥

(श्रीभक्ति रत्नाकर 9/ 413- 414, 420- 421)

ये नित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी के मन्त्र शिष्य हैं। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में लिखा है कि श्रीवीरचन्द्र प्रभु के श्रीगोपीजन वल्लभ, श्रीरामकृष्ण और श्रीरामचन्द्र नामक तीन शिष्यों ने ही बाद में उनके पुत्रों के रूप में प्रसिद्धि पायी। कनिष्ठ श्रीरामचन्द्र ने खड़दह में, ज्येष्ठ श्रीगोपीजन वल्लभ ने वर्द्धमान ज़िला के मानकर के निकटवर्ती ग्राम लता में तथा मध्यम श्रीरामकृष्ण ने मालदह के निकट गयेशपुर में वास किया था।

श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ की 13वीं तरंग में श्रीवीरचन्द्र प्रभु का, माता की अनुमति लेकर वृन्दावन यात्रा का एवं श्रीभूगर्भ गोस्वामी तथा श्रीजीव गोस्वामी से अनुमति लेकर ब्रजमण्डल परिक्रमा की बात का पता चलता है। खड़दह स्थित प्राचीन श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर में श्रीवीरभद्र प्रभु का हस्तलिखित भागवत ग्रन्थ देखने को मिलता है। कोई-कोई बोलता है कि वह नित्यानन्द प्रभु द्वारा लिखा गया था। उक्त मन्दिर में श्रील वीरभद्र प्रभु द्वारा लाये गये पत्थर के टुकड़े से प्रकटित विग्रह—श्रीश्यामसुन्दर, श्रीराधा वल्लभ तथा श्रीनन्द दुलाल जी विराजित हैं। जिस घाट पर वह पत्थर का टुकड़ा आया था, उसका नाम श्यामसुन्दर घाट है। यहाँ पर श्रीनित्यानन्द प्रभु के आविर्भाव उत्सव का प्रचलन श्रीवीरभद्र

जी ने ही प्रारम्भ किया था। यही नहीं, मन्दिर में वीरचन्द्र प्रभु के समय में डेढ मन धान के चावल और उसी परिमाण की अन्य सामग्री के साथ भोग की व्यवस्था थी। खड़दह मन्दिर में सेवारत लोगों से वीरभद्र प्रभु के सम्बन्ध में और भी अनेक प्रकार की बातें सुनी जाती हैं।

वीरचन्द्र प्रभु ने कार्तिक मास की कृष्ण नवमी को आविर्भाव लीला की थी। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में अग्रहायण शुक्ला चतुर्दशी आविर्भाव तिथि के रूप में लिखी हुई है।

****

श्रीईशान ठाकुर

श्रीईशान ठाकुर की गणना श्रीचैतन्य महाप्रभु की शाखा में होती है।

"श्रीनाथ मिश्र, शुभानन्द, श्रीराम, ईशान।

श्रीनिधि, श्रीगोपीकान्त, मिश्र भगवान्॥"

(चै.च.आ. 10/110)

ईशान ठाकुर श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में नौकर थे। स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभु जी के घर में नौकर के रूप में सेवा का सौभाग्य, श्रीमन्महाप्रभु के पार्षद के बिना किसी और का हो ही नहीं सकता। भगवान अपने प्रिय भक्त से ही सेवा ग्रहणकरते हैं। ईशान ठाकुर महाप्रभु जी को बाल्यकाल से ही गोदी में लेकर घूमा करते थे।

महाप्रभु जी की साक्षात सेवा उन्हें मिली थी, इससे मालूम पड़ता है कि वे महाभाग्यशाली थे। वे निमाई की सब कालोचित शरारतें सहते हुए उनकी सभी ज़िद्दें पूरी करते थे।

निमाई भी ईशान* को छोड़कर पल भर नहीं रह पाते थे—

"ओहे बापू कहिते कि जानि क्रिया तान।

निमाई चान्देर अति प्रिय ये ईशान॥

ईशानेर प्राण शचीनन्दन निमाई।

ईशान विहने ना यायेन शुन ठाँइ॥

बाल्यकाले निमाई चंचल अतिशय।

ये आखूंटि करे ता ईशान समाधय"॥

(भक्ति रत्नाकर 12/95-97)

---

*ईशान:- श्रीमन महाप्रभु के गृह-सेवक थे, इस ईशान के अतिरिक्त, ईशान नाम के कुछ और भी भक्त थे।

1. श्रील सनातन गोस्वामी के नौकर का नाम भी ईशान था।

2. वृन्दावनवासी गौड़ देशीय भक्त का नाम भी ईशान था। जिस समय श्रील रूप गोस्वामी जी मथुरा के विट्ठलेश्वर के घर, गोवर्धनधारी गोपाल देव जी के दर्शन करने गये थे, उस समय उनके काफी भक्त थे। उन भक्तों में ईशान नाम के भी एक भक्त थे। श्रीनिवासाचार्य प्रभु, नरोत्तम ठाकुर और श्यामानन्द प्रभु, जिस समय गोस्वामियों के ग्रन्थ लेकर, वृन्दावन से गौड़ देश को आए थे, उस समय इन्हीं ईशान ने उनको आशीर्वाद दिया था।

3. गौड़ीय वैष्णव कोष में ईशान आचार्य नामक एक भक्त का नाम लिखा है, जिन्हें ब्रज की यौन मंजरी के रूप में निर्देशित किया गया है।

4. अद्वैत प्रकाश ग्रन्थ के रचयिता भी श्रीईशान नागर जी हैं

श्रीगौरांग महाप्रभु जी के साथ, श्रीबलभद्र जी के अभिन्न विग्रह श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की सेवा का सुयोग भी उनको प्राप्त हुआ था। शची माता के घर में जब श्रीगौर हरि जी और नित्यानन्द जी भोजन के लिए बैठते थे तो भोजन में बैठने से पहले ये ईशान ठाकुर जी उनके चरण-कमलों को धोने के लिए जल देते थे—

"ईशान दिलेन जल धुईते चरण।

नित्यानन्द गैला करिते भोजन॥"

ईशान चूँकि श्रीभगवान् के पार्षद थे इसलिए वे जानते थे कि भगवान् की पूजा से भी भक्त की पूजा श्रेष्ठ होती है। यह तत्त्व जानकर ही वे बड़े प्यार के साथ श्रीयशोदा माता जी की अभिन्न रूपा श्रीशची माता के घर की तमाम सेवा किया करते थे। शची देवी जी का स्नेह पाकर वे धन्य हो गये थे। भक्तों के माध्यम से ही भगवान् कृपा करते हैं। भगवत् कृपा, भक्त कृपा की अनुगामिनी होती है। वैष्णव वन्दना में ईशान दास की महिमा इस प्रकार वर्णित हुई है—

"बन्दिव ईशान दास कर जोरी करि।

शची ठाकुराणी जारे स्नेह कैल बड़ि"॥

(भक्ति रत्नाकर 12/94)

"विप्र कहे एइ देखी आइलुं ईशाने।

कि बलिव, केवा ना झूरये ताँर गुणे॥

सर्वतत्त्व ज्ञाता तेंहो सर्वत्र विदित।

श्रीशची देवीरे सेविला यथोचित॥

सेविलेन सर्वकाले आइरे ईशान।

चतुर्दश लोक मध्ये महाभाग्यवान्॥

शची देवी ईशाने यतेक स्नेह कैल।

कहिते कि जानि ताहा साक्षाते देखिल"॥

(भक्ति रत्नाकर 12/90-93)

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहणकरने के बाद, उनके घर में माँ और उनकी पत्नी श्रीविष्णु प्रिया देवी की देखभाल का भार ईशान पर पड़ा था। श्रीचैतन्य भागवत के मध्य खण्ड के आठवें अध्याय में लिखा है कि—

"ईशान करिला सब गृह उपस्कार।

यत छिल अवशेष—सकल ताँहार"॥

(चै.भा.म. 8/73)

73वें पयार के गौड़ीय भाष्य में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने लिखा है—

श्रीमन्महाप्रभु जी के घर के नौकर ईशान ने घर में इधर-उधर बिखरे चावलों को इकट्ठा किया और घर साफ कर दिया। ईशान के भाग्य की सीमा नहीं, वे असीम भाग्यशाली हैं। उन्होंने महाप्रभु जी के सेवा का कार्य करते-करते अपना सारा जीवन व्यतीत किया। महाप्रभु जी के संन्यास ग्रहण के बाद, भृत्य श्रीईशान, उनकी माता और पत्नी दोनों की सेवा करके, जगत् के अन्य नौकरों में परम धन्य तथा धन्य-अति-धन्य हो गए थे—

ईशान ठाकुर दीर्घकाल तक प्रकट रहे। श्रीविष्णु प्रिया देवी तथा नवद्वीप में महाप्रभु जी के समस्त भक्तों के अन्तर्धान होने के बाद ही वे अप्रकट हुए। उन्होंने श्रीनिवासाचार्य प्रभु, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीरामचन्द्र कविराज को श्रीमन्महाप्रभु जी की लीला स्थलियाँ भी दिखलायी थीं। ईशान ने जिस समय वह लीला स्थलियाँ दिखलायी थीं, उस समय वे पूर्णरूपेण जरा-जीर्ण अवस्था में थे। इसी से अनुमान होता है कि वे कितने दीर्घ जीवी थे—

"प्राय नवदीपे गुप्त हइल सकले।

प्रभुर ईशान मात्र आछेन एकले "॥

(भक्ति रत्नाकर 11/721)

श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीरामचन्द्र कविराज जी नवद्वीप धाम में ईशान ठाकुर का स्नेहाशीर्वाद व उनका आलिंगन लाभ कर, उनसे विदा लेकर जब श्रीखण्ड में श्रीरघुनन्दन जी से मिलने आए तो उनको सन्देश मिला कि ईशान ठाकुर जी ने अन्तर्धान कर लिया है—

"पथे आसि लोक मुखे करिनु श्रवण।

ईशान ठाकुर हइल संगोपन"॥

(भक्ति रत्नाकर 13/21)

श्रीमन्महाप्रभु और शची माता की अंतर्धान लीला के बाद श्रीवंशी वदनानन्द ठाकुर जी ने श्रीविष्णु प्रिया देवी तथा श्रीईशान ठाकुर की सेवा की थी।

****

श्रीवंशीवदनानन्द ठाकुर

वंशी कृष्णप्रिया यासीत् सा वंशीदास-ठक्कुरः।

(गौ.ग.दी. 179)

जो कृष्णप्रिया वंशी थीं, वे ही आजकल वंशीदास ठाकुर हैं।

श्रीकृष्ण के अधरों का स्पर्श प्राप्त करने वाली वंशी के सौभाग्य की महिमा का गोपियों ने कीर्तन किया है। जिस व्रज का सब कुछ चिन्मय है, उसी ब्रज की चिन्मय वंशी का अवतार श्रीवंशी वदनानन्द ठाकुर जी हैं।

वंशी वदनानन्द ठाकुर जी का पवित्र चरित्र उनके पड़पोते श्रीबल्लभदास द्वारा लिखित "वंशीविलास" ग्रन्थ के पाठ से मालूम होता है। "श्रीपाट पर्यटन" व " श्रीभक्ति रत्नाकर" ग्रन्थ में भी इनके विषय में लिखा हुआ है।“श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान" में इनके चरित्र के विषय में संक्षिप्त विवरण है। वैष्णव समाज में ये वंशीवदानानन्द ठाकुर पाँच नामों से परिचित हैं—वंशीवदन, वंशीदास, वंशी, वदन और वदनानन्द।

यह एक प्रसिद्ध पद्य रचनाकार थे। 1416 शक संवत् तथा किसी-किसी के मतानुसार (1427 शक सम्वत् की) मधु पूर्णिमा के शुभ अवसर (चैत्र पूर्णिमा तिथि) पर इनका आविर्भाव हुआ। “वंशी-शिक्षा" नामक ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है—

"चौद शत षोल शके मधुपूर्णिमाय।

वंशीर प्रकटोत्सव सर्वलोके गाय"॥

पुनः श्रीपाटपर्यटन में:—

"कुलिया पाहाड़ पुर दुइ त निर्द्धार।

वंशीवदन, कविदत्त सारंग ठाकुर॥

एई दुइ ग्रामे तिने सतत् विहार।

कुलिया पाहाड़पुर नामे ख्यात हय"।

इनका श्रीपीट स्थान कोलद्वीप (वर्तमान शहर नवद्वीप) में या कुलिया पाहाड़पुर में था। श्रीछकड़ी चट्टोपाध्याय* इनके पिता और चन्द्रकला देवी इनकी माता थी। ऐसा कहा जाता है कि ठाकुर जी के आविर्भाव के समय

---

*कुलिया के चार मुहल्ले हैं-तेघरि, वेंचि याड़ा, वदेड़ा पाड़ा और चिने डांगा।

श्रीकर चट्टोपाध्याय बिल्व ग्राम से वेचि पाड़ा में गए थे। श्रीकर चट्टोपाध्याय के वंश परम्परा में आये श्रीयुधिष्ठिर चट्टोपाध्याय के तीन पुत्र थे-

1.श्रीमाधव दास (छकड़ी) चट्टोपाध्याय 2.श्रीहरिदास (तीन कड़ी) चट्टोपाध्याय 3.श्रीकृष्ण सम्पत्ति (दूकड़ी) चट्टोपाध्याय।

सात दिन तक लगातार छकड़ी चट्टोपाध्याय जी के घर पर रहकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने नवद्वीप-वासियों पर कृपा की और देवानन्द पण्डित को उपदेश दिया था। ऐसा श्रीकविकर्णपूर लिखित ' श्रीचैतन्य चन्द्रोदय' नाटक में लिखा।

श्रीमन्महाप्रभु और श्रीअद्वैताचार्य प्रभु जी भी उपस्थित थे। श्रीमन्महाप्रभु के संन्यास ग्रहणकरने पर श्रीवंशीवदन ठाकुर श्रीशची माता और श्रीविष्णु प्रिया देवी के रक्षक-सेवक रूप में नियुक्त हुए थे। श्रीवंशीवदन जी ने एक दिन प्रेमाविष्ट होकर श्रीनिवासाचार्य जी को गोदी में लेकर बहुत क्रन्दन किया और उन्हें लेकर विष्णु प्रिया देवी तथा शचीमाता के पास गए थे—

"श्रीवंशीवदन देखी बिना परिचय।

मने विचारये श्रीनिवास ए निश्चय॥

निकटे आसिया परिचय जिज्ञासिल।

श्रीनिवास आद्योपान्त सब निवेदिल॥

श्रीवंशीवदन धरि करिलेन कोले।

श्रीनिवासे सिक्त कैल निज नेत्रजले॥

श्रीनिवास भूमे पड़ि चाहे प्रणमिते।

श्रीठाकुर वंशी ना छाड़िये कोल हइते॥

श्रीईश्वरी विष्णुप्रिया माये जानाईते।

चलिलेन श्रीवंशीवदन सावहिते॥" (श्रीभक्ति रत्नाकर 4/20-24)

श्रीवंशीवदन ठाकुर ने गृहस्थ लीला की थी। श्रीनित्यानन्द दास और श्रीचैतन्य दास इनके दो पुत्र थे। श्रीवंशीवदन ठाकुर द्वारा सेवित श्रीविग्रह "श्रीप्राणवल्लभ" था। बाद में श्रीविष्णु प्रिया देवी की इच्छा से इन्होंने श्रीगौरांग विग्रह की भी प्रतिष्ठा की थी। श्रीठाकुर जी के पूर्व पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगोपीनाथ जी के विग्रह वहाँ पहले से ही विराजमान थे। इन्होंने बिल्व ग्राम में जाकर शेष जीवन बिताया था। बिल्व ग्राम के भट्टाचार्य ब्राह्मण लोग इन्हीं के वंशज कहे जाते हैं।

श्रीवंशीवदनानन्द ठाकुर के पौत्र और श्रीचैतन्य दास के पुत्र श्रीरामचन्द्र या श्रीरामाई को ब्रजधाम के प्रस्कंदन तीर्थ* में श्रीराम और श्रीकृष्ण के विग्रह प्राप्त हुए थे। वर्द्धमान ज़िला के वाग्ना पाड़ा में इन्होंने उक्त दोनों विग्रहों की स्थापना की थी। ये 'श्रीराम कानाई' नाम से प्रसिद्ध हैं। वंशीवदन ठाकुर जी के वंशधरों ने श्रीनित्यानन्द जी की शक्ति श्रीजाह्नवा माता की कृपा प्राप्त की थी। गौड़ीय नामक पत्रिका की 20/30-31 संख्या में लिखा है-" श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा माता इन्हीं श्रीरामचन्द्र को माँग कर ले आयी थीं तथा उसे उन्होंने दीक्षा दान की एवं उसे खड़दह ग्राम में रख कर वैष्णव-तत्त्व की शिक्षा भी दी थी।"

----

* प्रस्कंदन तीर्थ-ये श्रीवृन्दावनधाम के अन्तर्गत द्वादश आदित्य टीला के नज़दीक एक घाट है। कालीयहृद में कालिया नाग की उद्धार की लीला करने के बाद श्रीकृष्ण के ठण्ड में ठिठुरने की लीला प्रकाश करने पर 12 सूर्यों ने एक साथ उदित होकर श्रीकृष्ण के दिव्य शरीर को ताप दिया था। इससे शीत दूर होकर श्रीकृष्ण के अंगों से पसीना निकलने लगा। सूर्य कन्या यमुना जी में उक्त पसीना मिल गया था। इसलिए इसका नाम प्रस्कंदन तीर्थ है।

श्रीवंशी वादन ठाकुर द्वारा रचित एक गीति—

आर न हेरिब, प्रसर कापाले,

अलका तिलक काच।

आर ना हेरिब, सोनार कमले,

नयन खंजन नाच॥

आर ना नाचिवे, श्रीवास मंदिरे,

भक्त चातक लैया।

आर ना नाचिवे, आपनार घरे,

आमरा देखिव चाइया॥

आर कि दुभाई, निमाई निताई,

नाचिवे एक ठांईं।

निमाई करिया, फुकरी सदाइ,

निमाई कोथाओ नाइ॥

निदय केशव, भारती आसिया,

माथाय पड़िल बाज।

गौरांग सुन्दर, ना देखि केमने,

रहिव नदिया माज॥

केवा हेन जन, आनिबे एखन,

आमार गौरांग राय।

शाशुडी वधुर, रोदन सुनिया,

वंशी गड़ागड़ि जाय॥

****

श्रीअभिराम ठाकुर (श्रीरामदास)

यह श्रीनित्यानन्द जी के प्राण, द्वादश गोपालों में से एक, ब्रज के ' श्रीदाम' सखा हैं—

"पुरा श्रीदामनामासिदभिरामोऽधुना महान्।

द्वात्रिंशता जनैरेव वाह्यं काष्ठमुवाह यः॥"

(गौ. ग. दी. 126 श्लोक)

हुगली ज़िले के अन्तर्गत थानाकूल कृष्णनगर में इनका निवास स्थान था। इनकी पत्नी का नाम श्रीमति मालिनी देवी था। अभिराम ठाकुर जी का श्रीपाट, जो कृष्णनगर में अवस्थित है, थाना या द्वारकेश्वर नदी के तट पर अवस्थित होने की वजह से इसे थानाकूल-कृष्णनगर के नाम से जाना जाता है। इनके निवास स्थान पर जो मन्दिर है, उस श्रीमन्दिर के द्वार पर एक बकुल का वृक्ष है। ये स्थान सिद्ध बकुलकुंज के नाम से जाना जाता है। अभिराम ठाकुर जी जब यहाँ आए थे तो सर्वप्रथम वे इसी वृक्ष के नीचे आकर बैठे थे। श्रीमन्दिर के सामने वाले तालाब को खोदते समय अभिराम ठाकुर जी ने यहाँ एक श्रीगोपीनाथ विग्रह पाया था। उसी समय से वह पुष्करिणी ' अभिराम कुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त श्रीमन्दिर में श्रीब्रजबल्लभ (युगल) मूर्ति, श्रीशालग्राम और श्रीगोपाल मूर्ति भी विराजित हैं। श्रीअभिराम ठाकुर जी अत्यन्त तेजस्वी व शक्तिशाली आचार्य थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के आदेश से भक्ति धर्म प्रचार के समय उन्होंने बहुत से पाषण्डियों का उद्धार किया था—

"अभिराम गोस्वामीर प्रताप प्रचण्ड।

याँरै देखी काँपे सदा दुर्जय पाषण्ड॥

नित्यानन्द आवेशे उन्मत्त निरन्तर।

जगते विदित याँर कृपा मनोहर॥"

(भक्ति रत्नाकर)

[श्रीअभिराम गोस्वामी जी का बहुत तेज प्रताप है, जिनको देखकर दुर्जन और पाखण्डी सदा काँपते हैं। ये नित्यानन्द जी के आवेश में सदा उन्मत्त रहते हैं, जिनकी मनोहर कृपा से सारा जगत परिचित है।]

"रामदास अभिराम—सख्य-प्रेमराशि।

षोलषांगेर काष्ठ तुलि' ये करिल वाँशी॥"

(चै. च. आ. 10/116)

[श्रीरामदास अभिराम जी सख्य प्रेम में प्रतिष्ठित थे। उन्होंने सोलह साङ्ग की एक काष्ठ को अर्थात इतनी बड़ी लकड़ी के टुकड़े को, जिसे 32 आदमी मिलकर उठा पाते हों, उठाकर वंशी की भान्ति धारणकर लिया था।]

श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुसार 32 व्यक्तियों द्वारा ढोये जाने वाले तथा भक्ति रत्नाकर लिखितानुसार 100 से अधिक व्यक्तियों द्वारा ढोये जाने वाले एक वृहद् काष्ठ को इन्होंने प्रेमोन्मत्त अवस्था में उठाकर वंशी के समान धारण किया था—

"शताधिक लोके यारे नारे चालाइते।

हेन काष्ठे वंशी करि धरिलेन हाते"।

(भक्ति रत्नाकर 4/123)

[एक सौ लोग मिलकर जिसे हिला भी न पाते हों, उस लकड़ी को उन्होंने वंशी की भान्ति धारणकर लिया था।]

इस प्रकार की अलौकिक लीला के दर्शन से भक्तगण महाविस्मित हुए थे। इनके प्रणाम करने से विष्णुशिला या विष्णु अर्चा-विग्रह के अतिरिक्त अन्यान्य शिला वा मूर्ति फट पड़ती थी—ऐसी कहावत अभी तक प्रचलित है।

अवैष्णवगण भी इनका प्रणाम सहन नहीं कर सकते थे। श्रीनित्यानन्द जी के पुत्र श्रीवीरचन्द्र गोस्वामी और श्रीगंगा माता गोस्वामिनी इनका प्रणाम सहन कर पाई थीं—ऐसा ठाकुर रचित श्रीवीरभद्राष्टक में और गंगा स्तोत्र में उल्लिखित है।

श्रील अभिराम ठाकुर जी का एक अद्‌भुत जयमंगल चाबुक था। इस चाबुक के द्वारा वे जिसको भी मारते थे, वही प्रेम में उन्मत्त हो जाता था। एक दिन श्रीनिवासाचार्य जी अभिराम भवन में आए तो अभिराम ठाकुर जी ने तीन बार श्रीनिवास जी के शरीर में जयमंगल चाबुक का स्पर्श कराया। अभिराम जी की पत्नी मालिनी देवी जी ने अपने पति को श्रीनिवास जी के शरीर में चाबुक स्पर्श करने से मना भी किया था। कारण श्रीनिवास तब बालक थे और चाबुक के स्पर्श से वे प्रेमोन्मत्त हो जाते। श्रीनिवासाचार्य प्रभु अभिराम ठाकुर जी के अति प्रियतम, कृपा व स्नेह के पात्र थे। दीक्षित न होने पर भी वे शिष्य की तरह थे। वह जयमंगल चाबुक अभी भी मन्दिर के अन्दर सन्दूक में रखा हुआ है। अभिराम ठाकुर जी के सम्बन्ध में भक्ति रत्नाकर में इस प्रकार लिखा है—

"अहे श्रीनिवास! कत कहिव तोमारे?

जीव उद्धारिते अवतीर्ण विप्रघरे॥

सर्वशास्त्रे पण्डित परम मनोरम।

नृत्य-गीत वाद्ये विशारद निरूपम॥

प्रभु नित्यानन्द बलरामेर इच्छाते।

करिल विवाह विज्ञ विप्रेर गृहेते॥

श्रीअभिराम पत्नी नाम श्रीमालिनी।

ताँहार प्रभाव यत कहिते न जानि॥"

(भक्ति रत्नाकर 4/105)

[हे श्रीनिवास! आपको कहाँ तक बताऊँ, जीवों का उद्धार करने के लिए अभिराम जी विप्र के घर अवतीर्ण हुए। वे सर्वशास्त्रों के ज्ञाता व परम मनोहर थे। नृत्य, गीत और वाद्यों के बजाने में वह उपमा रहित विशारद थे। श्रीबलराम जी की इच्छा से उन्होंने श्रीनित्यानन्द दास नामक ज्ञानवान विप्र जी के घर में विवाह किया था। श्रीअभिराम जी की पत्नी का नाम श्रीमति मालिनी देवी था। उनका जो प्रभाव था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।]

बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि बालिमठ इनके द्वारा प्रतिष्ठित है।

चैत्र कृष्ण-सप्तमी तिथि में अभिराम ठाकुर जी का तिरोभाव हुआ था, इसलिए इस तिथि को थानाकूल कृष्णनगर के महोत्सव में बहुत से लोगों का समागम होता है।

हमारे परमगुरु पादपद्म जगद्गुरु श्रीश्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी, गौड़ मण्डल की परिक्रमा के समय इसी श्रीपाट पर सपार्षद पधारे थे। श्रीपाट के सेवकों ने उस समय उनकी विशेष भाव से अभ्यर्थना व सम्वर्धना की थी।

****

श्रीपरमेश्वर दास (श्रीपरमेश्वरी दास)

"नाम्नार्जुनः सखा प्राग् यो दासः परमेश्वरः।"

(गो.ग.दी. 132)

गौरगणोद्देश दीपिका में लिखा है कि श्रीपरमेश्वर दास जी द्वादश गोपालों में से एक अर्जुन नामक सखा हैं।

श्रील परमेश्वरी ठाकुर वैद्य कुल में आविर्भूत हुए थे। इनका निवास स्थान आंटपुर में है। इस स्थान का पहले का नाम विशखालि था। ये स्थान हावड़ा –आमता रेल-लाइन की चांपाडांगा शाखा के आंटपुर स्टेशन के नज़दीक तथा वर्तमान राय तेज बहादुर दीवान (परलोकगत कृष्ण राम मित्र) द्वारा स्थापित श्रीराधा गोविन्द जी के प्राचीन मन्दिर के निकट है।

काटोया में संन्यास ग्रहणकरने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमोन्मत्त होकर श्रीवृन्दावन की ओर धावित हुए तो श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की चातुरी से वे श्रीअद्वैताचार्य जी के घर आ गए। वहाँ पर वे श्रीशचीमाता व नवद्वीपवासी भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी से मिले। श्रीशचीमाता व भक्तों की इच्छा से जब श्रीमन्महाप्रभु जी के लिए नीलाचल में रहने के लिए स्वीकृति हुई तो वे छत्रभोग पथ से श्रीनित्यानन्द, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द व श्रीदामोदर के साथ नीलाचल की ओर चल दिए।

वृन्दावन जाएँगे—कहकर जब महाप्रभु जी ने नीलाचल से पहली बार वृन्दावन के लिए शुभ यात्रा की थी तो उस बार श्रीमन्महाप्रभु जी का वृन्दावन जाना नहीं हुआ; वे पाणिहाटि, कुमारहट्ट, कुलिया, रामकेलि ग्राम, कानाइ –नाटशाला व शान्तिपुर आदि स्थानों से होते हुए दोबारा नीलाचल में ही वापस आ गए......... श्रीमन्महाप्रभु जी वृन्दावन जाएँगे ऐसा सुनकर श्रीनृसिंहनन्द ब्रह्मचारी मानसिक सेवा द्वारा कुलिया से वृन्दावन तक का रत्नपथ बनाने लगे। रत्नपथ निर्माण करते-करते कानाई-नाटशाला तक आकर रुक गए। जब वे कानाई-नाटशाला पर रुक गए और आगे पथ न बना पाए तो वे समझ गए कि इस बार महाप्रभु जी वृन्दावन नहीं जाएंगे, वे कानाई-नाटशाला से वापस लौट आएंगे।. .... महाप्रभु जी जब वृन्दावन जा रहे थे तो लाखों लोग उनके पीछे चलने लगे। .... कानाई-नाटशाला तक आकर उन्हें सनातन गोस्वामी जी की बात याद आ गई। रामकेलि ग्राम में श्रीसनातन गोस्वामी जी ने कहा था—

"याँहा सङ्गे चले एइ लोक लक्षकोटि।

वृन्दावन-याइबार ए नहे परिपाटी *"॥ (चै. च. म. 1/224)

कानाई-नाटशाला से वापस लौटते समय नीलाचल के रास्ते में श्रीमन् महाप्रभु जी शान्तिपुर में श्रीअद्वैत आचार्य जी के घर में कुछ दिन ठहरे। इस बार नीलाचल जाते समय श्रीमन्महाप्रभु जी के साथ श्रीबलभद्र भट्टाचार्य एवं पण्डित श्रीदामोदर जी थे। गया से वापस लौटते समय भी श्रीमन् महाप्रभु जी ने कानाई-नाटशाला में द्विभुज मुरलीधर श्रीकृष्ण के अतुलनीय रूप का दर्शन किया था। वह मूर्ति श्रीमन् महाप्रभु जी को आलिंगन करके अन्तर्हित हो गयी थी।

(चै. च. मध्य 2/179-185)

---

*लाखों-करोड़ों लोग जिसके साथ में चलें, ये वृन्दावन जाने का तरीका नहीं हैं।

श्रीमन्महाप्रभु जी ने नीच, मूर्ख व पतित आदि सभी का उद्धार करने के लिए श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को गौड़-देश जाने का आदेश दिया तो महाप्रभु जी की आज्ञा पाकर नित्यानन्द प्रभु ने अपने गणों को साथ में लेकर गौड़देश की ओर प्रस्थान किया। उस समय श्रीरामदास, श्रीगदाधर दास, श्रीरघुनाथ वैद्य, श्रीकृष्णदास पण्डित, श्रीपरमेश्वरी दास व पुरन्दर पण्डित आदि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के साथ में थे। रास्ते में चलते-चलते नित्यानन्द प्रभु के पार्षदों के विभिन्न प्रकार के भाव प्रकाशित हुए।

श्रीचैतन्य भागवत में इस प्रकार लिखा है—

"कृष्णदास पण्डित, परमेश्वरी दास।

पुरन्दरपण्डितेर परम उल्लास॥

नित्यानन्दस्वरूपेर यत आप्तगण।

नित्यानन्दसंगे सबे करिला गमन॥

पथे चलितेइ नित्यानन्द महाशय।

सर्व-परिषद आगे कैला प्रेम-मय॥

सबार हइल आत्म-विस्मृति अत्यन्त।

'का'र देहे कत भाव नाहि ता'र अन्त"॥

(चै.भा.अ. 5/232-235)

अर्थात श्रीकृष्णदास पण्डित, श्रीपरमेश्वरीदास और पुरन्दर पण्डित में बहुत उल्लास है। श्रीनित्यानन्द जी के जो निज जन हैं, सब ने नित्यानन्द जी के साथ ही गमन किया। मार्ग में चलते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने सब पार्षदों को प्रेममय कर दिया। सब अपने आप को भूल गये। किस के देह में कितने-कितने भाव उमड़े इस का कोई अन्त नहीं है–

"कृष्णदास परमेश्वरीदास दुइजन।

गोपालभावे 'हइ हइ' करे अनुक्षण"॥

(चै. भा. अ.5/240)

श्रीकृष्णदास तथा श्रीपरमेश्वरीदास ग्वाल-बालों के भाव में है-है' करते हैं।

श्रीपरमेश्वरी दास श्रीनित्यानन्द लीला पुष्टि के एक प्रधान पार्षद एवं नित्यानन्द जी के जीवन सदृश थे। श्रीचैतन्य भागवत के अन्त्य खण्ड में इस प्रकार वर्णित है—

"नित्यानन्द-जीवन परमेश्वरीदास।

याँहार विग्रहे नित्यानन्देर विलास॥" (चै.भा.अ.5/732)

श्रीपरमेश्वरीदास जी श्रीनित्यानन्द जी के जीवन हैं, जिन के शरीर में श्रीनित्यानन्द जी विलास करते हैं।

आंटपुर गाँव में परमेश्वरी दास जी के सेवित श्रीगौरविग्रह में श्रीमन् महाप्रभु जी प्रकाशित हुए थे—इस प्रकार का प्रामाणिक-वाक्य श्रीचैतन्य भागवत में पाया जाता है—

"पुरन्दरपण्डित परमेश्वरीदास।

याँहार विग्रहे गौरचन्द्रेर प्रकाश॥

सत्वरे धाइया आइलेन सेइक्षणे।

प्रभु देखि' प्रेमयोगे कान्दे दुइजने"॥

(चै. भा. अ. 5/95-96)

श्रीपुरन्दर पण्डित तथा श्रीपरमेश्वर दास जी, जिन के विग्रहों में श्रीगौरचन्द्र जी का प्रकाश है, शीघ्रता से उसी क्षण दौड़ते हुए आये और प्रभु को देखकर दोनों प्रेम से रोने लगे।

गौराङ्ग नकड़ि कृष्णदास, दामोदर।

श्रीपरमेश्वरी बलराम विज्ञवर॥

श्रीमुकुन्द, दास वृन्दावन आदि करि।

ए सवाय सह सुखे चलये ईश्वरी॥ (भ.र. 10/376-377)

(अर्थात गौराङ्ग नकड़ि श्रीकृष्णदास, श्रीदमोदर, श्रीपरमेश्वर, विद्वान बलरामजी तथा श्रीवृन्दावन दास जी आदि के साथ ईश्वरी जाह्नवा देवीजी आनन्द के साथ चल रही हैं।)

श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी के खेतरी महोत्सव में जाते समय परमेश्वरी जी भी उनके साथ थे, ऐसा वर्णन भक्ति रत्नाकर में पाया जाता।

श्रीपरमेश्वर दास ठाकुर श्रीजाह्नवी माता के साथ ब्रजधाम गए थे व जाह्नवा माता जी की कृपा से ही ये वृन्दावन में श्रीगोपीनाथ जी के साथ श्रीराधिका जी का मिलन दर्शन करके प्रेमाप्लिवित हो गए थे। श्रीजाह्नवा माता जी के आदेश से उन्होंने आंटपुर में श्रीराधा-गोपीनाथ जी की विग्रह प्रतिष्ठा की थी—

तार आंटपुर ग्राम शीघ्र करि याह,

तथा राधागोपीनाथ सेवा प्रकाशह॥

ईश्वरी आज्ञाय परमेश्वरी दास।

राधा गोपीनाथ सेवा करिल प्रकाश॥ (भ.र. 13/245-246)

(अर्थात श्रीजाह्नवा माता जी परमेश्वरी दास से कहती हैं कि आप जल्दी आंटपुर ग्राम में जाओ और वहां श्रीराधागोपीनाथ जी की सेवा का प्रकाश करो। श्रीपरमेश्वर दास जी ने श्रीमती जाह्नवा देवी जी की आज्ञा से ही श्रीराधा गोपीनाथ जी की सेवा का प्रकाश किया।)

श्रीपरमेश्वर दास ठाकुर कुछ समय के लिए खड़दह में एवं वृन्दावन में आते समय पुरी ज़िला के गरलगाछा ग्राम में रहे थे। जब श्रील नरोत्तम ठाकुर खड़दह में आए थे तो उन्होंने उन्हें पुरी के रास्ते का विवरण दिया था।

श्रीपरमेश्वर ठाकुर के स्मरण से ही कृष्ण-भक्ति लाभ होती है—इस प्रकार की महिमा की बात श्रीचैतन्य चरितामृत में है, यथा—

"परमेश्वरदास-नित्यानन्दैक-शरण।

कृष्णभक्ति पाय, ताँर ये करे स्मरण"॥ (चै.च.आ. 11/29)

अर्थात श्रीपरमेश्वर दास जी ने श्रीनित्यानन्द जी की एक मात्र शरण ली है, जो इनका स्मरण करेगा वह कृष्ण भक्ति प्राप्त करेगा।

परमेश्वरी दास ठाकुर जी की अलौकिक शक्ति थी। एक समय की बात है, हुगली ज़िले के श्रीरामपुर के निकट आक्नामहेश नामक गाँव में श्रीकमलाकर पिप्लाई के निवास स्थान पर हरिनाम-संकीर्तन हो रहा था तथा परमेश्वरी दास ठाकुर वहाँ पर प्रेम में प्रमत्त होकर नृत्य कर रहे थे। उस उच्च संकीर्तन ध्वनि व नृत्य को देखकर कई उन पाखण्डियों के शरीर में जलन होने लगी जो वहाँ कीर्तन-स्थान को कलंकित व भक्तों को दमित करने के लिए आए थे। उन्होंने कीर्तन स्थल पर एक मरा हुआ गीदड़ (सियार) फेंक दिया किन्तु वैष्णवप्रवर श्रीपरमेश्वर दास जी ने संकीर्तन बन्द नहीं किया। उनके संकीर्तन के प्रभाव से मरा हुआ गीदड़ भी जीवित होकर कीर्तन करने लगा। इस घटना को देखकर सभी विस्मित व परमानन्द में निमग्न हो गए। वैष्णव वन्दना में लिखा है—

"परमेश्वर दास वन्दिव सावधाने।

शृगाले लओयान नाम संकीर्तन-स्थाने"॥

अर्थात श्रीपरमेश्वर दास जी की मैं सावधानी पूर्वक वन्दना करता हूँ, उन्होंने तो मरे हुये गीदड़ को भी ज़िन्दा करके उससे संकीर्तन करवा दिया।

श्रीमन्दिर के ठीक सामने दो वृक्ष हैं जिनमें एक बकुल का है व दूसरा कदम्ब का है तथा दोनों वृक्षों के बीच में श्रीपरमेश्वर दास ठाकुर जी की समाधि है तथा समाधि के ऊपर तुलसी मंच सुशोभित है। परमेश्वरी ठाकुर के समय जो दो बकुल वृक्ष थे उन्हीं की शाखाओं से ये वृक्ष उत्पन्न हुए हैं—ऐसा प्रवाद है। किसी-किसी का कहना है कि उन वृक्षों की दातुन से इन वृक्षों की उत्पत्ति है। कदम्ब के वृक्ष में प्रत्येक वर्ष एक फूल होता है जिससे श्रीविग्रह की चरण पूजा होती है।

वैशाखी पूर्णिमा तिथि को श्रील परमेश्वरी ठाकुर जी का तिरोभाव उत्सव सम्पन्न होता है।

****

श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर

"महाभागवत-श्रेष्ठ दत्त उद्धारण।

सर्वभावे सेवे नित्यानन्देर चरण"॥

(चै.च.आ. 11/41)

श्रीउद्धारण दत्त श्रेष्ठ महाभागवत हैं। वे सम्पूर्ण भाव से श्रीनित्यानन्द जी के चरणों की सेवा करते हैं।

जिस प्रकार स्वयं भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण-राधा जी का भाव और कान्ति ग्रहणकरके श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु के रूप में श्रीनवद्वीप धाम के अन्तर्गत, "अन्तर्दीप के बीच श्रीमायापुर में" श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में आविर्भूत हुए, उसी प्रकार श्रीकृष्ण पार्षद भी गौर लीला की पुष्टि के लिए गौरपार्षदों के रूप में अवतीर्ण हुए। महाप्रभु जी की तरह ही श्रीकृष्ण के प्रथम प्रकाश विग्रह श्रीबलदेव जी गौरलीला की पुष्टि के लिए भक्त भाव को अंगीकार करके श्रीमान् नित्यानन्द जी के रूप में एकचक्रधाम में अवतीर्ण हुए तथा श्रीबलदेव जी के पार्षद श्रीनित्यानन्द जी के पार्षदों के रूप में अवतीर्ण हुए। शेष भगवान्, तीनों पुरुषावतार और महासंकर्षण के कारण रूप में जो मूल संकर्षण श्रीबलदेव तत्त्व हैं, वे ही श्रीनित्यानन्द तत्त्व हैं। श्रीबलदेव जी के सख्य रस के मुख्य पार्षद द्वादश गोपालों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

"सुबाहुर्यो व्रजे गोपो दत्त उद्धारणाख्यकः"

(गौ. ग. दी. 129)

श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर उक्त द्वादश गोपालों में से एक सुबाहु नामक सखा हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला पुष्टि के लिए वे हुगली ज़िला के अन्तर्गत त्रिशविघा स्टेशन के नज़दीक सप्तग्राम में 1403 शकाब्द (सन् 1481) में पिता श्रीकर और माता श्रीमती भद्रावती को अवलम्बन करके सुनार कुल में अवतीर्ण हुए। वैष्णव जिस भी कुल में आविर्भूत होते हैं उनसे वह कुल पवित्र हो जाता है, पृथ्वी धन्य हो जाती है और जननी कृतार्थ हो जाती है।

श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर के आविर्भाव से सुनार कुल पवित्र हुआ। इस प्रकार की बात श्रीचैतन्य लीला के व्यास श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्य भागवत के पंचम अध्याय में लिखी है—

"कतदिन थाकि' नित्यानन्द खड़देहे।

सप्तग्राम आइलेन सर्वगण-सहे॥

उद्धारणदत्त भाग्यवन्तेर मन्दिरे।

रहिलेन तथा प्रभुवर त्रिवेणीरतीरे॥

कायमनोवाक्ये नित्यानन्देर चरण।

भजिलेन अकैतवे दत्त-उद्धारण॥

यतेक वणिक्-कुल उद्धारण हैते।

पवित्र हइल, द्विधा नाहिक इहाते॥"

(चै.भा.अ. 5/443,449-450,453)

श्रीनित्यानन्द जी खड़दह में कुछ दिन ठहर कर अपने सब भक्तों के साथ सप्तग्राम में आ गये। वहाँ त्रिवेणी के तीर पर भाग्यवान श्रीउद्धारण दत्त के घर में ठहरे। श्रीउद्धारण दत्त जी ने शरीर, मन व वाणी से श्रीनित्यानन्द जी के चरणों की निष्कपट सेवा की। सेवा से श्रीउद्धारण जी से सम्बन्धित जितना भी वणिक कुल था वह सारा पवित्र हो गया, इस में कोई संशय नहीं है।

"जाति, कुल सब-निरर्थक' जानाइते।

जन्माइलेन हरिदासे म्लेच्छकुलेते"॥

जातिकुल आदि सब को निरर्थक बतलाते हुए भगवान ने श्रीहरिदास जी को म्लेच्छ कुल में जन्म दिलाया।

भगवान के भक्त किसी भी कुल में आ सकते हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु जी ने यह शिक्षा देने के लिए ही भगवद् पार्षदों को नीच कुल में आविर्भूत कराया—

"नीच जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य।

सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य"॥

जेई भजे, सेइ बड़, अभक्त-हीन छार।

कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार॥

(चै.च.अ. 4/66-67)

अर्थात नीचजाति श्रीकृष्ण भजन के अयोग्य नहीं है तथा सत् कुल वाला विप्र भी भजन के योग्य नहीं है। जो श्रीकृष्ण का भजन करेगा, वह ही बड़ा होगा जो भगवान का भक्त नहीं है वह तो बेकार है। श्रीकृष्ण भजन में जाति कुल आदि का कोई विचार नहीं है—

"अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि –

विर्ष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।

श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि –

विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः" ॥

(पद्म पुराण)

वैष्णवों में जाति बुद्धि नरक प्राप्ति करवाने वाली है।

श्रीनित्यानन्द प्रभु की इच्छा से सुबाहु सखा सुनार कुल में आविर्भूत होने पर भी सुनार नहीं हैं, वे गुणातीत भगवद् पार्षद हैं। प्राकृत स्थूल व सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा भक्त और भगवान के तत्त्व (Ontological aspect) की उपलब्धि नहीं होती। हाँ, उनकी बाहरी आकृति (Morphological aspect) की किन्चित अनुभूति हो सकती है। **शरणागत के हृदय में भक्त और भगवान् के तत्त्व की स्फूर्ति होती है।** श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर की कृपा होने से उनके अप्राकृत स्वरूप की व उनकी महिमा की उपलब्धि हो सकती है।

कृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की पतित पावनत्त्व महिमा * का वर्णन इस प्रकार किया है—

"प्रेमे मत्त नित्यानन्द कृपा अवतार।

उत्तम अधम किछु ना करे विचार॥

ये आगे पड़ये, तारे करये निस्तार।

अतएव निस्तारिल मो-हेन दुराचार"॥

---

*देवताओं के मध्य विष्णु परदेवता हैं। एकमात्र विष्णु के नामोच्चारण से समस्त पाप ध्वंस हो जाते हैं तथा समस्त अशुभ नाश व शुभ लाभ होता है। एक हज़ार विष्णुनाम के बराबर होता है—**एक राम नाम**।

"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।

सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥" (पद्म पुराण उत्तराखंड)

फिर तीन हज़ार विष्णु नाम के बराबर एक कृष्ण नाम अर्थात् तीन राम के नाम बराबर **एक कृष्ण नाम**।

"सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।

एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति॥" (ब्रह्माण्ड पुराण)

कृष्ण नाम और कृष्ण मन्त्र सर्वोत्तम होते हुए भी कृष्ण नाम में अपराध का विचार है। श्रीकृष्ण नाम के आभास से करोड़ों-करोड़ों जन्मों के पाप ध्वंस हो जाते हैं व मुक्ति प्राप्त होती है—ये सत्य है। किन्तु अपराध रहने से नामाभास भी नहीं होता। अपराधी पर कभी श्रीकृष्ण ने कृपा नहीं की। पाप और अपराध में अन्तर यह है कि देहधारी बद्ध जीवों के प्रति जब कोई अन्याय का आचरण होता है तो उसको पाप कहते हैं तथा विष्णु व वैष्णवों के सम्बन्ध में अगर कोई अन्याय हो तो उसे अपराध कहते हैं। पाप की अपेक्षा अपराध ज्यादा खतरनाक होता है।

अजामिल ने महापाप किए थे किन्तु उसका कोई अपराध नहीं था इसलिए नामाभास से उसकी मुक्ति हो गयी। पापी –अपराधी सभी का उद्धार किया—श्रीमन् महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु जी ने।

"कृष्ण नाम करे अपराधेर विचार।

कृष्ण बलिले अपराधीर ना हय विकार॥"

"चैतन्य नित्यानन्दे नाहि ए सब विचार।

नाम लैले प्रेम देन, बहे अश्रुधारा॥" (श्रीचैतन्य चरितामृत)

श्रीकृष्ण नाम अपराध का विचार करता है। श्रीकृष्ण नाम बोलने से अपराधी के विकार नहीं होता है परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुजी व श्रीनित्यानन्द जी के नामों में ये सब विचार नहीं है। इन का नाम लेने से ही ये प्रेम दान कर देते हैं और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है।

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर जी ने भी श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की बहुत महिमा वर्णन की है। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की कृपा के बिना पापी और अपराधी जीवों के उद्धार का कोई उपाय नहीं है। श्रीमन् नित्यानन्दप्रभु भक्त लीला करते हुए भी स्वरूपतः भगवत-तत्त्व हैं, उनके पार्षद उनकी कृपा शक्ति का मूर्त-स्वरूप हैं। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु परम पतित-पावन हैं फिर उनके अन्तरंग पार्षद परम-परम पतित-पावन हैं। वस्तुतः श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु भक्तों के माध्यम से ही कृपा करते हैं। श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी के अन्तरंग पार्षद होने के कारण परम-परम पतित –पावन हैं, जिनका आश्रय ग्रहणकरने से जीव बिना किसी प्रयास के संसार से मुक्त होकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु जी के पादपद्मों की व श्रीगौरांग महाप्रभु जी के पादपद्मों की सेवा प्राप्त कर सकता है। श्रील कविराज गोस्वामी जी ने उद्धारण दत्त ठाकुर जी को महाभागवत श्रेष्ठ कहा है। श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य भागवत में लिखा है—

"उद्धारण दत्त महा वैष्णव उदार।

नित्यानन्द सेवाय याँहार अधिकार"॥

श्रीउद्धारण दत्त जी महा उदार वैष्णव हैं जिनका श्रीनित्यानन्द जी की सेवा में अधिकार है।

बाहरी परिचय से श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी ने नैहाटी के राजा नैराजा के मन्त्री की लीला का प्रदर्शन किया। आज भी दाँईहाट स्टेशन के पास उक्त राजवंश के महल के कुछ खण्डहर देखने को मिलते हैं। उद्धारण दत्त ठाकुर जी राजकार्य करते हुए जहाँ पर रहते थे वहाँ का नाम आज भी उद्धारणपुर है। विपुल ऐश्वर्य के अधिकारी होते हुए भी सब कुछ त्याग कर सर्व-इन्द्रियों द्वारा सर्वतोभाव से श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु की सेवा का आदर्श प्रदर्शन किया—उद्धारण दत्त ठाकुर जी ने। इनके शुद्ध प्रेम में वशीभूत होकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु इनके द्वारा पकाये अन्न-व्यंजनादि सेवन करते हुए बड़े ही सुख का अनुभव करते थे—

"भक्तेर द्रव्य प्रभु काड़ि-काड़ि खाय।

अभक्तेर द्रव्य प्रभु उलटी ना चाय"।

अर्थात भक्त की वस्तु प्रभु छीन छीन कर खाते हैं, जबकि अभक्त के द्रव्य की ओर वे मुड़ कर भी नहीं देखते।

सरस्वती नदी के किनारे सप्त ग्राम में उद्धारण दत्त ठाकुर जी का निवास स्थान था। वहाँ पर आज एक सिंहासन पर उनके सेवित षड़भुज महाप्रभु जी, उनके दाहिनी ओर श्रीनित्यानन्द प्रभु जी तथा बायीं ओर श्रीगदाधर जी विराजमान

हैं। दूसरे सिंहासन पर श्रीराधा-गोविन्द जी की श्रीमूर्ति व श्रीशालग्राम एवं निचली वेदी पर श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी का आलेख अर्चित हो रहा है। श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी के अप्रकट के बाद श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी जी इनके निवास स्थान पर आयी थीं।

श्रीकविराज गोस्वामी जी ने लिखा है कि उनके भाई की जितनी श्रद्धा महाप्रभु जी के प्रति थी उतनी श्रद्धा श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के प्रति नहीं थी। इसलिये एक बार श्रीनित्यानन्द प्रभु के पार्षद मीनकेतन रामदास के साथ कविराज गोस्वामी जी के भाई का तर्क- वितर्क हो गया। इसमें श्रील कविराज गोस्वामी जी ने मीनकेतन रामदास जी का पक्षावलम्बन करके अपने भाई की भर्त्सना की। श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु कविराज गोस्वामी जी का भक्त-पक्षपातित्त्व रूपी सामान्य गुण देखकर उनके प्रति बड़े प्रसन्न हुए तथा उन्होंने इन्हें वृन्दावन वास का अधिकार प्रदान किया व निज स्वरूप का दर्शन भी कराया एवं श्रीराधा-गोविन्द जी के पादपद्म की सेवा भी प्रदान की। इसलिए श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु के प्रियतम श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर की यदि हम पूजा करें, उनकी सेवा करें व उनकी प्रसन्नता के कार्य करें तो हम अतिशीघ्र श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा प्राप्त कर सकते हैं तथा कृष्ण प्रेम के अधिकारी बन कर अपना जीवन सार्थक कर सकते हैं।

जीवों के सर्वोत्तम कल्याण को लिए श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान को प्रकाशित करना उचित है जिससे जगत्वासी उनके श्रीपादपद्मों में प्रसन्न हो सकें, उनकी गुणगाथा कीर्तन कर सकें व उनकी सेवा एवं उनकी कृपा लाभ करके अपने जीवन को धन्य कर सकें। निष्कपट सेवा प्रचेष्टा रहने से सेव्य सभी प्रकार की शक्ति सामर्थ्य प्रदान करेंगे। सप्तग्राम में श्रीमन्दिर के सामने एक बहुत बड़े हाल-घर का निर्माण हुआ है। इस विशाल हाल के सामने एक सुशीतल छायापूर्ण माधवी मण्डप भी है।

श्रीनिवास दत्त ठाकुर श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर जी के पुत्र रूप में आविर्भूत हुए थे। आज भी श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर जी के वंशधर हुगली व कलकत्ता आदि स्थानों में फैले हुए हैं। उनके वंश में जो लोग आये हैं वे निश्चय ही भाग्यवान् हैं। वे जैसे मायिक परिचय परित्याग करके अप्राकृत सम्बन्ध में स्थित रह कर श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर के आविर्भाव स्थान की उज्ज्वलता विधान करें—ऐसी उनसे प्रार्थना करता हूँ।

1463 शकाब्द पौषी (मतान्तर अग्रहायन) कृष्णा त्रयोदशी तिथि को श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर का तिरोभाव हुआ।

****

श्रीपुरुषोत्तम दास

"श्रीसदाशिव कविराज-बड़ महाशय।

श्रीपुरुषोत्तमदास-ताँहार तनय॥

आजन्म निमग्न नित्यानन्देर चरणे।

निरन्तर बाल्य-लीला करे कृष्ण-सने॥

ताँर पुत्र-महाशय श्रीकानु ठाकुर।

याँर देहे रहे कृष्ण-प्रेमामृतपूर॥"

(चै.च.आ. 11/38-40)

श्रीचैतन्य चरितामृत की आदिलीला के 11वें परिच्छेद में श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के अनन्त पार्षदों के विवरण में श्रील कविराज गोस्वामी जी ने जिन मुख्य पार्षदों के नामों का उल्लेख किया है, उनमें श्रीपुरुषोत्तम दास जी भी एक हैं।

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर जी ने भी श्रीचैतन्य भागवत ग्रन्थ के अन्त्य खण्ड के पंचम अध्याय में श्रीपुरुषोत्तम दास ठाकुर जी की गणना श्रीमन्नित्यानन्द **XXXXXXXX**

"सदाशिव-कविराज—महा-भाग्यवान्।

याँ'र पुत्र—पुरुषोत्तमदास-नाम।

बाह्य नाहि पुरुषोत्तम दासेर शरीरे।

नित्यानन्दचन्द्र याँ'र हृदय विहरे"॥

(चै.भा.अ. 5/741-742)

"सदाशिवसुतो नाम्ना नागरः पुरुषोत्तमः।

वैद्यवंशोद्भवो नाम्ना दाम यो बल्लवो व्रजे"॥

(गो.ग.दी. 131)

ब्रज में जो श्रीदाम" नामक गोप थे वही अब वैद्य वंश में उत्पन्न सदाशिव के पुत्र नागर पुरुषोत्तम हैं। "श्रीधाम" द्वादश गोपालों में से एक हैं। ब्रज लीला में श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर भगवान श्रीकृष्ण की बाल क्रीड़ा के साथी थे।

कंसारि सेन, उनके पुत्र सदाशिव, उनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर और उनके पुत्र श्रीकानू ठाकुर—इस प्रकार इनकी ये चार पीढ़ी सिद्ध पार्षद थी। लगातार चार पीढ़ियों का सिद्ध पार्षदत्त्व बहुत विरल होता है। गौरगणोद्देश दीपिका में कंसारिसेन का ब्रज लीला में रत्नावली के रूप में परिचय दिया गया है।

श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर की पत्नी का नाम श्रीजाह्नवा देवी था। पुत्र कानू ठाकुर का शैशव-अवस्था में मातृवियोग हो गया था। नित्यानन्द प्रभु जी ने इनका नाम शिशु कृष्णदास रखा था। कहा जाता है कि श्रीनित्यानन्द शक्ति श्रीजाह्नवा देवी ने शिशु कानू ठाकुर का पालन-पोषण किया था एवं वे उनको वृन्दावन लेकर गई थीं। किसी-किसी के मत में कानू ठाकुर द्वादश गोपालों में से एक थे। वृन्दावन में कानू ठाकुर जब नृत्य-कीर्तन के आनन्द में विह्वल हुए तो उनके दाहिने पैर का नूपुर गायब हो गया। तब उन्होंने संकल्प लिया कि जहाँ उनका नूपुर गिरेगा, वहीं जाकर वे रहेंगे। यशोहर ज़िला के "बोधखाना" नामक स्थान पर नूपुर की प्राप्ति होने पर कानु ठाकुर "बोधखाना" जाकर रहने लगे थे। जिराट निवासी श्रीमाधवाचार्य भी (श्रीमाधव चट्टोपाध्याय भी) श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर के श्रीपीठ-स्थान के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

नदीया ज़िले के अन्तर्गत चाकदह और शिमूरालि के मध्यवर्ती स्थान सुख सागर में श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर जी का निवास था। श्रीपुरुषोत्तम ठाकुर द्वारा सेवित विग्रह पहले वेलेडांगा ग्राम में विराजमान थे। उसका विध्वंस होने पर श्रीविग्रह सुख सागर में आ गए। सुख सागर के भी गंगा के जल में समा जाने पर ठाकुर जी के श्रीविग्रहगणों ने साहेब डांगा वेरिग्राम में श्रीजाह्नवा माता जी की गद्दी के श्रीविग्रहों के साथ शुभागमन किया। वेरिग्राम के भी ध्वंस हो जाने पर फिर ठाकुर जी के विग्रह श्रीजाह्नवा माता की गद्दी के साथ गंगा के किनारे स्थित चादूंड़े नामक ग्राम में आकर विराजित हो गए। प्राचीन सुख सागर के नदी के गर्भ में चले जाने पर नया सुख सागर चांदूड़े ग्राम से तीन-चार मील की दूरी पर प्रकट हो गया है। ये चांदूड़े नामक ग्राम पालपाड़ा से एक मील दूरी पर स्थित है। वैष्णव वन्दना के रचयिता श्रीदेवकीनन्दन दास जी ने वैष्णव वन्दना में पुरुषोत्तम ठाकुर जी के शिष्य के रूप में अपना परिचय दिया है

"सदाशिव कविराज बंदौं एकमने।

निरन्तर प्रेमोन्माद बाह्य नाहि जाने"।

X X X X

"इष्टदेव बन्दौं श्रीपुरुषोत्तम नाम।

के कहिते पारे ताँर गुण अनुपम॥

सर्वगुणहीन ये, ताहारे दया करे।

आपनार सहज करुणा शक्ति बले॥

सप्तम वत्सरे याँर श्रीकृष्ण उन्माद।

भुवन मोहन नृत्य शक्ति आगाध"॥

x x

श्रीकंसारी सेन वन्दो सेन श्रीवल्लभ।

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है कि किसी-किसी के मत में पुरुषोत्तम दास की उपाधि "नागर" थी और किसी के मत में इनके निवास स्थान का नाम "नागर"* होने के कारण इन्होंने पुरुषोत्तम नागर नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होंने एक बार प्रेमोन्मन्त होकर साँप का विष खा लिया परन्तु उस पर भी इनको कोई विकार पैदा नहीं हुआ। इस अलौकिक शक्ति को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु जी के पार्षदों में कईयों की इस प्रकार की अलौकिक शक्ति की बात सुनी जाती है।

---

* वेलेडांगा, वेरिग्राम, सुख सागर, चांदूड़े, मनसापोता, पालपाड़ा, इत्यादि चौदह मौजा, पाँच नगर में हैं। इसलिए उनको कोई-कोई नागर देश भी कहते हैं।

****

श्रीकमलाकर पिप्पलाई

कमलाकरः पिप्पलाइनाम्नासीद्यो महाबलः।

(गौर गगोद्देश दीपिका 128)

व्रज में द्वादश गोपालों में से अन्यतम जो "महाबल" थे, वे ही गौरलीला में नित्यानन्द जी के पार्षद कमलाकर पिप्पलाई के रूप में अवतीर्ण हुए।

"कमलाकर पिप्पलाई-अलौकिक रीत।

अलौकिक प्रेम ताँर भुवने विदित॥"

(चै.च.आ. 11/24)

"महाबल गोपाल ये छिल वृन्दावने।

कमलाकर पिपलाई सेई से एखाने।

दिवा रात्रि करे राधा-कृष्ण गुणगान।

नित्यानन्द प्रभु शाखा वैष्णवेर प्राण॥

गंगार पश्चिमतीरे माहेशे रहिल।

जगन्नाथ प्रतिमूर्ति सेवा कैल॥"

(वैष्णव विचार दर्पण)

"आक्ने माहेशे जन्म जागेश्वरै स्थित।

कमलाकर पिप्पलाई एइ ये लिखित॥"

(श्रीपाट पर्यटन)

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में कमलाकर पिप्पलाई का आविर्भावकाल 1414 शक सम्वत् निर्देशित हुआ है। उनके पिता एक धनवान ज़मींदार थे। आपका आविर्भाव स्थान सुन्दरवन में खालिजुलि गाँव में था। आपके छोटे भाई का नाम श्रीनिधिपति पिप्पलाई था। आप राढ़ीय श्रेणी के शौक्र ब्राह्मण कुल में आविर्भूत हुए थे।

खालिजुलि गाँव में आविर्भूत होकर भी हुगली जिले के अन्तर्गत, श्रीरामपुर रेलवे स्टेशन से ढाई मील दूर 'माहेश' नामक गाँव में इन्होंने वास किया था। माहेश के " श्रीजगन्नाथ" विग्रह इन्हीं द्वारा प्रतिष्ठित हैं। पहले माहेश ग्राम में जंगल ही जंगल था। श्रीकमलाकर पिप्पलाई के शुभागमन के पश्चात् यह सुन्दर गाँव के रूप में बदल गया तथा इनके आने के बाद ही इस गाँव की प्रसिद्धि हुई।

श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में कमलाकर पिप्पलाई के सम्बन्ध में दो कहावतों का उल्लेख किया है—

1. श्रीकमलाकर पिप्पलाई के छोटे भाई श्रीनिधिपति पिप्पलाई ने अपने बड़े भाई की बहुत स्थानों पर खोज की। ढूँढते-ढूँढते अन्त में माहेश गाँव में जाकर उन्हें अपने बड़े भाई के दर्शन हुए। बहुत चेष्टा करने पर भी जब वे अपने बड़े भाई को वापिस न ला सके तो स्वयं ही परिवार के सदस्यों के साथ वहाँ जाकर वास करने लगे। अब भी माहेश ग्राम में कमलाकर पिप्पलाई के वंशजों के बीस घर हैं।

2. 'ध्रुवानन्द' नामक एक उदासीन वैष्णव पुरुषोत्तम क्षेत्र में गए थे। उनको अपने हाथ से बना कर श्रीजगन्नाथ देव को भोग लगाने की प्रबल इच्छा हुई। श्रीजगन्नाथ देव ने स्वप्न में उनको गंगा किनारे "माहेश" जाकर उनकी (श्रीजगन्नाथ की) प्रतिष्ठा कर अपने हाथ से रसोई करके भोग लगाने का निर्देश दिया। ध्रुवानन्द जी ने माहेश जाकर देखा कि श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्रा जी जल में तैर रहे हैं। वे गंगाजल से उन्हें निकाल कर गंगा के किनारे एक कुटिया बना कर उनकी सेवा करने लगे। इनके अप्रकट हो जाने के बाद कौन व्यक्ति श्रीजगन्नाथ जी की सेवा सुचारु रूप से करेंगे—इस विषय में चिंतामग्र होने पर श्रीजगन्नाथ जी ने उनको स्वप्न में दर्शन देकर कहा—"सुन्दरवन के निकट खालिजुलि ग्राम में कमलाकर पिप्पलाई नामक हमारे एक भक्त वैष्णव हैं। वे हमारे द्वारा स्वप्न में आदेश प्राप्त कर तुम्हारे पास आवेंगे। तुम उन्हें यह सेवा समर्पित कर देना।"

दूसरे दिन कमलाकर पिप्पलाई स्वप्न द्वारा निर्देश प्राप्त करके वहाँ आए। ध्रुवानन्द जी ने उनको श्रीजगन्नाथ, श्रीबलदेव और श्रीसुभद्रा जी की सेवा प्रदान कर दी। श्रीकमलाकर पिप्पलाई को श्रीजगन्नाथ की सेवा का अधिकार मिलने के कारण, अधिकारी की उपाधि मिली। उसी समय से उनके वंश में अधिकारी उपाधि प्रचलित हुई। राढ़ीय श्रेणी के शौक्र ब्राह्मणों में पचपन प्रकार के ग्रामीणों में पिप्पलाई सर्वश्रेष्ठ हैं। भक्त भगवान की सेवा के लिए सदा उत्कण्ठित व व्याकुल

रहते हैं, इसीलिये भगवान भक्त को सेवा के लिए निर्देश देते हैं, अभक्त को नहीं देते। कमलाकर पिप्लाई श्रीजगन्नाथ देव के आदेश को प्राप्त करते ही स्वयं को कृतकृतार्थ समझते हुये उसी समय पारिवारिक जनों का त्याग कर माहेश की ओर चल दिये।

स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रिय तर्पण में रुचि रखने वाले कामातुर बद्धजीव विष्णु और वैष्णवों की सेवा के नाम से ही डर जाते हैं। सदा उस को बोझ समझते हैं। वे नाना उपायों से सेवा से अलग रहने की चेष्टा करते हैं। वे विष्णु वैष्णव की सेवा प्राप्ति को भी एक प्रकार का धन नहीं समझते। विषयी लोग जैसे धन कहने से विषय भोग को ही समझते हैं तथा उसे ही सुख व लाभ समझते हैं, उसी प्रकार भक्त लोग विष्णु वैष्णवों की सेवा की प्राप्ति को ही परम धन बताते हैं। दुनियाँ की नज़रों में भक्त गृहस्थ आश्रम में रहने की लीला करने पर भी, वे साधारण विषयी गृहस्थों की भाँति नहीं होते। भगवत् इच्छानुसार गृहस्थाश्रम में रहने पर भी भक्तों के चित्त हमेशा भगवत्-विरह की तन्मयता को प्राप्त किए रहते हैं। भगवान का निर्देश प्राप्त होते ही वे परमोल्लास के साथ सांसारिक सम्बन्धों को परित्याग करके भगवत् सेवा में लग सकते हैं। इस प्रकार के भक्तों के द्वारा संसार का त्याग ज्ञानियों व योगियों की भान्ति कष्टदायक नहीं होता, यह तो स्वाभाविक और स्वतः स्फूर्त होता है।

कमलाकर जी के पुत्र का नाम चतुर्भुज था। चतुर्भुज के दो पुत्रों का नाम श्रीनारायण और श्रीजगन्नाथ था। श्रीनारायण के पुत्र थे—श्रीजगन्नाथ जी तथा जगन्नाथ जी के जगदानन्द और श्रीजगदानन्द के पुत्र श्रीराजीव लोचन थे। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने इस प्रकार उनके वंश के कई पुरुषों का वर्णन किया है। श्रीकमलाकर पिप्पलाई जी के जीवनकाल में श्रीजगन्नाथ देव की सेवा के लिए पहले काफी अधिक कठिनता थी। परन्तु धीरे-धीरे माहेश के जगन्नाथ जी की महिमा चारों ओर फैलने लगी। महिमा प्रचारित होने से ढाका के नवाब वालिश सा (सूजा) ने बंगाब्द 1060 में श्रीजगन्नाथ देव को 1185 बीघा ज़मीन दान की। माहेश के 1 कोस पश्चिम में श्रीजगन्नाथपुर ग्राम में उक्त ज़मीन है। श्रीजगन्नाथ जी नाम से ही उक्त गाँव का नाम श्रीजगन्नाथपुर हुआ।

श्रीनित्यानन्द जी के वंश विस्तार ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा हुआ है—

"माहेश निवासी एक विप्र शुद्ध चित्त।

विष्णु वैष्णव पूजाकर नित्यकृत्य॥

सुधामय नाम पिप्पलायेर जामाता।

विद्युन्माला नाम हय तार वनिला॥"

कमलाकर पिप्पलाई की कन्या विद्युन्माला के साथ माहेश निवासी श्रीसुधामय चट्टोपाध्याय का विवाह हुआ। उनकी कन्या नारायणी देवी थीं, जिसके साथ श्रीवीरभद्र प्रभु का विवाह हुआ। माहेश के अधिकारियों के मतानुसार कन्या का नाम राधारानी था। (गौड़ीय वैष्णव अभिधान)

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी ने श्रीवीरभद्र प्रभु के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है-हुगली ज़िले के अन्तर्गत झामटपुर ग्राम के निवासी यदुनाथाचार्य व विद्युन्माला (लक्ष्मी) की अपनी कन्या श्रीमति तथा उनके द्वारा पालित कन्या श्रीमति नारायणी से श्रीवीरभद्र प्रभु जी ने विवाह किया।

"श्रीयदुनन्दन, शुद्धचित्त हन नानाविध गुणालय,

भार्या विद्युन्माला, लक्ष्मीसम लीला।

पिता याँर पिप्पलाई,

माहेश निवास, जगन्नाथे आश॥

अन्य आशा किछुइ नाइ,

श्रीकमलाकर, याहार श्वशुर।

जामाता यदुनन्दन।

(वैष्णवाचार दर्पण)

श्रीकमलाकर पिप्पलाई 1839 शकाब्द में पाणिहाटि के दण्ड महोत्सव, खेतरी महोत्सव और काटोया के दास गदाधर जी द्वारा प्रदत्त महोत्सव में उपस्थित थे—

"कमलाकर पिप्पलाई बड़ भावेर उद्दाम।

नित्यानन्द दिला याँरे पाणिहाटि ग्राम॥"

(विजय खण्ड)

खड़दह से अपने गणों के साथ श्रीजाह्नवा देवी जब खेतुरी उत्सव में योगदान करने के लिए गयी थीं, उस समय कमलाकर पिप्पलाई भी उनके साथ उपस्थित थे। श्रीभक्ति रत्नाकर ग्रन्थ में (10/375) लिखा है—

"श्रीशंकर, कमलाकर पिप्पलाई।

नृसिंह, चैतन्य, जीव, पण्डित कानाई॥"

वैष्णवाचार दर्पण के मतानुसार कन्या के विवाह कर देने के बाद ये वृन्दावन धाम चले गए थे एवं वहीं पर उन्होंने अपनी अप्रकट लीला की। माहेश के अधिकारी कहते हैं कि श्रीकमलाकर पिप्पलाई का तिरोधान 1485 शकाब्द की चैत्री शुक्ल त्रयोदशी को हुआ था। तब श्रीकमलाकर पिप्पलाई 71 वर्ष के थे।

****

ठाकुर श्रीसारंग दास या श्रीशार्ङ्ग दास

"व्रजे नान्दीमुखी यासीत् साद्य, सारङ्गठक्कुरः।

प्रह्लादो मन्यते कैश्चिन्मत्पित्रा, स न मन्यते॥"

(गौ. ग. दी. 172)

श्रीशिवानन्द सेन के कनिष्ठ पुत्र कवि कर्णपूर जी ने स्वरचित श्रीगौर गणोद्देश दीपिका में इस प्रकार लिखा है– ब्रज में जो नान्दीमुखी थे, वही अब सारंग ठाकुर हैं। कोई-कोई महात्मा इन्हें प्रह्लाद कह कर मानते हैं परन्तु मेरे पिता का यह मत नहीं है।

श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि लीला के दसवें परिच्छेद में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पार्षदों के नामों का वर्णन हुआ है, उसमें ठाकुर सारंग दास जी के नाम का भी उल्लेख है–

रामदास, कविदत्त, श्रीगोपालदास।

भागवताचार्य, ठाकुर सार्ङ्गदास॥

(चै.च.आ. 10/113)

ठाकुर सारंग दास-शार्ङ्ग ठाकुर, शार्ङ्गपाणि व शार्ङ्गधर-इन तीनों नामों से भी जाने जाते हैं। ये नवधा भक्ति के पीठ स्वरूप श्रीनवद्वीप धाम के अन्तर्गत दास्य भक्ति के क्षेत्र श्रीमोदद्रुम द्वीप (मामगाछि) में वास करते थे। इन्होंने गंगा के किनारे किसी निर्जन स्थान में तीव्र भजन करके अलौकिक शक्ति प्राप्त की थी। भजन में विघ्न होने की आशंका से, श्रीसारंग ठाकुर का पहले शिष्य न बनाने का संकल्प था किन्तु महाप्रभु जी की पुनः-पुनः प्रेरणा के कारण वे शिष्य बनाने पर बाध्य हुए। श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान में इस प्रकार लिखा है—

श्रीदेवानन्द पण्डित प्रभु जी ने श्रीवास पण्डित के चरणों में अपराध किया तो श्रीमन्महाप्रभु जी जब उनकी भर्त्सना करके आ रहे थे तो रास्ते में सारंग ठाकुर जी से महाप्रभु जी का साक्षात्कार हुआ था। उस समय ही उन्होंने सारंग ठाकुर को अपना संकल्प परित्याग कर शिष्य बनाने का आदेश दिया।

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने चैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में सारंग ठाकुर के चरित्र माहात्म्य वर्णन में लिखा है—

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के द्वारा आदेश प्राप्त करके, श्रीसारंग ठाकुर जी ने संकल्प लिया कि आगामी कल को प्रातः काल वे जिसको भी देखेंगे, उसी को ही शिष्य बना लेंगे। घटनाक्रम से दूसरे दिन प्रातः काल भागीरथी में स्नान के समय, उनके पैरों में किसी मुर्दे का स्पर्श हुआ। उन्होंने उसी को पुनर्जीवन प्रदान करके उसे अपना शिष्य बना लिया। यह शिष्य ही श्रीठाकुर मुरारी के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीसारंग के नाम के साथ 'मुरारी' युक्त होने पर इनका शार्ङ्ग मुरारी नाम हुआ।

श्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान की विवृति से ज्ञात होता है कि मुरारी नामक एक बालक की साँप के डसने से मृत्यु हो गई थी और उस समय की प्रथा के अनुसार उसके माता-पिता ने उस पुत्र को गंगा जी में प्रवाहित कर दिया। श्रीसारंग ठाकुर जी ने उस मृत बालक को दीक्षा-मन्त्र प्रदान करके जीवित कर दिया। इसलिये इनका नाम हुआ सारंग मुरारी। श्रीसारंग ठाकुर की कृपा से सारंग मुरारी ने भी शक्तिशाली आचार्य के रूप में ख्याति प्राप्त की थी।

श्रीसारंग मुरारी जी की वंश-परम्परा के लोग अब शव् नामक ग्राम में वास करते हैं। सारंग ठाकुर जी की प्राचीन सेवा मामगाछि ग्राम में विद्यमान है। वहाँ के एक प्राचीन बकुल वृक्ष के सामने एक मन्दिर निर्मित हुआ है। श्रीसारंग ठाकुर द्वारा पूजित श्रीराधा-गोविन्द श्रीविग्रह अब भी वहाँ सेवित होते हैं। श्रीगौरांग पार्षद श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर द्वारा सेवित विग्रह श्रीमदन गोपाल जी भी उक्त मन्दिर में विराजमान हैं।

श्रीनवदीप धाम की परिक्रमा के समय परिक्रमाकारी भक्त लोग उनका दर्शन करते हैं। उक्त सारंग मुरारी के पीठ स्थान के निकट ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीवृन्दावन दास ठाकुर जी का पाठ स्थान भी है।

अग्रहायण मास की कृष्ण त्रयोदशी तिथि को सारंग ठाकुर जी का तिरोभाव हुआ। किसी के मत में उनकी आविर्भाव तिथि आषाढ़ मास की कृष्ण चतुर्दशी को पड़ती है।

****

श्रीकालिया कृष्णदास (काला कृष्णदास)

"प्रसिद्ध कालिया-कृष्णदास त्रिभुवने।

गौरचन्द्र लभ्य हय याँहार स्मरणे॥"

(चै.भा.अ. 5/740)

"कालः श्रीकृष्णदासः स यो लवङ्गः सखा व्रजे"

(गौ.ग.दी. 132)

ये द्वादश गोपालों में से एक श्रीलवंग सखा थे। इनका पीठ स्थान, आकाईहाट ग्राम में था। यह ग्राम वर्धमान ज़िले के काटोया थाना और डाकघर के अन्तर्गत नवद्वीप काटोया मार्ग के पीछे की ओर है। ये काटोया स्टेशन से दो मील तथा दाँईहाट स्टेशन से एक मील दूरी पर स्थित है। इसी स्थान पर काला कृष्णदास ठाकुर जी का नूपुर कुण्ड भी विद्यमान है। किसी-किसी के मत में खण्डवासी भक्त श्रीमुकुन्द के पुत्र श्रीरघुनन्दन ठाकुर का तथा किसी अन्य के मत में श्रीनित्यानन्द प्रभु जी का नूपुर इस कुण्ड में गिरा था।

श्रीभक्ति सिध्दान्त सरस्वती ठाकुर महाराज श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुभाष्य में लिखते हैं कि—

पावना ज़िला के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध वेड़ा बन्दरगाह से प्रायः तीन मील दूरी व पश्चिम में इच्छामती नदी के किनारे स्थित सोनातला ग्राम के निवासी 'गोस्वामी' महाशय गणों के मतानुसार काला कृष्णदास ठाकुर जी वारेन्द्र श्रेणी के कुल

में उत्पन्न हुए थे तथा ये भरद्वाज गोत्री व भादड़ गाँव के निवासी थे। आकाईहाट से काला कृष्णदास ठाकुर जी हरिनाम प्रचार हेतु पावना में आए थे। जिस स्थान पर इन्होंने आश्रम बनाया था, उस मैदान में अब भी तब के मकानों के खण्डहरों के चिह्न हैं। बाद में इसी स्थान में इनकी जाति के अन्य लोग भी आ गए थे। आकाईहाट में वारेन्द्र ब्राह्मण न होने की वजह से इन्होंने इधर ही विवाह कर लिया तथा कुछ दिनों के बाद दोबारा आकाईहाट व वृन्दावन की ओर गमन कर गये।

इनके दो पुत्र थे—श्रीमोहन दास, तथा श्रीगौरांग दास। श्रीगौरांग दास का दूसरा नाम श्रीवृन्दावन दास भी था। इनके वंशधर अब भी पावना ज़िला के सोनातला ग्राम में हैं। सोनातला ग्राम में कृष्ण द्वादशी को काला कृष्णदास ठाकुर जी का तिरोभाव उत्सव मनाया जाता है। इन के द्वारा सेवित श्रीविग्रह का नाम श्रीकाला चाँद जी है।

सोनातला के पीठ स्थान का वास्तु स्थान (a homestead), मन्दिर की ईंटें और पुष्पकरिणी के घाट अब भी नज़र आते हैं।

"राढ़े याँर जन्म कृष्णदास द्विजकर।

श्रीनित्यानन्देर तिंहो परम किंकर॥

कालाकृष्णदास बड़ वैष्णवप्रधान।

नित्यानन्द-चन्द्र बिना नाहि जाने आन॥"

(चै.च.आ. 11/36-37)

(अर्थात् राढ़ में जिनका जन्म हुआ था वे कृष्णदास द्विजवर श्रीनित्यानन्द प्रभु के अति प्रिय सेवक थे। श्रीकाला कृष्णदास वैष्णवाग्रगणी थे। ये श्रीनित्यानन्द जी के बिना किसी को नहीं जानते थे अर्थात् इनके सर्वस्व नित्यानन्द जी ही थे)।

श्रीजाह्नवा देवी के नवद्वीप धाम से काटोया (कंटक नगर) आने के समय भक्तों के साथ काला कृष्णदास जी भी थे—

"आकाइ हाटेर कृष्णदास सहित।

कंटक नगरे सबे हैला उपुनीत॥"

(भक्ति रत्नाकर 10/409)

महाप्रभु जी की दक्षिण भारत की यात्रा के समय जो काला कृष्ण दास जी महाप्रभु के कोपीन व बहिर्वास तथा जल पात्र को सम्भालते थे, जिसको कि श्रीनित्यानन्द जी ने महाप्रभु जी के साथ दिया था—वे काला कृष्ण दास जी इन काला कृष्ण दास जी से अलग हैं—ऐसा श्रील भक्ति सिध्दान्त सरस्वती जी ने श्रीचैतन्य चरितामृत की मध्य लीला के 7/39 पयार के भाष्य में लिखा है।

****